सूर-पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य

डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह

सूर-पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य

डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह

पूज्य पिता जी को सुरपूर्व वजभाषा के उन भज्ञात लेखकों की स्पृति में, जिनकी रचनाएँ सूर-साहित्य के विशाल भवन के निर्माण के लिए नींव में दब गईं। पूज्य पिता जी को सुरपूर्व बजभाषा के उन भज्ञात लेखकों की स्मृति में, जिनकी रचनाएँ सुर-साहित्य के विशास भवन

के निर्माण के लिए नींव में दव गई।

तद्भव शब्दों का एकमान राज्य था। इस बीच धारे धीरे तरक्षम-बहुल रून प्रकट होने लगा था। नवीं दसवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा में तत्सम शब्दों के प्रवेश का प्रमाण भिल्ने लगता है और १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ से तो तत्सम शब्द निश्चित रूप से अधिक मात्रा में व्यवहत होने छगे। क्रियाएँ और विभक्तियाँ तो ईषट विकसित और परिवर्तित रूप में बनी रहीं पर तत्सम शब्दों का प्रचार बढ़ जाने से भाषा भी बदली सी जान पड़ने लगी। भक्ति के नवीन आन्दोलन ने अनेक होविक जन-आन्दोलनोंको शास्त्र मा पला पवडा दिया श्रीर भागवत पुरास का प्रभाव बहुत ब्यायक रूप से पड़ा। शाकर मत की दृढ़ प्रतिष्ठा ने भी बोठचाठ की भाषा में, और साहित्य की भाषा में भी, तत्सम शुरूरों के प्रवेश को सहारा दिया ! तत्सम शब्दों के प्रवेश से पुरानी भाषा एकाएक नवीन रूप में प्रकर हुई, यद्यपि यह उतनी नवीन थी नहीं । मुक्ते प्रसन्नता है कि शिवपसादजी ने सत्कालीन साहित्य की भाषा का जा मथन किया है उससे यह व्यक्तव्य श्रीर भी पुष्ट और समर्थित हुआ है। शिवप्रसादनी १२वीं से चीटहर्वी शताब्दी तक के उपरुव्य प्रयों की भाषा का वैज्ञानिक विश्रतेषण करके अनेक महस्वपूर्ण निष्नपों पर पहुँचे हैं। सुरदास के पूर्व के कई अज्ञात और अल्पजात जनभाषा क्षियों की रचनाओं के आधार पर उन्होंने इस काल की भाषा, साहित्य और काव्य रूपों का बहुत ही उद्बोधक परिचय दिया है। इस निवय में १४वीं शतान्दी से १६वीं शतान्दी के बीच लिखे गये ब्रजभाषा साहित्य का चा अब तक श्रासात या अहंगसात था, समुचित आकलन होते के कारण, स्रदास की पहले की ब्रजभाषा की तुटित श्रासला का उचित निर्धारण ही नावा है।

विद्रानों की धारणा रही है कि जबमापा में सगुण भित्त में काव्य जबबरेश में वहाभाषायों के आगमन के बाद लिखा जाने लगा। शिवयसाद श्री के इस निवध से इस मान्यता का उचित निरास हो आता है। सगुण भित्त का अवसापा बाव्य स्ट्रास के पूर्व आरम हो जुड़ा था विक्रस सकेत प्राकृतवंगालम, तथा अन्य अपअश स्वनाओं में विजित कृष्ण और राश के प्रेम परक प्रसातों सथा स्तिमृत्तक रचनाओं से मिलता है। जैन बाव्य के विषय में दिन्दी विद्यानों के मन में अभी उतना आवर्षण नहीं हुआ है विज्ञात होना चाहिए। मैंने दिन्दी व्यक्ति के आदिवाल में विल्ला शां कि इसर कुल ऐसी मनोभावना दिलाई पबने लगी है कि धार्मिक रचनाएँ साहित्य में विवेच्य नहीं हैं। मुक्ते यह बात उचित नहीं माद्म होती! धार्मिक प्रेरणा या आप्यालिक उपदेश का होना खायस्व का वायक नहीं समस्य जाना चाहिए। विवायसादकी ने सर्पृत्व जनभाषा के जैन बाव्य वा बहुत मुन्दर और सन्तुनित विवेच निका है तथा पूर्ववर्ती अपग्रश्व और परवर्ती जनभाषा का के अध्ययन में उत्तवा गहिता महस्व भी दिखाया है।

तद्भव शब्दों का एकमान राज्य या। इस बीच घारे घीरे तत्सम-बहुल रून प्रकट होने लगा था। नवीं दसवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा में तत्सम शब्दों के प्रवेश का प्रमाण मिलने लगता है और १४वीं शतान्दी के प्रारम्म से तो तत्तम शब्द निश्चित रूप से अधिक मात्रा में व्यवद्धत होने छगे । कियाएँ और विभक्तियाँ तो ईपट् विकसित और परिवर्तित रूप में बनी रहीं पर तत्तम शब्दों वा प्रचार वह बाने से भाषा भी बदली सी बान पड़ने लगी। मिक के नवीन आन्दोलन ने अनेक लौकिक बन-आन्दोलनोंको शास्त्र का पल्ला पक्डा दिया श्रीर भागवत पुराख का प्रभाव बहुत व्यापक रूप से पड़ा। शास्त्र मत की हद प्रतिष्ठा ने भी बोळचाल की भाषा में, और साहित्व की भाषा में भी, तत्सम शब्दों के प्रवेश को सहारा दिया । तसम शन्दों के प्रवेश से पुरानी भाषा एकाएक नदीन रूप में प्रकर हुई, यद्यपि यह उतनी नवीन थी नहीं। सुक्ते प्रसन्नता है कि शिवपसादजी ने तत्कालीन साहित्य की भाषा का जा मधन किया है उससे यह व्यक्तव्य श्रीर भी पुष्ट और समर्थित हुआ है। शिवप्रसादनी १२वीं से चीदहर्वी शताब्दी तक के उपरूच्य प्रयों की भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण करके अनेक महत्त्वपूर्ण निष्नपों पर पहुँचे हैं। सूरदास के पूर्व के कई अज्ञात और अल्पज्ञात ब्रजभापा विवर्षों की रचनाओं के आधार पर उन्होंने इस काठ की भाषा, साहित्य और काव्य रूपों का बहुत ही उद्बोधक परिचय दिया है। इस निवय में १४वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी के वीच ठिले गरे ब्रबभाषा साहित्य का चा अब तक श्रवात या अलग्सात था, समुचित आकलन होने के कारण, सुरदास की पहले की ब्रजभाषा की तुटित श्वराला का उचित निर्धारण ही वाता है।

आभार

स्पूर्व ब्रवभाया और उसके साहित्य का इतिहास अत्यत अत्यत्र और कुहान्द्वनमाय रहा है। सुरहास का ब्रवभाया का आि कुंब मानने में ब्रवभाया के प्रमी दिव को उज्जास और गर्ने का अनुमन भन्ने ही होता हो, वा स्तामाविक है, क्यों कि आरिमक अवस्था में हतनी महती का-रोपलिक कि किमी भी भाषा के लिए तीय को वह हो हुई स्थलता के किया में कि साम है हिन्दी स्वावता के अनुवाधे कि सित रही हुई स्थलता के स्वावता की आशा से परिचालित होते रहे हैं बितने अपनी प्रकृषि कर सूर्व वैसे अप्रतिम प्रतिभाशाली महाक्वि को प्रतिशादित होते रहे हैं बितने अपनी प्रकृष्टी में स्व आशा आधारभूत प्रामाणिक सामग्री के अभाव में कभी भी क्या ती नहीं हुई क्योंके दवां ग्रताक्वी से सोल्ह्यी तक के ब्रव सामग्री के अभाव में कभी भी क्या हो में नहीं उन जात अविज्ञात भोडारों में हा सकता या जा अधाविष्य या स्वावता है और अपनी उद्दार सामग्री के विषय में अक्टरनीय मौन पारण किए हुँ।

सन् १६५६ में गुरुबर आचार्य इचारी प्रसाद दियेरी ने यह सूर पूर्व प्रक्रमाय साहित्व के सचान का यह चार्य दुसे कीचा वा में उस अकात सामग्री की माति के विषय म विच्य का विच

इस्तटेखों म मात सामधी ने अलावा सूर पूर्व अजभापा से सनद प्रकाशित सामधा का भी उत्तर हिए से अध्ययन आवश्यक प्रतीत हुआ । किसी भी भाषा की मध्यान्तरित अवस्था का अध्ययन उसकी पूर्वता और परवर्ता अवस्था के सम्यक् आकृतन के दिना सभग नहीं है। पूर्व अजभापा के स्वरूप निर्धाण के सम्य परवर्ता अजभापा से उसके सण्यों का निरुद्धण करते समय दो॰ चीरेंद्र बमा की पुलक 'अवभाया' से बहुत सहायता मिनी। टेलक उनके प्रति अवना निनम्न श्रामार व्यक्त करता है।

इस प्रवेश के शिए उपयानी सामग्री एकन कराने में अन्य भी कई सजना ने अपना श्रमुल्य सहयाग दिया है। गुवाहाटी विश्वविद्यालय के असमिया विभाग के अध्यक्ष डा॰

आभार

स्तपूर्व ब्रजमाया और उसके साहित्व का इतिहास अत्यन अस्तर भीर कुहा-छुप्रप्राय रहा है। स्टाह्म का ब्रजमाया का आणि कर्ष मानते में ब्रजमाया ने प्रमी विच के उहास और गर्न का ब्रजमाया का आणि कर्ष मानते में ब्रजमाया ने प्रमी विच के उहास और गर्न का अन्यक्षित्र हिसी हो। हो। हा। बा सामाविक है, क्यों कि आरोमिक अक्षति कि सहा हो करती है, क्रिन्तु स्वामानिक्यों और भाषा विकास के अनुविध्वन्नु किरतर उस हुए। हुई श्रव्यक्त के सथान की आशा से परिचालित होते रहे है बिसमें अपनी प्रमूमि पर सूच जैसे अप्रतिम प्रतिभाषाली महाक्षित्र को परिचालित होते रहे हैं बिसमें अपनी प्रमूमि पर सूच जैसे अप्रतिम प्रतिभाषाली महाक्षित्र को प्रतिष्ठापित किया। क्षित्र अस्ति प्रतिभाषाली महाक्षित्र को प्रतिष्ठापित किया। क्षित्र अस्ति प्रतिभाषाली के अमाव में क्ष्मी भी क्ष्मत्री नहीं उन कात अविकास भागित पुस्करों में नहीं उत्तर सामग्री ने विषद म अक्ष्मरसीय मीन पारण किए हुए हैं।

सन् १६ % में गुरुबर आचार्य हजारी प्रहाद द्विवेरी ने जब सूर पूर्व व्रजनाथा साहित्य के सवान का वह कार्य मुक्ते की जात ने जिस अकारत सामग्री की प्रति के विश्व मा विविद्य आशाबित जरूर था, किन्तु अपनी सामित शक्ति और माहारों में दूरी सामग्री आंत ने जान अपना किया कार्य कि ती माति के दिवा मात्र के प्रवाद की सामग्री की कार्य कि ती मात्र के विविद्य अवर्ष की अविद्य कि ती मात्र की विविद्य अवर्ष की अविद्य कि ती मात्र कि विद्य अवर्ष की उपनित्र के बाद भी जी तामग्री मिनली, उसकी प्रामाणिक्ता के विषय में सरेह हीन हा पाना एक बढ़ित कार्य की अवर्ष में अवर्ष की विविद्य की निर्मा के अविद्या की की अवर्ष की अवर्य की अवर्ष की अवर्य की अवर्ष की अवर्य की अवर्ष की अवर्य की अवर्य की अवर्ष की अवर्ष की अवर्य की अवर्ष की अवर्ष की अवर्य की अवर्य की अवर्य की अवर्य की अवर्य की

हरतलेखों न मात सामग्री ने क्रान्या सु पूर्व ब्रजमापा से सरह प्रकाशित नामग्रा का भी उस्त हिंग् से अध्ययन आवश्यक प्रतीत हुआ । किसी भी भाषा की मध्यान्तिरित अवस्था का अध्ययन उसकी पूर्वता और परवती क्रवस्था के सम्यक् आकृतन के किया सभा नहीं है। पर्यू में ब्रजमापा के करण निर्धारण के लिय परवता ब्रज्मापा से उसके सम्यो का निरुपण करते समय हा० भीरेंद्र कमा की पुलक स्वभाषा से बहुत सहायता मिनी । लेलक उनके प्रति अरना निनम्न स्नामार व्यक्त करता है ।

इस प्रवध के लिए उपयागी सामग्री एका कराने में अन्य भी कई सजना ने अपना श्रमूल्य सहयाग दिया है। गुवाहारी विश्वविद्यालय के असमिया विभाग ने अध्यक्ष डा॰

विपय-सूची

(अंक परिच्छेदसंख्या के स्वक हैं)

१. प्राम्ताविक

ब्रधमाया के उदय-काल ने सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों नी धारणायें, १-२-सन्नद्धी राजादयों में ब्रम्भाया के आनंतिमक उदय माने चाने के कारण १-४ इस मान्यता नी हृदिया और सीमामें : मण्यदेशीय भाषा की महती परम्पर १० ची राजान्दी में ब्रम्भाया वा उद्य मानने से हृदिव-विक्रमी इसवीं से १६ वी राजान्दी तक नी मण्यन्तित दृदित राज्जन के पुनिन्ने माए वप प्रसाव-आपारमृत सामग्री और उत्तवा पुनिर्निद्या-५-१९, ब्रम्भाया सम्बन्धी साद, आरोम्मक ब्रबमाया के अप्ययन के अमान में इन नार्यों को अपूर्णता १२-१५, आदिवाजीन तथा मिक्काव्य की पुष्कर्म्म-आरंमिक ब्रम्बनाव्य, इस सादित्य के तथावित अमान के नारण परवतों मादित्य के अभ्ययन में उत्तक कठिनाइयां—साहित्यक प्रश्वता और नान्यरूपों के अभ्ययन के लिये दखबीं से सोल्ह्सी राजान्दी के ब्रम्बसादित्य का सथान आवश्यक १५-१७

२. ब्रजभाषा का रिक्थ : मध्यदेशीय इन्दो-आर्यन

मण्यदेश-उसकी भाषा-परम्पत का ब्रह्ममाषा के रिक्ष के रूप में अध्ययन, १८मारतीय आर्यमाषा का आरम-छन्दन्, १६-आर्यमाषा के अन्तर्वतों और विद्विर्वतों विभाजनइस विभाजन के मापा शास्त्रीय आपार-इनकी विरोधताय और छटिया, २०-वैरिक भाषा को
विजयत : स्वर सम्रावारण, स्वरमित्त हियोगताय तथा र-क की विनियंगता-ब्रह्ममाषा के
विकास में इनका योग, ११-वाक्स विन्यास में कर्तो, क्रमें क्रिया का अनुत्रम, उसकों और
भाषा विशिण्डता, २२-मध्यदेशीय छन्दस् के ब्राह्मणों में परिष्टित रूप से सहस्त का निर्माणवीद भारत में भाषा विधीत, २३ २५-अप्तीक के शिलालेखों को भाषा-क के विभिन्न परिवर्तन,
आदि स्वर-कोष तथा अन्य ध्विन विकास, २५-पाति: मध्यदेश की भाषा-वािक भाषा के
ध्विनित्तय और रूप-त्रक्ष स्वरित्तेषण, ब्रह्ममाषा के निर्माण में इनका प्रमात, २६-२०नाटवों की प्राष्ट्रतें : महाराष्ट्री शीरतिनी का कृतिव्र रूप-प्राप्टतों में ध्विन और रूप सर्वथं विकासविवास आर्थ भाषा पर इनका प्रमात, २८-१६-शीरतिनी प्राष्ट्रत की आपवादिक
विशेषताय, ३०-अपन्नग्रस : खिन और रूप-ब्रजमाषा के गठन—निर्माण में इतका
थेगा, ११-१४

३. ब्रजभाषा का उद्गम औरसेनी अपन्नश्च (विक्रमी १०००-१२००)

अराभ्य और नम्य त्रार्ष भाषारें, ३५-३६-शीरसेनी अपभ्रय कहा की भाषा थी-मण्यदेश से इसका सम्बन्ध, ३७-४०-माकृत ब्याकरण में देसकन्द्र सकटित, दोहों की मापा-देशी विदेशी विद्वानों की घारणा कि यह माषा मण्यदेशीय है, ४१-चुछेक गुजराती विद्वानों

विषय-सूची

(अंक परिच्छेदसंख्या के सूचक हैं)

१. प्राम्ताविक

ब्रबमापा के उदय-खल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों की धारणायें, १-२-सन्नद्धीं शातादारों में ब्रन्नापा के आविसक उदय माने चाने के कारण १-४ इस मान्यता की हिटेया और सीमामें : मण्यदेशीय मापा की महती परम्पा १७ वी शानदी में ब्रन्नापा का उदय मानने से हृदित-विक्रमी इसवी से १६ वी शातादी तक की मण्यनतित दृदित श्रव्यक्त के पुनिन्ने पाए का प्रस्ताय-आपारपुत सामग्री और उक्तवा पुनिर्निद्यान-५-१६, ब्रन्नापा सम्बन्धी कार्य, आरिम्मक ब्रन्नमापा के अध्ययन के अमान में इन कार्यों को अपूर्णता १२-१४, आदिवाजीन तथा मिक्काव्य की पुष्ठभूमि-आरिमिक ब्रन्नमान्य, इस साहित्य के तथावधित अमाव के कार्य प्रवर्ती साहित्य के अध्ययन में उत्यक्ष किंदनाह्यों—साहित्यक प्रश्वाय और कार्यस्थों के अध्ययन के लिये दहवीं से सोल्ह्सी शताब्दी के ब्रन्नसाहित्य का सचान आवश्यक १५-१७

२. त्रजभाषा का रिक्थ : मध्यदेशीय इन्दो-आर्यन

मध्यदेश-उसकी माणा-यरम्या का ब्रह्माणा के रिक्स के रूप में अध्यवन, १८
मारतीय आर्थमाणा का आरम्म-इन्ट्रस्, १६-आर्थमाणा के अन्तर्वतों और विदेवंती विभावन
इस विमान्न के माणा शास्त्रीय आर्था-इनकी विद्येषता थें। दृष्टिम्, २०-वैदिक माणा को

प्रति प्रति प्रति का शास्त्रीय आर्था-इनकी विद्येषता थें। दृष्टिम्, २०-वैदिक माणा को

विकास में इनका योग, २१-वाक्स विन्याल में क्यों, कर्म, क्रिया का अनुत्रम, उसकों और

भागा विदि इत, २२-मध्यदेशीय कृदस् के ब्राह्मणों में परिग्रहीत रूप से सक्तत का निर्माणवैद्ये भारत में भागा विद्यति, २३ २५-अप्रोक्त के शिवन्तिकों को भागा-क के विभिन्न परिवर्तन,

बादि सर-कोर तथा अन्य ध्वनि विकास, २५-पालि: मध्यदेश की भागा-मालि भागा के

व्यत्तिताय और रूप-कर्त्म का विद्यतिष्ण, ब्रह्मणा से निर्माण में दत्तन प्रमाल, २६-२०
वाटकों की प्राकृतें : महाराष्ट्री शीरतिनी का कृतिब रूप-पाइतों में ध्वनि और रूप सर्वश्री

विकास-प्रत्य आर्थ भागा पर इनका प्रमाल, २८-१६-शीरतिनी माइत को आप्रवादिक

विशेषताय, ३०-अप्रसम्बाः ध्वनि और रूप-अवनामा के गठन—निर्माण में इसका

३. ब्रजभाषा का उद्गम भौग्सेनी अपश्रश (वित्रमी १०००-१२००)

अपभ्रत और नच्य झार्य भाषायँ, ३५-३६-छीरमेती अपभ्रश कहा की भाषा थी-मध्यदेश से हतका सम्बन्ध, ३७-४०-माकुट व्याकरण में देमचन्द्र सक्कित दोदों की माथा-देशी विदेशी विदानों की घारणा कि यह माथा मध्यदेशीय है, ४१-दुक्केक गुजराती विदानों पद रचना का आरम्भ, १६७-न्याल्पिरी माषा - क्या अहम भाषा थी-मिर्को खा के व्यावरण में ग्वालियरी ब्रजभाषा के अन्तर्गत मानी गई, ब्रजभाषा शब्द का प्रयोग, १६५-१७० ।

अंत्रफाशित सामग्री का परिचय-परीक्षण

सघार अग्रवाल का प्रयुक्त वरित (विक्रमी १४११), १७१, कवि, परिचम, रचना, काव्य-वस्तु, १७२-१७३-—वापू मिणारा का हरियन्द सुराग (विक्रमी १४४३), १७५, रचनाक्त आग और साहित का परिचम १७५, विष्णुदास (सवत् १४६२), विविक्ष त्रवान के प्राप्त के स्थान के प्रयास (विक्रमी १४४१), १७६, स्वान विक्रम, १९८, क्षान्य के प्राप्त (विक्रम १४४६), हस्ततिल परिचम, रचनाक्ष्त, आहि का विवरण, १७६, क्षान्य १८०-८-८, हूँ तर वावनी (विक्रम, १४४०) हमा माणा, १८६, हिलाई वार्त (विक्रमी १४४०) रचना माणा, १८६, हिलाई वार्त (विक्रमी १४४०) स्वान माणा-साहित्य १८७-१८६, वेपताम वी पीता-माणा (विक्रमी १४४७) परिचम, १६०-१६१, चतुर्ववरात की मधुमालती क्या (१४५० सवत् वे स्थममा) परिचम और वाल निर्माण १६२, चतव्यन की मधुमालती क्या (१४५० सवत् वे स्थममा) परिचम और वाल निर्माण १६२, चतव्यन की मधुमालती क्या (१४५० सवत् वे स्थममा) परिचम और वाल निर्माण १६२, चतव्यन की मीमुश्वरगीत (विवत् १४७५), १६४—चीहल (१५७८) स्वनार्ष, प्रसाहेली और वावनो की प्रतिवं काल माणार १६५-१६८---वावक सहस्र मुलर का स्वतन्त्र मार रास (१८२ सवत्) १६६।

गुरमन्थ में ब्रजकवियो की रचनाएँ

गुहम्रन्य वे ब्रब कि, २०० —नामदेव, कि परिचय, रचनाकाल, रचनायं भाषा २०१-२०२ —त्रिलोचन, परिचय और रचना २०१ — अपदेव, गुह म्रन्य के पद, प्राष्ट्रतवेंगलम् वे पटी से इनकी भाषा की लुलना, कीवनहृत, २०४ —चेनी, २०५ —कपना, २०६ — प्रमानन्द की हिन्दी रचनायं, २०७ -२०८ —कपीर की भाषा, २०६ -२१२ —देतास कि परिचय, पद, प्रह्लादचरित, भाषा, २१३ -२१५ —पीपा, २१६ —या मानक, २१७ — नानक — जीवन दृत्त, प्रचारी और ब्रब रचनाओ का निर्णय, २१६ — स्वा मगत, २१७ — नानक — जीवन दृत्त, प्रचारी और ब्रब रचनाओ का निर्णय, २१६ — २१६ ।

अन्य कवि

इरिहास निरम्जनी, निरम्जन सम्मदाय का परिचय, कवि, काल निर्मय, इस्तोलेलों के आधार पर जन्मितीय का निर्मारण—पदचार्य, भागा, २१०-२२०—निम्मके सम्प्रदाय के किंत, २२१—शिमह, इरिल्मस देव और परमुदास देव का काल निर्मारण, २२२—विमानीसी का लिंदिकाल, परमुदास वाणों का रचनाकाल—परमुदास सामर की रचनार्य विमानतीसी से कंतीर की इसी नाम की रचना का साम्य, काव्य और माम्य, २३२२-२५—त्तवचेता, २२०—सरहरि मह की मान्य की सम्मत्न सम्बन्धी विशेषतार्य, २९८-१८—मीरा के मोनी की मान्य, २१४—मीरा को मोनी की मान्य, २१४—मीरावार्य, वीवन इस सम्बन्धी शोध का निष्मर्य, २१५—पनीरों के मोनी की मान्य, २१६—रचनार्य, २१०—स्पातिकार क्षत्रिय की रचनार्य—सामित और अन्नमाण, २१६—रचनार्य, २१०—स्पातिकार क्षत्रिय की स्वनार्य, समित और अन्नमाण, २१६—रचनार्य, २१०—स्वातिकार क्षत्रिय की स्वनार्य, समित और अन्नमाण, २१६—रचनार्य, २१०—स्वातिकार क्षत्रिय की स्वनार्य, नावच-काल निर्मय

पद रचना का आरम्भ, १६७-म्यालियरी भाषा . क्या अलग भाषा थी-मित्रां खा के व्यावरण में म्वालियरी ल्रजभाषा के अन्तर्गत मानी गईं, ल्रजभाषा राज्य का प्रयोग, १६५-१७० ।

अप्रकाशित सामग्री का परिचय-परीक्षण

चयार अववाल का प्रयुक्त वरित (विक्रमी १४११), १७१, कवि, परिचय, रचना, काल्यन्त, १७२-१७३-चार् मिणारा का हरिचन्द प्रथम (विक्रमी १४५१), १७४, रचनाक्ता भाषा और साहित्य का यरिचय १७५, विण्युतास (सवत १४६२), विष्युतास त्यानार्थे अपार्थे के स्वाचित क्या (वि० १४१६) हरतलेख गरिचय, रचनाक्ताल आदि वा विवरण, १७६, कथान्यस्त १८०-१८६, हूँतर वावती (वि० १४१८) स्टन-१८३, मानिक कवि की वेताल पचीली (विक्रमी १४५०) स्टर-१८५, कवि ठवकुराली (विक्रमी १४५०) रचना भाषादि, १८६, ख्रितार्थे वावती १४५०) स्टर-१८५, कवि ठवकुराली (विक्रमी १४५०) स्वत्य भाषान्यसिद्ध १८७-१८६, वेदानाय की गीता-मापा (विक्रमी १४५०) परिचय और काल निर्मय स्वतुत्रेश्वरास की मधुमारती कथा (१५५०) सवत् ने लगमा) परिचय और काल निर्मय १६२, चतुर्वज्ञदास की मधुमारती कथा (१५५०), १६६ —च्यांस्त्र का धार्मेचेच्या (सवत् १५७०), १६४ —ख्रीहल (१५०८) स्वत्यार्थे, अवसरेलो और वावनो की प्रतिची काल प्राप्येद्द स्वत्य १५५०), १६४ —ख्रीहल (१५०८) स्वत्यार्थे, अवसरेलो और वावनो की प्रतिची काल भाषादि १६५-१६८ —वावक सहस मुदर का राजनुस्तार रास (१८२ सवत्) १६६।

गुरमन्य में बनकविया की रचनाएँ

तुहसन्य ये ब्रब कि १०० — नामदेव, विष परिचय, रचनाकात, रचनायं -भाषा २०१-२०२ — त्रिलोचन, परिचय और रचना २०३ — त्रपदेव, गुरु ब्रन्य के पर, प्राष्ट्रतर्पेगलम् वे पटा से हमली भाषा की तुल्ता, बीवनहृत, २०४ — येनी, २०५ — फपना, २०६ — पमानन्द, बीवन हृत, रामानन्द की हिन्दी रचनाम, २०६ — २०८ — क्षीर की भाषा, २०६ — २०८ — १२० — वेता कि परिचय, पट, प्रह्लादचरित, भाषा, २१३ — २१५ — पीषा, २१६ — चीतन हृत, पजाबी और ब्रज रचनाओं वा निर्णय, २१६ — २२६ ।

अन्य कवि

हरिदास लिखनी, निखन सम्प्राय का परिचय, कवि, काल निर्धाय, हसलेलां के आधार पर जन्मितिए का निर्धाय—रचनायं, मागा, २१०-२२०—निग्याकं सम्प्रदाय के कवि, २१८—श्रीमह, हरित्यात देव और पर्युद्धात देव को का निर्धाय, २२२—विप्रातीक्षी का निर्धाय, पर्युद्धान वाणों का स्वनावं किया सामर की रचनार्थं विष्यमतीक्षी के किया के सिर्धाय निर्धाय के स्वतं के स्

के निर्धारित उद्देश, सस्तृत, प्राष्ट्रत अराभ्य की कथाओं में अन्तर, प्राचीन अवकथा-काय १८०-१६०—पातक और राखी । राक्त का विकित्तराति अर्थ और सहस्त, आठकारिकों के छद्धा—मसूग राक्त के छीता काव्यों का उद्धत-सन्देश, एक्क और पृथ्वी रावसाते, १६१-१६२ छीता काव्य: छद्या और विकास छोताराक काव्य प्रकार,—मुद्य और नेयता-प्रकाराधा के शील काव्य, १६२-१६५—पद्धतु और वारद्माता—रात्नीय और छीक्ति पद्म, उद्दोपन काव्य, संयोग और वियोगकी स्थितियोंसे इसके रूपना सम्बन्ध—पियल, प्रज, गुजराती, मैथिली, राजस्थानिक बारद्मातींना सन्दुलनात्मक कप्ययन १६६-१६८—विक्र-माव्य १६६-४०० वावनी ४०१-०२—विद्मातींसी ४०३-च मार्क काव्य ४०७।

र. उपमहार

भाषा और साहित्य के विवेचन से प्राप्त निष्कर्प और उपलब्धियाँ । ४०८–१६

१०. परिशिष्ट

१४ में से १६ वीं विक्रमी शताब्दी में लिखी गई रचनाओं के इस्तलेखों से उद्भुत अश । ११. संदर्भ ग्रन्थ-सची [v]

के निर्धारित उद्देश, सह्तत, प्राष्ट्रत अपश्रय की क्याश्री में अन्तर, प्राचीन अवक्या-काव्य १८०-१६०—प्राप्तक की शिता काव्यों का उद्धर-कर्रेय, राषक और एक्या प्रवासी को के स्वदा — मसूण राषक से शिता काव्यों का उद्धर-कर्रेय, राषक और एव्यो रावसाले, १६१— १६१ सीला काव्यः स्वदाण और विकास कोकारफ काव्य प्रकार, — उत्य और रोवता—स्वापाय के लीला काव्य, १६२-१६५—यहस्तत और वारहमासा—शास्त्रीय और शिक्क पद्म, उद्दोवन काव्य, संयोग और विदोगकी स्थितियोंने इसके रूपका सम्बन्ध — पिराज, बज, गुजराती, मैथिछी, प्रवस्थानिक वारहमासीका सन्तुलनात्मक क्राय्यम् १६६-३६५—चेति-काव्य १६६-४०० वावनी १०१-०२ —विद्मातीसी ४०१-गोत सुचक —गीतियों के विकास या इतिहास, स्वृत्य, अब में गेय पर्यों का स्वस्त्र ४०४-६—माराक काव्य ४०७।

१. उपमहार

भाषा और साहित्य के विवेचन से प्राप्त निष्कर्ष और उपलब्धियाँ । ४०८-१६

१०. परिशिष्ट

१४ वीं से १६ वीं विक्रमी शतान्दी में लिखी गई रचनाओं के इस्तलेखों से उद्घृत अग । ११. संदर्भ प्रन्थ-सची

प्रास्ताविक

§ १. किया की सजहवी याताब्दी से पूर्वार्ड में ब्रब्यभाग में अल्यन्त उपकीट के साहित्य का निर्माण हुआ। ऐसा समझा बाता है कि केन्नर पचार वर्षों में इस मापा ने आपने साहित्य की उल्हुख्ता, मधुरता और प्रमहमता के बच पर उत्तर भासत की वर्षेष्ठ भागा का स्पान प्रस्त के उल्हुख्ता, मधुरता और प्रमहमता के बच पर उत्तर भासत की वर्षेष्ठ भागा का स्पान प्रस्त कर लिखा। भाकि-आन्दोबन की प्रमुख मागा के कर में उत्तर प्राचा साम तर्म के संग्वन कह के विभिन्न भागा-भाषियों ने इसे 'पुरुरोत्तम-मापा' के कर में अपनाया तथा इस्ते काव्य मापा का आदात्वस संग्रा से क्षींक प्रस्त कर आरा प्रसाम विश्व कि सुर्रोत का साम प्रमुख का स्वाचा को कि स्वच्या की स्वच्या के स्वच्या की हम के स्वच्या की कि स्वच्या की स्वच्या स्वच्या

I It is a form of Hindi used in literature of the classical period and is hence considered to be the dialectos praecipus and may well be considered as typical of Midland Language on the Modern Indo Aryan Vernaculars, PP 10

प्रास्ताविक

हु १, विक्रम की सजहाँ रातान्दी के पूर्वाई में ब्रब्भापा में अत्यन्त उपकोटि के सादित्व का निर्माण हुआ। ऐसा समक्षा बाता है कि केन्छ प्यतान पर्पी में इस भाषा ने अपने साहित्य की उल्हण्डा, मधुरता और प्रमत्नता के बरू पर उत्तर भारत की सर्वश्रेष्ठ भाषा ने अपने साहित्य की उल्हण्डा, मधुरता और प्रमत्नता के बरू पर उत्तर भारत की सर्वश्रेष्ठ भाषा स्थान कर में उत्तरा मान तमूचे देश रंपान प्रदेश कर विकास भाषा और मुद्रायत से बंगाल तक के विभिन्न माणा-माणियों ने इसे 'युरुशोतम-माणा' के रूप में अरावाया तथा इसमें काव्य प्रणयन का प्रयत्न भी किया। एक ओर महामशु ब्रह्मानार्थ ने हे सुरुशोत्तम-माणा की आदारात्य संत्रा ही क्योंकि यह उनके आग्राप्य देव कृष्ण को जनन-मूर्ति की माण्या भी आदारात्य संत्रा ही क्योंकि यह उनके आग्राप्य देव कृष्ण की जनन-मूर्ति की माण्या भी, दूसरी ओर काव्य और साहित्य के प्रति महुरुयों ने इसे 'माणानिय' की प्रति प्राप्त की। डाल विवर्शन ने दिन्दी के अभिवात साहित्य के माण्यम के रूप में प्रति की माण्यम के रूप में प्रति की माण्यम के स्था प्रति की प्रति का माण्य मान के हैं। 'युरुष्ठ अपित्य का अव्यन्त स्व माणा को प्रधानतम बोली (Dalectos Pracupua) कहा है। इसे के प्रति व्यक्तित या। उनके संगीतान्य पर्दो से आहुष्ट होकर समार्थ के अपने हो। या। डाल चाहुन्यों ने इसी तथ्य की ओर संनेत करति स्वार अक्तर रहा माणा के प्रति का स्वर्ण प्रति का साहित्य के संत्र के सहश्र एक विदेशी विजेश के विवर्ण की ओर संनेत करते हुए विल्ला है कि 'वावर के सहश्र एक विदेशी विजेश के विवर्ण वो अधार अक्तर के बाल तक पूर्णत्या प्रचालत सामार्य भागा माणा की वहा विवर्ण की अधार संनेत करते हुए विल्ला है कि 'वावर के सहश्र प्रति साहित्य और साहित्य और साहित्य की साहित्य की साहित्य का प्रयोग-मात्र यी वही उसके मारतीयकृत यी प्रसाह अक्तर के बाल तक पूर्णत्या प्रचाल्य साहित्य का प्रयोग-मात्र यी वही उसके मारतीयकृत यी प्रसाह अक्तर के बाल तक पूर्णत्या प्रचाल्य साहित्य साहित्य का प्रयोग-मात्र यी वही उसके मारतीयकृत यी सम्राह्य अक्तर के बाल तक पूर्णत्या प्रचालत स्वारामिक

¹ It is a form of Hinds used in literature of the classical period and is hence considered to be the dialectos gracepus and may well be considered as typical of Midland Language on the Modern Indo Aryan Vernacutars, PP 10

ब्रजभाषा के प्राचीन इतिहास पर विशेष प्रकाश डाल सके।" वर्माजी ने राष्ट कहा कि प्रव्वीसब रासो की मापा मध्यकालीन ब्रजभाषा है. राजस्थानी नहीं: जैसा कि साधारणतया समभग्न जाता है किन्तु इस रचना के 'सदेहात्मक और विजादमस्त' होने के कारण इसे वे ब्रजमाण के अध्ययन में समिनित न कर सके। इसीलिए डा॰ वर्मा ने भी ब्रजभाषा का वास्तविक श्रारम्म सुरदास के साथ ही स्वीकार किया। उन्होंने लिखा कि प्रक्रमाया और उसके साहित्य का बास्तविक आरम्भ उस तिथि से होता है जन गोवर्षन में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण पूर्ण हुआ और महात्रभु बह्नभाचार्य ने भगवान् के स्वरूप के सम्मुख नियमित रूप से कीर्चन की व्यवस्था करने का सकल्य किया । सुरदास ब्रजभाषा के सर्वप्रथम तथा सर्वप्रधान कवि हैं। ' डा॰ सुनीतिकुमार चादुक्यों ने स्पष्ट रूप से सुरदास को ब्रजभाषा का आरम्भिक क्षि तो नहीं कहा किन्तु ब्रजभाषा का को उदयकाल बताया. उससे यहा निष्कर्ष निकलता है। उनके मतानसार 'ब्रजभाषा १६वीं शताब्दी में प्रकाश में आई.' इता कि उसी पुरतक में एक दूसरे स्थान पर डा॰ चाडुज्यों लिखते है कि 'ब्रजमापा १२०० से १८५० ईस्वी तक के मुदीर्घकाळ के अधिकाश माता में सारे उत्तरी भारत, मध्यभारत तथा राजपुताना और कुछ इदतक पञ्जाव की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक भाषा बनी रही।" डा॰ प्रियर्सन ने सरदास को बनभाषा का प्रथम कवि नहीं स्वीकार किया। उनके मत से १२५० के चन्दवरदाई ब्रजमाया के प्रथम कवि हैं। १६वीं शतान्दी में सुरदास इस भाषा के दूसरे कवि दिखाई पडते हैं। बीच के २०० वर्षों का साहित्य बिल्कल अन्यकार में पड़ा हुआ है।

\$ 3 उपर्युक्त विद्वानों के मतों का विश्वेषण करने पर स्वष्ट मालूम होता है कि में समी विदाय कियों न कियों रूप में सूरदास के पूर्व ब्रब्बाया की स्थिति स्वीकार करते हैं, किया मामाणिक सामग्री के अभाव में सूरदास के पहले की ब्रब्बाया और उसके साहित्य का कोई मार्थिक विस्तेषण प्रस्तुत न कर सकते की विचारता भी व्यक्त करते हैं।

§ ४ आरिभिक प्रवसाया का परिवय-सकेत देनेवाली जो कुळ, लामबी इन विदानों को मात भी यह दानी अरू, विकीण कीर अणवारिशन भी कि उस पर कोई विस्तृत विचार सम्मव न था। वो कुछ लामबी प्रकारित हो जुड़ी थी, उसकी प्रामाणिकता सिहन्य थी, इसकिए उसके परीवृत्य का प्रस्न हो नहीं उला। इन्तों की रचनाओं का भाषागत विवेचन नहीं हुआ, और उसे 'मिशित,' 'समुक्का' चा 'विवर्ची' भाषा नाम देकर कम चलता किया गया। इस प्रकार प्राप्त सामबी का भी सही उपयोग न होने के कारण सुरदास के पहले की वक्षाया का विदास पूर्णतः अभितिक हो यह गया। मध्यरेय की माना परम्या लुप्तस् या वेदिक भाषा से आरम्म होनर सौरिती अपश्या सक्षाय. अविचित्रक क्ल में ही प्रस् होती है। उत्यमाण का उदस विदे देश महती परम्या का उत्य विदे की हम महती परम्या का उदस विदे देश महती परम्या का उदस विदे देश महती परम्या का उत्य विदे की हम महती परम्या का उदस विदे हम विदास हम वालाई की अपश्या का उत्य विदास हमें होती हम स्वती परम्या का कुछ सी वर्षों का इतिहास हम जाता है और देशा जान पढ़ता है कि इस

१. बजमापा, हिन्दुस्तानी प्रदेवमी, प्रयाग, ११५४, पू० २०

२ वही पृ०२१-२२

इ. सारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, १६५४, ए० १६५

४. वही पृ० १८६

⁵ Linguistic Survey of India Vol IA Part I P 71-73

ब्रजभापा के प्राचीन इतिहास पर विशेष प्रकाश डाठ सके।' वर्मांबी ने सप्ट कहा कि प्रव्वीसब रासे की भाषा मध्यकालीन ब्रजभाषा है, राजस्थानी नहीं; जैसा कि साघारणतथा समभा जाता है किन्तु इस रचना के 'सदेहात्मक और विराद्यस्त' होने के कारण इसे वे ब्रजभाषा के अध्ययन में समिनित न कर सके। इसीलिए डा॰ वर्मों ने भी ब्रजभाषा का वास्तविक श्चारम्म सुरदास के साथ ही स्वीकार किया। उन्होंने लिखा कि अनमाया और उसके साहित्य का बास्तविक आरम्भ उस तिथि से होता है जर गोवर्घन में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण पूर्ण हुआ और महाप्रभु बहामाचार्य ने भगवान् के स्वरूप के सम्मुख नियमित रूप से कीर्चन की व्यवस्था करने का सकल्य किया । त्ररदास ब्रजभाषा के सर्वप्रथम तथा सर्वप्रचान कवि हैं। ' डा॰ सुनीतिकुमार चाहुच्यां ने सप्ट रूप से सुरदास को ब्रजमापा का आरम्भिक क्वि तो नहीं कहा किन्तु अवभाषा का बो उदयकारु बताया, उससे यही निष्कर्ष निकल्ता है। उनके मतानुसार 'अवभाषा रहवीं शतान्दी में प्रकारा में आई,' हाला कि उसी पुलक में एक दूसरे स्थान पर डा॰ चाडुच्यों लिखते है कि मनमापा १२०० से १८५० ईस्त्रो तक के सुरीर्घकाल के अधिकाश मात्रा में सारे उत्तरी भारत, मध्यभारत तथा राजपूताना और दुख इदतक पञ्जाब की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक भाषा बनी रही। " डा॰ व्रिवर्सन ने सरदास को बजभाषा का प्रथम कवि नहीं स्वीकार किया । उनके मत से १२५० के खन्दबरराई बजभाषा के प्रथम कवि हैं। १६वीं शतान्दी में सुरदास इस भाषा के दूसरे कवि दिखाई पडते हैं। बीच के २०० वर्षों का साहित्य बिल्कुल अन्धकार में पडा हुआ है।

ŧ

§ ३ उपर्युक्त बिहानों के मतों का विरुत्तेपण करने पर स्वष्ट मालूम होता है कि ये सभी विदान किसी न किसी रूप में सुरदास के पूर्व अवभाषा की रिपति स्वीकार करते हैं, किन्तु प्रामाखिक सामग्री के अभाव में सुरदास के पहले की अवभाषा और उसके साहित्य का कोई ममुचित विरृत्तेपण प्रस्तुत न कर सकने की विवस्तता मी व्यक्त करते हैं।

§ ध आरम्भिक प्रवमाया का परिचय-मक्त देनेवाळी वो कुछ सामग्री इन विद्वानी को प्राप्त में यह इतनी अरून, विकीण और अववस्थिन यो कि उस पर कोई विरुद्ध विचार सम्मव न या। वो कुछ सामग्री प्रशासित हो चुकी थी, उसको प्राप्ताणिकता सदित्य थी, इसिष्ठ उसके परोद्ध्य का प्रवस्त ही नहीं उठा। सन्तों की रचनाओं का भाषपात विवेचन नहीं हुआ, और उसे 'भिषित,' 'सपुरकडों' या 'विचर्चो' भाषा नाम देकर काम चलता किया गया। इस प्रवार का सामग्री का भी सही उपयोग न होने के सारग्र सद्धात के पहुंच की प्रवसाय का इतिहास पूर्णतः अत्रित्त हो रह गया। मण्यदेश की माथा परम्परा स्मृत्य या विदेक भाषा से आपम्प होत हो रही स्था सामग्री का भी सही उपयोग न होने के सारग्र स्थान के में ही प्राप्त के सिंह माथा की अदर्शन की हो हिंद स्थान के अत्र माया किया जाता है वो इस मही परम्परा का कुछ सी वर्षों का इतिहास हुट सामा है और ऐसा जाता है वो इस मही परम्परा का कुछ सी वर्षों का इतिहास हुट साम है और ऐसा जान परवा है कि इस

१. बजमापा, हिन्द्रस्टानी एकेंडमी, प्रयाग, १६५४, गु० ३०

२ वही पृ०२१-२२

३. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, १६५४, पृ० १६५

४. वही पृ० १८६

⁵ Linguistic Survey of India Vol IX Part I P 7:-73

गए । मुसलमानों के आक्रमण, मिश्रण और मेलजोल से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण १३ वीं शताब्दी के आसपास दिल्लो मेरठ की भाषा को ज्यादा तरजीह मिली और पजाबी तथा खडी बोली के मिश्रण से उत्पन्न यह नई भाषा पारसी शब्दों के साथ रेखता या 'हिन्दवा' ये नाम से चल पड़ी । किन्तु उस नई भाषा को परम्पराप्रिय चनता की आर से कोई बड़ा प्र लाहन न मिला। हिंदुओं की सास्कृतिक परम्परा का निर्वाह मुसलमानी प्रभाव से अस्पष्ट अन्य बालिया द्वारा ही होता रहा । व्रजमाया इनमें मुरद थी जिसका साहित्य राजपूत दरवारी और घार्मिक सस्थानी द्वारा मुरव्वित हा सकता या किन्तु मुसलमानी के आक्रमण का संबस्ते बडा प्रमाय इन सास्क्रतिक थेन्द्रां पर ही हुआ, ग्रौर यत्किचित् साहित्य सामग्री मी जिसके प्राप्त होने की आशा हो सकती थी, नण्हा गई। ईस्त्री सन् की दसत्रीं और १४ वीं शताब्दी के नीच मप्पदेश में देशी मापा में लिखा हुआ साहित्य बहुत कम निय्ता है। इसका प्रमुख कारण इस आक्रमण को माना जा सरता है । किन्तु जो सहित्य प्राप्त है, वह निवान्त उपेच्एीय नहीं । डा॰ हजारीप्रसाद द्विवदी ने ठोक ही जिसा है कि 'इस अथवार युग को प्रकाशित करने वाली ना भी सामग्री भिन्न जाये उसे सावधानी से जिला रराना क्त्रंबर है। क्यांकि वह बहुत वडे आलोक की समावना ठेकर आई है, उसने पेट में केवल उस युग के सीरक हृदय की घडकन ही नहीं, केवल सुशिवित चित के सयत और सुचिन्तित बाक्षाय्य ना ही नहीं, बल्कि उस युग के सम्पूर्ण मनुष्य को उदमासित करने की समता छिपी हाती है ।

अपभ्रम भाषा का को साहित्व प्रांत होता है उसमें अधिकाश पश्चिमी अपभ्रम का है। १३ वी ग्राजान्दी के आतमाल के साहित्व में प्रान्तीय प्रभाव मिनने कराते हैं। गुजरात देश की रचनाओं मार्चीन राजस्थानी के तत्व तथा तिव्या क गानों (दाहों में नहीं) की भाषा में पूर्वी प्रदेश की माथा या भाषाओं का प्रभाव दिलाई पटता है। छिर मी ६०० से १०० तक का अपभ्रम साहित्व अधिकाश की सीसेनी अपभ्रम का ही साहित्य है। पितिश्वित अपभ्रम की रचनाओं में हम बजनाया के विकास बिद्ध पा सकते हैं। बहुत से विद्यान हम रचनाओं की भाषा को वेवल शौरसेनी अपभ्रम नाम के आधार पर ही अवभाषा (शौरसेनी भाषा) से सम्बद की मानना चाहते, किन्दा परि पनि और रूपतत्वों की हिए हो हमें प्रभाणित विचा लाये तो अवस्थ हो यह सम्बच साधार कहा लायेगा। आगे इस पर विस्तार से विचार हिया वर्ष है।

१ हिन्दी साहित का आदिकाल, परना, १६५२, ए० २५

गए । मुसलमानों के आक्रमण, मिश्रण और मैलजोल से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण १३ वीं शताब्दी के आसपास टिल्लो मेरठ की भाषा को ज्यादा तरकीह मिली और पनाबी तथा खडी बोली के मिश्रण से उत्पन्न यह नई भाषा पारती शन्दों के साथ रेखता या 'हि दवा' के नाम से चल पड़ी। किन्तु उस नई भाषा को परस्यापिय ननता की आर से कोई बड़ा प्र लाइन न मिला। हिन्तुओं की सास्कृतिक परम्परा का निर्वाह मुसलमानी प्रभाव से अहरष्ट अन्य बालिया द्वारा ही होता रहा । ब्रजभाषा इनमें मुर्द थी जिसका साहित्य राजपूत दरवारों और धार्मिक सस्थानों द्वारा मरिवत हा सकता या किन्तु मुसलमानी के आक्रमण का सबसे बड़ा प्रभाव इन सास्क्रतिक थेन्द्रों पर ही हुआ, श्रीर यत्किचित् साहित्य सामग्री भी जिसके प्राप्त होने की आशा हो सकती थी, नण हा गई । ईस्ती सन् की दसत्रों और १४ वीं शताब्दी के नीच मध्यदेश में देशी भाषा में लिखा हुआ साहित्य बहुत कम मिछता है। इसका प्रमुख कारण इस धाकमण को माना जा सरता है । किन्तु जो साहित्य प्राप्त है, वह निवान्त उपेचणीय नहीं । डा॰ इजारीप्रसाद द्विवदी ने ठोक ही जिला है कि 'इस अवकार युग की प्रकाशित करने वाली ना भी सामग्री भिन्न जाये उसे सावधानी से जिला रराना क्त्रेंबर है। क्यांकि वह बहुत वडे आलोक की समावना लेकर श्राई है, उसने पेट में केवल उस युग के रिसक हृदय की घडकन ही नहीं, केवल सुशिचित चित्त के सयत और सुचिन्तित बाक्षाटव ना ही नहीं, बल्कि उस युग के सम्पूर्ण मनुष्य को उदमासित करने की चमता छिपी हाती है।

अपभ्रम भाषा का को साहित्व मात होता है उसमें अधिकाश पश्चिमी अपभ्रम का है। १३ वी ग्रताब्दी के आत्माल के साहित्व में मान्तीय ममाव मिन्ने करते हैं। गुजरात देश की रचनाओं मार्चीन राजस्थानी के तक तथा तिखां क गानों (दाहों में नहीं) की राषा में पूर्वी प्रदेश की माथा या भाषाओं का ममाव दिलाई पढता है। हिर मी ६०० से १२०० तक वा अपभ्रम साहित्व अधिकाश वासिनी अपभ्रम का ही साहित्व है। विर्मिश्चित अपभ्रम की रचनाओं में हम बन्नामा के विष्कास वाम के आधार पर ही बहुत से विद्वान हम रचनाओं की माथा को देवल शौरतेनी अपभ्रम नाम के आधार पर ही बहुत से विद्वान हम रचनाओं की माथा को देवल शौरतेनी अपभ्रम नाम के आधार पर ही बहुत से विद्वान हम रचनाओं की साहत हो माना चाहते, किन्तु यदि रानि और रूपतत्वों की हिए है इसे प्रमाणित किया नामें तो अवश्य ही यह सम्बच साधार कहा लागेगा। आगे इस पर विस्तार से विचार हिस्स गया है।

स्पारहर्षी ग्रताब्दी के ठीक बाद की वो सामग्री प्रात होती है, उसमें सबसे महत्वपूर्ण स्पारहर्षा ग्रात होता होता है है। गुलेरी वो ने बहुत वरते नागरीप्रचारिक्षी विकास के प्राहृत व्यावस्था के अवस्था राहे हैं। गुलेरी वो ने बहुत वरते नागरीप्रचारिक्षी विकास के प्राहृत के प्राहृत के प्राहृत के प्राहृत है के नाम के प्रकारित कराया। गुलेरी वो ने वब इस सबद को प्रमृत किया या तब इनके आयार ग्रायों का न तो व्यारिक्षत तथा वैद्यानिक स्वायदन हुआ या और न ता इनके भाषा तथा साहित्त सम्बन्धी मृत्यों का कोई विवेचन ही किया गया था। गुलेरी वो ने चंडी विद्या के तथा इन दोहों में पुरानी हिन्दी के भाषानर्ता को हूँदने का प्रयत्न किया ग्रापश्च के वाध इन दोहों में पुरानी हिन्दी के भाषानर्ता को हूँदने का प्रयत्न किया ग्रापश्च की वा भी सामग्री उस समय उपलब्ध यो उसका गर्मार करवान उद्देश वी निष्य या छीर गरी कारण्यत

१ हिन्दी साहित्य का आदिकाल, परना, १६५२, ए० २५

ही हुए दीवते हैं न नव्य भाषाओं के सभी खन्न स्पष्ट रूप से उद्भिन्न ही हो पाए हैं। उत्तर मारत में इन दिनों संस्कृत, प्राकृत और साहित्यिक अपभ्रंश के अतिरिक्त तीन श्रीर प्रप्रल भाषाएँ दिलाई पडती हैं। राजस्थान-गुजरात के च्रेन में गुर्जर अपभंश से विकसित तथा साहि-त्यिक शौरसेनी अपभ्रश से प्रभावित देशी भाषा जिसे डा॰ तेसीतोरों ने प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी नाम दिया है, शौरतेनी श्रपभ्रंश के मूलत्तेत्र मध्यदेश में अवहड और रिंगल नाम से साहित्यिक अपभ्रश का ही एक किन्छ रूप प्रचित्रत था विसकी आत्मा मुख्तः नाय भाषाओं से अनुप्राणित थी किन्तु जिस्तर शौरसेनी श्रमञ्जश का भी पर्यात प्रभाव या । पूर्वी क्षेत्रों में कोई महत्वपूर्ण सामग्री नहीं भिड़ती किन्तु क्योतिरीश्वर टाकुर के वर्स्यरता-कर, कीर्तिन्द्रा के कुछ प्रयोगों ग्रीर बौद्ध सिद्धों के कविषय गीतों की भाषा के आधार पर एक व्यापक पूर्वी भाषा के स्वरुप की कल्पना की वा सकती है। अवहट्ठ और पिंगल प्रजमापा के पुराने रूप हैं। इनके नाम, रूप तथा ऐतिहासिक विकास का निस्तृत विवरण तीसरे आपाय . 'संक्रान्ति-कालीन ब्रबभापा' में प्रस्तुत किया गया है । संक्रान्तिकालीन ब्रबभाषा की दोनों शैलियों, अवहर्ठ शैली तथा पिंगल या चारण शैली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन उक्त अध्याय का विषय है। अवहरूठ चूँकि प्राचीन परम्परा का अनुगामी या इसलिए इसमें मध्यदेशीय नव्य भागा के वत्व उतनी मात्रा में नहीं मिल्दे जैसा कि पिङ्गत रचनाओं की भाषा में, पिर भी अवहट ब्रजमापा से पनिष्ठ रूप से सम्बद्ध कहा वा सकता है। अवहट की रचनाओं में प्रापृत पेंगतम्, सन्देशरासक, कीर्तिब्ला, नेमिनाथ चौपई, धृत्विमद्दमागु आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाएँ है, बिनकी भाषा में ब्रजभाषा के बीबाज़र वर्तभान हैं। विद्वल की प्रामाणिक रचनाओं में श्रीघर व्यास का रणमल्लक्षन्द, प्राकृतर्पेगलम् के हम्मीर-सम्बन्धी तथा अन्य चारण शैली के पर गृहीत होते हैं। पृथ्वीराजरासी के प्रामाणिक छप्पयों की भाषा तथा परवर्ती सस्तरणों की भाषा की मुख्य विशेषताएँ तथा इनमें समुपटन्य अवभाषा के तत्वों का विश्लेषण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

है... संशानितशात (१२वॉ-१४वॉ) में उपरुंक अनस्य और पिङ्गल अधना चारण रीली के अविधिक समाधाय के बोकताल के रूप को भी करना को वा सकती है। पिङ्गल आप अवस्य कर काल को साहित्यक मामाय को बोकताल के रूप को भी करवार काल को साहित्यक मामाय को आपाय नहीं थी। पिङ्गल और अवस्य उस काल को साहित्यक मामाय को अवस्य के अनुमान कर को आधार नहीं है। १२वॉ में बोली वानेवाली सबमाय के तत्कालीन कर के अनुमान कर कोई आधार नहीं है। १२वॉ स्वां के बीव के कुछ झीकिक अन्य मात्र होते हैं। ओक्तिक का अर्थ हैं डीक वा बोली। इस मामा के तत्कालीन बोलियों के व्यावस्था दिये हुए हैं। इनमें से कोई भी माय्येशों विकास को अर्थ में से तत्कालीन बोलियों के व्यावस्था दिये हुए हैं। इनमें से कोई भी माय्येशों विकास को अर्थ मात्र अर्थ हैं। उत्किव्यक्तिप्रकार, उत्किर स्वावन्द सिंग उत्कित्यन्य संक्षित हैं) तथा मुखादबोंग औक्तिक आदि स्ववन्धें संक्षात्विक निरम्भ माया करी के अपयस्य में बहुत सहायक हो सकती हैं। इनमें से विकास कि संवय्य माया करी के अपयस्य में बहुत सहायक हो सकती हैं। इनमें से विकास के विकास के विकास की के अपयस्य में बहुत सहायक हो सकती हैं। इनमें माया के संतुकतालक अपयक्ष के आधार पर हम औक्ति के कि लो हैं हैं। इनमें माया के संतुकतालक अपयक्ष के आधार पर हम औत्तिक कर सकते हैं। वसते माया के संतुकतालित (विकास) कर मिली होई औत्तिक वीली और वारण

प्रास्ताविक

ही हुए दीवते है न नव्य भाषाओं के सभी छन्न स्पष्ट रूप से उद्भिन्न ही हो पाए हैं। उत्तर भारत में इन दिनों संस्कृत, प्राकृत और साहित्यिक अपभ्रंश के अतिरिक्त तीन श्रीर प्रपत भाषाएँ दिलाई पडती हैं। राजस्थान-गुजरात के त्तेन में गुर्जर अपभंश से विकक्षित तथा साहि-त्यिक शौरसेनो अपभ्रश से प्रभावित देशी भाषा जिसे डा॰ तेसीतोरो ने भाचीन पश्चिमी राजस्थानी नाम दिया है, शौरतेनी श्रपभ्र श के मृतदोत्र मध्यदेश में श्रवहट्ट और रिंगल नाम से साहित्यक अपन्नश्च का ही एक वनिष्ठ रूप प्रचन्त्रित या जिसकी आत्मा मुख्तः नन्य भाषाओं से अनुप्राणित थी किन्तु जिस्तर शौरसेनी श्रमभ्रश का भी पर्याप्त प्रभाग या । पूर्वो क्षेत्रों में कोई महत्वपूर्ण सामग्री नहीं मिळती किन्तु क्वोतिरीश्वर हाकुर के वर्श्वरत्ना कर, कीर्तिन्त्या के कुछ प्रयोगों श्रीर बौद सिदों के कतिएय गीतों की मापा के आचार पर एक व्यापक पूर्वी भाषा के स्वरूप की कल्पना की था सकती है । अवहट्ठ और पिंगल ब्रजमापा के पुराने रूप हैं। इनके नाम, रूप तथा ऐतिहासिक विकास का निस्तृत विवरण तीसरे आध्याय 'संक्रान्ति-वालीन ब्रबभाषा' में प्रस्तुत किया गया है । संक्रान्तिकालीन ब्रबभाषा की दोनों शैटियों, अवहट्ठ शेली तया दिग्न या चारण शैली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन उक्त अध्याय का विषय है। अन्तहरूठ चूँकि प्राचीन परम्परा का अनुगामी या इसहिए इसमें मध्यदेशीय नव्य भागा के वल उतनी मात्रा में नहीं मिळते बैसा कि पिङ्गल रचनाओं की भाषा में, पिर भी अवहट ब्रजमापा से घनिष्ठ रूप से सम्बद बहा वा सकता है। अवहट की रचनाओं में प्रापृत र्पेंगलम्, सन्देशरासकः, कीर्तिव्या, नेमिनाय चौपई, युव्धिमद्द्यागु आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाएँ है, जिनकी भाषा में ब्रबभाषा के बीबाऊर बर्तमान हैं। निवृत्त की प्रामाणिक रचनाओं में श्रीघर व्यास का रणमालखन्द, प्राकृतपैंगलम् के हम्मीर-सम्बन्धी तथा क्षन्य चारण शैली के पद गड़ीत होते हैं। पृथ्वीराज्यासी के प्रामाणिक छप्पयों की भाषा तथा परवर्ती सस्वरणों की भाषा की मुख्य विशेषताएँ तथा इनमें समुपलक्य अजभाषा के तत्वों का विश्लेषण भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

\$ म. संशन्तिगात (१२वॉ-१४वॉ) में उपयुक्त अगस्य और पिङ्गल अपमा चारण दीवी के अवितिक ज्ञामाण के बोलवाल के रूर को भी करनात की वा सक्ती है। पिङ्गल मान अगस्य कर सामाय की भागमं नहीं थीं। पिङ्गल और अवस्य उस वाल की साहित्यक भागमं वो भागमं नहीं थीं। पिङ्गल और अवस्य उस वाल की साहित्यक भागमं पी अपमान कर को आपसा नहीं है। १२वीं में बोली वानेवाली इसमाण के तत्वालीन रूप के अनुमान का कोई आपसा नहीं है। १२वीं १६वीं के बीच के बुल और अर्थ मान होते हैं। श्रीक्रिक का अर्थ है उनिज या बोली। १९ मान वा को है। १२वीं में मान वा को की का अर्थ मान होते हैं। श्रीक्रिक वा अर्थ है उनिज या बोली। इस मान नहीं है। उनिज्यांकि इसरण, उन्हिर स्वाकर तिसमें भी मापदेशीय उन्हिर या बोली वा अर्थ हो। उन्हिर स्वाकर पी इनिज का वा बोली वा सम्य नहीं है। उन्हिर सादि स्वत्य में का विकास सिंगल की स्वत्य मारा कर के सादि स्वत्य में साव सिंगल की स्वत्य सिंगल की स्वत्य की स्वत्य सिंगल की स्वत्य की सिंगल की स्वत्य सिंगल की स्वत्य सिंगल सिंगल की स्वत्य सिंगल सिंगल की स्वत्य सिंगल सिंगल की स्वत्य स्वत्य की सिंगल की सिंगल की स्वत्या मान सिंगल सिंगल की स्वत्या मान सिंगल सिंगल की स्वत्या मान सिंगल सिंगल की सिंगल की सिंगल सिंगल की स्वत्या सिंगल सिंगल

इयत्ता मान ही बाती है। श्राचार्य शुक्क ने सन्तो नी भाषा के सिल्सिले मे इस 'सधुकडी' राब्द को बार-बार प्रयुक्त किया है। डा॰ समञ्जमार धर्मा अपने आलोचनात्मक इतिहास में निर्मुणसत्त-क्राव्य की भाषा पर विचार करते हुए लिखते हैं 'सन्त काव्य की भाषा बहत अपरिष्टत है। सन्त काव्य हमें तीन भाषाओं से प्रभावित मिलता है, पूर्वा हिन्दी, राजस्थानी श्रीर पञ्जार्था ।" मुख्य भाषा क्या थी, इसकी चर्चा नहीं को गई, प्रभाव अवश्य बताया गया । वस्तुतः सन्तो की भाषा को समऋने के लिए हमें सम्पूर्ण उत्तर भारत की तात्कालिक भाषा रिपति को समक्षना होगा । सन्तों के पहले एक मुनिश्चित नाव्य भाषा थी अर्थात् शौरमेनी अपभ्रश को बाद में विकसित होकर ब्रजमाधा के प्राचीन रूप 'पिंगल' के नाम से प्रसिद्ध हुई पिंगल उस बाल को सर्वव्यापक साहित्य भाषा थी। डा॰ बाउर्जा ने ठीक ही लिखा है कि 'शौरसेनी अपभ्र श का एक नवीनतर या अर्वाचीन रूप पिंगल नाम से राजस्थान और मालवा के क्वियों द्वारा गृहीत हुआ । पिंगल शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा और मध्यमाञ्चीन प्रविधाया के बीच की भाषा वहा जा सकता है।" वस्तुतः यह विगल सम्पूर्ण उत्तर भारत में साहित्यिक भाषा के रूप में व्यास हो गया था । पिगल को ही तासी हिन्दुई वहते हैं । पिंगल या प्राचीन ब्रजभाषा के साथ-साथ दिल्ली, मेरठ की पश्चिमी हिन्दी, पञ्जानी के प्रभाव के साथ पारसी शब्दों के संनिश्रण से 'रेखता' भाषा का रूप ग्रहण कर रही थी को बाद में नानी प्रचल्ति और व्यापक भाषा हो गईं। सन्तों का साहित्य इन दोनों भाषाओं में लिला गया है। मिश्रण, लिचडी, या सधुकडी विशेषण 'रेखता' में लिखे साहित्य की भापा को ही दिया जा सकता है, क्योंकि उसी में खडी, पजाबी, राजस्थानी और पारसी का मिश्रण हुन्ना था। रेखता का अर्थ ही मिश्रण होता है। काव्यभाषा पिंगळ अथवा पुरानी ब्रजभाषा मा साहित्य अत्यन्त परिष्कृत और शुद्ध मापा में है, क्योंकि इसके पीछे एक लमी परम्परा थी, यह भाषा काफी सशक्त रूप प्रहला कर चुकी थी।

हु ११. ब्रजमाया के आर्पीमक विशेष को सममने के लिए सत्त साहित्व की भाषा पर विचार होना चाहिए। सवी की रचनाओं ना सबसे पुराना लिलित कर मुख्यम्य (१६६१ विजमी) में उपल्य होता है। गुख्यम्य की रचनाओं में दोनो शैलियों को दित्यी-क्वित है। न्यामणा किताओं की सल्या भी भाषी है करीत थे० प्रतिस्ता । गुख्यम्य साहव की रचनाओं में ब्रजमाया का का प्राचीन कर मुख्यम्य साहव की स्वमाया से स्वायः पुरानी माहमू होती है। बहुत से विद्यान स्वी की ब्रज्माया स्थाय की ब्रजमाया से स्वयः पुरानी माहमू होती है। बहुत से विद्यान स्वी की भाषा की स्थाय की ब्रजमाया स्थाय की का मामिलका पर सन्देव-कृत प्रीन सालव की भाषा की पूर्वित की भाषा की स्थाय की मीलिक परम्पत ने उसे इस माया के नामदेव की प्रशास की की प्रशास की की प्रशास की की प्रशास की मीलिक परम्पत ने उसे इस प्रशास की प्रशास का स्थाय की प्रशास की मीलिक परम्पत ने उसे इस प्रशास की प्रशास ना स्थाय की प्रशास की मीलिक परम्पत ने उसे इस प्रशास की प्रशास ना स्थाय की स्थाय की स्थाय की स्थाय की मीलिक परम्पत ने उसे हैं। यह सम्भाय नहीं आवा कि वे नामदेव की स्थाय की स्थाय की स्थाय ने स्थाय की सीलिक परम्पत ने स्थाय की साम सी सीलिक परम्पत ने स्थाय की सीलिक साम सा सीलिक परम्पत ने सीलिक साम सीलिक परम्पत ने सीलिक साम सीलिक परम्पत ने सीलिक साम सीलिक सीलिक सीलिक सीलिक सीलिक सीलिक सीलिक साम सीलिक सीलिक

^{1.} हिन्दी साहित्य का आलोचना मक इतिहास, मृ० सं० १६५४, पृ २६७

र. राजस्थाना भाषा, उदयपुर, १४४२ ईस्वी पु० ६५

३. अष्टद्वाप और बहुन सम्प्रदाय, पृष्ठ १६

इयत्ता मान की बाती है। श्राचार्य शुक्र ने सन्तो की भाषा के सिल्सिले में इस 'संधुकडी' शब्द को शर-बार भयक्त किया है। डा॰ समङ्कमार धर्मा अपने आलोचनात्मक इतिहास में निर्गुणकत्त-कृत्व की भाषा पर विचार करते हुए लिखते हैं 'सन्त काव्य की भाषा बहत अपरिष्टत है। सन्त काव्य इमें तीन भाषाओं से प्रभावित मिलता है, पूर्व हिन्दी, राजस्थानी श्रीर पञ्जावी। ' मुख्य मापा क्या थी, इसकी चर्चा नहीं को गई, प्रभाव अवश्य बताया गया। वस्ततः सन्तो की भाषा को समऋने के लिए हमें सम्पूर्ण उत्तर भारत की तात्कालिक भाषा रिपति को समक्तना होगा । सन्तों के पहले एक सुनिश्चित नाज्य भाषा थी अर्थात् शौरमेनी अपभ्रश जो बाद में विकसित होकर ब्रजमाधा के प्राचीन रूप 'धिंगल' के नाम से प्रसिद्ध हुई पिंगल उस काल की सर्वव्यापक साहित्य भाषा थी। डा॰ वाटुन्यों ने ठीक ही लिखा है कि 'शौरतेनी अपभ्र श का एक नवीनतर या अर्वाचीन रूप पिंगल नाम से राजस्थान और मालवा के क्वियों द्वारा गृहीत हुन्ना। चिंगल शीरसेनो अपभ्रंश साहित्यिक भाषा और मध्यमाञ्चीन ब्रजमाया के बीच की भाषा कहा जा सकता है।" वस्तुतः यह विग्रह सम्पूर्ण उत्तर भारत में साहित्यक भाषा के रूप में स्वात हो गया था । पिगल को ही तासी हिन्दर्ड बहते हैं । पिंगल या प्राचीन बजभाषा के साथ-साथ दिल्ली, मेरठ की पश्चिमी हिन्ही, पश्चाकी के प्रभाव के साथ पारती शब्दों के सैमिश्रण से 'रेखता' भाषा का रूप ग्रहण कर रही थी जो बाद में नामी मचल्ति और व्यापक भाषा हो गईं। सन्तीं का साहित्य इन दोनों भाषाओं में लिला गया है। मिश्रण, लिचडी, या सधुकडी विशेषण 'रेखता' में लिले साहित्य की भाषा को ही दिया जा सकता है, क्योंकि उसी में राखी, प्रजाबी, राजस्थानी और पारसी का मिश्रण हुआ था। रेखता का अर्थ ही मिश्रण होता है। बाब्यभाषा पिंगल अथवा परासी बजभाषा मा साहित्य अत्यन्त परिष्टृत और शुद्ध मात्रा में है, क्योंकि इसके पीछे एक लम्बी परम्परा थी, यह भाषा काफी सशक्त रूप ग्रह्मा कर खुकी थी।

^{1.} हिन्दी साहित्य का आलोचना मक इतिहास, मृत संव १६५४, पृ २६७

२. राजस्थानी भाषा, उदयपुर, १६४६ ईस्वी पू॰ ६५

दे. अष्टद्वाप और वज्ञम सम्प्रदाय, पृष्ठ १६

प्रास्ताविक 11

नायक-नायिका भेट. साथ ही भारतीय सगीत. जिसमें भारतीय राग-रागिनियों के साथ पारसी सगीत का भी विवरण है, तथा कामशास्त्र, सामुद्रिक ग्रीर अन्त में हिन्दी पारसी के तीन इजार शब्दों का कोशा प्रस्तुत किया गया है। जनभाषा की कविताओं की समभाने ने लिए वजभाषा के व्याकरिएक रूप से परिचित होना आवश्यक था, इसीलिए मिर्जा खाँ ने वजभाषा का सन्तित व्याकरण इस ग्रन्थ की भूमिता के रूप में उपस्थित किया। पारसी उच्चारण के अभ्यस्त मसलमानों को दृष्टि में रखकर भिजां खाँ ने बजमापा के उच्चारण और अनलेखन पद्धति (Orthography) पर अत्यन्त नवीन दग से विचार किया है। ध्वनियों के अध्ययन में मिर्जी लाँ ना अम प्रशसनीय है, किन्तु जैसा डा॰ चाइटर्ग ने लिला है कि वे एक सावधान निरीद्दक तो प्रतीत होने हैं, परन्तु उनके निष्कर्ष श्रीर निर्णय कई स्थानों पर अवैज्ञानिक प्रतीत हाते हैं। उदाहरण ने लिए मिनों खीं 'द' को दाल इ सफीफ अर्थात् हस्त 'द' कहते हैं जब कि 'घ' को दार इन्सरीज यानी दीर्घ (Heavy sound) मानते हैं। उसी तरह 'ड' को 'डाल इ-मुश्किला' यानी दीर्घ और महाप्राणध्वनिक 'ढ' को डाल इ अस्कल अर्थात् दीर्घतम ध्वनि कहा गया है। यहाँ पर हस्व (Light) दीर्घ (Heavy) तथा दीर्वतम (Heaviest) आदि मेद बहुत अनिविमत श्रीर अनिश्चित माना बोच कराने हैं। पिर भी मिर्जा क्षों का धानि-विश्लेषण बन्य आर्यभाषाओं के ध्वनि तत्व के अध्ययन में बहुत प्रडा योग-दान है। मिन्नां खाँ ने व्याकरणिक शब्दों (Grammatical term.) रे जो प्रयोग किये हैं वे हिन्दी व्याकरण के नये शब्द हैं जा उस समय प्रयोग में आते रहे होंगे । उदाहरण के लिए करतव (Verb) के भूत (Past) वर्तमान (Present) भनिकल (Future) किया (Perfect Participle) और इत् (Object) भेद बताए गए हैं।

नजमापा ना दूसरा व्याकरण बानू गोवारचन्द्र 'गिरपरदास' ने लिता वो छुन्दोबद्ध है श्रोर किसे श्री बवाहरलाल चतुर्वेदी ने पाहार श्रमिनन्दन प्रत्य में प्रशक्तित क्षपा है। यह व्यावरण अदन्त सिद्धत रीति से अवमापा नो मूल व्यावरणिक विशेषताओं स्वा उल्लेख करता है। उदाहरण के लिए परसर्ग और विमक्तियों पर लिखा यह छन्द देखें:

देव जो सो सुखी देव जे हैं से पूरताय देव को नमत पूर्व देवन के मित सित देव सो मिलाप मेरो देवन सो रमें मन देव को सुर्रामां चित्त देवन को गृह दित देव तें न दूजो साधी देवन कोन गुन हित देव की रीसक दास देवन कोन गुन हित देव में दिरति नित देवन में सत्तराति

को ह्या है देव है देवन द्ववो नित व्याकरिष्क नियमों का निरीद्वेख राष्ट है किन्तु उसमें व्याकरण को बारीबी नहीं है। पिर भी १६ वीं ग्राताच्या में हिल्ले हाने के कारण इस व्याकरण का महत्व नि सदिग्व है।

§ १४ जनवादा का बैक्सिन अख्यन अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हो योरोशीय विद्वानों के प्रयत्न से आरम्भ हुआ। १६००० देखी में ल्ल्ट् बी लाल ने प्रवभाषा के बरक रिमविचों और दिवाओं पर एक निक्य प्रदात क्यि। उस निक्य में ब्रवमाया-सेव की भी चर्चा हुई। ल्ल्ड् बी लाल के मत से ब्रवमाया ब्रवमंडल, स्वालियर, मततार रिया प्रास्ताविक १

नायक-नायिका भेट, साथ ही भारतीय सगीत, जिसमें भारतीय राग-रागिनियों के साथ पारसी सतीत का भी विवरण है, तथा कामशास्त्र, सामुद्रिक श्रीर अन्त में हिन्दी पारसी के तीन इजार शब्दों का कोश प्रस्तुत किया गया है। जजभाषा की कविताओं की समभाने ने लिए वजभाषा के व्याकरियक रूप से परिचित होना आवश्यक था. इसीलिए मिर्जा खाँ में वजभाषा ना सिद्धात व्याकरण इस ग्रन्थ की भूमिश के रूप में उपस्थित किया। पारसी उच्चारण के अभ्यस्त मसलमानों को दृष्टि में रखकर मिजां खाँ ने बजमापा के उच्चारण और अनुलेखन पद्धति (Orthography) पर अत्यन्त नवीन दग से विचार किया है। ध्वनियों के अध्ययन में मिर्जा खाँ का अम प्रशासनीय है, किन्तु जैसा डा॰ चाटुटर्जा ने लिखा है कि वे एक सावधान निरीक्षक तो प्रतीत होने हैं, परन्तु उनके निष्कर्ष और निर्णय कई स्थानों पर अवैज्ञानिक प्रतीत हाते हैं। उदाहरण ने लिए भिनां खौं 'द' को दाल इ राफ फ अर्थात् हस्त्र 'द' कहते हैं जब कि 'घ' को दार इन्सरीज यानी टीर्च (Heavy sound) मानते हैं। उसी तरह 'ड' को 'डाल इ-मुश्किला' यानी दीर्घ और महाप्राणध्वनिक 'ढ' को डाल इ अस्कल अर्थात दीर्घतम व्वनि वहा गया है। यहाँ पर हस्त (Light) दीर्फ (Heavy) तथा दीर्वतम (Heaviest) आदि भेद बहुत ऋनियमित श्रीर अनिश्चित मात्रा बोध कराने हैं। पिर भी मिर्जा खों हा धानि-विश्लेषण जन्य आर्यमापाओं के छानि तत्व के अध्ययन में बहुत प्रडा योग-दान है। मिन्नों खाँ ने ब्याकरणिक शब्दों (Grammatical term.) रे जी प्रयोग किये हैं वे हिन्दी व्याकरण के नये शब्द हैं जा उस समय प्रयोग में आते रहे होंगे । उदाहरण के लिए करतव (Verb) के मृत (Past) वर्तमान (Present) भावस्त (Future) किया (Perfect Participle) और कृत् (Object) भेद बताए गए हैं।

न्नसमापा ना दूसरा ध्याकरण बार्चु गोवारचन्द्र 'गिरपरदास' ने लिसा वो छुत्योबद्ध है श्रीर किसे भी बवाहरलाक चतुर्वेदी ने वाहार श्रमिनन्दन प्रत्य में प्रशस्तित कराया है। यह ब्याकरण अवस्त्व सिद्धिर रीति से जबमापा नी मूठ ब्याकरणिक विशेषताओं ना उल्लेख

नरता है। उदाहरण के लिए परसर्ग और विभक्तियों पर लिखा वह छुन्द देखें :

देव जो सो सुखी देव जे हैं से पूत्रगीय
देव को नमत पूर्वे देवन के मित सित
देव को मिलाप मेरी देवन सो रमें मन
देव को सुरीमां चित्त देवन सो गृह वित
देव को न दूर्वो साधी देवन सो बढी हुन
देव की सीतक दास देवन की गृत हित
देव में विरक्षि मित देवन में सतगति

करे। इसा है देव है देवन द्ववो नित व्याकरिक निममों का निरीद्वाच राष्ट्र है किन्तु उसमें व्याकरण् को बारीकी नहीं है। पिर भी १९ वो राताच्या में लिले हाने के कारण इस व्याकरण् का महत्व नि सदिग्य है।

§ १४ जनवाया का नैज्ञानिक अरुपपन अन्य भारतीय भाषाओं के साथ ही योरोवीय विद्वानों के प्रवल से आरम्भ हुआ। १ रम्फ्य रेखी में ल्लर् वी लाल ने प्रवासाया के नरक निमित्तमों और क्षियाओं पर एक निक्ष्य प्रस्तुत क्षिया। उस निक्ष्य में ब्रज्ञमाया-स्त्रेत की भी चर्चा हुई। ल्ल्यू बी लाल के मत से ब्रज्जमाया ब्रज्जमंडल, ग्वालियर, मस्तपुर रियासत, आचारित थी । श्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'आन माडर्न इडोन्नार्यन वर्नाक्यूटर्स' में भी बन्नभाषा पर प्रसम्बद्ध कहीं कहों विचार किया है ।

विषयंन के अलावा अन्य कई योरोपीय मापावैज्ञानिकों ने अवान्तर रुपमें, भारतीय भाराओं के ब्राच्यन के तिलिलिते में बड़माया पर विचार किया। वीम्स ने अलग से प्रची राजासी भी भारा पर एक छन्वा निवस्य किला जो १८०६ ई० में छुता। विसमें बड़माया के प्राचीन रूपर अच्छा निचार किया गया।

इसी प्रकार हार्नले, तेसीलोरी आदि ने भी मजमापा पर यन् किवित विचार किया। हाउ ने कारा ने हिन्दी ब्याकरण में बक्तारा पर कापी विनार से विचार किया है। फेलाग के मजमापा अध्ययन ना मुख्य आधार लक्तु जी लाल की 'प्रीमसागर' और 'पाजनीति' पुलर्जे रहीं हैं। मजमापा की रियोपताओं का निर्धारण केलाग ने ब्युटी पुल्तों की भागा के आधार पर निया। ने लगा ने परसर्धों, कियाओं, सर्गनामें और विमक्तियों नी ब्युट्सि हुँदने ना प्रयन्न किया है, जो अस्त्यन महस्वपूर्ण है। १८७५ ईस्टी में केलाग ना यह महत्वपूर्ण ग्रन्य प्रकाशित हुआ तो आजतक हिन्दी का सर्थेश्वर व्याकरण माना जाता है।

हिन्दी मापा में बबभाषा पर बहुत कार्य नहीं हुए । विकीर्ण रूप से विचार तो कई बगह मिलता है हिन्तु बजभापा हे सन्तुल्ति और व्यवस्थित व्याकरण बहत कम हैं। वैसे तो 'बुद चित' की भूमिका में रामचन्द्र शुक्ल ने, तथा 'बिहारीरज्ञाकर' में क्वियर रज्ञाकर ने व्रजभाषाकी कुछ व्याकरणिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। किन्तु इनमें न तो पूर्णता है न वैज्ञानिकता । श्री किशोरीबास वाजपेयो का 'बजमापा व्याकरण' पुरानी पद्धति पर लिखा गया है, परन्तु यह महत्त्वपूर्ण और नाम की चीज है। प्रजभाषा पर हिन्दी में प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य डा॰ घीरेन्द्रवर्मा ने किया है। उन्होंने १६३५ ई॰ में पेरिस विश्वविद्यालय की हो। लिंग उपाधि के लिए वजभाषा पर 'ला लाग ब्रज' नाम से प्रवन्ध प्रस्तुत किया। इसी पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर १६५४ में प्रयाग से प्रकाशित हुआ । व्याकरण और भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में अन्तर होता है। वजभाषा के उपर्युक्त कार्यों में कुछेक को छोडकर बाकी सभी व्याकरण की सीमा में ही वधे हुए ये। डा॰ घीरेन्द्र बर्मों ने सर्व प्रथम इस महत्वपूर्ण भाषा का भाषाशास्त्रीय अध्ययन उपस्थित किया। इस पुस्तक को सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें मध्यकालीन ब्रजमापा (१६वीं-१८वीं) तथा आधुनिक औत्तिक व्रजमापा का तुलनारमक व्यवस्थित अध्ययन किया गया है। तेखंक ने वह परिश्रम से बबपदेश के हिस्सों से भिन्न बोलियों के रूप वहाँ के लोगों के मुख से सुनकर एक्ज किया। इस प्रकार इस पुस्तक में साहित्यिक वज और बोलचाल की वज का तारतम्य और सम्बन्ध स्पष्टतया व्यक्त हो सका है। किसी भी मापा-अनुसन्धित्सु के लिए परिशिष्ट में सकलित बोडियों के उदरणों और अन्त में सन्धन विस्तृत शब्द-सूची का महत्व निर्दिवाद है ।

त्रक्षमाणा सावन्धी इन कार्यों का विवरण देखकर इतना स्पष्ट हो चाता है कि सुरदास के पहले प्रवमाणा का यदि शाखीय और प्रामाणिक विवेचन उपस्थित हो सके तो वह सिश्चय ही हुटी हुई कड़ी बोडने में सहायक होगा और १६ वीं शताब्दी से बाद की प्रजमाणा के अध्ययन का पूरक हो सकेगा।

I. Notes on the grammar of Candabardas J R A S B 1873

प्रास्ताविक 1३

आघारित थी। प्रियर्तन ने अपनी पुस्तक 'आन माडर्न इडोन्नार्यन वर्नाक्यूनर्स' में भी बद्यमापा पर प्रसगवरा कडी कडी विचार किया है।

प्रियर्तन के अलावा अन्य करूँ योरोपीय मायावैद्यानिकों ने अवानार रुपमें, भारतीय भाराओं के क्राय्यन के तिक्षतिकों में ब्रह्माया पर विचार किया। योग्स ने अलग हे प्रवर्धी प्रवरामी की भारा पर एक छन्य निरुष्य लिखा जो १८७३ ई॰ में छुता। विसमें ब्रह्माया के प्राचीन रुपयर अच्छा दिचार किया गया।

इसी प्रकार हानेले, तेसीतारी आदि ने भी मनभाषा पर यन्तिचित विचार किया। डा॰ नेकाम ने हिन्दी व्याकरण में बन्नभाषा पर कारी विचार से विचार किया है। फेलाम के बनभाषा अध्ययन मा मुख्य आधार कन्नू जी लाल की प्रिम्नमामार और 'राजनीति' पुस्तकें रही हैं। बनभाषा की निरोषकाओं कर निचारण लेकाम ने बन्दी पुत्तकों की भाषा के आधार पर निचा। पेरुमान ने प्रसाम, कियाओं, हार्नमाभी और विभक्तियों नी व्युत्तिच हूँदने मा प्रयान किया है, जो अध्यतन महत्त्वपूर्ण हैं। राज्य देशों में केलाम का यह महत्त्वपूर्ण प्रन्य प्रकाशित हुआ तो आजतक हिन्दी का मानेश्रेष्ठ व्याकरण माना चाता है।

हिन्दी भाषा में ब्रबमाया पर बहुत कार्य नहीं हुए ! विकीर्ण रूप से विचार तो कई बगह मिलता है निन्तु बजभापा ने सन्तुल्ति और व्यवस्थित व्याकरण बहुत कम हैं। वैसे तो 'बुद चरित' की भूमिका में रामचन्द्र शुक्ल ने, तथा 'बिहारीरलाकर' में कवियर खाकर ने व्यक्तियाओं पर प्रशास डाला है। क्लि इनमें न तो पूर्णता है न वैज्ञानिकता । श्री किशोरीदास वाजपेयो का 'ब्रजमापा ब्याकरण' पुरानी पद्धति पर लिखा गया है, परन्तु यह महत्त्वपूर्ण और काम की चीन है। ब्रजभाषा पर हिन्दी में प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य डा॰ धीरेन्द्रवमां ने किया है। उन्होंने १९३५ ई० में पेरिस विश्वविद्यालय की हो॰ लिंगू उपिथ के लिए ब्रबभाषा पर 'ला लाग ब्रब' नाम से प्रवन्ध प्रस्तुत किया। इसी पुस्तक का हिन्दी स्वान्तर १६५४ में प्रयाग से प्रकाशित हुआ। व्याकरण और भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में अन्तर होता है। ब्रजभाषा के उपर्युक्त कार्यों में बुद्धेक को छोडकर वाकी सभी व्याकरण की सीमा में ही वर्ष हुए ये। डा॰ घीरेन्द्र वर्मा ने सर्व प्रथम इस महत्वपूर्ण भाषा का भाषाशास्त्रीय अध्ययन उपस्थित किया। इस पुस्तक को सबसे बडी विशोपता यह है कि इसमें मध्यकालीन ब्रजमापा (१६वीं-१८वीं) तथा आधुनिक औक्तिक ब्रजमापा का तुलनात्मक व्यवस्थित अध्ययन किया गया है। लेखेक ने वह परिश्रम से त्रबप्रदेश के हिस्सों से भिन्न बोहियों ने रूप वहाँ के लोगों के मुख से सुनकर एक्ज किया। इस प्रकार इस पुस्तक में साहित्यिक वन और बोलचाल की वज का तारतम्य और सम्बन्ध स्पष्टतया व्यक्त हो सका है। किसी भी मापा-अनुसन्धित्मु के लिए परिशिष्ट में सक्लित बोलियों के उदरणों और अन्त में सन्मन विस्तृत शब्द-सची का महत्व निर्विवाद है ।

जनमापा सम्बन्धी इन कार्यों का विचरण देखकर इंडमा त्यष्ट हो जाता है कि सुरदास के पहते जनमापा का पीट आक्रीण और प्रामाणिक विचेचन उपस्पित हो सके तो बह तिश्रम ही हुटी हुई भड़ों बोहने में सहायक होगा और १६ वीं शत्राब्दी से बाद की जनमापा के अप्यवत का पूर्व हो सचेमा !

^{1.} Notes on the grammar of Candabardas J R A S B 1873

धुपर और निष्णुपर गानों में लैकिक श्रंगार के वर्ष्य विषयों को आप्पारिमक दग से समफने की कुड़ी दी है। लेखक ने अपने मत की पुष्टि के लिए स्थानस्थान पर ब्रबमापा की रचनाओं के कतिपन अग्रा उद्शृत किये हैं (देखिये §रश्य) बिनसे स्प्टास के पहले की ब्रबमापा की समृद्धि का पता चल्ला है।

६ १६ १४वीं से १६ में तक के साहित्य का विवेचन सैदान्तिक ऊहापीह के रूप में तो बहुत हुआ है, लासतौर से सिद्ध-सन्तों के साहित्य को समसने के लिए पूरा तत्र-माहित्य, इठयोग-यरम्परा, योगशास्त्र आदि का सर्वांग विवेचन, भूमिका के रूप में सम्मिलित कर दिया बाता है। दिन्तु इस साहित्य वा सम्यक् रूप निर्धारण आब तक भी नहीं हो सना। एक तो इसलिए कि १४ से १६ सी तक के साहित्य को हम सन्त साहित्य तक सीमित कर देते हैं। सन्त भी एक सम्प्रडाय के यानी निर्गुण सन्त । जैन साहित्य, निसमा श्रामृत पूर्व विकास शीरहेनी अपन्रश में दिलाई पडता है तथा जिसका परवर्ती विकास बनारमीहास जैसे सिंद लेखक की रचनाओं में निलता है, इस काल में अन्यकार में पड़ा रह बाता है। क्योर या अन्य सतों की विचारधारा के मूल में नाथ सिद्धों के प्रमान की हूँ बने का प्रयन्न तो होता है कित्तु जैन सतों के प्रभाव को विश्मरण कर दिया जाता है l दूसरी ओर हिन्दी में प्रेमाण्यानक काट्यों की परमता का मतलब ही अन्यों काव्य लगाया जाने लगा है। अन्यों में भी प्रेमख्यानक वा त्रेत्र सुरी साहित्य तक सीमित रह जाता है। मध्यनाठीन भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यानक नाजों का अद्वितीय महत्त्व है । शौर्य और वीरता के उस वातावरण में शृंगार को रसराज की प्रतिद्वा मिली। इसीटिए रोमानी प्रेमाख्यानकों की एक अत्यन्त विकसित परमरा दिखाई पडती है। इस प्रेमाख्यानक परमरा का आरम्भ मुसलमान सूकी सतों ने नहीं क्या । यह मुख्तः भारतीय परम्परा थी, इसको उन्होंने प्रहण किया और इनके रूप में दुछ परिवर्तन भी। ज्ञायसी के पहले के कई प्रमाख्यानक काव्य ब्रबमाया में मिलते हैं जिनमें क्वि टामी वा रुद्दमणतेन पद्मावती कथा (१५१६ विकमी) और नाययगदास वी द्विताई वार्ती (१५५० विकमी) प्रमुख हैं। ये टोनी हिन्दू पद्मित के प्रेमार्यानक काव्य हैं।

§ १७. ब्रम्माया के प्राचीन साहित्य (१०००-१६००) वा सम्मे बड़ा महरूर इस बात में है कि इसमें मप्पानक में प्रचित्व बहुत से मान्यक्त सुर्वित हैं वो प्रवर्ती साहित्य के ग्रीली शिहर के निम्म कर कि किए प्रजीवार्यक आवश्यक हैं । कुल्मीहास के प्राम्मितिसान सिमित्र क्यान के लिए ने वेचल शती सिमित्र क्यान के लिए ने वेचल शती वाणों में भागमते के लिए ने वेचल शती वाणों में भागमते के लिए ने वेचल शती वाणों में भी समीद्वा होनी चाहिए। १४११ विज्ञानी संवर्त का लिखा हुआ प्रसिद्ध मन्त्र प्रयुक्त वित्त हैं एक ऐता ही काल है बिनके अन्तर्रती वस्तुत्वल और शिहर का अप्ययन आवश्यक है। इसी प्रजार मङ्गल विवाह के तिलात आदि काम स्त्री का अप्ययन भी प्राचीन प्रवमाया के इन बाय स्त्री के विवेचन के तिला सम्मर नहीं।

प्राचीन प्रक्रमापा साहित्व भी इस टूरी हुई फड़ी के न होने से नई प्रकार की गुरियर्वा सामने आती हैं। उदाहरण के न्दिए अष्टहाप के क्वियों की लैकिक प्रेमन्यश्रना और देंदि

हृहायके हिन्दी, अनुवाद: सैयद अतहर अध्यास रिजवी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१४

प्रास्ताविक १५

भुपर और निष्पुपर गानों में लैक्डि धंगार के वर्ष्य विषयों ने आप्याग्निक दग से समकते सी कुड़ी दी है। लेखक ने अपने गत की पुटि के लिए स्थानस्थान पर ज़बमापा की रचनाओं के किवाय अग्र उद्भुव िनये हैं (देखिये §२४४) जिनसे सुरदार के पहले की ज़बमापा की समृद्धि का पता चलता है।

§ १६ १४वीं से १६मीं तक के साहित्य का विवेचन सैद्यान्तिक ऊहांपाह के रूप में तो बहुत हुआ है, खासतौर से सिद्ध-सन्तों के साहित्य को समक्तने के किए पूरा तत्र-माहित्य, इठयोग-गरम्परा, योगशास्त्र आदि का तर्मांग विवेचन, भूमिका के रूप में सम्मिलित कर दिया बाता है। विन्तु इस साहित्य का सम्यक् रूप निर्धारण आज तक भी नहीं हो सना। एक तो इसलिए कि १४ से १६ सी तक के साहित्य को इम सन्त साहित्य तक सीमित कर देते हैं। सन्त भी एक सम्प्रदाय के यानी निर्मुण सन्त । जैन साहित्य, जिसना अपनृत पूर्व विकास शौरहेनी अनभ्रश में दिलाई पडता है तथा जिसका परवर्ती विकास बनारमीदास जैसे सिद्ध टेलक की रचनाओं में मिलता है, इस काल में ब्रान्धकार में पड़ा रह बाता है। क्वीर सा अन्य सतों की विचारधारा के मूल में नाथ सिदों के प्रमान की हूँदने का प्रयन्न तो होता है क्लि जैन सतों के प्रभाप को विस्मरण कर दिया जाता है। दूसरी ओर हिन्दी में प्रेमाएयानक नाव्यों की परम्परा का भतत्व ही अपधी काव्य छगाया जाने लगा है। अवधी में भी प्रेमख्यानक का चेत्र सूरी साहित्य तक सीमित रह जाता है। मध्यकालीन भारतीय साहित्य में प्रेमाल्यानक नान्में का अद्वितीय महत्त्व है । शीर्य और वीरता के उस वातावरण में शंगार को रसराज की प्रतिष्ठा मिली। इसीलिए रोमानी प्रेमाख्यानकों की एक अत्यन्त विकसित परम्पा दिलाई पडती है। इस प्रेमाल्यानक-परम्पा का आरम्भ मुसलमान सूमी सतों ने नहीं क्या । यह मूलत: भारतीय परम्परा थी, इसको उन्होंने ब्रह्म किया और इनके रूप में कुछ परिवर्तन भी। जायसी के पहले के कई प्रेमाख्यानक वाध्य ब्रबमापा में मिलते हैं जिनमें कवि दामो का लद्दमणसेन पद्मावती कथा (१५१६ विक्रमी) और नारायणदास की छिताई याती (१५५० निक्मी) प्रमुख हैं । ये दोनों हिन्दू पद्धति के प्रेमार्यानक काव्य हैं ।

§ १७. मबमाया के प्राचीन साहित्य (१०००-१६००) का सरते वडा महर्त्र इस वात में है कि हससे मण्डाक में प्रचित्र बहुत से नाम्य-रूप सादिव्य हैं वो परवर्षों साहित्य के उील शिला को समाने के लिए अनिवायंत आवर्षक हैं। बुल्कीश्वास के रामस्वितमानस की विभिन्न क्यानक स्टियों और तरपहरित होक उपारानों को सममने के लिए न केवल रात्रों कार्या का आवर्षक है बेल्कि के नवित कार्या को भी समीद्या होनी चाहिए। १४११ विज्ञा संवेद का लिखा हुआ प्रसिद्ध महाभाषा कार्य 'प्रमुम्पचरित' एक ऐता ही कार्य है सिक्के अन्यर्थने सन्दानक और शिल्प का अव्ययन आवर्षक है। इसी प्रकार माझण विवाहकों, बीक तिक स्वास आपीर कार्य हों। इसी प्रकार माझण विवाहकों, बीक तिकार आपीर कार्य कार्य हो। इसी प्रकार माझण विवाहकों, बीक तिकार आपीर कार्य कार्य हो। इसी प्रकार माझण विवाहकों, बीक तिकार आपीर कार्य कार्य हो। इसी प्रकार माझण विवाहकों, बीक तिकार आपीर कार्य कार्य हो। कार्यकार मास्य कार्य हो। कार्यकार मास्य कार्य हो। कार्यकार के दिना सम्पन्न मों।

प्राचीन प्रक्रमापा साहित्य हो हरी हुई कडी के न होने से नई प्रकार की गुरियाँ हामने आढी हैं। उदाहरण के लिए अटहाप के कवियों भी लैकिक प्रेमन्यझना और देहि

हक्ष्मके हिन्दी, अनुवाद : सैयद अतहर अम्बास रिवर्वा, नागरी प्रचारिणा सभा, कार्रो, संवत् २०१४

व्रजभाषा का रिवथ :

म यदेशीय इन्दो-आर्यन

है १८. मध्यप्रदेशों इनमाया की उद्गम भूमि है। गगा-मद्दान के काठे में अमिरियत यह मदेश अपना महान् साकृतिक प्रस्मार के लिए सदैव आदर के साथ समस्य किया गर्म है। मारतीय वाह्मम में इस प्रदेश के महत्व और नैमन का पश्चिक कर उल्लेख मिलता है। मारता (आर्तमाया-मायों) के केन्द्र में स्थित हीने के कारण इस प्रदेश की माया को

मध्यदेश मूलन गना-यमुना के बीच का प्रदेश—

(क) हिमबर् विन्ध्ययोर्मेष्य यात्राखिनशनाद्धि । प्रत्यगेव प्रयागाच मध्यदेश प्रकोतितः ॥ [मनुस्सृति २।२१]

(स) विनय पिन्क, महावाग भा१३।१२ में मध्यदेश की सीमा के अन्दर कवाल अर्थात् वर्तमान विद्वार का मागलदर तक का इलाका सम्मिलित किया गया है।

अयात् वतमान ।वहार का मायलपुर तक का हुआका साम्मालत ।कया नेपा ह । (ग) गहण पुराण (११९५) में मध्यदेश के अन्तर्गत मस्य, अश्वकूर, कुल्प, कुलर, काशी, कोशल, अथर्य, अर्कारण, मस्य और वृक्क सम्मिलित किय गए हैं ।

 पुत्र परित्य के उल्लेफों, के विश्व में मुख्य कर कीर का वैदिक पुरेन्त ।
 क) कामयूत्र का जयमगाला श्रीका में शाकाकार में मध्यदेश के विषय में विशिष्ट का यह मत उद्देश्त किया है। [यगायमुनवोरियोंके, श्रीका राभार)]

(च) फाहान अस्टेबर्ना वया अन्य इतिहासकारों के मतों के हिए देखिये हा० धोरेन्द्र वर्मा का रेख 'मध्यदेश का विकास', ना० प्र० पत्रिका भाग ३, सर्या १ और उनको प्रस्तक 'मध्यदेश' राष्ट्रभाषा परिपद, प्रदान से प्रकारित।

२ (१) प्राईशत्रस्तस्य सकाशाद्वप्रजन्मतः । स्य स्व चरित्र शिक्षेरन्युधिय्या सर्वमानवा ॥ [म्रनु० २।२०]

व्रज्ञभाषा का रिवध : म यदेशीय इन्दो-आर्थन

§ १८. मध्यप्रदेशो इन्नमाया नी उद्गम भूमि है। गगा-यद्गना के नाठे में अमस्यित यह प्रदेश अपना महान् सास्तृतिक परम्या ने लिए सदैव आदर के साथ स्मरण निया गया है! भारतीय बाह्मय में इस प्रदेश के महत्व और बैमय ना एनाधिक गर उल्लेख मिलता है। भारतीय आर्यमाया-भाषी) के नेन्द्र में रिवत होने के नारण इस प्रदेश की भाषा को

सप्यदेश मूलन गना-यमुना के बीच का प्रदेश—
 (क) हिमबद विन्ध्यक्षेमेंच्य यात्राविनशनादिष ।

प्रत्ययेव प्रयागाच मध्यदेश प्रकोतितः ॥ [मनुस्तृति २।२१] (स) विनय पिन्क, महावमा ५११३,१२ में मध्यदेश की सीमा के अन्दर कवगळ

अर्थाद वर्तमान बिहार का भागलपुर तक का इलाका सम्मिलित किया गया है। (ग) गरून पुरान (१११५) में मध्यपुरा के अन्तर्गत मस्य, अस्वपूर, कुबर, कुतल, कार्या, कोशल, अर्थाव, अर्कलिन, मक्य और बुक सम्मिलित किय गए हैं।

(घ) सुत्र साहित्य के उल्लेखों के निषय में दृष्ट्य दा॰ कीय का नीदक इंडेस्स । (छ) कामसूत्र का जयमाला रोका में राकाका ने मण्यदेश के निषय में बीशए का

यह मत उद्धत किया है। [गायमुनवोरित्वेड, टीका राभार ?]
(च) फाह्मान, अल्वेडनी तथा अन्य इतिहासकारों के मती के खिलू देखिये डा० गोरेन्द्र वर्मों का लेख 'मध्यदेश का विकास', ना० ग० पत्रिका भाग है, सस्या १ और उनको सुस्तक 'मध्यदेश' राष्ट्रभाषा परिषद्ध स्टना से प्रकाशित ।

२ (१) प्तदेशप्रस्तस्य सकाशादप्रजन्मन । ्रत्य स्व चरित्र शिक्षेरन्युधिय्या सर्वमानवा ॥ [मनु० २।२०] मितानी झातियों और उनके बनों के साथ स्थापित किया जाता है। विहासी भाषा वस्तुतः मूल आर्य मापा की एक शाखा है, वो योरोपीय मापा के समानान्तर विकस्ति होती रही। उदो आर्यन से इसका सम्बन्ध सीघा नहीं कहा जा सकता । भारतीय आर्य भाषा का सीघा सम्बन्ध हिन्द ईरानी आर्य भाषा से है जो अपगानिस्तान और ईरान के पूर्वी हिस्सों में विकसित हुई थी। अवेन्ता इस भाषा में लिखा सबसे प्राचीन प्रत्य है जिसमें जरठोष्ट धर्म के प्राचीन मन सकलित किये गये हैं। पूर्वी ईरान और अपगानिस्तान के कुछ हिस्सों में बसनेवाली आर्य जाति नी एक विक्रसित भाषा थी, जिसे इम इन्दोईरानी कह सकते है, जो भारतीय श्रार्य भाषा के प्राचीनतम रूप यानी वैदिक भाषा या छान्दस के मूल में प्रतिष्ठित है। र ऋग्वैदिक नाल में आर्थों के क्वीले सप्तित्यु में पूर्ण रूप से पैल चुके ये और उनका दवाय पूर्व की श्रोर निरन्तर बदने रूगा या । ऋष्वैदिक मात्रा उस आर्प प्रदेश की भाषा है जिसकी सीमा सुदूर परिचमोत्तर की कुमा श्रीर खात नदियों से लेकर पूरव में गगा तक पैली हुई थी। ऋग्वैदिक मत्रों का बहुत वडा हिस्सा सप्तसिन्धु या पचनद के प्रदेश में निर्मित हुआ। यह भी सहज अनुमेय है कि इस विशाल मंत्र-राशि का कुछ अश यायावरीय आर्य-जन अपने पुराने ईंगनी आवास से भारत में ले श्राये हों। किन्तु ऋग्वेद के अन्तिम मण्डलों के मंत्र निःसन्देह गगा-यमुना के काठे में बसे हुए आयों द्वारा निर्मित हुए हैं जिन्होंने वैदिक घर्म की स्थापना की, इ.स.के साहित्य की अमनबद्ध किया और उत्सव पर्वों के श्रनुसार मत्रों की विभक्त किया। 'मप्पदेश के इन आर्य-जनों ने मारत के सर्वाधिक वैभवपूर्ण प्रदेश में बसे होने के कारण अपनी रियति, सस्त्रति और सभ्यता के वळ पर सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अपना प्रसुत्व स्थापित कर लिया । इस प्रदेश के बढिबादी बाह्मणी और आभिनात्य राजन्यों ने अपनी श्रेष्टतर मनोत्रति के कारण आस पास के होगों की प्रभावित किया और मध्यदेश की तहजीन और सम्पता को पूरव में बाशी और मिथिला तथा सदर दक्षिण और पश्चिम के भागों में भी प्रमारित किया ।" मध्यदेशीय आर्यों की भाषा को शुद्धता का कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है" किन्त यह बाद के यग में मध्यदेशीय प्रभाव की बृद्धि का सकेत है। बस्तत: वैदिक यग में उदीच्य या पश्चिम की भाषा को ही आदर्श ग्रीर शुद्ध भाषा माना जाता था, ब्राह्मण प्रत्यों में कई स्थलों पर उदीच्य भाषा के गौरव का उल्लेख हुआ है। यह मान्यता साधार भी कही

¹ H R Hall Ancient History of Near East 1913 pp 201, and Cambridge

History of India to 1 Chapter III

अवेस्ता और ऋषैदिक मन्त्रों की भाषा के साम्य के िए विशेष द्रष्टम्य : इन्द्रो भाषैन ऐंड हिम्दी, पृठ ४८, ५६ तारापोरवाटा एटिमॅट्स आव दि साइन्स आव केंबिज ए० १०१–२४, ए० बी॰ डय्ल्यू वैश्वसन कृत अवेस्ता प्रेमर'

३. अवेस्ता के दूराती आर्थ मन्त्रों और ऋतुको या उन्सवों पर साथे जाने वाले वैदिक स्त्रों के तुलनात्मक भण्यवन के टिप मार्टिन हाग का 'ऐसे आन दी सेनड झेंचेन, सहर्टम्स ऐंड स्टिंगन्स आब पासील एंड ऐनरेब माह्यन' १८६६, हष्टस्य 4 Ongon and Development of Eengal Langaves 1926 P.

प. यजुः सहिता **२।२**०

तस्मात् उदीच्याम् प्रज्ञाततरा वाग् उदाते उदब एव यन्ति वायम् शिचितम् योवा तत् आगरवृति, तस्य वा ग्रेथ्रूपन्त इति (सांच्यायन या कोपातिक शादण ७१६) ।

मितानी बातियों और उनके बनों के साथ स्थापित किया जाता है। हती भाषा वस्तुत. मूल आर्य मापा की एक शाखा है, वो योरोपीय मापा के समानान्तर विकसित होती रही। इदी आर्यन से इसना सम्बन्ध सीघा नहीं कहा जा सकता । भारतीय आर्य भाषा ना सीघा सम्बन्ध हिन्द ईरानी आर्य भाषा से हैं जो अपगानिस्तान और ईरान के पूर्वी हिस्सा में विकसित हुई थी । अवेग्ता इस भाषा में हिखा सबसे प्राचीन प्रत्य है जिसमें बरठोड़ धर्म के प्राचीन मन सकलित किये गये हैं। पूर्वी ईरान और अपगानिस्तान के कुछ हिस्सों में बसनेवाली आर्य जाति को एक विकसित भाषा थी, जिसे इम इन्दोईरानी कह सकते है, जो भारतीय श्रार्य भाषा के प्राचीनतम रूप यानी वैदिक भाषा या छान्दस के मृल में प्रतिष्ठित है। र ऋग्वैदिक नाल में आर्थों के क्वीले सप्तसिन्धु में पूर्ण रूप से पैल चुने ये और उनका दबाव पूर्वकी स्रोर निरन्तर बढने रूगा या। ऋष्वैदिक मापा उस आर्प प्रदेश की भाषा है जिसकी सीमा सदर पश्चिमोत्तर की कुभा श्रीर स्वात नदियां से लेकर पूरव में गगा तक पैली हुई थी। श्रव्यदिक मत्रों का बहत वडा हिस्सा सप्तिसिन्धु या पचनद के प्रदेश में निर्मित हुआ । यह भी सहज अनुमेय है कि इस विशाल मन्नराशि का कुछ अश यायावरीय आर्य-जन अपने पुराने इरानी आवास से भारत में ले श्राये हों। किन्तु ऋग्वेद के अन्तिम मण्डलों के मत्र नि सन्देह गगा-यहुना के काठे में बसे हुए आयों द्वारा निर्मित हुए हैं जिन्होंने वैदिक धर्म की स्थापना की. इसके साहित्य को बमबद किया और उत्सव पर्वो के श्रनुसार मत्रों को विभक्त किया। 'मध्यदेश के इन आर्य-जनों ने भारत के सर्वाधिक वैभवपूर्ण प्रदेश में बसे होने के कारण अपनी स्थिति, सस्त्रति और सम्यता के बल पर सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अपना प्रसत्व स्थापित कर लिया । इस प्रदेश के बढिवादी बाह्मणी और आभिनात्य राजन्यों ने अपनी श्रेष्टतर मनोत्रति के नारण आस पास के लोगों को प्रभावित किया और मध्यदेश की तहजीत और सभ्यता को पूरव में काशी और मिथिला तथा सुदूर दक्षिण और पश्चिम के भागों में भी प्रभारित किया ।" मध्यदेशीय आर्यों की मापा को शुद्धता का कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है" किन्त यह बाद के यम में मध्यदेशीय प्रभाव की बृद्धि का सरेत है। वस्तत, बैटिक यम में उदीच्य या पश्चिम की भापा को ही आदर्श ग्रीर शुद्ध भाषा माना जाता था, ब्राह्मण प्रत्यों में कई स्थलों पर उदीच्य भाषा के गौरव का उल्लेख हुआ है। यह मान्यता साधार भी कही

¹ H R Hall Ancient History of Near East 1913 pp 201 and Cambridge History of India vor 1 Chapter 111

२. अवेस्ता और ऋषैदिक मन्त्री की भाषा के साम्य के लिए विशेष इष्टब्य : इन्दी भार्यन पुँढ हिन्दी, पृ० ४८,५६ तारापीरवाला पुलिमेंट्स आव दि साइन्स आव लेंग्वेज ए० २०१-२४, ए० बी॰ डब्ल्यु जैक्सन कृत अवेस्ता ग्रेसर

३. अवेस्ता के ईरानी आर्य मन्त्रों और ऋतुआ या उ सवों पर गाये जाने वाले वैदिक सुत्रों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए मार्टिन हाग का 'ऐसे आन दी सेनड लैंग्वेज. राइटिंग्स ऐंड रिलीजन्स आब पारसीज़ वेंड ऐतरेय ब्राह्मण १८६३, द्रष्टव्य

⁴ Origin and Development of Bengali Language 1926 P 39 भ यञ्च सहिता २।२०

६ तस्मात् उदीच्याम् प्रज्ञाततरा वाग् उद्यते उद्य पुर यन्ति वायम् शिचितम् यो वा तत् आगस्त्रति, तस्य दा शुश्रूपन्त इति (सारयायन या कोपीतकि झाद्वाण ७१६)।

१. बहिनेंवां उपशाला की उत्तर पश्चिमी तथा पूरव की बोलियों में अतिम स्तर इ, प्र तथा उ वर्तमान है किन्तु भीतरी उपशाला की पश्चिमी हिन्दी में ये स्तर हुत हो गए हैं। जैते नारमीरी अहि, तिंची अति, विहारी ऑिख किन्तु हिन्दी आला। र-बहिनेंदी मापाओं विशेषतर पूर्वी मापाओं में आंतिविहित (Epenthess) वर्तमान है, मण्येरेवीय में नहीं। र-अह- प्रे तथा अब अ प्रे शाला की पूर्वी मापाओं में विहन्त 'पर' तथा 'ओ' फे रूत में टिलाई वर्डते हैं। ४-स्टिंग्ड के च् चूर्ची मापाओं में तट-चृतथा द्वा-च में वरह आते हैं। ५-द्वा-त प्राची की मित्रता अन्तः और विहे. शारपओं में राट मान्द्रम हो जाती है। ६-पूरव तथा पश्चिम की विहे: मापाओं में द् च प्रस्तर वितर्मेश है किन्तु मप्तरेशीय में नहीं। ७-चाहरी मापाओं में मापाओं में द च प्रस्तर वितर्मेश हैं। द-द्वा वाहरी शारपाओं में लोच हो गया है, पश्चिमी हिन्दी में यह वर्तमान है। ६- स्तर मप्त्या म > हमें परिवर्तन कहरी में हिन्दी परवर्ता है। १०-चाहरी प्राचाओं में लोच हो गया है, पश्चिम मापाओं में दिखाई पडता है। १२-सहाप्राण वर्णों के अल्प्राण में परिवर्तन के अधार पर भी वह मित्रता तरह होती है। १२-दित वर्णों के सल्क्षेत्रसण में पूर्व करा के इतिपूर्क देशींक्रप ने आधार पर भी यह में दिखाई पडता है। हर तता तर सन्त्रभी मित्रता को स्वर्ण के कित्र वार सन्त्रभी मित्रता की स्वर्ण के वितर्क के वितर्क करने के विद हा प्रवर्ण ने भागर पर मी यह में दिखाई पडता है। हर तता है। हर तता सन्त्रभी मित्रता की स्वर्ण के कित्र हो के वितर्क के वितर्क के निर्म निविद्य की दिखाई पडता है। हर तता हो सन्त्रभी मित्रता की स्वर्ण के सित्रता हिये।

 वाहरी मापायें पुनः सिरेट्य हो रही है जब कि भीतरी भाषाओं में सिरुयता दियाई पहती है। उदाइरणार्थ हिन्दी में विभक्तियाँ और परसर्ग के. का. ने. में आदि सञ्चा शब्दी से प्रथक् किसे आते हैं। क्याली में सम्बन्ध के 'पीमेर' ब्राहि रूप सन्तिप्रता व्यक्त करते हैं। क्या रूपों को देखने से यह अन्तर और भी स्पष्ट होता है। कियारूपों पर विचार वरते हुए डा॰ प्रियर्सन ने लिखा कि बाहरी मापार्वे प्राचीन आर्थ भाषा की किसी ऐसी बोली से निकली हैं जिसमें कमें वाच्य के क़दन्तन रूपों के साथ सर्वनामों के लघुरूमों का समवतः प्रयोग होता था किन्तु भीतरी भाषायें संस्कृत की उस शाला से प्रभावित है, जिनमें ऐसे क्रियारूपों के साथ सार्वनाभिक च्छु रूपों का प्रयोग नहीं होता था इसीलिए हिंदी में कर्मवाच्य की 'मारा' किया में सर्वनामों के वचन, पुरुष के ऋतुसार कोई अन्तर नहीं होता। मैंने इमने मारा, तूने दुमने मारा, उसने-उन्होंने मारा, किन्तु बाहरी शासा की भाषाओं के साय ऐसी बात नहीं है। इसीलिए अन्तवर्ती भाषाओं के व्यानरण बाहरी भाषाओं के व्यानरण की अपेदा अधिक सरल और सिद्धत होते हैं। डा॰ चाटुज्यों और प्रियर्सन फे मनभेद और विवाद की बात हम ऊपर कह चुके हैं, यहाँ उसके विस्तार में जाने का कोई प्रोजन नहीं है। चादुःयों ने बहुत विस्तार के साथ प्रियमेंन के तकों को प्रमाणहीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है- जो भी हो डा॰ प्रियर्सन की इस स्थापना से मध्यदेशीय भाषा की महत्वपूर्ण स्थिति और विशेषता का सकेत मिलता है। ब्रियर्सन ने समुद्र-तट पर बसे गुजरान प्रान्त की मापा ने। अन्तर्वती कहा है। उन्होंने इस मापानो मूखतः शौरसेनी श्रेणी की मापा स्वीकार किया है। यह मान्यता बजनाया के अध्येता के लिए आयन्त महत्त्वपूर्ण है। भाषा की दृष्टि से कर्मनाच्य के कुट्नजन्न रूपों और विकिष्टता सम्बन्धी प्रवृत्ति के सकेत मी मध्यदेशी

क्रियास्पों का विवरण प्रियसँन के लिखिस्कि सर्वे आव इंडिया भाग १ लंड , १ में देखा जा सकता है।

१. बहिनेंवां उपशाला की उत्तर पिक्षमों तथा पूरव की बोलियों में अतिम स्तर इ, ए तया उ वर्तमान है किन्तु मीनरी उपशाला की पिक्षमों हिन्दी में ये स्वर हुत हो गए हैं। जैते कारमीरी अलि, लियों आलि, किरारी ऑलि किन्तु हिन्दी आला। र --बहिनेंदी मायाओं विशेषतर पूर्वी मायाओं में ऑपिनिहित (Epenthess) वर्षमान है, मण्यदेशीय में नहीं। २-अहर ऐ तथा अंभे के रूका में रिलाई पडते हैं। ४-र-किन्तु के ज् ज् पूर्वी मायाओं में हान 'प' तथा 'ओ' के रूका में रिलाई पडते हैं। ४-र-किन्तु के ज् ज् पूर्वी मायाओं में हत- प्रार त्य-ज से वरुव आते हैं। ५-र्स्तु तथा हत के उच्चारण की मिस्रता अन्तः और वहि शाराओं में राउ मायुम हो जाती हैं। ६-सूर्व तथा पिक्षम की बिंदी मायाओं में दू इ प्रस्तर वितमेश हैं किन्तु मण्यदेशीय में नहीं। ७-वाइरी मायाओं में र र मायुम हो जाती हैं। ६-सूर्व तथा पिक्षम की बिंदी मायाओं में स्वर्धी में पड देशान है है। दे-दू न वाइरी शाराओं में लोग हो गया है, पिक्सिमी हिन्दी में यह वर्तमान है। इ-स्वर मप्या स र हो पिक्तु के बाइरी में ही विराड पडता है। १०-या, प्, स्र प्रार के स्वर्धीय में हिला है। ११-मायाण वर्णों के अल्पाण में परिवर्तन के अपार पर भी यह मितता तर होती है। ११-सामाण वर्णों के अल्पाण में परिवर्तन के अपार पर भी यह मितता तर होती है। ११-सामाण वर्णों के अल्पाण में परिवर्तन के स्वर्धा पर भी यह मितता तर होती है। ११-सामाण वर्णों के अल्पाण में परिवर्तन के स्वर्धा पर भी यह मितता तर होती है। ११-सामाण वर्णों के उत्तर का स्वर्ध भाग पर स्वर्ध के स्वर्ध कर से ब्रिवर्स के विवर्ध के अपार पर भी यह मितता तर होती है। ११-सामाण वर्णों के उत्तर का स्वर्ध भाग सिन्तु को स्वर्ध कर विवर्ध कर विवर्ध कर विवर्ध कर विवर्ध कर के विवर्ध कर विवर्ध कर के विवर्ध कर से विवर्ध कर की विवर्ध कर विव

 बाहरी मापायें पनः सिरेट्य हो रही है जब कि मीतरी भाषाओं में सिरेट्यता दिखाई पहती है। उदाहरतार्थ हिन्दी में विभक्तियाँ और परसर्ग के, का, ने, में आदि सत्ता शब्दों से प्रथक लिखे आते हैं। बगाली में सम्बन्ध के 'रामेर' ग्रादि रूप सरिख्यता व्यक्त करते हैं। जिया रूपों को देखने से यह अन्तर और भी स्पष्ट होता है। कियारूपों पर विचार बरते हुए डा॰ प्रियमंत ने लिखा कि बाहरी मापायें प्राचीन आर्य भाषा की किसी ऐसी बोलों से निकली हैं जिसमें कमें वाच्य के क़दन्तज रूपों के साथ सर्वनामों के लघुरूपों हा समयतः प्रयोग होता था किन्तु मीतरी भाषायें संस्कृत की उस शाखा से प्रभावित है, जिनमें ऐसे वियारूपों के साथ सार्वनाभिक लग्न रूपों का प्रयोग नहीं होता था इसीलिए हिंदी में कर्मवाच्य की 'मारा' क्रिया में सर्वनामों के बचन, पुरुष के अनुसार कोई अन्तर नहीं होता। मैंने इमने मारा, तुने तुमने मारा, उसने-उन्होंने मारा, क्नित बाहरी शारा की भाषाओं के साथ ऐसी बात नहीं है। इसीलिए अन्तवतीं भाषाओं के व्यावरण बाहरी भाषाओं के व्याकरण की अपेद्धा अधिक सरल और सिद्धत होते हैं। डा॰ चाटुज्यों और प्रियर्सन के मनभेद और विवाद की बात हम जन्म कह चुके हैं, यहाँ उसके विस्तार में जाने का कोई प्रोजन नहीं है। चाद्रव्यों ने बहुत विस्तार के साथ प्रियमन के तकों को प्रमाणहीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है-जो भी हो डा॰ प्रियर्शन की इस स्थापना से मध्यदेशीय भाषा की महरवपूर्ण रिथति और विशेषता का सकेत मिलता है। प्रियर्सन ने समुद्र-तट पर बसे गुजरात प्रान्त की मापा को अन्तर्वती कहा है। उन्होंने इस मापाको मूलतः शौरसेनी श्रेणी की मापा स्वीनार किया है। यह मान्यता ब्रजमापा के अध्येता के लिए अत्यन्त महस्वपूर्ण है। भाषा की दृष्टि से क्मेबाच्य के कुदन्तज रूपों और विश्विष्टता सम्बन्धी प्रवृत्ति के सकेत भी मध्यदेशी

क्रियारूपों का विवरण प्रियसेंन के लिखिस्कि सर्वे आद इंडिया भाग १ खंड ,१ में देखा जा सकता है।

६। १२। १, ६। २। ७) यह अवस्या बादकी भाषात्रो ऋर्यात् मध्य और नव्य आर्य भाषाओं में दिखाई पड़ती है। हिन्दी में आदि मध्य और अन्त स्वरागम के प्रयोगों के प्रज़र जदाहरण मिलते हैं। स्वरागम (Intrusive Vowels) के उदाहरण नई हिन्दी में बिरल हैं किन्त परानी हिन्दी (ब्रज, अवधी) में इनकी संख्या नाफी है। वैदिक भाषा में मध्यग र का विकल्प लोप दिखाई पडता है जैसे प्रगलम >पगलम (तैत्तिरीय सहिता र। २) १४) हेमचन्द्र ने अपभ्र श में इस प्रवृत्ति को लक्षित किया था जैसे प्रिय> पिय, चन्द्र > चन्द्र ग्रादि रूप। रेश्रवभाण में प्रहर>पहर, प्रमाण>पमान, प्रिय>पिय आदि बहुत से प्रयोग मिलते हैं। वैदिक भाषा की र ध्यनि उच्चारण की दृष्टि से भारोपीय 'ख' ध्यनि की विकल्प रूप में स्थानापन प्रतीत होती है। विद्वानों की धारणा है कि र् और ख़्का यह साम्य आकत्मिक नहीं है। प्राचीन काल में आर्य भाषा की तीन शाखाओं में क्रमशः रू, र और ल और येवल ल प्यनियाँ रही होंगी । शारतओं वे एकीकरण के बाद इस प्रभार की शिथिलता अपने श्राप उत्पन्न हो जाती है। श्रीर, श्रील, श्लील एक हो शब्द के तीन रूप हैं जिनसे ऊपर के कथन की सत्यता प्रमाणित होती है। र श्रीर ल ब्रजमाया में परस्पर विनिमेय ध्वनियाँ हैं। इन्हें अमेद ध्वनियों कहा गया है। हिन्दी में र्और ल के परस्तर विनिमेयता के उदाहरण द्रहन्य है। भद्रक>महा|>महा | चलारिंशत>वालीस, पर्यक>पलग; घूर्ण>घोल आदि तथा व्याङ्गल > वाउल > वाउर. में यह विनिमेवता परिलक्षित होती है।

है २२. बैदिक भाषा के राज्यरूकों का विचार करते समय हमारा थान याक्य कियान की ओर आइन्ह होता है। माहाजों में मुनुक गद्य की भाषा देव काल की हरामांविक मापा है किएके वाक्य विन्यास के बारे में डा॰ मैकडानल किराते हैं: 'वाक्य के आराम में कर्ता का और अन्त में क्रिया का प्रवास की मापा है किएके वाक्य विन्यास के बारे में डा॰ मैकडानल किराते हैं: 'वाक्य के आराम में मित्रें हैं। किरा कर अर्थ-परिवर्तन की चेशा दिखाई पड़ती है, यह प्रवृत्ति सक्तत में भी प्रचित्त थी, किन्तु वैदिक भाषा में प्र, पर, अनु आदि उपकों दिशा में प्रकार में भी प्रचित्त थी, किन्तु वैदिक भाषा में प्रकार में क्रिया विरोपल और असमाधिक क्रियाओं का उतना प्रयोग नहीं है कितना वैदिक भाषा में मित्रें कि । वैदिक भाषा के ये प्रवृत्ति सक्तत की अपेका मण्यदेशीन नवर मारातीय भाषाओं के हिंद मापा के ये प्रवृत्ति सक्तत की अपेका मण्यदेशीन नवर मारातीय भाषाओं के किन्त मापा होती हैं। स्विभक्तिक मध्येग सक्तत के मेक्टण हैं वैदिक भाषा में इत्तर्भ करके कहा या कि पुपनी हिन्दी को 'वैदिक भाषा की अदिमक्तिक निर्देश को विरास भी निर्का' विद्या की हिन्दी को 'वैदिक भाषा की अदिमक्तिक निर्देश को विरास भी निर्का' विद्यत की स्वर्त वैदिक भाषा परिनिश्चित सक्तत की अपेवा व्यादा सरक, सहज और सामाजिक-पारा ने सक्तत की भाषा

हिन्दी भाषा का इतिहास, ५० १६२, हिन्दी का उद्गम और विकास ५० १५१ पर हिन्दी उदाहरण दिये हुए है ।

रे. वाघो रो छक् , प्राकृत व्याकरण माधाइसम

रे. रखयोरभेद: पाणिनीय

⁴ Vedic Grammar IV Edition 1950 London p 284

भ. पुरानी हिन्दो, प्रथम संस्करण सवत् २००५, ए० इ

६। १२। १. ६। २१७) यह अवस्या बाद की भाषाओं ऋर्यात मध्य और नन्य आर्य भाषाओं में दिखाई पडती है। हिन्दी में आदि मध्य और अन्त स्वरागम के प्रयोगों के प्रज़र जदाहरण मिलते हैं। स्वरागम (Intrusive Vowels) के उदाहरण नई हिन्दी में विरल हैं किन्तु पुरानी हिन्दी (ब्रज, अवधी) में इनकी शंख्या काफी है। वैदिक भाषा में मध्यग र् का बिक्ल्प लोप दिखाई पडता है जैसे प्रगल्म >पगल्म (तैत्तिरीय सहिता २। २। १४) हेमचन्द्र ने अपभ श में इस प्रवृत्ति को लक्षित किया था जैसे प्रिय > दिया चन्द्र > चन्द्र ग्राडि रूप। ब्रेबभाषा में प्रहर >पहर, प्रमाण >पमान, प्रिय >पिय आदि बहत से प्रयोग मिलते हैं। वैदिक भाषा की र ध्यनि उच्चारण की दृष्टि से भारोपीय 'छ' ध्यनि की विकल्प रूप में स्थानापन्न प्रतीत होती है। विद्वानों की घारणा है कि र्और खूका यह साम्य आकिस्मक नहीं है। प्राचीन काल में आर्य भाषा की तीन शाखाओं में कमशः रु, र और ल और वेवल ल व्यनियाँ रही होंगी । शारताओं ने एकीकरण के बाद इस प्रकार की शिथिलता अपने त्राप उत्पन्न हो जाती है। श्रीर, श्रील, इतील एक हो शब्द के तीन रूप हैं जिनसे ऊपर के कथन की सत्यता प्रमाणित होती है। उसीर ल अजभाया में परस्पर विनिमेय ध्वनियाँ हैं। इन्हें अमेद ध्वनियाँ कहा गया है। हिन्दी में र् और ल के परस्पर वितिमेयता के उदाहरण द्रष्टर्य है। भद्रक>महा>भहा । चलारिशत>वाहीस, पर्यक>पहरा; धूर्ण>धोव आदि तथा व्याञ्चल > वाउल > वाउर, में यह विनिमेवता परिलक्षित होती है।

§ २२. वैरिक भाषा के राज्यरूपों का विचार करते समय इगारा प्यान वाक्य विवास की ओर आङ्ग्य होता है। माहाजों में प्रयुक्त गद्य की भाषा दे काल की रामाधिक भाषा है किएके वाक्य विव्यास के बारे में डा॰ मैकडानल किराते हैं: 'बाल्य के आरम्म में करते का डार मां होता का प्रयोग होता था। यह महात सामाप्य है, हसमें अभवाद मो मिलते हैं 'प्रे वैरिक भाषा में किया परा में उरसमों को जोड़कर अर्थ-परिवर्तन की चेश दिखाई पडती है, यह महित सम्बद्ध में मिलते हैं 'प्रे वैरिक भाषा में किया परा में उरसमों को जोड़कर अर्थ-परिवर्तन की चेश दिखाई पडती है, यह महित सम्बद्ध में भी मचित्रत थी, किया है तियाओं के साथ न यह कर उनसे झत्या भी प्रयुक्त होते थे। सस्कृत में किया विवेच को स्वापिक और असमाधिक माया में मिलता विवेच आपा को ये प्रष्टृतियों सम्बद्ध की अपने मायरेशीय नवह मायतीय भाषाओं के किया महिता मायतीय के स्वया स्वकृत की स्वया मायरेशीय विवेच मायतीय में मिलता है । वैरिक भाषा के ये प्रष्टृतियों को स्वया सिक्त करने में दरफ हैं वैरिक भाषा में हम कुछ कर के हर पा कि पुतानी हिन्दी को वैरिक भाषा की अविविक्तिक विरेच को विरास्त भी मिली 'विव्यतिक विरेच का विरास भी मिली 'विव्यतिक विरेच का विरास भी मिली 'विव्यति विद्या की विर्माण की अविवादिक विरेच की सामाधिक अपने समक्त भी स्वरा स्वरात वैरिक भाषा परिनिधित सस्कृत की अपेदा ज्यादा सरक, सहन और सामाधिक अपार

हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० १६८, हिन्दी का उद्गम और विकास पृ० १५३ पर हिन्दी उदाहरण दिये हुए है ।

२. वाघो से छुक् , प्राकृत व्यादरण द्राधा ११८

३. रहयोरभेद : पाणिनीय

⁴ Vedic Grammar IV Edition 1955 London p 284

प. पुरानी हिन्दी, प्रथम संस्करण संवत् २००५, पृ० ६

रुक गया को प्रवहमान कीयन्त भाषा के लिए आवश्यक है। इस प्रकार मध्यदेश की यह सास्कृतिक भाषा साहित्य दर्शन और अन्य ज्ञान-विज्ञान के विषयों के अध्ययन-अध्यापन का माध्यम बनकर रह गई।

§ २४. रुक्तत का प्रभान परवर्ती, खास तीर से नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य पर पूरा-पूरा दिखाई पडता है. बिन्तु भाषिक विकास में इसका योग प्रकारान्तर से ही माना जा सकता है। सम्कृत मापा के साथ ही साथ जन साधारण के बोजचाल की स्वामाविक यानी प्राष्ट्रत भाषायें विकसित हो रहीं थीं, सत्कृत अपने को इनके प्रभाव से मुक्त न रख सभी। बौदों की संस्कृत में यह सकरता स्पष्टतया परिलवित होतो है । बौदकाल की प्रचलित भाषाओं पर विचार करते हुए भी टी॰ डब्ल्य॰ रायडेविस ने खो तालिका प्रस्तत की है उसमें मध्यकालीन आर्थ भाषा के प्रथम स्तर ६०० ई० पूर्व से २०० ईस्वी तक की रियति का बहुत श्रन्छा विवेचन हुआ है। ' भौद भारत में गान्धार से बगाल और हिमानव से दक्षिण समुद्र तक के भू भाग में बोली जाने वाली भाषाओं के मुख्य पाच चेत्र दिखाई पडते हैं।

१---उत्तरपश्चिमी, गान्धार, पत्नाव श्रीर समवतः सिन्ध में प्रचलित मापा का क्षेत्र ।

२—दक्षिण पश्चिमी, गुजरात, पश्चिमी राजस्थान ।

स-मध्यदेश और माल्या का चेत्र को (२) और (३) का सन्धिस्थल कहा वा सक्ता है।

प्र—पूजा में कि । प्राचीन अर्घमागधी और [ख] प्राचीन मागधी शामिल की ना सक्ती हैं।

५—दक्षिणी जिसमें विदर्भ श्रीर महाराष्ट्र की भाषायें आती है।

उत्तरभारत में प्रचलित इन भाषाओं को इस प्रकार रखा वा सकता है :--१—ग्रार्य आक्रमणकारिया की भाषा, दाविड और कोल भाषाये

२-प्राचीन वैदिक भाषा

रे---उन ग्रायों की भाषा जो शादी-आदि सम्बन्धों के कारण द्रविडो से विश्वित हो

गए थे. ये चाहे कश्मीर से नेपाल तक हिमालय की तराई में हो, या सिन्ध की घाटी में या गगा यमना के द्वाबे में।

१. भारतीय आर्यभाषा के मुख्यतया तीन काल विभावन होते हैं

(1) प्राचीन आर्यभाषा 1५०० ई० प्० से ६०० ई० प्० । वैदिक भाषा भावर्श

(२) मध्यक्रालीत-६०० ई० पूर से १००० ईस्वी सन्

(क) प्रथम स्तर ६०० ई० पू० से २०० ई० सन् । अशोक की प्राज्तें. पार्का आदर्श

(स)द्वितीय स्तर-२०० ई० से ६०० ई० संस्कृत नाटको की प्राकृतें शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागर्थी आदि आदर्श

(ग) तृतीय स्तर-६०० ई० से १००० ई० शीरसेवी अपभ्रम भादरी

(३) नव्यआर्यमापा-१००० ई० से वर्षमानसुग-हिन्दी, महाठी, बगला भादि आदर्श

2 Budhist India 1903 London pp 53 54

रुक गया जो प्रवहमान जीवन्त भाषा के लिए आवश्यक है। इस प्रकार मध्यदेश की यह सारकृतिक भाषा साहित्व दर्शन और अन्य ज्ञान-विज्ञान के विषयों के अध्ययन-अध्यापन का माध्यम बनकर रह गई।

§ २४. संस्कृत का प्रभान परवर्ती, खास तीर से नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य पर पूरा-पूरा दिलाई पडता है, विन्तु भाषिक विवास में इसका योग प्रकाशन्तर से ही माना जा सकता है । सन्कृत भाषा के साथ ही साथ जन साधारण के बोजचाल की स्वामाविक यानी प्राष्ट्रत भाषायें विकसित हो रहीं थीं, सत्कृत अपने को इनके प्रभाव से मुक्त न रख सकी। बौद्धों ही सस्ट्रत में यह सकरता स्पष्टतया परिलद्धित होतो है। बौदकाल की प्रचलित भाषाओं पर विचार क्रेत हुए श्रीटी॰ डब्ल्रू॰ रायडेविस ने क्षो तालिका प्रस्तुत की है उसमें मध्यकालीन आर्य भाषा के प्रयम स्तर ६०० ई० पूरु से २०० ईस्वी तक की स्थिति का बहुत श्रन्छा विवेचन हुआ है। 'भौद मारत में नान्धार से चनाल और हिमालय से दक्षिण समूद्र तक के भू भाग में थोड़ी जाने वाली भाषाओं के मुख्य पाच द्वीत दिखाई पडते हैं।

१---उत्तरपश्चिमी, गान्धार, पजाव श्रीर सभवतः सिन्ध में प्रचलित भाषा का चेत्र।

२—दक्षिण पश्चिमी, गुजरात, पश्चिमी राजस्थान । २—मध्यदेश श्रीर मालवा का चेत्र को (२) श्रीर (३) का सन्धिस्थल कहा वा

सक्ता है। ४—पूर्वा में [क] प्राचीन अर्घमागधी और [स] प्राचीन मागधी शामिल की

चासकती हैं। ५—दक्षिणी जिसमें विदर्भ श्रीर महाराष्ट्र की भाषायें आवी है ।

उत्तरभारत में प्रचलित इन भाषाओं को इस प्रकार रखा बा सकता है :--१—ग्रार्य आहमणकारिया की भाषा, द्राविड और कोल भाषायें

२—प्राचीन वैदिक भाषा

३---उन ग्रायों की भाषा को शादी-आदि सम्बन्धों के कारण द्रविडों से मिश्रित हो गद ये, ये चाहे क्श्मीर से नेपाल तक हिमालय की तराई में हो, या सिन्ध की घाटी में या गगा यमुना के दावे में !

1. भारतीय आर्यभाषा के मुस्यतया तीन काल-विभावन होते हैं

- (१) प्राचीन आर्यभाषा १५०० ई० प्० से ६०० ई० प्०। वैदिक भाषा आदर्श
 - (२) मध्यकालीन-६०० ई० पू॰ से १००० ईस्वी सन्
 - (क) प्रथम स्तर ६०० ई० पूर से २०० ई० सन् । सशोक की प्राज्ते. पाली आदर्श
 - (स)दितीय स्तर-२००ई० से ६००ई० संस्कृत नाउको की प्राकृतें शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमाग्धी आदि आदर्श
 - (ग) तृतीय स्तर-६०० ई० से १००० ई० शीरसेनी अपश्चरा आदर्श
 - (३) नव्यआर्यमाया-१००० ई० से बर्चमान्युय-हिन्दी, महाठी, बराहा भादि आदर्श
- 2 Budhist India 1903 London pp 53 54

अशोक के शिखलेनों भी प्राइत भाषा संस्कृत से बहुत दूर नहीं दिलाई पडती, उसके बाक्य विन्यास और गठन के भीवर स्टह्त का प्रभाव मिलेगा, किन्दु अशोक कालीन प्राइती में को सहजता और जनभाषाओं की प्रवहमान प्रइति का दर्शन होता है, वह आर्य भाषाओं के विकास के एक नये गुग की सुवना देता है। अशोककालीन प्राइतों का मध्यदेशीय भाषा से कोई सीवा सम्बन्ध नहीं है किन्दु इनके विकास वी दिशाओं में हम तकालीन मध्यदेशीय के विकास के सूत्रों को हुट सकते हैं। अशोक के शिखलेलों की भाषा की बुद्ध अल्दन सहन्वपूर्ण विशेषताथ यहा महात की बाती हैं। च्यनि विकास की इष्टि से ऋ का परिवर्तन द्रष्टव्य है। ऋ) अ, ज, इ, ए कर्जों में परिवर्तित होती है।

इत > कत (गिरितार) कर (कालमी) किट (शाहबाबगर्था)
मूग > मग (गिर॰) मिग (कालमी) मुग (शाहबाबगर्था)
व्यापुत > ध्यापत (गिर॰) वियापट (कालमी) चरट (शाहबाबगर्था)
पतादश > ध्यापित (गिर॰) वियापट (कालमी) परिश्च (शाहबाबगर्था)
भात > भातु (शाह॰। भानमेपी) भाति (कालमी)
पित्र > मित्र (गीति (शा॰। मा॰) वित्र विति (कालभी)
ब्रह्म > महु (गिर०) कहि (शाह॰। मा॰) देख (कालमी)
ब्रह्म > महु (गिर०) वहि (शाह॰) वद (कालमी)

सरकृत धातु√ इच् के दक्त श्रीर दिक्ल परिवर्तन कई लेलों में दिखलाई पडते हैं। रिसेवा को भी केर्न (Kern) और भीहत्त्वत्त (Hultzsch) सस्कृत के दृश्यते से निष्पन्न मानते हैं। कृत्वी>पुठवी (बीली) में ऋ का उ रूपान्तर हुआ है। ऋ का यह परिवर्तन बाद में एक सर्वमान्य प्रवृत्ति के रूप में दिलाई पडता है। ब्रजमापा का हिया < हृदय, पूछनो < प्रच्छ . पुहुमी < पृत्वी, वियौ < इत आदि रूप इसी तरह की प्रवृत्तियों के परिखाम हैं। इन शिला-लेखों की भाषा में संस्कृत सध्यद्धर ऐ का ए के रूप में परिवर्तन महत्वपूर्ण है। कैवर्त > रेयट। औ ना प्रायः सर्वत्र ओ रूप दिखाई पडता है। पीत>पोत (गि॰ मान॰) पोता (शा॰ गिर॰ नालमी) सरहत पौराण > पोराण (मैसूर) । बुछ शब्दों में आरम्भिक अ ना लोप मी विचारणीय है। जैसे ग्रापि>िप, अध्यद्ग>िषयछ । अहनम्>हनम्, हम या ही (प्रज)। अस्मि > सिम । अन्त्य विसर्ग का प्रायः लोग होता है श्रीर अन्त्य अ का भी रूप दिखाई पडता है। यराः>यरो, यरो या यसो भी। वयःव>यो। जनः>जने, प्रियः>तिये, रूपों में विसर्ग रहित अ ना ए रूप हो गया है। व्यञ्चन परिवर्तन के उदाहरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। आरम्मिक इ का लोप जैसे इस्तिन् > अस्ति । सघोप व्यक्तनों में सर्श धानि का लोप जैसे करण-कारक की विभक्ति भि: का सर्वत्र हि । (Palatalization) तालज्योकरण के उदाहरण भी दिलाई पडते है। च>छ, चण>छण, मोच>मोछ। स>च, आत्यविक>आचिवक। य> ब. अय> प्राज । न्य का ण में परिवर्तन विचारणीय है। यह प्रयोग कोई जैन अपभ्रश को ही विशेषता नहीं है। अन्य>अए। मन्य>मण। आहए >आ +णय भी होता है।

रूप विचार नी दृष्टि से इम प्राचीन आर्य भाषा की व्यावरिगिक उलभनों मा बहुत अभाव पाते हैं। बारक विभिन्नियों में सरसीकरण की प्रश्चिका विज्ञात हुआ है। पदान्त व्यञ्जनों के लेप से प्रायः अन्त्य स्तरान्त प्रातिपदिक ही बच रहे हैं। अकागन्त प्रातिपदिकों के प्रज्ञभाषा का रिक्ध : मध्यदेशीय इन्दो आर्थन

अशोक के शिलालेमां भी प्राहत भाषा संस्कृत से बहुत दूर नहीं दिलाई पडती, उसके वाक्य विन्यास और गठन के भीतर स्टलत का प्रभाव मिलेगा, किन्तु अशोक कालीन प्राह्मती में की सहजता और जनभाषाओं की प्रवहमान प्रकृति का रहाँन होता है, वह आर्य भाषाओं के विकास के एक नये गुग की सुवना देता है। अशोककालीन प्राकृतों का मन्यदेशीय भाषा के कोई सीवा सम्बन्ध नहीं है किन्तु इनके विकास मी दिशाओं में हम तकालीन अन्यदेशीय के विकास के सूत्रों को हुट सकते हैं। अशोक के शिलालेलों की भाषा को कुछ अन्यत महत्वपूर्ण विशेषताय यहा प्राव्त की बाती हैं। च्यति विकास की हृष्टि से का का परिवर्तन द्रष्टण है। कुठ अ, ज, इ, ए क्यों में परिवर्तित होती है।

क्त> कत (मिर्ग्रेनार) घर (शल्बी) किर (शाहवाबगरी) मूग> मग (मिर•) मिग (शल्बी) मुग (शाहवाबगरी) श्यापुत> ध्यापत (मिर•) वियापर (शल्बी) यूपर (शाहवाबगदी) प्रवाहरा> प्रतासित (मिर•) हेडिम (शल्बी) प्रदेश (शाहवाबगदी) मातृ> भात (गाह•मानलेग) भाति (शल्बी) पितृ> पितु वीति (शा• मा•) पितृ सिति (शाल• वोती) च्यू> महत् (मिर•) कह्य (शार• मा•) च्यू (सल्बी) ग्राहे> बहुर (मिर•) वहर (शार• मा•) च्यू (सल्बी)

सरकृत घातु√ दृच् के दक्ल श्रीर दिक्ल परिवर्तन कई लेलों में दिखलाई पड़ते हैं। रिसेया को भी फेर्न (Kern) और श्रीहल्वश (Hultrsch) संस्कृत के दृश्यते से निष्पन मानते हैं। पूर्वी>पुरुवी (घीली) में ऋ ना उ रूपान्तर हुआ है। ऋ ना यह परिवर्तन बाद में एक सर्वमान्य प्रतृति के रूप में दिलाई पडता है। ब्रजभाषा का हिया < हृदय, पछनो < एन्छ_, पुहुमी<पृथ्वी, कियौ<कृत आदि रूप इसी तरह की प्रवृत्तियों के परिणाम हैं। इन शिला-लेखों की भाषा में संस्कृत सध्यद्धर ऐ का ए के रूप में परिवर्तन महत्त्वपूर्ण है। कैवर्त>नेवट। भी ना प्रायः सर्वत्र ओ रूप दिखाई पडता है। पौत्र>पोत (गि॰ मान॰) पोता (शा॰ गिर॰ नालमी) सरकृत पौराण > पोराण (मैसूर) । बुछ शब्दों में आरम्भिक अ ना लोप मी विचारणीय है । जैसे ग्रपि > पि. अध्यत > धियछ । अहनम् > हनम् , हम या हीं (ब्रज) । अस्मि>मुमि । अन्य विसर्ग का प्रायः ठोप होता है श्रीर अन्त्य अ का भी रूप दिखाई पडता है। यदा: >यदो, यदो या यहो भी। वय:व>यो। जन: > जने, प्रिय: >विये, रूपों में विश्वर्ग रहित अ ना ए रूप हो गया है। व्यञ्जन परिवर्तन के उदाहरण भी नाभी महत्वपूर्ण हैं। आरम्भिक इ का लोप जैसे इस्तिन् >अस्ति । सघोप व्यञ्जनों में सर्श घानि का लोप जैसे करण-कारक की विमक्ति भि: वा सर्वत्र हि । (Palatalization) तालज्यीकरण के उदाहरण भी दिलाई पडते है । च>ह, चण>ह्यण, मोच>मोहा । ल>च, आत्यविक>आचिवका च > ज, अच > च्राज । न्य का ण में परिवर्तन विचारणीय है । यह प्रयोग कोई जैन अपभ्रश को ही विशेषता नहीं है। अन्य>अस । मन्य>मण । आहर् >आ + गय भी होता है।

रूप विचार की दृष्टि से इस प्राचीन आर्य भाषा की व्यावरणिक उलभानों का बहुत अभाव पाते हैं। कारक विभक्तियों में सरक्षीकरण की प्रशृति का विज्ञात हुआ है। पदान्त व्यञ्जनों के लोस से प्रायः अन्त्य स्वयन्त प्रावित्रदिक ही बच रहे हैं। अक्सपन्त प्रावित्रदिकों के बाद अनने उपदेशों के सम्रह के लिए को समिति बैठो उसमें भिद्ध महाकस्सर प्रमुख थे, वे चुँकि मध्यदेश के निवासी थे, इसलिए भी समय है कि उन्होंने वे यचन अरनी भाषा में उपस्थित किये हों । राजरमार महेन्द्र स्वय उज्जैन में रहते ये वहाँ उन्होंने मध्यदेशीय भाषा में ही त्रिपिटकों का अनुवाद पढ़ा जिसे वे प्रचारार्थ सिंहल ले गए थे । डा॰ सुनीतिकुमार चारूक्यों ध्वनि प्रक्रिया और रूपिचार (Morphology) दोनों ही हाँहयों से पालि को मध्यकालीन आर्य भाषा के द्वितीय स्तर की शौरसेनी प्राङ्गत के निकट मानते हैं। साहित्यिक भाषा के हर में पाठि मध्य आर्य भाषाओं के संक्रान्तिकाल (२०० ईसा पूर्व से २०० ईस्वी सन्) में विक्सित हुई । मध्यदेश की एक बोली पर ऋष्यारित यह भाषा संस्कृत की प्रतिदृत्त्वी भाषा नी हैसियत से भारत की लीक कथाओं ने जातक रूप में सकलित होने और बुद्ध दर्शन के लिपि बढ़ होने के बाद एक शक्तिशाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। 'इस प्रकार पालि भाषा मध्यदेश की लुप्त भाषिक परम्या को पुनः स्थापित करने में समर्थ हुई। डा॰ मुनीतिकुमार चादुर्ग्या पानि के महत्त्व की श्रम्पर्यना करते हुए निवते हैं कि 'पालि उन्जीन से मधुरा तक के भूभाग की भाषा पर आधारित साहित्यिक भाषा है, वस्तृतः इसे 'पश्चिमी हिन्दी' का प्राचीन रूप कहना ही उचित होगा। मध्यदेश की भाषा के रूप में पालि भाषा आधुनिक हिन्दी या हिन्दुस्थानी की भौति केन्द्र की, आर्यावर्त के हृद्य प्रदेश की भाषा थी, अतरव आसपास पूर्व, पश्चिम, पश्चिमोत्तर, दक्षिण पश्चिम आदि के जन इसे सरलता ते समक्त लेते थे। पाठि ही हीनवान श्रीदों के 'घरवाद' सम्प्रदाय की महान साहित्यिक भाषा बनी और वही शाखा सिद्दल में पहुँच कर आगे चलकर वहाँ प्रतिष्ठापित ही गई। भारतीय आर्य भाषा वा अध्येता मध्यकाल में पूर्वी भाषा के सहसा प्राधान्य की देखकर आश्चर्य कर सकता है, अशोक के शिलालेखों में मध्यदेश ही भाषा को कोई स्थान नहीं मिना यहाँ तक कि मध्यदेश में स्थापित स्तम्मों के श्रालेख अर्थात् वालसी, टोपरा, मेरठ और वैराट के गिलालेखों में भी स्थानीय भाषा को स्थान नहीं दिया गा। 'पिर भी मध्यदेशीय भाषा अपने--र शब्दों, क्तांकारक के --ओ--वाले रुपों, कर्म बहुवचन के --ए-प्रयोगों के रूप में राजकीय और शासन सम्बन्धी नार्यों के बाहर अपने अखिल के लिए समर्प करती रही, और एक समय ऐसा भी श्राया कि उसने पालि मापा के विकास के साथ ही प्राच्य को अपने चेत्र से बहिष्कृत बर दिया, अपमान वा बदला मध्यदेशीय ने भयकर रूप से लिया और समान्ति बाल से लेकर श्राजतक वह शौरसेनी प्राष्ट्रत और अपभ्रंश, ज्ञजभाषा और आजक्रीहिन्दुस्थानी के रूप में पूर्वी और विहारी भाषाओं पर प्रभुत्व बमाये रही ।³³ हम पालि और बाद की मध्यदेशीय माधाओं के प्राधान्य में चाहुरवों के शब्दों में रखना उचित नहीं समसते, ये मात्र भाषिक स्थितिनन्य परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण मध्यदेशीय को प्रमुखता मिलती रही है, जैसा कि चाउुवर्यों ने स्वय वहां कि यह ग्रावी तो के हृदय देश की भागा है, जिसे आस पास के लोग आसानी से और त्याया सख्या में समभ सकते हैं, इसीछिए इसे सदैद सम्मान और प्रमुखता मिनती रही है इसमें किसी प्रकार के बदले या प्रविकार की मावना का आरोप उचित नहीं जान पहता।

¹ Origin and Developmans of Bengali Language P 57

२ भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, ११५४ ए० १७५

३. ओरीजिन ऐंड डेवलेपोन्ट आब बेंगाली लेंग्वेज, पृ० ६०

बाद उसने उपदेशों के समृह के लिए को समिति बैठो उसमें भिद्ध महाकस्सर प्रमुख थे, वे चूँकि मण्डदेश के निवासी थे, इसलिए भी सभव है कि उन्होंने वे चचन अपनी भाषा में उपस्थित किये हो । राजयमार महेन्द्र स्वय उज्जैन में रहते ये वहाँ उन्होंने मध्यदेशीय मापा में ही त्रिपिटकों का अनुवाद पढ़ा जिसे वे प्रचारार्थ सिंहत ले गए पे । डा॰ सुनीतिक्रमार चाद्रव्या ध्वनि प्रक्रिया और रूपिनचार (Morphology) दोनों ही दाँहयों से पालि को मध्यकालीन आर्य भाषा के दितीय स्तर की शौरसेनी प्राकृत के निकट मानते हैं। साहित्यिक भाषा के हप में पालि मध्य आर्य भाषाओं के संक्रान्तिकाल (२०० ईसा पूर्व से २०० ईस्वी सन्) में विक्रित हुई । मध्यदेश की एक बोली पर आधारित यह भाषा संस्कृत की प्रतिद्वन्द्वी भाषा की हैसियत से भारत की लोक कथाओं ने जातक रूप में सकतित होने और बद्ध दर्शन के लिपि बढ़ होने के बाद एक शक्तिशाली भाषा के रूप में प्रतिष्टित हो गई। 'इस प्रकार पालि भाषा मध्यदेश की लुप्त भाषिक परम्परा को पुनः स्थापित करने में समर्थ हुई। डा॰ सुनीतिकुमार चाटवर्षा पानि के महत्त्व की श्राम्यर्थना करते हुए विखते हैं कि 'पालि उज्जीन से मथरा तक के भूमांग की भाषा पर आधारित साहित्यिक भाषा है. बस्तन इसे 'पश्चिमी हिन्दी' ना प्राचीन रूप वहना ही उचित होगा । मध्यदेश की भाषा के रूप में पालि भाषा आधुनिक हिन्दी या हिन्दुस्थानी की भौति केन्द्र की, आर्यावर्त के हृद्य प्रदेश की भाषा थी, अतएव बासवास पूर्व, वश्चिम, वश्चिमीचर, दक्षिण वश्चिम आदि वे जन इसे सरस्ता से समक्त लेते थे । पाठि ही होनयान बौदों के 'घेरवाद' सम्प्रदाय की महान साहित्यिक भाषा वनो और यही शाखा सिद्दल में पहुँच कर आगे चलकर वहाँ प्रतिष्ठापित हो गई। भारतीय आर्य भाषा का अध्येता मध्यकाल में पूर्वी भाषा के सहसा प्राधान्य को देखकर न्याप्रचर्य कर सकता है, अशोक के शिलालेलों में मध्यदेश की भाषा को कोई स्थान नहीं मिला यहाँ तक कि मध्यदेश में स्थापित स्तम्मों के श्रालेख अर्थात् कालसी, टोक्स, मेरठ और वैसट के जिलालेखों में भी स्थानीय भाषा को स्थान नहीं दिया गना 'पिर भी मध्यदेशीय भाषा अनने-र शब्दी, क्तींकारक के-ओ-बाले स्पों, वर्म बहुवचन के -ए-प्रयोगों के रूप में राजकीय और शासन सम्बन्धी बार्यों के बाहर अपने अस्तित्व के लिए समर्प करती रही, और एक समय ऐसा भी श्राया कि उसने पालि भाषा के विकास के साथ ही प्राच्य को अपने स्नेत्र से बहिण्कत कर दिया, अपमान का बदला मध्यदेशीय ने भयकर रूप से लिया और सक्तान्त बाल से लेकर श्चानतक वह शौरसेनी प्राष्ट्रत और अपभंग, ब्रनमाण और आजन्नी हिन्दुस्थानी के रूप में पूर्वी और विहारी भाषाओं पर प्रमुख जमाये रही ।" हम पालि और बाद को मध्यदेशीय भाषाओं के प्राधान्य को चारुवों के शब्दों में रखना उचित नहीं समभते, ये मात्र भाषिक स्थितिनन्य परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण मध्यदेशीय को प्रमुखता मिलती रही है, जैसा कि चाउुच्यों ने स्वय वहां कि यह द्यावां रहें के हृदय देश की भाषा है, जिसे आस पास के लोग आसानी से और प्यादा संख्या में समभ सकते हैं, इसीछिए इसे सदैव सम्मान और प्रमुखता मिनती रही है इसमें किसी प्रशार के बदले या प्रतिकार की मावना का आरोप उचित नहीं जान पहता ।

¹ Origin and Developmant of Bengali Language P 57

२ भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, १३५१ ए० १७५

३. ओरीजिन ऐंड देवलेप्सेन्ट आव बैंगाली लैंग्वेज, पू० ६०

परिनिष्ठित संस्कृत में नहीं स्वीकार किये गए ये। " उदाइरण के लिए इदम् का एकत्रचन पुल्यि रूप 'इमस्स', 'पल' वा प्रथमा बहुबचन 'पला', 'अस्यि' ग्रीर 'मधु' के वर्ता और कर्म के बहुचन के 'अट्ठी' और 'मध्' रूप । डा॰ माडाएक्ट इन रूपों के मात्र बैटिक रूपों के साइर्य पर ही निपन्न बताने की प्रशृति को ठीक नहीं मानते । इन रूपों में थे पुलिंग और नपुसक लिंग के अन्तर को मियाने की उस प्रदृत्ति का सूत्रपान मानते हैं जो आगे चलकर हिन्दी ग्रादि भाषात्रों में विकसित हुई। सरहत किया के दस काल और कियार्थमेद के रूपा में पालि में केवल आठ ही रह गए। भविष्य श्रीर वर्तमान वालों के रूपों में ता बहत कुछ सुरद्धित भी रहे किन्तु दूसरे काल में केवल दो तीन ही अवशिष्ट रहे । कुछ नये किया रूप भी दिलाई पडते हैं। उदाइरण के लिए 'म्हें' वर्चमान नाल के आत्मनेपद उत्तम पुरुप ना रूप. या 'मध्यम पुरुष एकत्रचन का रूप 'त्यो'। इस प्रकार के कई कालों के रूप मिल्ते हैं। ये बरात: 'अत' घात के विभिन्न वालों के रूप है जिनहा निर्माण आर भिक मौलिक रूपों ने विस्मृत हो जाने के बाद किया गया, इनमें से कई सत्तृत 'अस' के रूपों से निष्पन्न माने जा सकते हैं। इन्हीं प्रयोगों को दृष्टि में रसकर डा॰ भाडारकर ने कहा कि 'जब सस्टूत के कई मूल रूप विस्मृत हो गये, उनके स्थान पर पाछि में नये रूपों का निर्माण हुआ, वेवल मिथ्या साहश्य के आधार पर ही नहीं, बल्कि निया की अभित्यक्ति को दृष्टि में रखकर तियार्थक भैदों के अनुसार इनका गठन हुआ। अस् पातु के विभिन्न रूपों का प्रयोग विशेष महस्य रखता है। यहाँ पर इम देखते हैं कि नन्य आर्यभाषाओं के कुछ नये नियार्ष भेद और काल (Mood and tense) के रूप तथा असु के निभिन्न रूपों ने प्रयोग की प्रवृत्ति जिसे इम वर्तमान भाषाओं के विकास में सिक्रय देखते हैं. बहत पहले प्राचीन काल में ही वर्तमान रही है। ब्रजभाषा या हिन्दी में कृदन्त + सहायक किया की प्रवृत्ति को एक्दम नवीन मानने वालो के लिए यह विचारणीय होना चाहिए ।

१. वहीं, पृ० ५७

२. वही, पृ० ५७

२. वहाँ, प्र० ६३

परिनिष्ठित संस्कृत में नहीं स्वीकार किये गए ये। ै उदाहरण के लिए इदम् का एकवचन पुलिग रूप 'इमरस', 'पल' वा प्रथमा बहुबचन 'पला', 'अरिय' श्रीर 'मधु' के वर्ता और कर्म के बहुवचन के 'अट्ठी' और 'मधू' रूप। डा॰ माडारकर इन रूपों की मान वैदिक रूपों के साइश्य पर ही निष्पत्र बताने की प्रवृत्ति को ठीक नहीं मानते । इन रूपों में ये पुलिंग और नपुषक दिया के अन्तर की मिटाने को उस प्रदृत्ति का सूनगत मानते हैं जो आगे चलकर हिन्दी ख्रादि भाषाओं में विकसित हुई। सिक्त किया के दस काल और क्रियामेंसेट के रूपा में पालि में केवल आठ ही रह गए। भविष्य श्रीर वर्त्तमान कालो के रूपों मे ता बहुत कुछ मुरिद्वित भी रहे किन्तु दूबरे पाल में पेतल दो तीन ही अवशिष्ट रहे । कुछ नये किया रूप मी दिलाई पडते हैं। उदाहरण के लिए 'स्टे' वर्तमान पाल के आत्मनेपद उत्तम पुरुष का रूप, या 'मध्यम पुरुष एकवचन का रूप 'त्यों'। इस प्रकार के कई काटों के रूप मिलते हैं। वे वस्तुत: 'अस' घातु के विभिन्न कारों के रूप है जिनना निर्माण आरभिक मौठिक रूपों के विस्मृत हो जाने के बाद किया गया. इनमें से कई सत्त्रत 'अस' के रूपों से निष्पन्न माने जा सकते हैं। इन्हीं प्रयोगों को दृष्टि में रतकर डा॰ भाडारकर ने कहा कि 'जब सस्तृत के कई मूल रूप विस्मृत हो गये, उनके स्थान पर पाछि में नये रूपों का निर्माण हुआ, चेवल मिथ्या साहस्य के आधार पर ही नहीं, शिल्क निया नी अभिन्यक्ति को दृष्टि में रखकर नियार्थक मेदों के अनुसार इनका गठन हुआ। अस् घातु के विभिन्न रूपों का प्रयोग विशेष महत्व रखता है। यहाँ पर हम देखते हैं कि नन्य आर्यभाषाओं के दुछ नये नियार्थ भेद और काल (Mood and tense) के रूप तथा असु के विभिन्न रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति जिसे इस वर्तमान भाषाओं के विकास में सिक्ष्य देखते हैं, बहुत पहले प्राचीन काल में ही वर्षमान रही है। व प्रजमाणा या हिन्दी में कृदन्त + सहायक किया की प्रकृति की एक्ट्स नवीन सामने वालो के लिए यह विचारणीय होना चाहिए ।

§ २८. पार्कि नाल ही में प्राप्ट को ना प्रयोग खारम्म हो बुका या । भारतीय आर्यभाषा के मण्यत्तिय विश्वत में (२०० ई० से ६००) प्राकृती का खरना विशेष महत्व है। इन प्राफ्ट को हम बतु दह तक अनता की भाषा नहीं कह तक ते। सहन्त भारकारों ने हम माफ्ट को का स्वाप्ट का विश्वत की भाषा के रूप में ही क्लिय है, बहुत बुळु शिष्ट श्रोता भण्टक के लिए हास्य ना एक सत्ता खाबार उपस्थित करना ही जैसे हनना उद्देश्य रहा हो। बाद की प्राफ्ट रचनार्थे हतनी कृतिम और नियमब्द आर्प होंछी में लिली गई है के उन्हें साहित्यक कृतिम भाषा ही वह सनते हैं। यह स्वत है कि इन साहित्यक प्राकृतों के पीर्के, उन श्रीविष्यं का प्राफ्ट रस् है किन्से के दिक्तिक हुई भी, फिन्छ इन्तरे प्राप्त करने वीरियों की शुद्ध सहज कर में प्राप्त करने वा नोई सावन नहीं है। सस्कृत नेयावरणों के प्रमाण पर हम प्रमुख प्राकृतों में श्रीरेलेनी, महाराष्ट्री और माण्यों ना नाम लेते हैं। याज्यों प्राफ्ट किन्य-देह माण्ये को आपा यों अत हरें हम प्राप्त माल्य के आप यों अत हरें हम प्राप्त महत्त में इन कहते हैं। सो सोने प्रयोग प्रदेश विश्वत करा के आप यों अत हरें हम प्राप्त महत्त में महत्त कहा व्यवता हम साथ हो साथ के असद पास की माणा यी, हमें मण्यदेशीय प्राप्त करा व्यवता है। साथ है माण्येय विश्वत करा विश्वत करा विश्वत करा व्यवता है। साथ वा सनता है।

१. वहीं, प्र० ५७

२. वही, पूरु ५७

२. वहाँ, ५० ६३

धिनारिसी है। भध्य आर्यभाषा के प्रथम स्तर में स्वर मध्यम अपोप व्यञ्जनों का सर्वोप रूप दिगाई पहता है, बालान्तर में समोप व्यनियाँ अप्मीनृत व्यनि की तरह उच्चरित होने लगीं और बाद में उच्चारण की कठिनाई के कारण ये ट्रुप्त हो गई। विद्वानों की घारणा है कि शुक 7 सुअ, शाक 7 सोअ, नदी 7 नई की विश्वस स्थिति में एक अन्तर्यता अवस्था भी रही होगी। ग्रर्थात् 'शुक' के मुझ होने के पहले शुग और मुग ये दो अवस्थाय भी रही होंगी। चादुक्यों ने लिखा है कि इसमें एक निवृति या दिलाई से उच्चरित अर्थात् उप्मीभृत उच्चारण 'व, घ' सामने ज्ञाया । इस तरह उपर्युक्त शब्द शोक, रोग, नदी ग्राटि एक अवस्था में 'सीव,' रोव' श्रीर 'नधी' हो गए थे । साहित्यिक प्राकृतां में शौरसेनी तथा मागधी में क. ए. त. थ की बगइ एक्विसित स्वर मध्यस्य रूप में प्राप्त ग, घ (या ह) ट, घ के प्रयोगों का वैयाकरणा द्वारा उल्लेख मिलता है। परन्त महाराष्ट्री प्राष्ट्रत में सभी एकक-स्थिति स्वरान्तर्हित स्पर्रा (Inter vocal engle stop) पहले से ही छम या अभिनिहित पाये बाते हैं यह महाराष्ट्री के विकास की पश्चमालीन अपस्था का चोतक है। इसी तरह के और भी समता सुचक और परपता विकास-व्यक्तक आँकडों के आधार पर मनमोइन घोप ने महाराष्ट्री को शौरसेनी ना परवता स्य सिद्ध करने का सपल प्रयत्न किया है । शुरसेन से यह भाषा दक्षिण ले जाई गई और वहाँ उसे स्थानीय प्राकृत के अति न्यून प्रमाव में उपस्थित करके एक साहित्यक मापा का रूप दिया गरा । इस प्रसग में डा॰ चाट्यां ने इन्दरथानी को दक्षिण ले जाने और 'दिनिनी' बनाने की घटनाका मजेदार उल्लेख किया है। इस प्रकार समूचे भारतवर्ष में पूरन के कुछ हिस्सों में प्रचटित मागवी को छोड़कर एक बार किर सम्पूर्ण देश की भाषा का स्थान मध्य-देशीय शौरसेनी प्राष्ट्रत को प्राप्त हुआ। पूरत में भी इसका प्रभाव कम न था। सारवेल के हायी गुपा के टेलों तक की मापा में शौरसेनी के प्रमाय को विद्वाना ने स्वीगर किया है। स्तृत वैयावरणों में बुद्धेक ने महराष्ट्री के महत्त्व को स्वीकार किया है। किन्तु उनका निरीद्वण अवैज्ञानिक या जैक्षा ऊपर बहा गया । शौरतेनी ना परवर्ती रूप या महाराष्ट्री प्राकृत बहुत दुछ क्विता को मापा कही जा सकती है। इसमे गद्य बहुत कम मिल्का है या उसका एक्ट्रम अमान है। शौरसेनी प्राञ्चत सरकृत न बाननेनाले लोगा विशेषतः स्त्रीनम् और असरङ्गत परिवारी की बेंल्चाल की भाषा थी ! इसमें प्राप्तः गद्य लिखा बाता था ।² बन कि इमी का परवती रूप महाराष्ट्री केवल पर (Lycos) की मापा थी । महाराष्ट्री प्राकृत गीठा को मापा थी जैसा की १५वीं शती के बाद ब्रजभाषा केवल काव्य की ही मापा मानी बाती थी । प्राकृतों में मयुरा में मुख्य केन्द्रवाली शोरसेनी प्राष्ट्रन सबसे अधिक सीष्ठव एवं लालिरपूर्ण प्राष्ट्रत या पश्चमध्ययुगीन मारतीत आर्य भाषा सिद्ध हुई । वैसे देखा जाय तो शौरसेनी आधुनिक मथरा की भाषा-हिन्दुस्थानी की वहन एवं निगतकाल की प्रतिस्त्रविनी ब्रबभाषा का ही एक प्राचीन रूप थी। 1 It is rainer hasty to assume that Marathi is the linal decendent of the Mah arastrı prakrıt

orn praktiv Comparative Grammar of Modern Aryan Languees 1872 p 34 २. डा॰ हरिवल्टम भाषाणी-बाव्यापार पृत्र १२०-१३४, विभिन्न प्राकृती के

सम्बन्धी के लिए इष्ट य निवन्ध 'माइत ब्याकरणकारी'

³ Like Brajbhasa in Northern lad a from the 15 th century downwards, Maharastri became the recognised dialact of lyrics in the Second MIA period Origin and development of Bongali Language p SG

४ दाव सनीतिकमार चाद्रव्यां, आर्यमापा और हिन्दी हु० १७७

विसारिणी है। मध्य आर्यभाषा के प्रथम स्तर में स्वर मध्यम अधोप व्यञ्जनों का संप्रोप रूप दिखाई पहता है, कालान्तर में सपोष व्यतियाँ अप्मीनृत व्यति की तरह उच्चरित होने लगीं और बाद में उच्चारण की कठिनाई के कारण ये लप्त हो गई। विदानों की घारणा है कि शुक 7 सुअ, शोक 7 सोअ, नदी 7 नई की विद्यस स्थिति से एक अन्तर्पता अवस्था भी रही होगी। ग्रर्थात् 'ग्रुक' के मुझ होने के पहले ग्रुग और मुग ये दो अपस्थाय भी रही होंगी। चाडुक्यों ने लिखा है कि इसमें एक निवृति या दिलाई से उच्चरित अयोत उप्मीमृत उच्चारण 'व, घ' सामने ज्ञाया । इस तरह उपर्यक्त शब्द शोक, रोग, नडी ग्राटि एक अपस्या में 'सीव,' रोव' श्रीर 'नधी' हो गए थे। साहित्यिक प्राकृतां में शौरसेनी तथा मागधी में क, रा, त, थ की बगह एकावरियत स्वर मध्यस्य रूप मे प्राप्त ग, घ (या ह) ट. घ के प्रयोगों का यैयावरणा दारा उन्लेख मिलता है । परन्त महाराष्ट्री प्राञ्चत में सभी एकक-स्थिति स्वरान्तर्हित स्पर्श (Inter vocal single stop) पहले से ही छम या अभिनिह्ति पाये बाते हैं यह महाराष्ट्री के विकास की पश्चकालीन अपस्था का द्योतक है। इसी तरह के और भी समता सुचक और परपता विकास-व्यवक आँकडों के आचार पर मनमोइन घोप ने महाराष्ट्री को शौरसेनी का परवता स्य हिद्ध करने का सपल प्रयत्न किया है । शू.गरेन से यह भाषा दक्षिण ले जाई गई और वहाँ उसे स्थानीय बाकृत के अति न्यून बमाव में उपस्थित करके एक साहित्यिक मापा का रूप दिया गरा । इस प्रसम में डा॰ चाटुर्ज्या ने हिन्दुरथानी को दिव्यण ले जाने और 'दिकिनी' बनाने की धन्नाका मजेदार उल्लेख किया है। इस प्रकार समुचे भारतवर्ष में पूरन के कुछ हिस्सो में प्रचटित मागवी को छोडकर एक बार पिर सम्पूर्ण देश की भाषा का स्थान मध्य-देशीय शौरसेनी प्राकृत को प्राप्त हुआ। पूरत में भी इसका प्रभाव कम न था। साखेल के हायी गुपा के टेलों तक की भाषा में शौरसेनी के प्रभाव को विद्वाना ने स्वीगर किया है। सस्तृत वैयानरणों में बुखेक ने महराष्ट्री के महत्त्व को स्वीनार किया है। किना उनका निरीद्वण अवैज्ञानिक या जैक्षा करर बड़ा गया । शौरसेनी वा परवर्ती रूप या महाराष्ट्री प्राकृत बहुत द्वस्य कविता को मापा कही जा सकती है। इसमे गद्य बहुत कम मिलता है या उसका एक्ट्रम अभाग है। शौरसेनी प्राञ्चत संस्कृत न बाननेत्राले लोगा विशेषतः स्त्रीवर्ग और असंस्कृत परिवारी की बेल्चाल की भाषा थी। इसमें प्राप: गद्ध लिखा बाता था। ² बब कि इमी का परवर्ता रूप महाराष्ट्री केवल पर (Lycics) की मापा थी । महाराष्ट्री प्राकृत गीवा को मापा थी जैसा की रेप वीं शती ने बाद ब्रजभाषा केवल काव्य की ही माधा मानी जाती थी। वाजतो में मयरा मे मुख्य केन्द्रवाली शीरसेनी प्राष्ट्रत सबसे अधिक सीष्ठव एवं लाल्स्यपूर्ण प्राकृत या पश्चमध्ययुगीन मारतीत आर्थ भाषा सिद्ध हुई। वैसे देखा जाय तो शौरसेनी, आयुनिक, प्रयुस की भाषा, हिन्दुन्थानी की यहन एव जिगतकाल की प्रतिसर्विनी ब्रजभाषा का ही एक प्राचीन रूप थी।

¹ It is rainer hasty to assume that Marathi is the linal decendent of the Mah

anatri prakti Comparative Grammar of Modern Aryan Languges 1872 p 34 २. टा॰ हरिवल्स भाषाणी—बास्यापार पुर १२०-१३३%, विभिन्न प्राकृती के

साबन्धों के लिए द्रष्टम निवस्थ 'माहुत ब्याक्तवहारी' 3 Like Braybiasa in Northern Ind a from the 15 th century downwards, Maharastri became the recognised dialect of lyrics in the Second MIA

Ongin and development of Bangali Language p 86 हे दार सुनीनिकुमार चाहुरवी, आर्यमापा और हिन्दी ६० १७०

§ २०. शीरसेनी प्राकृत के वैज्ञानिक और साधार व्याकरण तथा उसकी भाषिक विद्योपताओं का समुचित मूल्याकन नहीं हो सका है। प्राकृत व्याकरणकारों ने महाराष्ट्री के विवेचन के बाद केनल उन्हीं वातों का उल्लेख शीरसेनी के प्रकाम में किया है, जो महाराष्ट्री से भिन्न पडती थी। इस मनार वे विशिष्टतार्थ शीरसेनी के मूल व्हरूप को नहीं, बल्कि साहित्यक प्राकृत से उसकी असमानतार्थों की श्रांट सकेत करती हैं। हेमनक ने श्रुपने व्याकरण के चतुर्थ पाद के १६०-२८६ बुनों में शीरसेनी की विशिष्टतार्थ स्वाई हैं।

(क) सत्कृत शब्दों के त काद में तथा थ का घ में परिवर्तन (सूत्र २६० २६२-२७३-२७६)।

(ल) य का य्य में परिवर्तन, आर्यपुत्र > अय्यपुत्त ।

(७) ४ पा प्य न पारवतन, आपतुन ४ लप्पतुषः । (ग) भू घातु के रूपों में म की सुरज्ञा (२६६-२६६) मोदि, भवति, सुवदि आदि ।

(ग) सू वाद्य क रुवा न न का दुरद्दा (६५५-६५८) नाव, भवाद, दुवार जात । (घ) व्यञ्जनान्तस्वरों के बुद्ध निचित्र कारक रूप (२१३-२६५) क्चुस्या <कंचुकिन्,

मुहिया<मुरिवन्, राय<राजन, विययरम्मं<विजयतर्मन्। (ङ) पूर्वकालिक क्रिया में सस्कृत 'स्वा' प्रत्य के स्थान पर इय, दूण, उडुअ

प्रत्यय छगते हैं (२७१-२७२) बैसे पढिय, पढिदूर्ण, (√पठ्) कड़अ<√कु ग्रौर गङ्ग <√गम्।

(च) भविष्यत्काल में 'स्सि' विभक्ति, हि, स्स, या इ नहीं (२७५)

(छ) दालि, ता य्येव, ण, दीमाण हे, ह, जे, अम्महे, ही ही आदि किया विशेषणों का प्रयोग (२७७-८५)

पौरसेनी की उपयुक्त विधिपताओं के आधार पर इस उस साया के रूप की नरुपना नहीं पर सकते । शौरीजी चा रूप वर्ष पा की महाराष्ट्री माइन का था, वैसा पहले क्षा व्या, इसीलिय शौरीकों की ये निमित्रताएँ आध्वपतिक प्रमोगों पर आधारित हैं । मूल शौरीकों मोड़ का व्यावस्थित हैं । मूल शौरीकों मोड़ का व्यावस्थित हैं । मूल शौरीकों मोड़ का व्यावस्थित हैं । मूल शौरीकों मोड़ का व्यावस्था हैं । मूल शौरीकों मी हों ही में रस्पत्र ही ये विधीपतार्थे नियंशित की । आवकल की तरह उस समय बोलियों के अध्ययन की न मुविधा थी और न तो स्थानीय वनता की ओली का चेनकार्य (Field work) के द्वारा निरीदाण ही समय था । इसलिये प्राप्त के इन अथवार-नियमों को मूल विशेषवार्य सममने का प्रम नहीं होना चारिए। वस्तुत साहित्वक शौरीलों की यन्त्रत मार स्वन्त्रत का भाग पर सल्हत का घेर माया पर सल्हत का घेर माया दिसाई एवडा है। यह एक इनिम भाषा थी।

§ २१. इरो छन् की छुड़ी श्रातान्दी के बाद, मध्यक्तालीन मापा विकास के तीसरे सार में अपन्त्रयों का उदय हुआ। छान्दस से शीरसेनी माकृत तक के विकास के उपगुंक विवरण में भारत की अनाये चावियों की भाषा के तत्वों का विषेचन नहीं किया गया है। मारत में विभन्न भाषाओं की मित्रण प्रक्रिया का समुचित अध्ययन नहीं है सका है। साहित में हम भाषाओं के बी आदरों देखते हैं वे अपरो स्तर के तथा अध्यन्त कृत्रिम हैं। समाज में भाषाओं का विकास इतने सीचे दंग से नहीं होता। माहक माषाओं में किया तत्व अनाम माषाओं का है, यह अध्ययन और सीच का विषय है। अध्यन्नशों के विकास में भी अनाम

^{1.} हेस व्याकरण, बस्बई संस्कृत और प्राकृत सीरीज्ञ. ३१३६

§ २०. शीरसेनी प्राइत के वैज्ञानिक और साधार व्याकरण तथा उसकी मापिक वियेरताओं का समुचित मूल्याकन नहीं हो सका है। प्राइत ब्याकरणकारों ने महाराष्ट्री के वियेवन के बाद केवल उन्हीं वातों का उल्लेख शीरसेनी के प्रका में किया है, जो महाराष्ट्री से भिन्न पडती थी। इस प्रचार वे वियिष्टतायें शीरसेनी के मूल स्वरूप को नहीं, बल्कि साहितिक प्राइत से उसकी असमानताओं की और सक्त करती हैं। देशन्य ने अपने व्याकरण के चतुर्थ पाद के २६०-२८६ बातों में शीरसेनी की विशिष्टतायें बताई हैं।

(क) सस्कृत शब्दों के त का द में तथा थ का घ में परिवर्तन (सूत्र २६० २६२-२७३-२७६)।

(ल) य वा य्य में परिवर्तन, आर्यपुत्र > अय्यपुत्त ।

(ग) भू घातु के रूपों में म की सुरहा (२६६-२६६) मोदि, भवति, भुवदि आदि।

(ष) व्यञ्जनान्तस्वरों के बुद्ध निचित्र कारक रूप (२६३-२६५) क्चुइया <कंचुकिन्त्र, सहिया<सरिवन्, राय<रावन, वियवनमं<विजयकर्मन् ।

(ङ) पूर्वकालिक क्रिया में सस्तृत 'स्वा' प्रत्य के स्थान पर इय, दुण, उड्डअ प्रत्यय स्थाते हैं (२७१-२७२) बैसे पदिव, पिट्र्यू, (√पट्) कड़अ<√ हु और गङ्गअ<√गम्।

(च) भविष्यत्काल में 'स्सि' विभक्ति, हि, स्स, या इ नहीं (२७५)

(छ) दालि, ता य्येव, ण, दीमाण हे, ह, जे, अम्महे, ही ही आदि किया विशेषणों का प्रयोग (२७७-८५)

गौरसेनी की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर इस उस सापा के रूप की नरुपना नहीं बर सकते । शौरसेनी चार का बही था जी महापष्टी माकृत कर था, कैसा पहले कुछ गाना, हमीलिय शौरसेनी चार का बही था जी महापष्टी माकृत कर था, कैसा पहले कुछ गाना, हमीलिय शौरसेनी की देश माकृत के मीतर हुइ जा सकता है। इस कर शौरसेनी भाइत का सकता है। है समक्ट्र ने संस्कृत नारककारों की विकृत और अतिकृतिन शौरसेनी की दृष्टि में एरवर ही वे विशेषतार्थे नियंसित की। आवक्क की ताइ उस समय बोलियों के अध्ययन की न सुविधा थी और न तो स्थानीय जनता की ओड़ी का सेनकार्य (Field nork) के द्वारा नियंसिय ही समय था। इसलिये प्राइत के इन अशवाइ-नियमों को मूल विशेषतार्थे समझने का प्रम नहीं होना चाहिए। वस्तुत का शिवाइ शौरसेनी की यत्यन प्रात स्थानों की माथा पर सस्तृत का थार प्रमान दिसाई एकता है। यह एक इतिम भाषा थी।

\$ २१. रेरी रुद् की सुद्रभी स्त्रात्मी के बाद, मध्यकालीन भाग विकास के तीसरे सार में अपन्नशी का उदय हुआ। ह्यान्यस से शीरसेमी माशृत तक के विकास के उपगुँक विदरण में भारत की अनार्य बातियों की भागा के तक्वों का विवेचन नहीं किया गया है। मारत में विभिन्न भागाओं की मिश्रण प्रतिमा का समुचित अध्ययन मुद्री हो सकते है। साहित में हम भागाओं के बी आद्रश देखते हैं वे उत्तरों स्तर के तथा अध्यन कृतिम हैं। समाज में भागाओं का विकास इतने सीचे दांग से नहीं होता। माशृत माणाओं में नितान तक अनार्य भागाओं का है, यह अध्ययन और शीध का विदय है। अध्यक्षशों के विकास में भी अनार्य

^{1.} हेस ब्याकरण, बस्बई सस्कृत और प्राकृत सीरीज्ञ, १६३६

लगा । सामान्य वर्तमान के करउ, वरहू, वरहि, वरह, वरह, वरह श्रादि रूपीं से करी, करें, आदि ब्रज में सीधे विकसित होकर पहुँचे। होट (आशार्यक) में अ. इ. उ कारान्त रूप होते थे-करि, कर, कर आदि । बन में करी, बरह आदि 'करु' से बने रूप है। भविष्यत् में अपभ्रश में स-और इ-दोनों प्रवार के रूप चलते ये किंतु परिनिष्ठित अपभ्रंश में-इ-प्रकार की अधिकता थी करिश्ड, करिहेड आदि । अब में करिहै, करिहो, हैहै आदि रूप चलते है। विधिलिंग के रूपों में इस प्रत्यय लगता है। करिसह >करीजे (ब्रज) भतनाल के रूप करन्तज ये, किय, भणिय, हुअ, गय आदि । उनार बहुला भाषा में ये क्यित, हुयड, गयड हो जाते थे। ब्रज में कियी, गयी, मयी आदि इसके रूपान्तर है। संयुक्त निया बनाने की प्रशृत्ति बद रही थी, यह अपभ्रश युग की निया का एकदम नयीन विकास था। रडन्तउ जाह, भग्गा एन्त. भन्तिउ बन्ति आदि प्रयोग इस प्रवृत्ति की सूचना देते हैं। ब्रज के 'चलत भयी, आवतो भयो, आनि परघो' आदि में इसी प्रवृत्ति का विकास हुआ । पूर्वकालिक कियाओं में आठ प्रत्यय लगते ये इ, इवि, एवि, एविण, एप्पिण, आदि के प्रयोग होते ये किन्तु प्रधानता 'इ' की ही रही। ब्रज में यही प्रचलित हुआ। धेरणार्थक 'अव' प्रत्यय वोल्लावह, पणप्रह में दिखाई पडता है, यही ब्रजभाषा में भी प्रयक्त होता है।

७. अनभ्रंश ने देशन शन्दों और धातुओं के प्रचुर प्रयोग से मापा को एक नई शकि प्रवान की। इन देवी प्रयोगों के कारण अपभ्रंश के भीतर एक ऐसी विशिष्टता आ गई को प्राइत में बिल्ड्सल नहीं थी। इसी देवी प्रयोग ने इस भाषा को नव्य भाषाओं की ओर उन्मुल किया।

इस प्रकार इस देखते हैं कि ब्रजमाया के विकास के पीढ़ो सैन डो वर्षों तक की परम्पर हिंदी है। इस परम्पर के विकास में आये, अनाये, कोल, द्वाविड और न वाने सितने प्रकार के प्रमान युटे मिले हैं। आर्य मापा को प्राचीन से नवीन तक विकरित होने में नितने सीवान पार करने पहें हैं, जितने मोड होने परे हैं, उन सबको छुड़ न बुद्ध निरोपता है, इन सबका सर्वितत और आदश्यक हाय प्रजमापा को प्राप्त हुआ, उनके तिरस्तर विकासग्रीक सच्च इस मापा के दाँचे में प्रतिद्वानित हुए। १००० देखी के आस-पात शाँरसेनी अपभ्र श को अपनी अम्पर्श में में प्रवामाय को उत्प हुआ मा को होंचे में प्रतिद्वानित हुए। १००० देखी के आस-पात शाँरसेनी अपभ्र श को अपनी अम्पर्श में में अवमाणा को उदय हुआ मा को स्वाम उत्प हुआ भी और एक में शाँरसेनी भाषाओं की वरस्तर और अन्य सामाजिह तथा सास्कृतिक वर्षों मा ओव और दक में शाँरसेनी भाषाओं की वरस्तर और अन्य सामाजिह तथा सास्कृतिक वर्षों मा ओव और दक में शाँरसेनी भाषाओं की वरस्तर और अन्य सामाजिह तथा सास्कृतिक वर्षों मा अनेव और दक में

लगा । सामान्य वर्तमान के करड, करहू, करहि, करह, करह, करह श्रादि रूपीं से करी, वरें, आदि ब्रज में सीधे विकतित होकर पहेंचे। छोट् (आशार्यक) में अ. इ. उ नारान्त रूप होते ये-निर, कर, वर आदि । वन में वरी, बरह आदि 'कर' से बने रूप है। भविष्यत में अपभ्र श में स-और इ-दोनों प्रवार के रूप चलते ये किंतु परिनिधित अपभ्रंश में-इ-प्रकार की अधिकता थी परिश्र, परिश्र आदि । अब में परिहे, परिहो, हैहे आदि रूप चलते है। विधिनिंग के रूपों में इज प्रत्यय लगता है। करिज्ञह >करीजे (व्रज) भुतकाल के रूप कृदन्तज थे, किय, भणिय, हुअ, गय आदि । उकार बहुला भाषा में ये क्यित. हयत, गयत हो जाते थे। बज में कियी, गयी, मयी आदि इसके रूपान्तर है। संयक्त निया बनाने की प्रश्नित बद रही थी. यह अपभ्रश सुग की निया का एकदम नयीन विकास था। रहन्तउ जाह, भग्गा एन्तु, भवित्र बन्ति आदि प्रयोग इस प्रवृत्ति की सूचना देते हैं । ब्रज के 'चलत भयी, आवतो भयो, आनि परघो' आदि में इसी प्रवृत्ति का विकास हुआ । पूर्वकालिक कियाओं में आठ प्रत्यय लगते थे इ. इवि, एवि, एविण, एप्पिण, आदि के प्रयोग होते ये किन्तु प्रधानता 'इ' नी ही रही। ब्रज में यही प्रचलित हुआ। प्रेरणार्थक 'अव' प्रत्यय वोल्लावह, पणनह में दिखाई पडता है, यही ब्रजभाषा में भी प्रयक्त होता है।

७. अन्तर्भ श ने देशन शन्दों और घातुओं के प्रचुर प्रयोग से भाषा को एक नई साकि प्रदान की। इन देवी प्रयोगी के कारण अन्तर्भ श के भीतर एक ऐसी विशिष्टता आ गई को प्राइत में विल्कुल नहीं थी। इसी देवी प्रयोग ने इस भाषा की नज भाषाओं की ओर उन्ह्रल किया।

इस प्रकार इस देखते हैं कि ब्रजमाया के विकास के पीछे सैन डॉ वर्षों तक की परम्पर हिंगी है। इस परम्पर के विकास में आते, अनाये, कोल, द्वाविक और न बाले रिवते प्रकार के प्रमास पुछे मिले हैं। आर्य मापा को प्राचीन से नवीन तक विकरित होने में वितते सीशान पर करें हैं, बतने मोड लेने परे हैं, उन सक्की कुछ न कुछ निरोपता है, इन सक्का चढ़ित्तत और आवर्यक दास प्रकारण की प्रात हुआ, उनने तिरस्तर विकास हो। से स्वाचीक तत्त्व इस मापा के टॉ वे में प्रतिद्वारित हुए। १००० इंत्ती के आस-पात शाँरसेनी अपग्र श को अपनी कम्मपूरी में ब्रवमाया का उदय हुआ—उस समय उसके शिर पर साहित्तिक अराभं श की श्राच भी और रक्त में शौरसेनी मापाओं की परमार और अन्य सामाजिक तथा साह्मांतिक वाली का ओब और रक्त में शौरसेनी मापाओं की परमार और अन्य सामाजिक तथा साह्मांतिक वाली का ओब और रक्त में शौरसेनी मापाओं की परमार और अन्य सामाजिक तथा साह्मांतिक वाली का ओब और रक्त में शौरसेनी मापाओं की परमार और अन्य सामाजिक तथा साह्मांतिक

उपर्युक्त क्थन से यह स्वष्ट है कि राजपूत दरवारों में परिनिष्ठित अनभ्रश को उसी रूप में मानवा प्राप्त नहीं थी, बहिन शीरतेनी ने परवर्ती विक्सित रूप का ये राजभाषा के रूप में ध्यवहार करते थे। यह मापा निधित हो ज्ञक्यापा को आरामिक अनस्या की सुनता देती है। शीरतेनी अन्य शा के आधार पर निर्मित परिनिष्ठित अनभ्र श और इस परवर्ती निक्तित मोराने में बहुत आपिक अन्यत नहीं था, क्योंकि दोना की मूल प्रवृत्तियाँ, शीरतेनी या अप्य देशी थी।

§ ३६ इसिटए विश्वस युक्क इस यत्किंवित् अन्तर को भी समझने का प्रयत्न नहीं किया गया। श्री चादुन्यों ने अपन्न को के अन्त का समय तो लगमग दसवी शतान्त्री का अन्त ही माना, किन्त ब्रवमाया का उटयकाल उन्होंने १५ वी शती का उत्तरायें कताया। इस मान्यता के लिए इस उन्हें देग्यी भी नहीं उदय सकते क्यांकितव तक प्रवमाया के उदयक्ष को और पीछे लाने के एक में कोई ठोल आधार प्राप्त न था। ब्रवमाया के एवं के साथ होती भी। प्रचीतव याने सकत १२५० को छुति कहा काता था, किन्त उत्ते काली प्रन्य वतानेवालों की सर्या निरस्तर बदती जा रही थी। यनन्तन कुनकल प्राप्त सामग्री को काई अधिक महस्त्र नहीं दिया वा सकता था।

§ ३७ मन्य भाषाओं के उदम का जो काट निर्धारित किया जाता है, यही ब्रजभाषा के लिए भी लग् होता है। मध्यदेश की भाषा होने में जहाँ एक ओर गौरव और प्रतिष्ठा मिलती है वहीं दूसरी ख्रोर हर नई उदीयमान भाषा के लिए भयकर परीक्षा भी देनी होती है। परिनिष्टित भाषा के मूल प्रदेश के लोग राष्ट्रभाषा का गौरव समालने में घरेल बोली को भूल बाते हों तो कोई आधर्म नहीं। क्योंकि उनके निए परिनिष्टित और देशभाषा या जनपदीय में कोई खास अन्तर नहीं होता । बजमाया या हिन्दी के आरम्भ की ऐतिहासिक सूचना हमें निजामुद्दीन के तवकात-ए-अकवरी तथा दो श्रम्य टेप्तकों की कृतियों में मिलता है। कालिबर के हिन्दू नरेश ने विना होदे और महावत के हाथियों को सरल्ता से पकड़ने और उनपर सवारी करनेवाले तुकों की प्रशासा में हुछ पद हिन्दी भाषा में लिसे ये जिसे महसद गजनवी ने अपने दरवार के हिन्दू विद्वानों को दिखाया । केम्बिब हिस्ट्री के लेखक के मुताबिक महोता के कवि नन्द की कविता ने महमूदकी प्रभावित किया था। खुसरी ने मसऊद इन्न साद के हिन्दी दावान का उल्लेख किया है। यह लेखक महमूद वे पौत्र इब्राहिम के दरवार में या। जिसने ११२५-११३० ईस्त्री के बीच शासन किया। इन प्रमाणों में सक्टित भाषा की हा॰ सुनीतिङ्गमार चाटुव्यां शौरसेनी अपग्रश ही अनुमानित करते हैं—किन्तु हिन्दी से अप-भ्रम का अर्थ खींचना उचित नहीं बान पड़ता । शोरसेनी अपभ्रश से भिन्न भाषा बोलनेशले बनपरों की नम्य भाषाओं के उदय और विकास के अध्ययन के लिए तो तब तक कांद्रनाई बनी रहती है, जब तक उस जनपदीय अपभ्रश में लिखी कोई रचना उपन्कब न हो। परि-निश्व अपभ्रश में टिखनेबाले जनपरीय या प्रादेशिक लेखक भी आपनी बोली का कुछ न हुछ प्रभाव तो राते ही ये, इन प्रभावों के आधार पर भी, उस बोली के स्वरूप का कुछ

९. केम्प्रिज हिस्ट्रा भाव इंडिया, भाग ३ ए० २

२. प्रो॰ हेमचन्द्रराय म वीं ओरियन्टल कान्फरेन्स का विवरण—मैसूर १६३५ भारत में हिन्दुस्नानी कविता का शारमा

उपर्युक्त क्थन से यह तथ है िह राजपूत दरवारों में परिनिश्चित अनुभाग को उसी रूप में मान्यता प्राप्त नहीं थी, बहिन शौरतेनी ने परवर्ती विक्तित रूप का ये राजभाषा के रूप में ध्यवहार करते थे। यह मापा निश्चित ही ब्रज्यभाषा की आरिभिक अनस्या की स्ट्या देती है। शौरतेनी अनुभाग के आधार पर निर्मित परिनिश्चित अपभाग और इस परवर्ती निक्तित प्राप्त में बहुत अधिक अन्तर नहीं या, क्योंकि दोना की गृत प्रवृत्तियाँ, शौरतेनी या मध्य

§ ३६ इसिटए विश्वस स्वक इत यत्किंचित् अन्तर को भी समभने का यपन नहीं किया गया । श्री चाटुव्यों ने अपन्न श्र के अन्त का समय तो संग्रमग दससी गुदान्द्री का अन्त ही माना, किन्तु बन्नमाण का उटयकाल उन्होंने १५ यो गती का उच्चार्थ इताया । इस मान्यता के लिए इस उन्हें देखी भी नहीं उदय सकते क्यांकि तव तक अन्नमाया के उदयसाल को और पीछे लाने के वहा में कोई डोस आधार आह न था । अन्यापा सूर के साथ शुरू होती थी। प्रमीराज यांची सबद १५५० की कृति कहा काला था, किन्तु उसे बाली प्रन्य वानोवालों की सरया निरन्तर वर्डती जा रही थी। यनन्तन कुन्कल आह सामग्री को काई अर्थिक महक मही दिया जा सकता था।

§ ३७ नव्य भाषाओं के उदम का जो काठ निर्धारित किया खाता है, यही ब्रजभाषा के लिए भी लागू होता है। मध्यदेश की भाषा होने में जहाँ एक ओर गौरव और प्रतिष्ठा मिन्द्रती है नहीं दूसरी श्लोर हर नई उदीयमान भाषा के लिए भयकर परीक्षा भी देनी होती है। परिनिष्टित भाषा के मूल प्रदेश ने लोग राष्ट्रभाषा का गौरव समालने में घरेख होली को मूल बाते हों तो कोई आधर्म नहीं। क्योंकि उनके निए परिनिश्चित और देशभाषा या बनपदीय में बाहे खास अन्तर नहीं होता । बजमापा या हिन्दी के आरम्भ की ऐतिहासिक स्थना हमें निवासुद्दीन के तवकात-ए-अकवरी तथा दो श्रान्य टेप्तकों की कृतियों में मिलती है। कालिबर के दिन्दू नरेश ने विना हैंदि और महावत के हाथियों को सरलता से प्रकटने और वनपर सवारी करनेवाले तुकों की प्रशासा में बुख पद्य हिन्दी भाषा में लिखे ये जिसे महसूद गजनवी ने अपने दरवार के हिन्दू विद्वानों को दिखाया । केम्बिक हिस्ट्री के लेखक के मताबिक महोता के कवि नन्द की कविता ने महमूदको प्रभावित किया था। वसरो ने मसऊद इन्त साद के हिन्दी दावान का उल्लेख किया है। यह लेखक महसूद के पौत्र इबाहिम के दरबार में या। जिसने ११२५-११३० ईस्त्री के बीच शासन किया। इस प्रमाणों में सक्टित भाषा को टा॰ सुनीतिञ्जमार नाटुज्यां शौरतेनी अम्प्रश ही अनुमानित ऋते हैं—किन्तु हिन्दी से अप-भ्रम का अर्थ कींचना उचित नहीं जान पडता । शोरसेनी अपभ्रम से भित्र भाषा बोलनेशने बनपरों की नव्य भाषाओं के उटय और विकास के अध्ययन के लिए तो सब तक कठिनाई बनी रहतो है, बन तक उस जनपदीय अपभ्रश में लिखी कोई रचना उपन्थ्य न हो। परि-निर्देत अपभ्रश में त्रिलनेबाले सनपरीय या प्रोदेशिक लेखक भी अपनी बोली का सुद्ध न हुछ प्रभाव तो लाते ही ये, इन प्रभावों के आधार पर भी, उस बोली के स्वरूप वा बुछ

१. केश्यिज हिन्द्रा भाव इंडिया, भाग ३ ए० २

२. प्रो॰ हेमचन्द्रस्य म धाँ श्रीरियन्टल कान्करेन्स का विवस्त-मैस्र ११३५ भारत में हिन्दस्तानी कविता का आहम्म'

तत्वों के अन्मेषण के लिए बही बाद की आक्षांच हो महत्त्वपूर्ण है। इस बाद की आक्षाय में भी सबसे ज्यारा महत्त्वपूर्ण इतिनांचे हो सकती हैं, जो ग्रीरिमनी आक्षांच के निजी चेह में किसी गई हों। अभागवत्व हम तदह की छीर हस काल को कोई मानाणिक हिले, जो मध्यदेश में निली गई हो, मात नहीं होती। युवतमानों के निस्तर व्याक्रमण के चत्त्व मध्यदेश में इसती की साम के स्वी हम मध्यदेश में स्वाव प्राव्य माणा सारे भारत हो भागा करने, किस सम्बद्ध मां पत्र माणा सारे भारत हो भागा करने, किस सम्बद्ध माणा सारे भारत हम भागा करने, किस सम्बद्ध में स्वा निल्हा गया, इसता हुक मी बता नहीं चल्ला।

§ ४०. सक्त तथा प्राहत वैयाकरणों ने प्राहत के साथ-साथ अवस्य श ना उन्तेख किया है समयमंत्र, मार्क्येय, विविक्रम, लद्दनीयर आदि वैयाकरणों में प्राहत ना वार्षों ने उद्दार्थ प्रति हैं, किन्तु अवस्था सं क्षा मुद्दर और तथिद विवद विवस् विवस्त किया है। किन्तु अवस्था सं क्षा मुद्दर और तथिद विवद विवस्त विवस्त किया है। किन्तु अवस्था से स्वाहरण के अवस्था मार्गा की सन्ते वड़ी विद्येखा निक्रमी के उद्दार्थ कर में उद्धुत अवस्था के दोहें है विनके चयन और सक्त में हे मार्च हों वहीं वी वार्षों में तथिद वह (है सन्त्र) सीना बीनने वार्षा मार्गा मार्गा की तथिद वह (है सन्त्र) सीना बीनने वार्षा मार्गा मार्गा है कि और वैश्वकरणों की तरह केवल प्राणिन के व्यावस्त्र के किन्त उपयोगी और की सहत दे कि और वैश्वकर में मार्गा में यह सन्तृत न रहा, पाणिनि के काना पीछा नहीं तो 'आगा' देखकर अपने समय तक की सामा का व्यावस्त्र वना गया—उत्तर एक वह मारी साहत्य के मुन्ते वार्षित रहे, वो उत्तरे देसा म करने हैं सहते हैं। विश्वकर और सही वार्षों की देन ने के साथ साथ उत्तर माहि भी है।' है म स्वावस्त्र पाणिनि और मही वी देश स्वावस्त्र में किन्ति अस्त्र अपने व्यवस्त्र पाणिनि की स्वावस्त्र की स्वावस्त्र के से ननूने इस साथ साथ उत्तर माहि भी है।' है म स्वावस्त्र मार्गा सिक्ति अस्त्र अर्थ के से ननूने इस साथा साथ उत्तर माहि भी है।' है म स्वावस्त्र मार्गा समस्त्र सावि वी है।

हुथर, हेमचन्द्र के इस अराध्या की विद्यानों ने ग्रीरिसेनी अपभंग कहा है। डा॰ एकः गी॰ तस्तीतीरी ने राष्ट्र विवाद है कि ग्रीरिसेनी अराध्या के वारे में अब तक हमारी जानतारी गुरुरतः हैमचन्द्र प्राष्ट्र व्याक्षण भार्यरूर-भूभ ह्यों के उत्ताहरणों और नियमों पर आपारित है। हेमचन्द्र रेर वी ग्राजावरी (ग्राज्य रेभ्भ-र-२८) में हुए ये और स्वाद है कि उन्होंने जिस अराध्या वा परिचय दिया है, वह उनसे पहुंच वो है स्वविद्ध इस प्रमाद्य के आधार पर इस है मिनवन्द्र वीरित वे अराध्या की पूर्व-रागों सीता र वी ग्राजावरी ईस्त्रों रस सकते हैं। तैस्तीतिरी ने हेमचन्द्र के व्याक्षण के दोही को श्रीरिक्त अराध्या क्यों मान विका, इसके वारे में कोई स्वाद पत्र नहीं चवता । सम्पन्न वे ग्राप्त के माना वर्ष विद्यान के माना वर्ष के स्वापार पर ही स्तीतर किया था। दा ग्राप्त वार्य ग्राप्त को माना वर्ष के स्वापार पर ही स्तीतर किया था। दा ग्राप्त की मानार अराध्या को नागर अराध्या को नागर अराध्या की सीतर के प्रतिद सन्दर्भ है। आरो डा॰ विद्यान ने च्यापार और कावह प्रकृत के व्याक्षण कावह प्रकृत के व्यानरणहा अराध्या प्रतिस्त वे प्राप्त सानन्दर विषयंत्र ने मानारीय नाम मानाओं को जो साईरी-वराष्ट्र विद्या वह बहुत कुछ सिंक्शालीत्वा है। यहाँ उनके इस्ते चमन से मतन्त्र है कि

१. पुरानो राजस्थानी, नागरी प्रचारिणी समा, ए० ५

तावों के अन्येषण के लिए यही बाद की अगमंश हो महत्त्वपूर्ण है। इस पाद की आम्राग्य में भी सबसे प्याग महत्त्वपूर्ण हति में हो सकती हैं, जो शीरसेनी आप्नेष्य के तिवी हो सकती हैं, जो शीरसेनी आप्नेष्य के तिवी हो में विश्वी गई हों। अभागवत्त्व इस तरह की छीर हस काल को कोई मामाणिक हति, जो मण्येरेग में निली गई हो, मात नहीं होती। युस्तमानी के निरत्ता व्याक्रमण से घत्ता अपन्येरण मात्रमण से घत्ता होता । मण्येरण में हस्ति होती हो सुरक्षा का कोई मणत नहीं हुआ। मण्येरण की आप्नाप्य मात्रा सारे मात्रा की मात्रा कर मात्रा कर सारे कर सारे स्वाप्त की सात्रा मात्रा सारे स्वय्ता।

§ ४०. सक्त तथा प्राहत वैयाकरणों ने प्राहत के साथ-साथ अरभ्र श ना उल्लेख किया है पासरामंत्, मार्क्येय, विदिक्तम्, लक्ष्मीयर आदि वैयाकरणों ने प्राहत ना काणी अल्डा निक्तण प्रत्युत किया है, किन्तु अराभ्रंश ना बीना मुन्दर और विपद विवरण हेमचन्द्र ने उपित्रण प्रत्युत किया है, किन्तु अराभ्रंश करों है से न्याररण के अराभ्रंश मारा ने साने विद्याल निमाने के उद्यहरण कर में उद्भुत अराभ्रंश के हैं है वितने के वाल और सक्तन में हेमचन्द्र नी आदितीय नाम मार्ग्डता और तत्क्यादिणी प्रतिमा ना पता चल्या और तत्क्यादिणी प्रतिमा ना पता चल्या है पीत्री मौतेन ना पता चल्या पत्रिमा ना पता चल्या महत्त है कि और वैयानरणों नी तरह केवल प्राणिनि के स्वान्यण के लेक उपयोगी ग्रंथ नी स्वान द्वार में बरसकर ही यह सन्तुष्ट न रहा, पाणिनि के स्वान्य पीद्या नहीं विद्याल के सम्मा विद्याल में स्वान प्रता मारा मार्ग्डल के मार्ग्न के साम्य ना व्याकरण ना या—उत्तन एक वहे मारी साम्य के नाम्ये जीतित रही, जो उसके देसा न करते ने नष्ट हो साते, वह अन्ते त्यालरण ना वाणिनि और महोची वैद्याल होने के साथ साथ उत्तन महि भी है। है है न स्वानरण में सन्तित सन्त्रग्रंश के ये नम्यूने इस भाषा नी स्वांधिक महत्त्व प्रत्रग्रंश के ये नम्यूने इस भाषा नी स्वांधिक महत्त्व प्रत्रग्रंश के ये नम्यूने इस भाषा नी स्वांधिक महत्त्व प्रत्रग्रंश के ये नम्यूने इस भाषा नी स्वांधिक महत्त्व प्रत्रग्रंश कीर प्रमाण्युत सामग्रे सम्मे वाते हैं।

६ धर, हेमचन्त्र के इस आग्रंश को विद्यानों ने ग्रीरिसेनी अपअंश कहा है। बाठ एक पीठ तेलांवीरी ने स्वष्ट विवाद है कि ग्रीरिसेनी अपअश के बारे में अब तक हानारी आनक्षाते प्रस्ता के उमारिसों और नियमी पर आग्रायित है। हेमचन्द्र १२ थीं खानारी (चनत् ११४४-१२८८) में हुए ये और स्वर है कि उन्होंने विस आग्रायित है। हेमचन्द्र १२ थीं खानारी (चनत् ११४४-१२८८) में हुए ये और स्वर है कि उन्होंने विस आग्राय का परित्य दिया है, यह उनसे एहि बी है इसकिए इस प्रमाण के आधार पर इस हैमचन्द्र वर्षण वी रोहों को श्रीरिसेन अपअश करों मान एक हैं। तैस्मीतिरी ने हैमचन्द्र के व्याव पा के मुंदर को श्रीरिसेन अपअश करी मान हिम्म, इसके बारे में कोई स्वर प्रसाप नहीं चलता। समझा उन्होंने पर नाम बार्च विदर्शन के भागर को से मान की में मान की में का स्वर के साथार पर ही स्वीसर किया था। बाठ विसर्वन ने मानदिसींन अग्रायं को नागर अरम्बर कताया विदश्च एक रूप श्रीरिसेनी कहा उन्होंने यह भी बहा कि इस नागर अपस्था को गांगर अरम्बर कताया विदश एक रूप श्रीरिसेनी कहा उन्होंने यह भी बहा कि इस नागर अपस्था करा प्रीवर के पित इस नागर अपेर अपक्ष सम्बर्ध के वाश स्वराप के साथ है। अपने होन विद्या के नागर अपाय और अपवाद वर्ष के विद्या के बाश स्वराप कि स्वर के व्याव के बाश को साथा की साथा के साथ की साथ का स्वर वर्ष के विद्या के बाश स्वराप की साथ की साथ है। की साथ की साथ की साथ की साथ के साथ है कि साथ की साथ है की साथ की स

१. पुरानो राजस्थानी, नागरी प्रचारिकी समा, ए० ५

को गीर्जर सिद्ध करके रहेंगे । उनने तर्ज इस प्रकार हैं। मार्केंग्डेय ने २७ अपभ्र शों के नाम गिनाये हैं। उसमें एक का सम्बंध गुजरात से है। भोज के सरस्तरी कडामरण में 'अपभ्रशोन तुष्पति स्वेन नान्येन गौर्जरा' को बो हकार सुनाई पडती है, यह किसी न किसी हेत से ही. इसमें विसे शका हो सकती है। महाराष्ट्री और शौरसेन आदि नाम कोई खास महत्त्व नहीं रखते । साहित्यिक या (standard) अवभ्रश में बहुत सी बार्ते पान्तीय हैं, बुछ विशेषतार्ये व्यापक भी हैं। किन्तु प्रान्तीय विशेषताओं पर ध्यान देने पर शास्त्री नी के मत से 'एरले आ० हेमच द्रना अरभ्रश ने तेनी प्रान्तीय लाह्मणिकताये गौर्जर अपभ्रश बहेबा भौ मने वाध जलातो न थी । ब्रजमापा और गुजरात में बहुत निकर वा सम्बंध स्थापित कराने में आमीर और गुजर लेगी का फैलान' (विलयन के अर्थ में शाबन) भी कारण रहा है। शास्त्री बीके मत से वस्तुत यदि ब्रम्भमाया के विकास के लिए किसी स्त्रीय अयस्य का नाम लेना हो, तो उसे 'ब्रामीरी अपभ्रश' कहना चाहिए। यह ब्रामीर अपभ्रश मध्यदेश का था ऐसा 'जुना वैया≆रणांका कहना है। हेमच द्र की ग्रयभ्रश का शौरसेनी वहने वालों पर राय प्रकर करते हुए शास्त्री वी लिखते हैं 'श्री उपाच्ये शीरसेनी नी छार आ॰ हेमचद्र ना अपभश मा जोई छै। डा० बाकोबी, पीशल, सर प्रियर्शन, डा० सुनीतिरुमार चाडुज्या, डा॰ गुणे बगेरे निद्वानी पण जोई आ॰ हेमच द्रना अपभ्रश ने शौरसेनी ऋपभ्रश कहेया ल्लचाय हो। इसने बाद देमचाद की बताई शौरसेनी प्राक्त की आपवादिक विशिष्टिताओं ना प्रभाव अवश्वश में न देखकर शास्त्री सी इसकी शौरधेनी से भिन्नता का निर्णय दे देते है।

§ धर मुफ्ते शास्त्री बो के तहीं पर दिल्लार से बुद्ध नहीं बहुना है बयोकि ये तर्क स्वतंत्र्यायत दाय से पोंदित हैं। में स्वय शासिनों से मित्र पढ़ अलग गुजर अपम्रम मानने के पद में हूं। किन्तु उस गुजर अपम्रम मानने के पद में हूं। किन्तु उस गुजर अपम्रम मानने के पद में हूं। किन्तु उस गुजर अपम्रम मानने के स्वाहे करीं पहला। गुजरात के लेखतें की लिटी अपम्रम स्वताम मानन प्रावित के तर प्रमुख माना में उसक्य हा, तो उसे मिश्रित ही गुजराती का पूर्व कर मानना चाहिए क्लिन वह विशिष्टता स्था में स्वताम में पहला के स्वताम में में हिस्स हैं पढ़ सकती है। पहले की रचनामें चाहे गुजरात में लिटी हा वाल में यदि उनमें शीरतेनी की प्राधानता है तो उसे शीरतेनी ही बद्धा लिप्स हो से मानन मान कि साम में पहले हो स्वताम में पहले हो स्वताम में पहले हो स्वताम में पहले हो स्वताम में पहले हो से गीम स्वाह लिप्स हो से में माना के साम मान है तो उसे भी से माना में पहले से साम मान है से साम मान है से मान से पर अपस्त में हो से में माना है से से में माना से से से से मान से से स्वाह में गुजराती के पूर्व हम का प्रावह करता है।

§ ४४ अपमारा माया में किले समूचे कापमारा साहित्य को जा होग शीरतेनी या उसपर आधून परिनिद्धित प्रयम्भय मा बतावे हैं वे भी एक प्रकार के अतिवाद के शिकार हैं। परमास्त प्रकार की भूभित्त में डा॰ उपपाये ने 'मायिक तका' के आपार पर कहा कि स्वर की प्रमास की स्वर्ध हों हो हो हो हो है से अस्त से अस्प्रस की अस्प्रस की सामार सीरतेनी का परमास्तमकार में पता भी नहीं चलता। इसने सिवा है सच्च हो की अस्प्रस की अस्प्रस की अस्प्रस की अस्प्रस हो आपार शीरतेनी का परमास्तमकार हो पता प्रकार में नहीं पाई वार्ती। सोमप्रम के

१ परमातमप्रकाश, पुस० जै० पुस० १६, प्रस्तावना प्र० १०=

§ ४३ गुफ्ते शास्त्री बो के तकों पर बिलार से बुद्ध नहीं बहुना है क्योंकि ये तकें स्तितिष्यायत दाप से पीबित हैं। मैं त्यर श्रीरिनी से मित्र पह अलग गुबर अपन्नश्र मानने के पूर्व में हूँ। किन्तु उस गुबर अपन्नश्र का विकास हेली सन् की दसवीं शतान्दी तक दिलाई मदीं पहता । गुबरात के लेलती बी निदी अपन्नश्र स्वताओं म निदिच्यत ही पुरानी गुबराती की लाग मिल सकती है, पिर यह रम गाड़ा हा, विद उसम गुबराती ने तरत्र प्रमुद माना में उपक्रम हा, वो उसे विश्वित ही गुबराती का पूर्व रूप मानना पाबिद किन्तु वह निविद्यता परियों गाड़ परिवाद में प्रमुद मानना पाबिद किन्तु वह निविद्यता स्वाध स्वाध से पहले की रचनार्य चाह गुबरात में कितो है। बाहे भागल में यदि उनमें श्रीरोनी की प्राधानता है तो उसे श्रीरोनी हो प्रधानत है वह से गुबराती है पूर्व रूप का धार मान दिखा उसे हवा है।

\$ थ्रक्ष अपभाग भाषा में किस्ते समूचे अपभाग साईस्त को जा लोग शीरतेनी या उक्तर आपत परिनिद्धित अवस्वार का बताते हैं वे भी एक प्रकार ने अतिवाद के रिकार हैं। परमान महारा की भूमिका में डा॰ उपाध्ये ने 'माधिक तत्वा' के आपार पर कहा कि स्वर और विमित्त करा हो आपने में हो की मुताकर भी देमबाद की अपभाग का भीर विमित्त के अपभाग का आपार शीरतेनों का परमानमकारा में पता भी नहीं चलता! इसने सिधा देमचाद की अपभाग की और भी बहुत सी वार्त परमानम प्रकार में नहीं पाई साती।' सोमानम के

१ परमात्मप्रकारा, वृस० जै० वृस० १३, प्रस्तावना ५० १०८

शौरसेनी प्राष्ट्रत) अन्यत्वर व्यवनों के लोष के साथ करनी द्वितीय म० मा० आ० असस्या तक पहुँच चुनी थी। देस प्रशर शौरसेनी प्राष्ट्रत और शौरसेनी श्रयभ्रश के बीच की कडी देमचन्द्र के 'प्राष्ट्रत' में दिलाई पहती है। खतः श्रन्तःस्वद्गों के आधार पर भी हेमचन्द्र को अन्यत्रं का सीसेनी हो सावित होती है।

8 88. इस प्रसंग में गुजरात और मध्यदेश की सास्कृतिक एकता तथा सवर्षता पर भी विचार होना चाहिए। देवल हेमचन्द्र के अग्रह्म को शौरसेनी समझने ने लिए ही इस 'एकता' पर निचार अनिवार्ष नहीं बल्कि ब्रजमापा के परवर्ती विकास में सहायक और भी बहुत सी सामग्री गुजरात में मिलती है, जिस पर भी इस तरह का स्थान सन्बन्धी विजाद ही कहता है। इस प्रशार की सामग्री के सरदान और सदबन का श्रेप निःसकोच मात्र से गुजरात को देना नाहिए, साथ ही इन समता और एकतान्सूबक सामग्री के मूल में स्थित सारकृतिक सम्पन्तीं का सर्वेदान भी हमारा कर्तव्य हो जाता है। जार्ज श्रियसंग ने गुजराती को मध्यदेशी अथवा ग्रन्तवंतीं समृह की भाषा वहा था। इतना ही नहीं इस समता के पीछे प्रियर्तन ने कुछ ऐतिहासिक बारण भी हुई ये जिनके श्राधार पर उन्होंने गुजरात को मध्यदेश ना उपनिवेश नहा । डा० धोरेन्द्र वर्मा राजस्थान और मुजरात पर गगा भी घाटी की संस्कृति के प्रभाव को दृष्टि में रखकर लिखते हैं 'भौगोलिक दृष्टि से विन्ध्य के पार पहुँचने के लिए गुजरात का प्रदेश सबसे अधिक सुगम है, इसक्षिए बहुत प्राचीन काल से यह मध्यदेश का उपनिवेश रहा है। '³ इन वक्ता में प्रयुक्त उपनिवेश शब्द का अर्थ वर्तमान प्रचलित उपनिवेश से भिन्न सम्भना चाहिए। सुदूर अतीत में मध्यदेश के लोगों के अपने निवास-स्थान छोडकर गुजरात में जाकर बसने का सकेत मिलता है। महाभारत में फूल्ण के यादव कुछ के साथ मधुरा छोड़कर द्वारावती (वर्चमान द्वारिका) बस जाने का उल्लेख हुआ है। महाभारत के रचनाषाठ ने बहुत पीछे न भी मार्ने तो भी यह प्रमाण ईस्ती सर् के आरम्भ मा तो कहा ही ना सरुता है। क्रयर श्री के॰ बा॰ शास्त्री द्वारा आमीरी और गुजरी के पैलाव को भी निकटता-सूचक एक बारण मानने की बात कही जा चुकी है। वस्तुत: आभीरे। मा दल उत्तर पश्चिम से आकर पहले मध्यदेश में आबाद हुआ, वहाँ से पश्चिम और पूरव वी ओर विखरने रुगा । गुजरात में आभीरों का प्रभाव इन मध्यदेशीय ग्रामोरी ने ही स्थापित निया। अपभारा का सम्बन्ध आभीरों से बहुत निकट का था, सभवतः ये अनार्य जाति के लंग ये जो सम्झत नहीं जानते ये, इसलिए इन्होंने मध्यदेश की जनभाषा को सीखा और उसे अपनी भाषा से भी प्रभावित किया। शासन पर अधिकार करने के बाद इनने द्वारा स्वीकृत ओर मिश्रित यह भाषा अपनश के नाम से प्रचलित हुई। आभीरों के पहले एक दूसरी विदेशी चाति श्रथांत् शकों ने उत्तर-भारत के एक बहुत यहे हिस्से पर श्राधिकार निया था । ये बाद में हिन्दू हो गए ये । महाप्रतानी शकों का शासन भारत के एक बहुत वहें भाग पर स्यापित था और इतिहासकारों का मत है कि ये दो तीन शासाओं में विभक्त

१. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी १० ९७७

२. आनन्द्र साइने इन्डो आर्यंत बर्नाइयूलर्स, § १२

रे. ब्रजभापा, हिन्दुस्तानी प्रदेडमी, इलाहाबाद, १६५४ ए० ३

४. मथुरा संपरित्यज्य गता द्वारावतीपुरीम् (महाभारत २। १३। ५६)

शीरसेनी प्राइत) अन्यत्वर व्यवनों के होंग के साथ अपनी दितीय मेंग्यान आब अवस्था तक पहुँच चुनी थी। देस मनर शीरहेनी प्राइत और तीरहेनी श्रप्त्रज्ञ के बीच नी कडी हेमचन्द्र के 'प्राइत' में दिवाई पहती है। खतः अन्तःश्वादचों के आधार पर भी हेमचन्द्र को अन्यतंत्र तीरोसेनी हो सामित होती है।

§ ४६. इत प्रकंग में गुबरात और मध्यदेश की सास्कृतिक एकता तथा सरफँता पर भी विचार होना चाहिए! केवल हैमचन्द्र के अनुसंध को शौरसेनी समझने ने लिए ही इस 'एकता' पर विचार अनिवार्य नहीं बल्कि ब्रजभाषा के परवर्ती विकास में सहायक और भी बहुत सी सामग्री गुनरात में मिलती है. जिस पर भी इस तरह का स्थान सम्बन्धी विवाद हो सकता है। इस प्रमार की सामग्री के सरक्षण और खुबन का अप निःसकीच भाव से गुजरात को देना वाहिए, साथ ही इन समता और एक्तान्त्वक सामग्री के मूल में स्थित सारकृतिक सम्पन्नी वा सर्वेदाण मी हमाग कर्तव्य हो जाता है। जार्ज ग्रियसंग ने गुजराती को मध्यदेशी अमना श्रन्तवर्ती समूह की भाषा कहा था। इतना ही नहीं इस समता के पीछे प्रियर्तन ने कुछ ऐतिहासिक कारण भी द्वारे ये जिनके श्राधार पर उन्होंने गुजरात को मध्यदेश का उपनिवेश कहा। डा॰ घीरेन्द्र बर्मा सबस्थान और मुबसत पर गमा की घाटी की संस्कृति के प्रभाव को दृष्टि में रखकर लिखते हैं 'भौगोतिक दृष्टि से विन्ध्य के पार पहुँचने राहुता के निर्मान पर रहे न रिवर्स (अवव हे मागालक हाट से अन्य के सार पहुंचा के लिए गुवरात का प्रदेश सबसे अधिक हुमम है, इसलिए बहुत प्राचीन काल से यह माणदेश सा उपनिवेश रहा है। ³ दन बचना में मुद्रुक उपनिवेश सारू का अर्थ वर्तमान प्रचलित उपनिवेश से मिल्न समकता चाहिए। सुदूर अतीत में मध्यदेश के लोगों के अपने निवास-स्थान बुंडकर गुवरात में जाकर बसने का सनेत मिल्ला है। महामात में कुष्ण के यादव बुल के साथ मधुरा छोडकर द्वारावती (वर्तमान द्वारिका) वस जाने का उल्लेख हुआ है। महाभारत के रचनाकार के बहुत पाँछे न भी मानें तो भी यह प्रमाण ईस्पी सन् के आरम्भ का तो कहा ही जा सकता है। जगर भी के० का० शास्त्री द्वारा आमीरों और गुजरी के पैठाव को भी निरुटता-सूचक एक बारण भानते की बात कही जा चुकी है। यस्तुत: आभीरो का दल उत्तर पश्चिम से आकर पहले मध्यदेश में आबाद हुआ, वहाँ से पश्चिम और पूरव वी ओर विखरने छगा । गुजरात में आमीरों का प्रभाव इन गव्यदेशीय ग्रामोरे। ने ही स्थापित क्या। अपभ्रत का सम्बन्ध आमीरों से बहुत निकट हा था, समयतः ये अनार्य जाति के त्या। जात्रका ना करान जानाचार नुकारामा है। छेग ये जो सस्हत नहीं जानते ये, इसलिए इन्होंने मध्यदेश की जनमापा को सीखा और उसे अपनी माणा से भी ममावित किया। शासन पर अधिकार करने के जाद इनने द्वारा स्वीकृत ओर भिक्षित यह भाषा अपमश के नाम से प्रचलित हुई। आभीरी के पहले एक दूसरी विदेशी लाति श्रथांत् शकों ने उत्तर-भारत के एक बहुत बड़े हिस्से पर श्राधिकार हिया था। ये बाद में हिन्दू हो गए थे। महाप्रधानी शक्तें का शास्त्र ने एक बहुत बड़े भाग पर स्थानित था और इतिहातकारों का मत है कि ये दो तीन शासाओं में विभक्त

१. आरतीय आर्य भाषा और हिन्दी १० १७७

२. आतन्द माडनं इन्डो आर्थन बर्नाह्यूलर्सं, हु ९२

रे. बजभापा, हिन्दुस्तानी पुरेडमी, इलाहाचाद, १६५४ पृ० रे

थ. मधुरा संपरित्यज्य गता द्वारावतीपुरीम् (महाभारत २। १३। ५६)

हदतर हो गया । इसी कारण गुकरात की प्रारंभिक रचनाओं और शौरकेनी अनुशंश में बहुत साम्य है। ब्रजमाया का प्रभाव भी गुकरात पर कम न पड़ा। बल्लभावार्य के ल्वेड पुत्र श्री गोपीलाथ का प्रभाव-चेत्र गुकरात ही रहा। श्री विहल नाथ ने भी एकाधिक बार गुकरात की बाजा की और वैष्णव मिक का प्रचार किया। माल्या, नरसी, कैशव दास आदि क्यियों की भाषा पर न केयल बन्न का प्रभाव है बल्कि उन्होंने ने तो ब्रजभाया के कुछ पुरक्कत पद्य भी लिखे।

> जड पवसन्ते सहु न गय न मुध विशोएँ तस्यु रुक्तिजड सदेसदा चितेहि सुहय स जजस्त [हेम० व्या० माधाधारी

> जसु पवसंत ण पवसिया मुअए विश्रोड् ण जासु रुज्ञिज्ज उं संदेसहड हिन्ती पहिश्र विथासु [सं० रा० ७२]

सदेस रासक का यह दोहा न नेयल रचनाकाल की दृष्टि से भी बहिक भाषा की दृष्टि से भी बहिक भाषा की दृष्टि से भी सरहतवा परवर्ता प्रतीत होता है, यही नहीं क्लियत परिवर्तनों को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह रोहा छहहमाण ने हैमचन्द्र से नहीं किसी दृष्टि सेति से प्रात किया था। संभव है कि यह अरहसाण निर्मित भी हो, क्लिय है प्रतावर के व्यावस्था के स्वताकाल को देखते हुए, ऐसी संभावना बहुत उचित नहीं मत्वस होती क्लीक छहहमाण का समय अधिक पीछे ले जाने पर भी रश्वों का समझ स्वतिक भी ले जाने पर भी रश्वों शर्वों के बहुत नहीं कुलता, वार्ट हमचन्द्र का समझ स्विक भी

श्री के० का० शास्त्री कृत भारण, कवि चरित भाग ।

२. कुमारपाल प्रसिपोध, सायकवाद सीरीज नं० १४ मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित ७

इदतर हो गया । इसी कारण गुजरात की प्रारंभिक रचनाओं और शौरसेनी अपअंश में बहुत साम्य है। व्रवमाया का प्रमाव भी गुजरात पर कम न पड़ा। बल्लभाचार्य के क्षेष्ट पुत्र भी गोपीलाय का प्रमाव के गुजरात ही रहा। श्री विद्वल नाय ने भी एकाविक बार गुजरात की यात्रा को और नैष्णव मिक का प्रचार किया। भाल्य, नरसी, केशव टास आदि क्वियों की भाषा पर न केयल व्रत्न का प्रभाव है बल्कि उन्होंने ने तो व्रत्नभाया के कुछ दुरक्कत पर्या भी लिले।

§ धन्न. हेमचन्द्र के शीरसेनी अपभ्रश के उदाहरणों की भाषा की हम ब्रज्यमाण की पूर्वपीठिया मानते हैं। हेमचन्द्र के हारा सक्वित अपभ्रश रचनाओं में १४१ पूर्ण तेहे, ४ दोहों के अर्थवाद और शक्ती मिल्र मिल्र १० इंदों में १४ पूर्ण और १० अपूर्ण श्लीक (पर) मिल्ते हैं। वे रचनामें कहाँ कहीं की ती गई हसता पूरा पता नहीं चलता। हेममाम्करण के अपभ्रंग दों ह कहा से संस्कृति किये गए, इनके मूल खेत कमा दे, आदि प्रश्न उठते हैं १ अर तक इन दोहों में से सभी वा उद्गम-स्तेत ज्ञात नहीं हो सका है। इनमें थे बुख दोड़े सुमारपाल प्रतियोध प्रक क्या-प्रवश्न मन्त्र है अर ति समि मिल्र मिल्र किल को ऐतिहासिक लेकिक और निवंधरी क्याय संस्कृति से गई हैं। दुम्मारपाल प्रतियोध प्रक क्या-प्रवश्न मन्त्र है अपभा रिवंधर में अर्थिक काल को ऐतिहासिक लेकिक और निवंधरी क्याय संस्कृति की गई हैं। दुम्मारपाल में अर्थाहिकालों में भी सोप्यमन यूरि ने की, यह प्रम्य हैमनन्त्र के बाद ही का है और हम्में हैमचन्द्र सम्बच्यो विवरण ऐतिहासिक हिट से बहुत बुख यथातथ्य मालूम होते हैं, हममें सोप्यम के बुख अपक्षंय होदें भी है जो परवर्ती अपक्षंय को सम्माने में सहायक हो सक्ते हैं। हेमचन्द्र के व्यावस्था कर दोहा की अदृहसाण के सन्देशरासक के एक दोहे से एक्स मिल्ना है—

जड पवसन्ते सहु न गय न मुश्र विश्रोएँ तस्सु छजिजड सदेसडा दिवेहिं सुहय स जणस्त [हैम० व्या० माशश्रह

जसु पबसंत ण पबसिया सुअपू बिओइ ण जासु रुज्जिज उं संदेसहउ हिन्ती पहित्र पियासु (सं० रा० ७२)

धरेस रासक का यह दोहा न केवल रचनाकाल की दृष्टि से भी बिल्क भाषा की दृष्टि से भी राष्ट्रवा परवता प्रतीत होया है, यही नहीं विनित्त परिवर्तनों को देलते हुए प्रतीत होता है कि यह रोहा ब्राइस्माण ने हेमचन्द्र से नहीं किसी दूसरे खोत से प्राप्त किया था। संभव है कि यह ब्रह्माण का निर्मित भी हो, किन्तु रेमचन्द्र के व्यावस्त्य के रचनाकाल को देखते हुए, ऐसी कंमावना बहुत बर्जिय नहीं मध्यम होतो क्योंकि ब्रह्माण का समय अधिक पीड़े ते बाने पर भी १२वीं १३वीं यती के पहले मही पहुँचता, यदि हेमचन्द्र का समसाम्मेक भी

१. श्री के॰ का॰ शाखी कत भारण, कवि चरित भारा ६

२. कुमारपाल प्रतिबोध, यायकवाद सीराज नं॰ १४ मुनि ज्ञिनविजय द्वारा सम्पादित

भी गाथायें उसकी विश्वित्र मृत्यु के बाद सारे देश में हुए गई होगी । शतु-मिगरी मृणालकरी के प्रेम में उसके प्राच्य गवार्ये, पर पृथ्वीवक्षम भी आन में परफ नहीं आने दिया । इस प्रवार के बीवन्त प्रेमी और बीर भी मृत्यु के बाद न जाने कितने कवियों और लेएकों ने उसने प्रेम माथा को भागान्यद किया होगा, ये देहि ति सन्देह उस मारवेगाहुक कावन्यद्वजन के अवशिष्ट अर्था हैं को मुत्वग्रव भी मृत्यु के बाद जनमानस से स्वतः हुए परे थे। मध्यदेश में रवित वे ही दोहे प्रव्यविन्तामणि और प्राष्ट्रतक्ष्म में सक्तित किये गए—इन्हीं रोहों में से एक माणा प्रवाह में बहुत हुआ सुरदास के पास पहुँचा। मेरा तो अनुमान है हि हेम व्यावस्त्य के ६० प्रतिश्चत दोहें मध्यदेश के अव्यन्त लेकप्रिय भाव्यों, लोइगीतों आदि से सक्ति किये गए। इन्हों प्रमाव से अद्दर्शमा भी मुक्त न रह सन।

मुन और मृणाल्यती के प्रेम के दोहे मध्यरेशीय अपभ्रंश के जीते जागते नमूने हैं।
दुछ लोग इन्हें मुत्र की रचना कहते हैं, यह भी असमय नहीं है। मुत्र के दोहे प्रक्थ वित्तामणि और पुरातन प्रक्ष्य-सम्बद्ध के मुखराज प्रक्ष्य में आते हैं। प्रक्ष्यवित्तामणि में मृणाव्यती की तीला की भीगिनी 'काराया तद्विगन्या सह' और पुरातन प्रक्ष्य समझ में यहा की चेटी कहा गया है (मृणाल्यती चेटी परिचर्य दृते युचा)। इसी वे आधार पर एक नया दोश भी बहाँ दिया हुआ है।

वेसा छुडि बडाइतो जे दासिहिं रखन्ति ते नर धुत र्रास्त जिम परिमत्र पणा सहन्ति वार्षस्य चिन्तित मुखातवती को सान्वना देते हुए मुत्र ने यहाँ एक और भी दोहा

क्हा है—

मुंज भणइ मुणालवह देसां काइ सुयन्ति लद्धउ साउ पयोहरह चधण भणीय स्थन्ति

हस प्रकार पुरातन प्रयन्य सम्रह और प्रवन्य विन्तामित्र के आधार पर सुन का एक विचित्र महार का व्यक्तिल सामने आता है जो कित, मेमी, कायुक, बीर, म्टगारिक छोर इन सन्ते जरर मल और स्वन्द्यन्द आदमी प्रतीत होता है। उसकी मृत्यु पर कहा हुआ यह क्लेक अल्या उपयक्त है:

> लद्मीर्यास्यति गोविन्दे वीरधीर्वारवेशमिन । गते मुजे यश पुत्रे निराहम्बा सरस्वती ॥

–प्रवस्थ चिन्तामीण

§ ४०. मुज ना मतीजा भोनयज भी अपस्था ना प्रेमी और सख्त ना उत्तर विद्वान् राजा था। अपने पिता फिल्पुराज नी मृत्यु के बाद वि० सं० १०६० ने आस पास गद्दी पर ^{वै}टा। भोज भी विज्ञमादिल नी तरह निजयरी कथाओं ना नायक हो जुना है, उसनी प्रशंसा

गुरेरी जी का 'राजा मुझ हिन्दी का कवि' पुरानी हिन्दी पृ० ४२-४४
 दोनों पुस्तकें सिघी जैन प्रत्यमाला में मिनिजनविजय द्वारा प्रकाणित

दे. प्ररातन प्रवस्थसग्रह पृ० ३४

भी साथायें उसकी विवित्त मृत्यु के बाद सारे देश में छु। गई होंगी । शहु-मिगनी मृणालकरी हे प्रेम में उसने प्राच्य गवामें, पर प्रश्वीवहाम भी आन में परफ नहीं आने दिया । इस महार के बीयना प्रेमी और बोर भी सुद्ध के बाद न बाते फितने कवियों और वेरारकों ने एडरी ग्रेम-माधा को माया-बद किया होगा, ये दोहे ति एउनेह उस मानवेगाहुक काम-स्वान के अवशिष्ट कर्या हैं की मुनवान भी मृत्यु के बाद जननानत से स्वतः पूर पर ये। मण्यदेश में रचित ये हो दोहे प्रकथावनतामणि और प्राष्ट्रतव्याकरण में सक्वित किये गए—इन्हों रोहें में से एक माया प्रवाद में बहुता हुआ स्ट्रारी के पास पहुँचा। नेय तो अनुमान है हि हेम व्याकरण के ६० प्रतिश्चत दोहें मण्यदेश के अव्यन्त कोकप्रिय भाष्यों, लोकपीतों ब्राटि से सक्वित किये गए । इनके प्रभाव के अद्दान भाष्य में क्वित किये गए । इनके प्रभाव के अद्दानमा भी मुक्त न रह सना।

मुन और मुणाल्यती के प्रेम के दोहें मध्यदेशीय अपन्नरा के बीते बागते नमूने हैं।
दुछ लोग इन्हें भुव की रचना कहते हैं, यह भी अखमव नहीं है। मुन के दोहें प्रकथ
विज्ञानियों और पुरातन प्रकथ्मसब्द के मुखराज प्रकथ्म में आते हैं। प्रकथिनतामिय
में मृणाल्यती की तैवान की भगिनी 'काराता तद्वागिन्या सह' और पुरातन प्रकथ्म साह में
राध की चेटी कहा गया है (मृणाल्यती केटी परिचर्त कृते युवा)। इसी ने आधार पर
एक नया दीश भी बहाँ दिया हुआ है।

वेसा छुडि बडाइतो जे दासिहिं रचन्ति ते नर गुज नरिद जिम परिमद घणा सहन्ति

वार्षक्य विक्तित मृशालवती को सान्त्वना देते हुए मुज ने यहाँ एक और भी दोश क्रा है—

> र्सुज भणइ सुणाल्वह देसां काइ चुयन्ति लद्धद साउ पयोहरह धधण भणीय रअन्ति

इस प्रकार पुरातन प्रक्र्य सम्रह और प्रक्रय विन्तामधि के आधार पर मुद्र का एक विचित्र प्रकार का व्यक्तित सामने आता है जो किंद्र मेमी, किंद्रक, यीर, स्टामिक छोर इन सम्मे कार मल और स्वन्छन्द आदमी प्रवीत होता है। उसकी मृत्यु पर कहा हुआ यह रहोक अल्पत उपयुक्त है:

> ल्ह्मीर्यास्यति गोविन्दे बीरधीर्वारवेरमनि । गते मुन्ने यश्च पुन्ने निरालम्बा सरस्वती ॥

-प्रवस्थ चिन्तामणि

\$ %०. द्वन ना मतीजा भोनयज भी अपन्नश्च ना प्रेमी और सस्तृत ना उत्हट विद्वान् राजा था। अपने रिता किसुराज नी मृत्यु के बाद वि॰ सं॰ १०६० ने आस पास गदी पर ^{है}टा। भोज भी विष्टमादिस नी तरह निजयरी क्याओं ना नायक हो जुना है, उसनी प्रशंसा

^{1.} गुलेरी जी का 'राजा मुज हिन्दी का कवि' पुरानी हिन्दी पूर ४२-४४

२. दोनों पुस्तकें सिधी जैन प्रत्यमाला में मुनिजिनविजय द्वारा प्रकाशित

३. पुरावन प्रवस्थसप्रह पृ० १४

ताह होता था (अजभाषा हुँ द्र्र्) । अपभ्रश में प्राष्ट्रत पराग्य से स्त्रों की विश्वति की सुरद्वा हुई है, किन्तु अजभाषा में आउ या अह का 'ओ' 'औ' या 'प' 'पे, हा जाता है। यह प्रश्वित हुछ अशों में हेम व्याकरण ने प्राष्ट्रताश में में निकाई पढ़ती है, यपि अव्यत न्यूनाश में । 'प (दा शा १६६ ८ अपि) आओं (अप्पी=अज दा २६८ ८ आपता) किन्तु हेम व्याकरण के अपभ्रश माना में यह प्रष्टुित नहीं दिखाई पढ़ती। किर भी लाण (४। ४४४८ ८ उण्डण ८ अल्या) तथा सोएवा (दा ४। ४३० स्ट ८ स्त्र्य) तो (४। ३७६ ८ तउ ८ तत)। आधार्य तो यह देखतर होता है कि प्राष्ट्रत को स्त्रित को का प्रयत्न हुआ है, उहीं को बाद में सुर्यक्त दिखाया गया है, इसे निवित्तर की प्रयोगता कहें या नियम की प्रतिकृत्वा। चीहह (दा श १७१८ चतुर्दश) चीहिसी (दा श १७९८ चतुर्दशी) चाव्यारों (दा श १७०८ चतुर्दशी) चाव्यारों (दा ११ ४००८ चतुर्दशी) यही चतुर्दशी को अपश्रय की यह यह अह अंड वार्वी प्रवृत्ति ही क्षण में पे और औ में रूप में दिखाई पड़ती है।

§ ५३ त्यवन की दृष्टि ते ब्रजमाया में छुठित सपोप 'स्ट' सवाय अनुनासिक म्ह, स्ट आदि प्वनिया मीलिक और महत्वपूर्ण कही जा सकती है। इनका मी आरम्म अनम्रया के इन दोहों में दिलाई पडता है। उण्डुउ (४। ३४२ < उप्प) तुम्हेंहि (४। ३०१ < *कुम्मे) प्राहेंहि (४। ३०१ < *कप्मे) ण्हासु (४। ३६६ < स्तान = न्दानो, ब्रव) । उल्हबड़ (४। ४९६ < उल्ल्वति) इसी ताह मेल्ड्डर - मेल्ड्डर (४। ४६०) का पायती निकास हो सकता है 'स्व' का उप्चारण समयत मीलिक रूप में उतना सुकर न या इसलिए उल्लास उल्हास, आदि परिवर्तन अरम्यमावी हो गए । मिथली के प्रीचीन प्रयोगी से तुचनीय। (वर्षायाकर § २२)।

§ १४ जनमापा में व्यवन दिल को उच्चारण सीनर्प के लिए सरङ करके (simplification) उससे स्थान में एक व्यवन और पावर्ती स्वर ना दीर्च कर देने नी प्रवृत्ति कार्यश्च है। उदाहरण के लिए जन में नृद्रो (बुद ८ नेजून या उन्दिए) अनुर (८०क्ट्रर अप०) डांदो (डव्ह्रा अप०८ देनी) आदि शन्ते में यह सृतिपृरक सर्वीकरण की प्रवृत्ति देनाई देवाई देवाई है। अपत्रश्च के इन दोहों में भी यह व्यवस्था शुरू हो गई थी यवि उसका निकास परवर्ती अपन्नग्च में देनाइ हुआ।

जसाँहि (४। ४३१ ८ उच्छुवासे), बोरहर (४। ४१६ ८ अँ उँ ८ अराभ्रस्यते) दूससण् ५ ११ १६ १८ दूस्पालण्ट दु ग्रासने) मीसर्ग्ध (४। ४६५ ८ तिसर्ग्ध १८ मितरिं) मीसर्ग्ध (४। ४६५ ८ तिसर्ग्ध १८ मितरिं) मीसर्ग्ध (४। ४५० ८ तिसर्ग्ध १८ दिस् ४ तिसर्ग्ध १९ विष्ठ तासु (४। १४५ ८ तिसर्ग्ध १९ विष्ठ १८ तिसर्ग्ध १९ विष्ठ विष्ठ १८ तिसर्ग्ध १८ तिसर्ग्ध १८ तिम्म बहुम्मण्ड नहीं हुए ये इनका वास्तिक विकास १२वीं शतान्त्री के बाद मी आरंभिक सक्मापा में दिसाइ पढ़ता है, वेसे यह मात्रा विकास की एक मह मूर्ण प्रश्ति मानी आरंभिक सक्मापा में दिसाइ पढ़ता है, वेसे यह मात्रा विकास की एक मह मूर्ण प्रश्ति मानी सात्री है तिस्तु एवं दिसाई १८ तत्राहुत में भी कम नहीं मिनर्ग्ध । माइव बाले भाग में भी यह महार्गि विवाध है तत्राह (८) ११ १२ ८ उच्छुवसनपाल) कासरिंगे (२। ११ ८८ उच्छानिंश) ।

तरह होता था (ज्ञजभाषा हुं द्र्रः) । अपन्नश्य में प्राकृत परम्पय से स्वरों भी तिश्चि भी सुरक्षा हुई है, किन्तु ज्ञजभाषा में आउ या अद मां 'ओ' 'श्ली' या 'ए' पि, हां जाता है। यह प्रशृति पुष्ठ अतों में हेम व्यावस्य ने प्रावृत्तारा में भी न्यित्ताई पड़ती है, वयति अस्यत्व न्यूनाश्य में । 'ए (दा शा १६६८अपि) आओं (अस्यो=ज्ञज दा २६८८आपत) किन्तु हेम व्यावस्य के अभ्यत्य भाग में यह पहुलि नहीं दिखाई पढ़ती । तिर भी लाण (शा १४४८८उडण८ कवण) तथा सोएवा (दा था १३६८अउ८ तत) । शाअर्थ तो यह देखकर होता है कि प्रावृत्त कांचे हिस्से में जिन शादों में स्वर्त विश्वित में हाने के प्रयुक्त के प्रयुक्त के प्रयुक्त हुआ है, उन्हों को नाद में सुर्यक्ति दिखाया गया है, इसे निवनत भी प्रयीणता नहें या नियम नी प्रविकृत्वा । चीहह (दा शा १०१८चवुर्तरा) चीहली (दा श १०१८चवुर्तरा) चाल्यारों (दा श १००८चवुर्तरा) यही चवुर्तरा शा नियम नी अनेश्वर से या विश्वय ने यह सुर्य अनुष्ठ से अनुष्ठ से नीय सुर्व सुर्व सुर्व सुर्व सुर्व से शा भी अनुष्ठ सुर्व नी यह यह अह अउ वाची प्रवृत्ति ही भण में ऐ और औ में रूप में दिखाई वहती है।

§ ५३ स्वका की हिने से ब्रक्भाषा में सुदित संघोष 'हर्ड' संघार अनुजासिक रह, नह आदि स्विनिया मीलिक और महत्वपूर्ण कही जा सकती है। इनहां भी आरम्म अनअश के इन दोहों में दिलाई पडता है। उण्डड (४) ३४२ < उप्प) तुम्हेंहि (४) ३०१ < *कुमो अम्हेंहि (४) ३०१ < *कम्मो व्हासु (४) ३६६ < स्वान = न्हानो, बच्चो। उत्हबज् (४) ४१६ < उस्टचति) इसी ताद मेल्ड्ड < मेल्ड्ड (४) ४२०) था परवर्ती निशस हो सकता है 'हन्न' का उच्चारण समयत मीलिक रूप में उतना सुकर न या इसलिए उल्लास उल्हास, आदि परिवर्तन अप्रथमांची हो गए। मैथिली के प्रीचीन प्रयोगी से तुचनीय। (वर्षाताकर § २२)!

§ ४४ जनभाषा में व्यजन दिल को उच्चारण सीवर्ग के लिए सरल करके (simplification) उसके स्थान में एक व्यवन और परवर्ती कर का दीर्घ कर देने की प्रवृत्ति काची प्रवृत्ते । उदाहरण के लिए जन में नृद्धों (बुद <कंकुण वा उन्छिए) टाइर (<ठक्ट्रा स्थान देने के प्रवृत्ति (बुद <कंकुण वा उन्छिए) टाइर (<ठक्ट्रा स्थान देने में यह स्विद्रू का स्थान होती है। अपन्ना में में प्रवृत्ति क्लाकिरण की प्रवृत्ति दिलाई पड़ती है। अपन्ना के इन नेशों में भी यह व्यवस्था शुरू हो गई थी वयि उसका निकास परवर्ती अपन्ना में निवाद हुआ।

कसासँदि (४। ४३१ < उच्छ्यासँ), औद्दृहर (४। ४१६ < अँ उँ < अग्रभ्रम्भयंगे) द्सासणु (४। ६६९ < इस्पादणु < इसाम) नीसपढि (४। ४६८ < तिससदि < ति सरित) नीसपढि (४। ४६८ < तिससदि < ति सरित) नीसपढि (४। ४५८ < तिससदि < ति सरित) नीसपढि (४। ४५८ < तिस्म रोक् राम । अस्त राम । अस्त कि उत्तर तिर्म त्राम गया अग्रम्भय में ऐते तियम बदुम्यक्रिय नहीं हुए ये इनका शास्त्रिक विकास १२वी राजाव्यी के बाद ली आरित्म तक्यापा में दिवाद पदता है, वेसे यह माया विकास की एक मह मूपूर्ण मृत्ति मानी बाती है, किन्यु ऐसे रूप माइत में भी कम नहीं निन्दी। मानी बाती है, किन्यु ऐसे रूप माइत में भी कम नहीं निन्दी। मानी व्हास्त्र माया में मी यह मृत्रिति विकासित्मी है असर (दा रा २१२९ उत्तवाह), उत्तासियों (२। १४५ < उच्छ्यवननशीळ) कसासियों (२। १४५ < उच्छातियों । ११ र ६६ विस्त)।

अध्ययन काणी महत्त्वपूर्ण और परवर्ती भागा विकास की कतित्व उन्छभी हुई गुत्यियों को खोलने में सहायक है । अपभूत्रा की सबसे महत्त्वपूर्ण विभक्ति 'हि' है जिसका प्रयोग खाधिकरण और करण इन टोनों काराओं में होता या।

- (क) अगहि ग्रमण मिलिउ (४। ३३२)करण
- (स) अद्धा वलया महिहिं गउ (४। ४२२)अधिकरण
- (ग) नवि उजाण वर्णेहि (४। ४२२)अधिकरण

ब्रबमाया में 'हिं' विभक्ति का प्रयोग न केवल करण अधिकरण में बहित कर्म श्रीर सम्प्रदान में भी बहुतायत से होता है। परसमों के प्रमुर प्रयोग के बारण बहाँ खड़ी बोली में प्राचीन विभक्तियों के अरशिष्ट चिहाँ का एक्टम अभाव दिलाई पडता है, बहाँ ब्रबमाया में परसमों के प्रयोग के साथ प्राचीन विभक्तियों के जिबसित रूपों का प्रयाग भी सुरवित रहा। बड़ी बोली में कर्म-सम्प्रदान में 'को' 'के लिए' आदि के साथ 'हिं' का काई प्राचीन रूप नहीं किता।

व्रजभापा में 'हि' के कुछ उदाहरण उपस्थित क्रिये जाते हैं।

- (क) रावेहि सखी बतावत री (स्र^{रे}० ३५५=)--कर्म
- (ल) सर इमिंह पहुँचाइ मधुपुरी (सूर० ३४७१)—कर्म
 - (ग) राज दीन्ही उप्रसेनिह (सूर० ३४८५) कर्म सप्रदान
 - (घ) ले मधुपुरिहि सिधारे (सर॰ ३५६४)—अधिकरण
 - (ङ) घरघो गिरिवर बाम कर जिहि (सूर० ३०२७)—करण

न वेचल ब्रबमाया में ये पुरानी विभक्तियाँ तुरिवृत है बहिर इनके प्रयोग की बहुल्या दिलाई पदती है, क्षाय ही एकाधिक बारकों में इसका स्वच्छन्द प्रयोग दिलाई पदता है, परवता अपभ्रश या अवहड़ में तो इसका प्रयोग अव्यक्त स्वच्छन्द हो ही गया था, बिले डा॰ चाडुक्यों के सम्योग में काम चलाऊ सर्वृतिष्ठ विभावि (A sort of made up of all work) वह सक्वे हैं, इन श्राप्तश्या टोहा की भाषा में भी इस के प्रयोग में दिलाई पदती है। उत्पर श्रीकरण और करण के उदाहरण दिने गया है। चलुष और करण के उदाहरण दिने गया है। चलुष और करण के उदाहरण दिने गया है। चलुष और दितीय में इसने प्रयोग के उदाहरण महीं भिन्ते, किन्तु होमचन्द्र ने चलुषों के परसर्गों 'केहि और रेसि' के उटाहरण में चलुषा-अर्थ में 'हि' वा प्रयोग किया है।

तुर्हु पुणु अन्नहिं रेक्षि ४। ४२५ (अन्य के लिए)

इस प्रकार के प्रयोग बाद में कुछ दरसगों ने साथ और बुछ विना परसर्ग के भी 'हि' विभत्ति द्वारा चत्रपा का अर्थ व्यक्त करने लगे डोंगे ।

\$ ६१. हेम व्याकरण के अपभ्रस दोहों की मात्रा में एक विशिष्टता यह भी दिखाई पहती है कि पहलों का प्रमीग मूल शास्त्रों के लाग नहीं बल्कि सविमानिक पदों के साथ सहायक शहर के रूप में होता है। अर्थात् 'रेक्षि' परसर्ग चतुर्थी में 'असहिं' यानी सविमानिक पद के साथ महुत्त हुआ है। वैसे हो अन्य परसर्ग मी।

१—पदों की सरवा, काशो नागरी प्रचारिणी सभा के भूरसागर प्रथम सस्टरण २००३ वि० के लाधार पर दो गई है।

भरणमन काको महत्त्वपूर्ण और परततीं भागा विकास क्षी कतिषय उत्तभी हुई गुरिययों को खोलने में सहायक है । अपभ्रंग्र की सबसे महत्त्वपूर्ण विभक्ति 'हि' है जिसका प्रयोग ऋधिकरण श्रीर करण इन दोनों सारकों में होता या ।

- (क) अगद्दि ग्रगण मिलिउ (४। ३३२)करण
- (रा) अद्धा वड्या महिहि गउ (४। ४२२)अधिकरण (ग) नवि उज्जाम वर्षेटि (४। ४२२)अधिकरण

बबभाषा में 'हिं' विभक्ति का प्रयोग न केवल करण अधिकरण में बहित कर्म और रामदान में भी बहुजावत से होता है। परसमों के प्रमुद प्रयोग के बारण वहाँ खड़ी बोली में प्राचीन विभक्तियों के अवशिष्ट चिहाँ का एकरान असाव दिखाई पडता है, वहाँ ब्रबमाणा में परामों के प्रयोग के साथ प्राचीन विभक्तियों के निक्तित हमों का प्रयोग भी सुव्हित रहा। बड़ी बोली में कर्म-सम्पदान में 'कां' 'के लिए' आदि के साथ 'हिं' का काई प्राचीन रूप नहीं मिलता।

ब्रबभापा में 'हि' के कुछ उदाहरण उपस्थित क्यि जाते हैं।

- (व) राघेट्टि सखी बतावत री (स्र^र ३५५=)—कर्म
 - (ल) सूर हमिंह पहुँचाइ मधुपुरी (सूर० ३४७१)—कर्म
- (ग) राज दीन्ही उप्रसेनोह (स्र० ३४८५)—कर्म सप्रदान
 - (प) टे मधुपरिहिं निधारे (सर० ३५६४)-अधिकरण
- (ह) घरथो गिरिवर ग्राम कर जिहि (सुर० ३०२७)—करण

त ने पण जनमापा में ये पुरानी विभिन्न वाहित है शहित हमने भयोग की बहुत हा दिलाई एवती है, साथ ही एकारिक नारकों में सकत सम्बद्ध सोग दिलाई पडता है, परवता अपध्य या अवहड़ में तो इसना प्रयोग अस्टन सम्बद्ध हो ही गया भा, बिंग का चाहुनमों के प्राम्नों में वाहा चहुनमों के प्राम्नों में हिलाई पहाती है। उत्तर पत्र में है, इन प्रयम्भया डोहा मी भाषा में भी इस के प्रयोग में हिलाई पहाती है। उत्तर अधिकरण और करण के उदाहरण दिने गया है। चतुरा और देशिया में इसने प्रयोग के व्यवहरण और करण है, किन्तु है सनवहने ने चतुर्थों के परस्ता 'केहि और रेक्षि' के उदाहरण में चतुरा-अर्थ में 'बि' ना प्रयोग किया है।

तुरुं पुणु अन्नहिं रेसि ४। ४२५ (अन्य के लिए)

इस प्रकार के प्रयोग बाद में कुछ परसर्गों के साथ और कुछ बिना परसर्गे के भी 'हि' विभविः द्वारा चतुषा का अर्थ व्यक्त करने लगे होंगे]

§ ६१. हेम ब्याबरण के अवभ्रय देखें की भाषा में एक विशिष्टता यह भी दिखाई पहनी है कि परक्षों वा प्रचोप मूल हान्दों के छाप नहीं बहिक सेविमित्तक पदों के साथ सहायक रान्द के रुप में होता है। अर्थात् 'रीकि' परक्षमें चतुर्थी में 'अलक्षि' यानी सविमित्तक पद के साथ मुक्त हुआ है। कैसे हो अन्य परस्ता भी।

१—पदों की सरया, काशी नागरी प्रचारियी सभा के सूरसायर प्रथम सस्करण २००७ वि० के नाधार पर दी गई है।

40

धजभाषा का उद्गम

इसी का परवर्ता विश्वस 'में' के रूप में भी दिखाई पडता है। अधिकरण में एक दूसरे परसर्ग 'उप्परि' का भी प्रयोग हुआ है।

सायरि उपरि तृण घरेड् ४।३३४

इस उप्परि के ऊपर, पर, पै आदि रूप विक्सित हुए जिनके प्रयोग अनुभाषा में शास होते हैं।

१—मदन खिलत बदन उपर बारि डारे (सरक द्वर३) २—पुनि बहाड पै आवै (सरक १६८)

र—पान नहान प आव (सूर० १६८) र—आपनि पौढ अघर सेच्या पर (सूर० १२७३)

सम्प्रदान के परकों केंद्रि का 'कहें', 'की' आदि रूप मी अवभाषा में प्रयुक्त हुआ है किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण विश्वत बचा या तथेप परकों का है को अवभाषा में वें या त्यों के रूप में दिखाई पड़ता है। हेम व्यावरण में ये कुछ आठ बार प्रयुक्त हुए हैं।

१—तेहि तणेण (४१ ४२५) करण

२---अह मग्गा अम्हद तथा (४। ३७६) सम्बन्ध ३---बहुतगहो तथेण (४। ४३७) सम्प्रदान

अपभ्रष्ठ में यह परकां करण, सम्प्रदान और सम्बन्ध इन तोन कारकों में प्रयुक्त होता था, इसी का पपवर्ती विकास तथेखं > तर्ने, तें के रूप में हुआ । ब्रवमापा में तें और त्यों का प्रयोग होता है। ब्रव में इसका असारान में भी प्रयोग होता है।

१—ल्ब्झ गह तें बाटि के (अगदान) २—तुव सराप ते मरिहें (करण)

र--- तुव सराप ते मार ह (करण) ३--- भीर के परे ते घार सबहिन तजी (करण)

तय वा तन' प्रयोग और के अर्थ में मी चलता है। इस तन नहीं पेलत (२४८४) इसारी और नहीं देखते।

अपभ्रश के नारण का सहुँ परसर्ग बाद में सउँ > सी के रूप में बन में मयुक्त हुआ।

१ — मह सहुँ निव तिक तार (४। ३५६ हेम०)

२—जह पवसन्तें सहुँ न गय (४। ३१६ हेम॰) यहाँ सहुँ ना अर्थ मूल्तः सह या साम ही है, उसका तृतीया का 'से' अर्थ बोच तवतक

यहीं सहुँ का अर्थ मूक्तः सह या साय ही है, उसका तृतीया का 'से' अर्थ शोघ तबतक प्रस्कृतिय नहीं हुआ था, बाद में इसने साथ सूचक से कर्तृतः सूचक रूप से क्षिया ।

(१) नासीं कहे पुत्रारो (सूर ३६८७)

(२) हरि मा मेरी मन अटब्यो (सर् ३५८५)

(३) अब हरि कीने माँ रित बोरी (सूर ३३६१) सर्पेनाम—

है ६2. हैम-व्याइधम-अपश्चय के सर्वनामों में न देवल ऐसे कर हैं को ब्रवभाषा के सर्वनामों के निर्माण में सदावक हुए बल्कि वर्द ऐसे प्रयोग हैं किरोने अवभाषा में विधिव अपार के सादित स्वेता करने के जन्म दिया। अवने सर्वनाम विष, तिहा, कित प्रकार के नहीं बल्कि वा, ता, का प्रवार के सादित करों वे वर्द हैं। नीचे अपश्चय और अवभाषा में स्वेतानिक करों के उदाहरण अस्वत विषे चाते हैं। पुरुषवाचक सर्वनाम के उतार पुरुष के इट और मह ने हो कर हैम व्यावस्था में मात होते हैं। इर के ११ मदान और सर्द ने १५

इसों का परवर्ता विद्यस 'में' के रूप में भी दिलाई पड़ता है। अधिकरण में एक दूसरे परसर्ग 'उप्परि' का भी प्रयोग हुआ है।

सायरि उपरि तृण घरे**इ** ४।३३४

इस उप्परि के ऊपर, पर, पे आदि रूप विकसित हुए जिनके प्रयोग अनुभाषा में प्राप्त होते हैं।

१—मदन रुलित बदन **उपर** बारि **डारे (सुर० म**२३)

२-पुनि जहाज पे आवै (सूर० १६८)

३-आपुनि गौड अधर सेज्या पर (स्र० १२७३)

सम्प्रदान के परकां केंद्रि का 'कहें', 'कीं' आदि रूप भी व्रवभाषा में प्रमुक्त हुआ है क्लिन सबसे महत्त्वपूर्ण विशस तथा या तशेष परकां का है को व्रवभाषा में ते या त्यों के रूप में दिखाई पड़ता है। हेम व्यावरण में ये कुछ आठ बार प्रमुक्त हुए है।

१—तेहि तणेण (४) ४२५) करण २—अह मग्गा अन्हर तणा (४) ३७६) सम्बन्ध

३—बद्दतणहो तणेण (४। ४३७) सम्प्रदान

अपभग्न में यह परसर्ग करणे, सम्प्रदान और सम्प्रन्य इन तीन कारने में प्रथुक होता था, इसी का परवर्ती विद्यास तथेथा > तर्ने, तें के रूप में दुआ । ब्रबमापा में तें और रुतों का प्रयोग होता है। ब्रज में इसका असारान में भी प्रयोग होता है।

१—ल्ब्ह्रा गृह तें कृद्धि के (अपादान)

र—तुव सराप ते मरि हैं (करग)

३—भीर के परे ते घीर सवहिन तभी (करण)

तल का 'तन' प्रयोग ओर के अर्थ में भी चलता है। इस तन नहीं पेलत (२४८४) इमारी ओर नहीं देलते।

अपभ्रश के नारण का सहुँ परसर्ग बाद में सउँ > सी के रूप में बज में प्रयुक्त हुआ।

१-- मह सहुँ निव तिल तार (४। ३५६ हेम०)

र-जह पवसन्तें सहुँ न गय (४। ३१६ हेम०)

यहाँ सहुँ का अर्थ मूल्तः सह या साथ ही है, उतका तृतीया का 'से' अर्थ बोच तवतक प्रस्कृतित नहीं हुआ था, बाद में हस्ते साथ सूचक से कर्तृत्व सूचक स्प से किया ।

(१) नासों कहे पुत्रारी (सर ३६८०)

(२) हरि माँ मेरो मन अट्ब्यो (सूर ३५८५)

(३) अब हरि भीने सा रित बोरी (सूर ३३६१)

सर्वेनाम—

§ ६३. देम-ब्याइश्य-आराध्य के सर्वनामों में न वेषक ऐते कर हैं को ब्रब्भामा के हिंदी हमार्थ के सर्वनामों के सर्वनामों के सर्वनामों के सिवान के सर्वनामों के निर्माण में विचित्र प्रमार के सामित करने के स्वति हमार के सामित करने हैं वा नीचे अगम्रध और म्रवमाय में नहीं बहित वा, ता, वा प्रमार के सामित करने से वति हैं। पुरुष्वाचक सर्वनाम के उत्तम पुरुष के सर्वनामित करने के उताहर प्रमुख विचे वाहे हैं। पुरुष्वाचक सर्वनाम के उताहर प्रमुख विचे वाहे हैं। पुरुष्वाचक सर्वनाम के उताहर प्रमुख विचे वाहे तो हैं। पुरुष्वाचक सर्वनाम के स्वति हों के स्वति हों।

- (३) धाइ चक लै ताहि उबारमी (सूर)
- (४) श्रर्जुन गये यह वाहि (सूर॰ सारा॰) (५) वार्सी नेह लगायो (स्र)
- वे,उन आदि रूपों के लिए भी इन अन्त्रंश का 'ओर' सर्वनाम देख सकते हैं--
 - (१) वो वड़ा घर ख्रोह (XI3EX) (२) वे देखो आवत दोऊ नन (३६५४ सूर० सा०)
 - (३) वह तो मेरी गाइ न होइ (२६३३ सूर० सा०)

सर्वनामों की दृष्टि से बदमापा को सबसे बड़ी विशिष्टता उसके साधित रूप हैं। जिनमें परसर्गों के प्रयोग से कारकों का निर्माण होता है, वाकी, वाकी, बाकी, वाने, वाने, आदि रूप । इस प्रकार के रूपों का भी आरम्म अपभ्रंश के इन दोहों की भाषा में दिखाई पडता है।

बा वप्तो की महहडी (४।३६५)

इसी बा में को, सीं, तै श्रादि के प्रयोग से बाकी, बातै, बासी आदि रूप बनते हैं। का के अलावा संबन्धवाचक 'यद' के अन्य भी रूप अपभंश से ब्रब में श्राये । जिनमें को (४१३२०) देण (४१४१४) जास (४१३५=) जस (४१३७०) जाह (४१३५३) आदि रूप महत्वपूर्ण हैं। इनके बच में प्रयोग निम्नव्रकार होते हैं।

- . (१) घर की नारि बहुत हित बार्सी (सूर)
- (२) बामु नाम गुन गनत हृदय ते (सर)
- (३) आ दिन वें गोभात चले (४२६२)

प्रश्नवाचक सर्वनाम क्वण (४।३५०) क्वणु (४।३६५) क्वणेण (४।३६७) क्रमशः कौन, कोनो और कवर्ने का रूप लेते हैं। ये सर्पनाम अनमापा में बहुतायत से प्रयक्त हुये हैं।

- (१) कौन परी मेरे टाटाई वानि (१८२६) (२) क्रीने दाध्यो डोरी
- (स्र) (३) कही कीन पै क्टूत कृत्हो
- (स्र) (४) दिन नम बाध्यो महेरी
- (सर)

सर्वनामिक विशेषण--

§ ६४. पुरपञचक और निवनाचक इन दो प्रकार के सर्वनामोंको छोडकर बाकी सभी प्रकार के सर्वनाम विशेषणवत् प्रयुक्त हो सकते हैं। पिर मी बाद वाले दो मुख्य सर्वनाम विशेषण बाने माते है।

अइसो (४।००३<ईटराः) यह प्रकार-सूचक सर्वनामिक विशेषण है । दूसरे परि-माण स्वक एवडु (४।४०८ < इयत्) तया एनुहो (४।४०८ < इयान्) हैं। सहस्र के ऐसा, ऐसे, ऐसा रूप बनते हैं बनकि एत्त्रों से एती, इती, इतनी, आदि ।

- (१) एती इठि अव छांडि मानि री (स्र०३२११)
- (२) द्रम वितु एती हो हरे (ब्रब दिश)
- (३) ऊथौ इतनी बहियो बाह (सूर० ४०५६) (१) ऐसो एक बोद की हेत (सूर॰ ४५३७)

- (३) धाइ चक है ताहि उबारयो (सूर)
- (४) श्रर्जुन गये यह वाहि (सूर० सारा०)
- (५) वासी नेह हमायो (स्र)
- वे,उन आदि रूपों के लिए मी हम अरभ्रंश का 'ओर' सर्वनाम देख सकते हैं-
 - (१) वो बड्डा घर झोड (४।१६४) (२) वे देखो आवत टोऊ चन (१६५४ सूर० सा०)
 - (२) व देखा आवत वाज चन (२६५४ सूर० सा०) (३) वह तो मेरी गाइ न होह (२६३३ सूर० सा०)

सर्वनामी की दृष्टि से मनमापा को स्वसे बड़ी विशिष्टता उसके सारित रूप हैं। जिनमें परसापी के प्रपंत से भारते का निर्माण होता है, ताकी, जाकी, जाकी, जाने, जाने, जाने, जाने, कार्ति रूप ! इस मुक्तर के रूपों का मी आरम्भ अपभूष्ट के इन दोरों की मापा में दिवाई पढ़ता है।

चा वन्ती की सुदृहडी (४१३६५)

इसी वा में को, की, तै आदि के प्रयोग से वाकी, जाती, वार्सी आदि रूप बनते हैं। या के अश्वास संरम्पायक 'पद्द' के अन्य मी रूप अरम्भेण से मत्र में आये। बिनमें भी (११३२०) बेग (१४४४) बात (११३८०) बातु (११३००) बातु (४१३५३) आदि रूप महत्त्वपूर्व हैं। इनके सब में प्रयोग निम्मद्रहार होते हैं।

- (१) घर की नारि बहुत हित बार्सी (स्र)
- (२) बागु नाम गुन गनत इदय ते (सूर)
- (३) आ दिन वें गोपात चले (४२६२)

प्रश्नवाचक कर्ननाम कवण (४१३५०) त्रवणु (४१३६५) कवणेल (४१३६७) क्रमणः क्षेत, क्षेत्रो और कवर्ने का रूप लेते हैं। ये सर्रनाम अवमाणा में बहुवायत से प्रयक्त हुये हैं।

- (१) कौन परी मेरे व्यहहिं वानि (१८२६)
- (२) कीने बाध्यो डोरी (सर)
- (३) नहीं कीन पै सदत कर्की (स्र)
- (४) हिन नम बाध्यो महोरी (स्र)

सर्वनामिक विशेषण--

§ ६४. प्रथमाचक और निकासक इन दो प्रकार के सर्वनामीको होउकर बादी हमी प्रकार के सर्वनाम विरोपनवत् मथुक हो सकते हैं। तिर मी बाद बाले दो मुख्य सर्वनाम विरोपन बाने माते हैं।

अरसे (४।४०२८ इंट्यः) यह प्रकारसूचक वर्गनिकि विरोपण है। दूसरे परि-माण सूचक प्रतु (४।४०८८ इस्तु) तथा एनुसे (४।४०८८ इसान्) हैं। अरस के ऐसा, ऐसे, ऐसी वर बनते हैं बनकि एनुसे से एती, इसी, आरि।

- (१) पत्ती इंडि अब खांडि मानि री (स्ट०३२११)
 - (र) द्रम वित एती को करें (अब क्रिंग)
- (३) ऊघी इतनी कृहियो बार (स्र० ४०५६)
 - (१) ऐसी एक कोद की हेत (सूर० ४५६७)

परमारा की छोड़ दिया है। हिन्तु कब में वह पूर्वेनन् सुरवित है। केवल अन्तिम संवसुक रारी को संवक्त करके अहर्रे वा अउर्जी कर दिया बाता है।

(१) निच्छद कसह जाम (४।३५८)

निहिचे रूसे बागु

(२) तलि घल्छा स्यगाइं (४१३३४) मात्र पितु सक्ट घाँछै (तुर० ११३१)

(३) उच्छमि धरेइ (धरे) (४)३२६)

(४) जो गुण गोयइ अपगा लाजनि अखियनि गोवे (सुर ६६५)

(५) हउ विं किंचाउं (४।३३८)

(६) ही थिल जाउं (सर० ७२३)

बहुरचन में प्रायः हि विभक्ति चलती है को ब्रजभाषा में भी प्राप्त होती है । मल्ल बुरुफ समि यह करहिं (४।३८२)

पूरी पक्ति जैसे ब्रजमामा की ही है। ब्रज में यही आहर > ब्रह्म होकर ऐं हो जाता है को चर्ते करें आदि में मिलता है।

(ग) भविष्यत् वाल में ब्रजमाया में ग-वाले रूपों की श्रिविकता दिलाई पटती है किन्तु 'ह' प्रकार के रूप मी कम नहीं हैं वो व्यति>न्मइ>इइ>है के रूप में आए। श्रवप्रश में इह बाले रूप मात होने है।

'निर्प गमिरी राज्ये' का मिन्दी गमिर्द होकर सब में प्रमुक्त होता है किन्तु अधिकारातः, बाददै (गमिर्दे का रूपानार बाददे) का प्रशेग दोता है। आगे बुळ समता स्वक रूप दिये जाते है—होदिर (४१३२= होददे) देमचन्द्र ने प्राञ्चतारा में सप्टतः मनिष्य के लिए इदि का प्रयोग किला है।

'मिप्यति दिन्मिदिइ, इदिहिइ' (२।४।२४६)

इस डिहिट्स कर डिहेर्ड अब में अत्यन्त प्रचिन्त है। उसी तरह पठिहिट्स (अ॰ १७७ पटिर्दे)।

(प) नन्य व्याप मायाओं में छत्क किया का अरना अरना द्या का निरास हुआ है। भूत कुरन्त अशामिया निया तथा नियायक क्रियापरों तथा अन्य क्रिया के तिङ्क्त रूपों की मदद से ये रूप नियन्न होते हैं।

> पहिंग रहन्तउ जाइ (४।४४५) इन्ह बद्द्यों न जाइ (सूर)

तुम अहि नामो कहत बनाइ (सूर ३६१७)

भूतराष्टिक से---

मग्गा घर एन्तु (४।३५१) नैना कहारे न मानत (सूर) बंदे बात माँगत उत्तराई (सूर) परम्परा की छोड़ दिया है ! क्लि बज में यह पूर्वेन्द् सुरव्वित है ! केवल अन्तिम संप्रमुक्त स्वरी को संयुक्त करके अइ > ऐ या अउ > औ कर दिया जाता है।

(१) निरुद्ध स्तसह जामु (४।३५८)

निहिचे रूमे बाम

(२) तलि घरूलइ स्यगाई (४।३३४) मान पित सक्ट घाले (सूर० ११३१)

(३) उच्छगि धरेइ (धरे) (४)३३६)

(४) ना गुण गोवह अपगा

साजनि असियनि गोवै (सुर ६६६)

(4) हउ बलि कि**टाउं** (४।३३८)

(६) ही घींल जाउं (सर० ७२३)

बहुउचन में प्राय: हि विमक्ति चलतो है जो बजमापा में भी प्राप्त होती है। मन्छ जाम्स समि राह करहि (४।३८२)

पूरी पक्ति जैसे जनभाषा की ही है। जन में यही अहिं> ऋदं होकर पें हो जाता है स्रो नर्लें करें आदि में मिलता है।

(ग) भविष्यत् वाल में ब्रजमापा में गन्याले रूपों की ग्राधिकता दिलाई पडती है किन्तु 'ह' प्रकार के रूप भी कम नहीं हैं जो ध्यति>स्मइ > इइ > है के रूप में आए । ख्रयस्र में हड़ बाले रूप प्राप्त होते है।

'निरंप गमिरी स्वदी' का ममिरी गमिरै होकर वज में प्रयुक्त होता है किन्तु श्चिष्ठागत । बाइडै (गमिडै का रूपान्तर बाइडै) का प्रयोग होता है । आगे वुळ समता सनक रूप दिये जाते है—होहिइ (४)३३८ होइहै) हेमचन्द्र ने प्राञ्चतारा में स्पष्टतः भनिष्य के लिए दि का गरीम किया है।

'भिनिष्यति डिफिडिइ, डिइडिइ' (२)४१२४६)

इस इटिडिट का रूप डिहिट बन में ऋत्यन्त प्रचलित है। उसी तरह पतिहिट (अ० १७७ पहिंहै)।

(घ) नन्य आर्य मापाओं में समुक्त किया का आना अन्तादग का निरास हुआ है। भूत कुदन्त असमिविका निया तथा नियार्थक कियापरी तथा अन्य किया के तिहन्त हवी की मदद से ये रूप निष्पन्न होते हैं।

> पश्चि रडन्तउ जाइ (४।४४५) क्छ कही न जाइ (स्)

तुम अहि नाम्रो कहत बनाइ (सूर ३६१७)

भवशास्त्रिक से-भग्गा घर एन्त्र (४)३५१)

> नैना कह्यो न मानत (धर) वदे बात मॉॅंगन उतराई (स्र)

प्रयोग में ऋति थे। हेम व्याइरण के दोही में प्रयुक्त इन राज्दों की सख्या भी कम नहीं है, वैसे हेमबन्द्र ने इन शब्दों के महत्त्व को स्वीकार करके ऋतम देशीनामनाला में इनका संकतन किया।

हुँ ६ःम. भीने प्राकृत व्याकरण के महत्वपूर्ण तद्भव और देशन के कुछ उटाइरण दिये बाते हैं । इन शब्दों में से कुछेक की सस्कृत व्युत्तित मी हूँची वा सकती है ।

(सर० को०े १७६) ओखरी ओक्खल १११७७ कॉपल और कॉम (सूर० की० ६५) शर६ कम्पल चहुदिस साई गहिर गमीर (प्र॰ चरित) ४।४२४ खाई खाइ मेरे नवननि ही सब खोरि (स्र) ४।४१६ खोरि,चुटि बोडि गडहा, गट्ट (ध्रूर० को० १६८) गड़ो રારૂપ गट्टा ह्ययुआना (सूर० को० ४५६) ४।४२३ बुडकी चुग्पिउ दियौ तुरत नौवा को घुरकी (१०१८०) (स्०को० ५२३) चूडल्डउ ४।३६५ चूडी हैटनि को सग यी पिरैं (सर श४४) छइल्ल ४।४१२ छैला छुत्री छाडि महिनया दिष को (१०।२६०) હુચ્હ श२०४ इन्हा प्रश्न तम्हारे छुळे ४।४१६ भोगडा (सुर० को० ६८) भुग्दर एक डार के से तारे (३०५६) नवरग दूलह ४।४४५ हाङ, हार डारु रास रच्यो (कंभनदास ३८) तिरहै है नु अरे (सर) तिरिच्छी श्रप्रश्च तिरह्यी २।२०० क्रतायानिपातः थृष् યૂ श१२२ थुनी बहु प्रयुक्त थूणा नवेली मृतु नवड पिय नव निकुत है री नवस्त्री रा१६५ नवेली (३०७१) कैसी बुद्धि रची है नोखी (सूर २१६०) **४**।४२० नोखी नवस्ती नारि पराई देखिनै (स्॰ सा॰ २१६५) पराई ४**।३५**० परकीया वहा वापुरो वचन कदली (कुमन १६८) ४।३८० वापुरो बप्पुडा लाडी कबहु न छाडिये (गिरघरदास) ल्ट्डी ११२४० राठी ४।४२३ छगरी लोहडी बहु प्रयुक्त लुगरी ४।३३० विहान विदान, सबेध विद्यार सलेपी ४।४२० सलोनी **बहाँ तै आई परम सलोनी नारी** (स्० सा० २१५६)

देशी माममाला, दितीय संस्करण, थ॰ भी वरवस्तु वेंक्ट रामानुबस्वाभी, पूना, १६६६

२. वजभाषा सुर कोश, स० प्रेमनारायण टंडन, उखनऊ, २००७ सम्बत्

प्रयोग में आते थे। हेम व्याकरण के दोहों में प्रयुक्त इन राज्दों की संख्या भी कम नहीं है, वैसे हेमचन्द्र ने इन शब्दों के महत्त्व को स्त्रीकार करके अलग देशीनाममाला में इनका संकलन किया।

§ ६≈. मीने माइत व्याकरण के महत्वपूर्ण तद्भव और देशन के कुछ उटाहरण दिये बाते हैं। इन शब्दों में से कुछेक की सरहत ब्युटार्ति भी हुँदी बा सकती है।

(सर० को०े १७६) ओक्खल ओखरी शश्च कोंपल और कोंप (सर० को० ६५) कुम्पल शरह चहुदिस साई गहिर गमीर (प्र॰ चरित) ४।४२४ खाई खाइ मेरे नयननि ही सत्र खोरि (यूर) खोडि ४।४१६ खोरि,बुटि गडहा, गड़ (स्र० को० १६८) गड्डो रा३५ गृहा बुबुआना (सूर० को० ४५६) ४।४२३ घुडकी घग्धिउ दियो तुरत नीवा को घरकी (१०।१८०) (स० को० ५२३) चूडल्लउ ४।३६५ चूडी हैंदनि को संग यी पिरें (सूर १।४४) वहल्ल **४**।४१२ हैंबा हुं क्री छाडि मद्रकिया दिष की (१०।२६०) હુંચ્છ श२०४ इंद्रा प्रश्न तम्हारे छन्ने भुगदा ¥188£ भोपड़ा (सर० को० ६८) एक डार के से तारे (३०५६) नवरंग दलह डाढ ४।४४५ हाङ, हार रास रच्यो (कुंभनदास ३८) तिरहै है जु और (सूर) तिरिच्छी ४।४१४ तिरछी યૃ २।२०० कुत्सायानिपातः थृध् थूणा शश्चर थ्नी बह प्रयुक्त नवल्ली रा१६५ नवेली नवेली मुनु नवल पिया नव निकृत है री (३०७१) नवस्ती ४।४२० नोखी कैसी बुद्धि रची है मोखी (सूर २१६०) पराई ४।३५० परकीया नारि पराई देखिके (स्० सा० २१६५) षपुडा ४।३⊏० वापुरो कहा वापुरो कंचन कदली (कंभन १६८) लड्डी ११२४० हाठी खाठीं कबहु न छाडिये (गिरधरदास) लोइडी ४।४२३ छुगरी बहु प्रयुक्त हुगरी _विद्वारा ४।३३० विहान विद्यान , सवेरा सटोणी वहाँ तै आई परम सलोनी नारी X1X50 सलोनी (स्॰ सा॰ २१५६)

देशी नाममाला, द्वितीय संस्करण, सं॰ भी परवस्तु बँकेट रामानुबस्तामी, पूना, १६६

२. धजभाषा सुर कोश, सं० प्रेमनारायण टंडन, उखनऊ, २००७ सावत

गुची	२१११०	शिरोक्त्यनम् । पाटाम्बर गाती सव दिये (स्र)
गोन्छा	રાદ્ય	गुन्छा (सर० को० ४००)
गोहुर	राह्	गोहरा (सुर० को० ४३४)
धग्धरं	२११०७	जवनस्य वस्त्रमेदः घषरा मोहन मुसुकि गरी दौरत
		में छूटी तनी छुद रहित घाषरी (२६३६)
पट्टो	२।१११	नदीतीर्थम् । घाट रार्यो तुम यहै जानि के (स्र)
धम्मोइ	२११०६	गुण्डुत्सहतृणम् (सूर० कोश ४४६)
चग	\$18	चगा, ठीक, । रही रीक्त वह नारि चगी (सूर)
খাবলা	₹∣⊏	चावल, ब्रब॰ चाउर (सूर॰ कोश॰ ४६६)
ચોદી	₹११	चोडी, मैया कव बहिद्दे मेरी चोडी (सर)
छुइझो	शर्थ	छुला, हैलनि के संग या भिरे जैसे तनु
		संग छाई (सूर० १।४४)
छलियो	\$15X	छुलिया, जिन चसनि छुलियो बिल सजा
		(\$ 0 \$ x \$)
छासी	\$15.K	छोड़, भये छाड़ के दानी (३३०२)
डि ण्णाली	३।२६	हिनाल, बार: । चोरी रही छिनारी श्रव भयो
		(सर, ७७३)
भलो	३।५३	भंदा, भारत यशोदा जननी तीर (१०।१६१)
भडी	३।५३	निरन्तरवृष्टिः, (सूर० को० ६४=) झनपर
		गई नेकन भारि (६७३)
भाड	र १५७	स्तागइनम् (सूर को० ६५१)
क्तिहारिश्रा	३।६२	भिज्ञी (सूर को॰ ६६१)
भौलिआ	३।५६	भोली, बहुआ भोरी दोक श्रधारा
		(≨ 5⊂x)
दक्षी	Alf	निर्धनः, बेनार, ऐसी को दाली वैसी है
		तों तो मूड चयवे (३२८०)
डोश	X {{	शिविका, (स्र की० ७२४)
होरी	३।५⊏	स्त्रम्, डोरा । तोरि रुपौ मन्दिह् की डोरी
		(ब्र २।३०)
पप्पीओ	६११३	बहुत दिन बीग्रो पपीहा प्यारे (सूर)
पञ्ज	६ा≒२	माग, इरि सग खेळन मागु चली (सूर० २१८३)
बप्पो	६।८८	वाप, भागा। बाबा मों की दुहुन सिखायी
		(सर ३३=५∖

(स्ट १२०२४) बाउझो ७)४६ बावरी, बाबरी बाबरी नैन, वाबरी बहाँ थो छव बॉमुरी सी तू करें (स्ट १६०८) हु ७०० रह प्रस्पा में देसचन्द्र के ब्याकरण में युग्त देवी धातुओं हा भी विचार होना बाहिए। अरसरा में बुख अरस्त महस्वपूर्ण देशों क्याओं हा इस्तेमाल हुआ है, जो

3

गुची	शहरव	शिरोक्यनम् । पाटाम्बर गाती सव दिये (सूर)		
गोन्छा	રાદ્ય	गुन्ह्या (सरव को० ४००)		
गोहुर	7.154	गोहरा (सुर० को० ४३४)		
धग्परं	21200	जवनस्थ बस्तमेदः घषरा मोहन मुसुकि गही दौरत		
		में छूडी तनी छुद रहित घाषरी (२६३६)		
षष्टी	२।१११	नदीतीर्थम् । घाट रार्यो तुम यहै जानि के (सूर)		
धम्मोह	२।१०६	गण्डत्सग्रतणम् (स्र० कोश ४४६)		
चग	शार	चगा. ठीक. । रही रीभ्र वह नारि चर्गा (स्र्र)		
খাৱলা	३।⊏	चावल, ब्रज्ज० चाउर (स्र० केश ० ४६६)		
ચોટી	318	चोडी, मैया कब बरिदे मेरी चोडी (सर)		
छुरस्रो	₹।२४	ब्रेंबा, हैबनि के संग या पिर बैसे तनु		
.,		संग हाई (सूर० १।४४)		
छलिया	\$15x	छुहिया, जिन बरानि छुहियो बिट राजा		
-,		(१०।१४१)		
छासी	३।२४	द्यांड, मये द्यांड के दानी (३३०२)		
खिणाहो	३।२६	हिनाह, जार: । चोरी रही हिनारी श्रव भवी		
		(सर, ७७३)		
भूतवी	રાપ્રવ	भंदा, भारात यशोदा जननी तीर (१०।१६१)		
भही	३/५३	निरन्तरवृष्टिः, (सूर० को० ६४=) जनपर		
		गई नेक स भग्नरि (६७३)		
भाड	राष्ट्र	स्तागहनम् (सूर को० ६५१)		
िरुहिसिश्रा	३।६२	भिज्ञी (सूर को० ६६१)		
भौलिआ	३।५६	म्होली, बदुआ भ्होरी दोज श्रथारा		
		(₹₹⊏४)		
दक्षी	YIY	निर्धनः, बेकार, ऐसी की दाली वैसी है		
		तों तो मूड चयवे (३२८०)		
क्षेश	4155	शिविका, (स्र को० ७२४)		
होरी	३।५⊏	सूत्रम्, डोरा । तोरि रूपी क्टिहू की डोरी		
		(सर २१३०)		
पप्पीओ	₹।१३	बहुत दिन जीश्रो पपीहा प्यारे (सः)		
कारी	६।≍२	पाग, इरि सम खेलन पागु चली (स्र० २१८३)		
बप्पो	واحتد	वाप, यात्रा । बादा मों की दुहुन सिखायी		
		(सर १२=५)		
बाउल्लो	७।५६	वावरी, वाबरी बाबरे नैन्, वाबरी वहाँ धो		
		श्चव बॉमुरी सो तू सरै (सर १६०=)		
§ ७०. इस प्रस्प में हैमचन्द्र के व्याकरण में प्रयुक्त देशो धातुओं वा भी विचार				
होना बाहिए। अपभ्रश में बुख अत्यन्त महस्वपूर्ण देशी क्रियाओ का इस्तेमाल हुआ है, जी				
2				

3

इत पति में में इ और बडवान र दोनों का प्रथमा में निर्विमक्तिक प्रयोग हुआ है। नीचे कुछ स्तुरुनात्मक प्रयोग उपस्थित किये बाते हैं—

प्रथम —

- (१) नायर एम्ब भएन्ति (४।३७७)
- (२) घण मेलर नोमामु (४१४३०)
- (३) मोहन जा दिन बनाई न जात (सूर० ३२०२) (४) स्रोचन नरमरात हैं मेरे (समन० २१८)

दितीया---

- (१) सन्ता भोग जु परिहर**इ (४।३८**६)
- (२) बह पुच्छह घर प्रदृहाह (४)३६४)
- (३) पत्त लिहिब्रा भुवन्ति (४।३३५)
- (४) निरलि कोमल चार मूरति (सूर० २०३६) (५) काहे बावति नाहिन छुटे केस (कुमन ३०४)

अपप्रता में करण, अविकरण और अवादान के निर्विमित्तक प्रयोगों का एकदम अमाव है। सम्बन्ध में इस तरह के निर्विमित्तक प्रयोग बहुत मित्रते हैं। किन्तु वहाँ समस्तपद की तरह ही प्रयुक्त हुए है। अपस्रह्म में अधिकरण में इक्षरान्त प्रयोग मिन्त्रे हैं। बैसे ताबि, यहि, घरि आदि वे रूप उध्याप शीवर्ष के लिए धाद में या तो अक्षरान्त रह गए या उनमें ए विमित्त का प्रयोग होने लगा। इस तरह ब्रवमाणा में बुख रूप निर्विमित्तक दिराई पढते हैं। इस रूपों में ऐ व्याकर परे, हारे, आदि स्वान्तर बन बाते हैं। ब्रबमाणा में प्राय प्रत्येक कारक में निर्विमित्तक प्रयोग प्राय होते हैं।

२—विभित्यों के प्रयोग के नियमों की शिथिण्या की बात पहले नहीं जा जुकी है। इस शिथलता के कारण बुक्त विशिष्ट प्रकार के बारक प्रयोग भी दिसाई पहते हैं। अपभ्रश्य में हत मना दे निभक्ति ज्वस्य के उठाहरण पर्योग माना में मिलते हैं। देशमण्य ने प्रश्न में हत मना दे निभक्ति ज्वस्य की लिखते निया था। पृष्ठी नियमित का प्रयोग एकपिक कारका भा भाव व्यक्त करने ने लिए किया जाता था, हक विषय में उन्होंने स्टार करते किया है। चहुच्यों स्थाने प्रश्न मनती हित्या की हित्या में हित्या में हित्या में हित्या में हित्या में हित्या मीर प्रश्न मी प्रयोग होता था। दित्या और तृत्योग और प्रवास में मनती (अधिकरण) का प्रयोग भी प्रवास होता था। अधिकरण अर्थ में दित्या वा स्योग मी चलता था। प्राप्त श्रीरहेनी) की प्रवास प्रश्न की अधिकरण अर्थ में मित हुई। विभक्ति व्यवस्य के उठाहरण हैम्मवाकरण के अभ्रश्न देशों में कम नहीं पिनते । हवी मुक्ति का विकास क्रमाण में मी हुआ। अपभ्रश्न में क्य, भए आहि कियाओं के साथ कमें हमेशा दिवीया में ही होता था, किया अपभ्रश्न में क्य, भए आहि कियाओं के साथ कमें हमेशा दिवीया में ही होता था, किया अपभ्रश्न में क्य, भए आहि कियाओं के साथ कमें हमेशा दिवीया में ही होता था, किया अपभ्रश्न में

¹ चतुथ्याँ पष्टी हैमव्याकरण =।३।१३१

२. पर्छा कविद् द्वितीयादे ।३।१३७ द्वितीयातृतीययो सप्तमी ३।१३५ पञ्चन्यास्तृतीया च ३।१३६ सप्तम्या द्वितीया ३।१३७

इस पति में मेह और बडवान व दोनों का प्रयमा में निर्विनक्तिक प्रयोग हुआ है। नीचे कुछ स्थलनात्मक प्रयोग उपस्थित किये चाते हैं—

प्रथमा---

- (१) कायर एम्ब भएति (४।३७७)
- (२) घण मेलद नीमानु (४१४२०)
- (३) मोइन सा दिन वनहि न जात (सूर० ३२०२)
- (४) छोचन नरमग्रत हैं मेरे (नुमन० २१८)

द्वितीया---

- (१) सन्ता भोग जु परिहरड (४।३८६)
- (२) मइ पुन्छइ धर मङ्हाइ (४१३६४)
- (३) पस लिहिया सुबन्ति (४।३३५)
- (४) निरित्व कोमल चार म्रिति (स्र० ३०३६)
- (५) बाहे वापति नाहिन धूटे केस (कुमन ३०४)

अपन्नता में फरण, अविकरण और अपादान में निर्मितिक प्रयोगों का एकरम समाव है। सम्बन्ध में इस तरह के निर्विमित्तक प्रयोग बहुत मिलते हैं। किन्तु वहाँ समस्तपद की तरह ही मुद्दक हुए है। अपन्नत्र में अधिकरण में इकारान्त प्रयोग मिन्त्रों हैं। बैसे ताहि, पहि, परि आदि से क्याचण सीक्ष्म के लिए धाद में या तो अन्तयन्त्र रह गए या उनमें ए विमित्त का प्रयोग होने लगा । इस तरह बन्नापा में मुख्य रूप निर्विमित्तक दिखाई पडते हैं। इस हस्यों में ऐ त्यावर परे, होरे, औदि स्थानतर दन बातों हैं। जननापा में प्राय• प्रत्येक कारक में निर्विमित्तक प्रयोग प्राय होते हैं।

र—विमतियों के प्रयोग के नियमों की शिभिन्या की यात पहले नहीं वा जुकी है। व्यास विस्तित के आप बुद्ध विशिष्ट महर्स के नारक प्रयोग भी दिराई पहते हैं। व्यास्थ्र में हम महार वे विमति-व्यास के उदाहरण पर्यांत मात्र में मिक्दे हैं। हमक्य में महर्म महर्म वे विमति-व्यास के उदाहरण पर्यांत मात्र में मिक्दे हैं। हमक्य में महर्म पर्यांत मात्र में मिक्दे हैं। हमक्य में महर्म पर्यांत पर्यांत मात्र में मिक्दे हैं। हमक्य के उद्योग किया था। पृश्ची मिक्द माने देवना है वहीं विदिया में लिए भी पढ़ी भागते । मिक्दे मुण्यान हम माने देवना है वहीं विदिया ने लिए भी पढ़ी भागते होता था। दिनीय और तुर्वाण और मामे देवना हम विद्यांत के लिए भी पढ़ी भागत होता था। दिनीय और तुर्वाण और मामे विस्ता भी मिक्दे विद्यांत के उदाहरण हमामे में दितीय में प्रयोग भी मामे क्षा प्रयोग भी मामे हमाने प्रयोग भी मामे मामे हमाने प्रयोग भी मामे के मामे के मामे हमाने में मामे में मिक्दे हमें हमें मिक्दे में मिक्दे में मिक्दे प्रयोग भी मामें मिक्दे में मिक्दे मिक्दे में मिक्दे में मिक्दे मिक्दे में मिक्दे में मिक्दे मिक्दे में मिक्दे मिक्दे में मिक्दे मिक्दे मिक्दे मिक्दे में मिक्दे मिक्दे में मिक्दे मिक्दे में मिक्दे मिक्दे मिक्दे मिक्दे मिक्दे में मिक्दे मिक्द

१ चतुच्यां वष्टी हेमस्याक्ररण कार्र।१२३

२. पश्चे क्रविद् द्वितीयारे । ११९१७ द्वितीयानृतीययो सप्तमी ३१९३५ पञ्चन्यास्तृतीया च ३।९३६ सप्तन्या द्वितीया १११३७

दोही, जोटन्ट के परमात्मप्रकाश और सन्देशरासक में दिलाई पडते हैं। यह प्रकृति परवर्ती भाषा में भी दिखाई पहती है।

- (१) पर भूजणहिं न जाइ (४।४४१ हेम०)
 - (२) त अक्लणह न जाइ (४।३५० हेम०)
 - (३) न घरण उजाइ (स॰ रा॰ ७१ क) (४) वहण न बाह (स॰ स॰ म१ क)
- इस प्रकार के रूप ब्रजभाषा में किञ्चित परिवर्तन के साथ प्राप्त होते हैं। (१) मो पै कही न जाइ (सूर० १८६८)
 - (२) क्छ समुभिः न जाइ (सूर० २३२३)
 - (३) सोमा वरिन न जाइ (क्रभन० २३)

५--वाक्य-गठन की दृष्टि से अपभ्रश के इन दोहों की मापा बज के और भी नज़दीक मादम होती है। मार्टव, सत्तेप, लोच श्रीर शब्दों के अत्यन्त विकसित रूपों के कारण इस भागा का स्वरूप भाग पुगनी ब्रज जैसा ही है। नीचे कुछ चुने हुए बाक्य उद्भृत किये जाते हैं--

अपभंग

घ्रज

- (१) अगदि अग न मिलिउ ४।३३२ (२) इउ किन बुत्यउ दुह दिसिहि ४।३४० (२) ही किन बुत्यों दुहँ दिसिहैं
 - (१) अगढ़ि श्रम न मिल्यो (३) पपीदा थिउ पिउ भनि क्सी स्वै
- (३) वप्पीहा विड पिड भणवि वित्तित्र चविह इयास ४।३८२ (४) जह ससणेही तो सुबह जह जीवङ
- इतास (४) जो ससनेही तो मुबै जो जीवे
- विवेह ४१३६७ (५) वपीहा कह बोलिएण निग्धिण

वारङ वार

- विन नेह (५) पपीड़ा के बोलिए निर्धण बारहि बार
- सायरि भरिया विमल जल सहर न
- सागर मरियो विभन्न जल सहै स एकी धार
- एकड घार ४।३८२
- (६) साप सलेगी गोरडी नवली क्वि (६) साथ सलोनी गोरी नोस्ती विसकै गाठि विस गरिठ ४१४२०

इस प्रकार की अनेक श्रद्धांलियाँ, पत्तियाँ, दोहे ब्रजभाषा से मिटते जुलते हैं। कुछ दोहों में राजस्यानी प्रभाव रे कारण ण, उ, ड, आदि वे प्रयोग अधिक हैं, भूत किया के

Sandes a Rasaka study pp 44-45

I The use of the infinitive with of (or and introgative particle) and off to denote impossibility of performing an action because of its extreme pature 13 peculiarity of Apabhramsa We find this construction in Hemchandra's illistrative stenzas and in the Parmatma Prakasa of Joindu The idom is current in Modern Languages

दोही, जोट्न्तु के परमात्ममनाश और सन्देशरासक में दिलाई पबते हैं। यह प्रकृति परवर्ती भाषा में भी दिलाई पहली है।

- (१) पर भूजगहिं न गाइ (४।४४१ हैम०)
- (२) त अक्लगह न बाइ (४।३५० हेम०)
- (३) न भरण इ जाइ (स॰ रा॰ ७१ क)
- (४) वहण न बाह (६० स० म१ क)

इस प्रकार ने रूप ब्रह्मभाषा में किदिन परिवर्तन के साथ प्राप्त होते हैं।

- (१) मो पै वही न जाइ (सूर० १८६८)
- (२) क्छु समुभिः न जाइ (स्र० २३२३)
- (३) सोमा दरनि न जाइ (कुभन० २३)

५—चाक्य-गठन की दृष्टि से अवभ्यत के इन दोहों को भाषा ब्रज के और भी नजटीक मार्स्स दोती है। मार्टन, सचेद, लोच और जन्दी के अस्तत निकस्ति करों के कारण इस मारा का सरूप प्राय पुरानी ब्रज जैसा हो है। नीचे बुछ पुने हुए बाक्य उद्दूत किये जाते हैं—

अपभ्रंश

- घ्रज
- (१) अगहि अग न मिलिउ ४।३३२ (१) अगहि श्रम न मिल्यो
- (२) इंड किन बुत्यंड दुहु दिसिंह ४१३४० (२) ही किन बुत्यें दुहुँ दिसिंह (३) वृष्पीहा पिड पिड मणवि किसिंड (३) वृषीहा विट पिड मलि किसी हती
- स्वहि ह्यास ४।३८२
 - हतास (४) जी ससनेही ती सुनै जो जीवे विन नेड
- (४) जह ससपेही तो मुबह बह जीवह बिनेह ४।३६७ (५) वप्पीहा कह बोह्मिएण निन्धिण जारह सार
- (५) पपीहा कै बेलिए निर्नृण बारदि थार सागर मरियो विमल बल सहै न एकी धार
- सायरि भरिया विमल जल हाइद न एकद घार ४१३८२ (६) साम सलेगो गोरडी नवस्ती कवि
 - स्लोगी गोरडी नवली कवि (६) साथ सलोनी गोरी नोखी बिसकै गाठि विस गिरिड ४१४२०

इस प्रकार की अनेक ग्रर्खास्थाँ, पत्तियाँ, दोहे द्रबभाषा से मिलते जुलते हैं । कुछ दोहों में राजस्थानी प्रभाव ने कारण ण, उ, ड, आदि के प्रयोग अधिक हैं, भूत किया के

I the use of the infinitive with q (or and introgative particle) and grig to denote impossibility of performing an action because of its extreme nature is peculiarity of Apabharams. We find this construction in Hemchandra silistrative stemas and in the Parmatrua Prahasa of Jondon The idom is current in Nodem Languages

Sandes a Rasaka study pp 44-45

संक्रान्तिकालीन् व्रजभाषा

(बिक्रमी संवत् १२०० से १४०० तक)

§ ७२. आचार्य हेमचन्द्र के समय में हो शौरसेनी अपभंश जनता की भाषा के सामान्य आसन से उत्तर चुछ था। प्राचीन परस्या के पाठन करते वाले बहुत से किंव आचार्य अप मी साहित्वक अपश्रश में रचनाये करते है। रचनाओं का यह कम १० किंव शासाय अप मी साहित्वक अपश्रश में रचनाये करते है। रचनाओं का यह कम १० किंव शासाय ते क चलता रहा। हैमचन्द्र के समय में शौरसेनी अपभ्रश चुछ योड़े से विशिष्टजन की भागत रह गया था, यह मत कई माणिवतों ने व्यक्त किंवा है। प्राइत पैंसकम् भी भाषा पर विचार करते हुए डा॰ एठ॰ पी॰ तेसीतोरी ने व्यक्त किंवा है। क्षाइत पैंसकम् भी भाषा पर विचार करते हुए डा॰ एठ॰ पी॰ तेसीतोरी ने व्यक्त किंवा है। विचार पर दिव्य दिवा है यह उत्तरे पहले को है इस्तिय हम पाण्या के पीठ विचार करते हैं। है जि तेसीतोरी की इस मान्यता के पीठें जो तक है, वह बहुत पुष्ट नहीं माल्या होता है मान्यत्र व्यक्तर में मीवित या प्रचलित अपभंश में भी चर्चों कर सहसे मुंदर होता है हम उत्तर की स्वाप्त में मान्यता है सामक्ते । डा॰ तेसीतोरी का तूसर सहस्व क्षत्र होती होती का तूसर सहस्व हम साम स्वाप्त स्व के उद्दारण लिला वार्ष है वह हमन्यन्त के अपश्रेश से अपिक स्वित सामाण में पत्त के अवस्य से विचारणीय है। वे आपी विवत हम किस्तिता पत्ता वे ता वार वित हम के उत्तर पत्ता ती है, इस सरस हम सम्बद्ध से सहस्वपूर्ण विश्वेतता के उत्तरते की सीतित रखते हुए में वर्तमान कर्मवण्य का स्व उद्दुत कर सकता

^{1.} तेसीतोरी; पुरानी राजस्थानी, हिन्दी अनुवाद, ना० प्र० सभा, १६५६ ई०, ए० ५

संक्रान्तिकालीन व्रजमापा

(बिक्रमी संवत् १२०० से १४०० तक)

है ७२. आचार्य हेमचन्द्र के समय में हो शौरसेनी अपभ्रंश जनता की भाषा के सामान्य आसन से उतर चन्ना था। ब्राचीन परम्परा के पालन करने वाले बहत से कवि आचार्य अप भी साहित्यिक अपग्रश में रचनाये करते थे। रचनाओं का यह क्रम १७ वीं शताब्दी तक चलता रहा । हैमचन्द्र के सभय में शौरसेनी श्रपभ्रश कल योड़े से विशिष्ट्रजन की भाषा रह गया था. यह मत कई भाषाविदों ने व्यक्त किया है। प्राहत पैंगलम् की भाषा पर विचार करते हप, डा॰ एल॰ पी॰ तेसीतोरी ने लिखा है : हेमचन्द्र १२ वी शतान्दी ईस्वी (स॰ ११४४-१२२८) में हुए ये और सप्ट है कि उन्होंने जिस ऋपभ्रंश का परिचय दिया है वह उनसे पहले का है इसलिए. इस प्रमाण पर इम शौरसेन अपभ्रश की पूर्ववर्ती सीमा कम से कम १० वाँ शताब्दी ईस्वी रख समते हैं। हा० तेसीतोरी की इस मान्यता के वीले नो तर्क है, वह बहुत पुष्ट नहीं माञ्चम होता । हेमचन्द्र व्याकरण में जीवित या प्रचलित अपर्भंश की भी चर्चों कर सकते थे, फेवल इस आधार पर कि व्याकरण ग्रन्थ लिखने वाले पूर्वेवतां भाषा को ही स्वीकार करते हैं, इम ऊपर की मान्यता ठीक नहीं सम्फते । डा॰ तेसीतोरी ना दूसरा तर्क स्रवश्य ही विचारणीय है। वे आगे लिखते है—"जिस भाषा में पिगल सत्र के उदाहरण लिखे गये हैं वह हेमचन्द्र के ग्रपभंश से अधिक विकसित भाषा भी अवस्था मा पता देती है, इस परवर्ती अवस्था की केवल एक, किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता के उल्लेख तक ही अपने को सीमित रखते हुए में वर्धमान कर्मबाच्य का रूप उद्भृत कर सकता

^{1.} वेलीतोरी; पुरानी राजस्थानी, हिन्दी अनुवाद, ना० प्र० समा, ११५६ ई०,

पूर्व-किव मयोग, मतीति वैधम्म और श्रुति-मुख का मयोग निःसदेह माहत भाषाओं के विवरण में खाया है अतः इसका सीचा सम्बन्ध अपभ्रंश से नहीं माना का सकता इस प्रापति का विरोध करते हुए श्री दिवेतिया का कहना है कि हेमचन्द्र के अगुसार माहत के अनुसार आहते के अनुसार को सभी भाषाएँ आती हैं को एक के बाद एक दूसरे की महत मानी बाती है इसिक्ट इस पूर्व प्रमास करते हैं प्रमास को माहता के साहत का अनुसार के समाय ना सहत है से पूर्व में माया नहीं कहा है भी स्वी है ने के अभ्यास करते हैं। के सामाय नहीं कहा है भी स्वी के अभ्यास है के साहत है के सामाय नहीं कहा है भी स्वी के अभ्यास है के सुकर सामाय की सामाय नहीं कहा है भी सह स्वी है के सुकर सामाय है से सुकर है से सामाय सामा

3—तीवरे प्रमाण के लिये भी टिवेतिया ने प्राकृत या द्वर्पाश्रवशाव्य (कुमारपाल चिता) के आधार पर यह तर्क दिया है कि इस अन्य में प्रवारान्तर से प्राकृत व्याकरण के सूजों के उदाहरण भिलते हैं, यदि वस्तुतः अपभग्न छोकमाया थी तो इसके व्यावरणिक नियमों के उदाहरण इस तरीके से बनाने की कोई बरूरत नहीं थी।

हेमचन्द्र के समय में अपभ्रश जन-प्रचलित भाषा नहीं थी, इसे सिद्ध करने के लिए कपर दिए गए प्रमाणों की पुष्टि पर बहुत और नहीं दिया वा सकता । पहले और दूसरे तकी से यदापि लोक-प्रमाण की और संरेत मिलता है, यह भी ज्ञात होता है कि प्राकृतों के समय में भी छोत्र-भाषाओं की एक स्थिति थी जी साहित्यिक या शिष्टजन की प्राहर्ता के कुछ विवादात्पद व्यावरिएक समस्याओं के सुत्ताभाव के लिए महत्त्रपूर्ण समभी जाती थी। यहाँ श्रपभंश को प्राक्तों के साथ एकत करके 'लोकभाषा' की तीसरी स्थिति का अनुमान करना उचित नहीं मालम होता क्योंकि प्राङ्गतां के साथ बिसे हेमचन्द्र ने लोकमाया बढ़ा वे समयतः अपभूश हो थो । दिवेतिया का तीसरा तर्क अवस्य ही जोस्दार मान्यम होता है । हालाँकि इसना उत्तर गुलेरीजी बहत पहले दे चुके है। 'जिन श्वेताम्बर जैन साध्यों के लिए या सर्वसाधारण के लिए उसने व्याकरण लिखा वे सस्झत प्राझत के नियमों को, उनके सुत्रों की सगति को परों या बाक्य खण्डों में समभ्र लेते । उसके दिये उदाइएणों को न समभ्रतने तो सरकत और किताबी प्राञ्चत वा बाहमय उनके सामने या, नये उदाहरण हुँद रेते । क्लि अमभ्रश के नियम या समक्त में न आते । यदि हेमचन्द्र पूरे उदाहरण न देता तो पढ़ने वाले जिनकी संस्कृत और प्राञ्चत आकर ग्रंथां तक तो पहुँच थी किन्तु वो भाषा साहित्य से स्वमान वतः नाक-भा चढाते थे उनके नियमों को न समकते । गुनेरी जो के इस स्पटीकरण में कुछ तथ्य अवस्य है किन्तु उन्होंने यह निष्कर्ष सभावतः अपने समय में उपलब्ध अग्रमश की सामग्री को देखने हुए निकाला था, अपभ्रश के मी पचीको आफर प्रथ श्वेताम्बर जैन सायुओं की अपनी परम्परा में ही प्राप्त थे। गुलेरी जी के इस निष्कर्य का एक दूसरा पहलू भी है। गुलेरी ची प्राकृत के अन्तर्गत पूर्ववर्ता रूड अपप्रश की भी गणना करते है, हेमचन्द्र की प्राप्तश को तो वे अगन्नरा नहीं पुरानी हिन्दी मानते हैं। वे स्वयत्वा कहते हैं: विक्रम की सातवीं शताब्दी से स्थारहवीं तक अपभ्रश की प्रधानता रही और पिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई^र। इस प्रकार गुलेरी जी के मत से भी अपभूश पुराने अर्थ में हेमचन्द्र के समन तक

^{1.} पुरानी हिन्दो, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं० २००५, पूर्व २१-३० २. वही, पुरु स ।

पूर्व-किव प्रयोग, प्रतीति वैदम्म और शुति-गुल सा प्रवोग तिःसदेह प्राष्ट्रत भाषाओं के विवरण में ख्राया है अतः इतना तीचा सम्बन्ध समस्य सा वहीं माना सा सस्ता इस झ्यापित सा विदेश करते हुए भी दिवेतिया का कहना है कि देमचन्द्र के अनुसार प्राप्टत के अन्य एक दूसरे की प्रप्टत मानी वार्ती है इसलिए इस पूरे प्रमाण की प्राप्टता के साथ अनुसार के लिए मान सकते हैं। दूसरे देमचन्द्र ने वापने प्राप्टत के विद्यासणा में स्वाप्टत के लिए माना पर्दी कहा है और ना तो उसे वे लोक माना हो नहते हैं। अतः 'भागा' स्वाप्टत की र 'लोक्नोवयनन प्रा.' आदि का वर्ष दूसरा ही है यह तक्लालीन अनुस्रोत्तर देशामायाओं की और सकेत है।

3—तीवरे प्रमाण के लिये भी टिवेतिया ने प्राकृत या द्वपाश्यकाव्य (कुमारपाल चिति) के आधार पर यह तर्क दिया है कि इस क्रम्य में प्रकारन्तर से प्राकृत व्याकरण के सुनों के उदाहरण भिलते हैं, यदि चलुतः अवन्त्रर ओक्रमाया थी तो इसके व्याकरिण कियानों के उदाहरण इसके से बनाने की कोई बहरत नहीं थी।

हेमचन्द्र के समय में अपभ्रश जन-प्रचलित भाषा नहीं थी, इसे सिद्र करने के लिए जपर दिए गए प्रमाणी की पुष्टि मर बहुत जोर नहीं दिया वा सकता । पहले और दूसरे तर्नी से यद्यपि लोक-प्रमाण की और संनेत मिलता है, यह भी जात होता है कि प्राकृतों के समय में भी लोक-भाषाओं की एक स्थिति थी जो साहित्यिक या शिष्टजन की प्राहुतों के ऊछ विवादास्यद व्यावरिएक समस्याओं के सुलभाव के लिए महस्त्रपूर्ण समभी बाती थी। यहाँ श्रपभंश को प्राष्ट्रतों के साथ एकन करके 'लोकभाषा' की तीसरी स्थिति का अनुमान करना उचित नहीं माञ्म होता क्योंकि प्राष्ट्रतां के साथ जिसे हेमचन्द्र ने लोकभाषा कहा वे समयदः अगभ्रत हो यी। दिवेतिया का तीसरा तक अवस्य ही जोरदार मानूम होता है। हालाँ कि इसमा उत्तर गुलेरीजी बहुत पहले दे नुके हैं। 'जिन श्वेताम्बर जैन साधुम्री के लिए या सर्वसाधारण के हिए उसने व्याकरण हिला वे सस्तृत प्राकृत के नियमी की, उनके सूत्रों की सगति को पर्दों या बाक्य खण्डों में समक्त लेते । उसके दिये उटाइरणों को न समकते तो सहस्त और दितानी पाइन का नाहमन उनके सामने या, तथे उदाहरण हूँच हेते। किन्तु अनगर के नियम या समझ में न खाते। यादै हेमचन्द्र पूरे उदाहरण न देता हो एकी बाहने वाले निनने सस्त और प्राइत आकर सर्मा तक हो। पहुँच यो किन्तु जो स्माग साहित्व हो स्माग वतः नाक-भा चटाते वे उनके निवमों को न समकते । गुनेरी जो के इस स्पटीकरण में कुछ पता नार-मा पदात व उत्तक ानवाग का न तमका'। युप्त । का क इन स्थानश्या म दुःकृ तस्य श्रवस्य है मिन्नु उन्होंने यह निष्कंत समत्यतः अपने समय में उपलग्न अमग्रा की सामयों को देवने हुए निस्तता या, अराभ्रा के मी पत्योंही आग्न मम प्तेतान्य कीन सातुओं भी अपनी परम्या में हो प्रात थे। युद्धी जो के इस निष्कंत का एक दुस्त पहुंद मी है। युद्धी श्री प्राहत के अत्यांत पृक्तां स्ट अराभ्रेश की भी गणना क्सते है, हेमक्त की समग्रा को तो वे आभ्रश नहीं युगनी हिन्दी मानते हैं। वे स्टहत्वा वस्ते है: किस की सातवीं रातान्त्री से म्यारहर्शी तक अपभ्रय को प्रधानता रही और पिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई । इस प्रकार गुरुरी बी के मत से मी अपभ्रय पुराने अर्थ में हेमचन्द्र के सन्त्र तक

१. पुरानो हिन्दी, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं० २००५, प्र० २६-३० २. वर्षी, पु० स ।

राजस्थानी चरणी की पिंगत इतियाँ आदि शामिल हैं, दूसरी शैली का पता देनेवाली कोई महत्त्वपूर्ण इति इस निर्वारित समय में नहीं उपरूजन होती, किन्तु औतिक अभी, उति पति, बाराववेश, उति राजक स्वांते से इस भाषा के स्वरूप मां अनुमान किया जा सक्ता है। पहरी श्रीक कर होत्तर एकों तक एकदम समाप्त हो गई बन कि दूसरी शैली पर्शनों शताब्दी से आरम्म होकर अनुमान के मति और रीतिवाल के अदितीय वैमवपूर्ण साहित्व के निर्माण को मति और रीतिवाल के अदितीय वैमवपूर्ण साहित्व के निर्माण का किया से मति और रीतिवाल के अदितीय वैमवपूर्ण साहित्व के निर्माण का केम मति साहित्व के निर्माण का क्षेत्र मां साहित्व के निर्माण का क्षेत्र मां कर पर्मितिवाल अनुमान के क्षेत्र में साहित्व के निर्माण का क्षेत्र मां कि किया का से सिल स्वांत्व के सिल से साहित्व के निर्माण का किया किया किया किया किया है।

§ ७६ शीरमेनी अपश्रय ना पत्वर्धी रून असहह के नाम से ऑमिहित होता है। अवहर शब्द में स्वय नाई ऐसा सनेत नहीं निसके झाचार पर इस इसे शीरसेनी ना परवता रूप मानें। नगीकि सस्त्वत, आहत या अपश्रय के बाल्यम में नहीं भी इस सब्द ना प्रयोग हुआ है इसना अर्थ अपश्रय है। विभीतिरिवर ठावुर के वर्णस्तानर (१३२५ ईस्ती) विद्यापित भी मीहिता (१४०६ ईस्ती) के प्रयोगी के और पहले इस शब्द ना उल्लेख मिलता है। १२ भी शादी ने अहहमाण में अपने सन्देशरासक में भाषानयी और उनके लेखकों को अपनी अहाजाल अर्थित करते हुए नहां है

अबहृद्ध सक्य पाह्यमि पेसायमि भासाप् अम्बण सुन्दाहरेग सुकृद्ध भूमिय बेहि ताण वणु क्ट्रेण अम्हास्साण सुस्सस्स्य रहियाण एन्सस्टुन्द प्रमुक्त कुकवित को प्रसादे । (स॰ रा॰ ६–४७)

अदृश्माण ने भी सस्टूत प्राकृत के लाय अवहृष्ट का नाम हिल्या है। क्योतिराज्यर और विद्यापित ने सस्टूत प्राकृत के बाद ही इस राज्य का उल्लेख किया है। सस्टूत, प्राकृत के बाद अपभाग राज्य के बाद अपभाग राज्य के बाद अपभाग राज्य के वाद अपभाग राज्य के वाद अपभाग प्रकृत के बाद अपभाग की गणना का नियम या। मल कवि के औक्ट वरित की तीका तेता चलता है कि हु भाषाओं में सस्टूत, प्राकृत, शौरसेनी (अपभाग) मागधी, पेवाची की गणना होती थी।

सस्कृत प्राकृत चैव शुरसेनी तदुद्भवा। ततोऽपि मागधा प्राग्वत् पैशाची देशजापि च॥

(कॉर्तिस्ता १।१६-२२)

कीर्तिल्ता और अवदृद्ध भाषा, प्रयाग, १६५५ ईं०

पुत कहसन भाट सस्हत प्राष्ट्रत, अबहृष्ट पैराम्बी, गौरसेसी मागर्या बृहु भाषा क सत्वत, ग्रकारों, आसिसी, चाडाळी, सावटी, दाविसी, ओतक्सी विचातिया सावहु उपभागक सुकरृ । वर्षाताकर थूप स

दार सुनीतिङ्मार चाहुउर्य और बडुआ मिश्र द्वारा सपादित, करुक्ता ११४०ई० २ सक्तव बार्गा बहुबन भावड, पाडल रस को सम्म न पाडर

देसिल बअना सबजन मिट्टा, त तैसन जन्मलो अवहट्टा

राजस्थानी चरणी की पिंगल कृतियाँ खादि शामिल हैं, दूसरी शैली का बता देनेवाली कोई महत्वपूर्ण कृति इस नियंत्रित समय में नहीं उपरूप होती, किन्तु खोकिक अयों, उक्ति पत्ति, जारावशेष, उक्ति पत्ती, उक्ति पत्ति, जारावशेष, उक्ति पत्ती का समय होती से इस भाषा के स्वरूप मा खुनान किया जा सकता है। पहुंगी शैले रूद होत्तर रेजी तक एक्द्रम समाग्र हो गई अब कि दूखरी शैली रेपूर्ण बातावही से आरम्भ होत्तर ब्रम्भाण के मिले और रीविला के आदितीय वैभवपूर्ण साहित्य के निमंत्र मा के स्वरूप से स्वरूप से सम्पूर्ण उत्तर भारत में पैल गाहित्य के निमंत्र को से समूर्ण उत्तर भारत में पैल गाहित्य के निमंत्र वो शैलों शोल विलेख पत्ति किया आता है।

हु पह शीरतेनी अनक्षण ना परवार्ध रूप स्वयह्न के नाम से आंमाहित होता है। अवहर शब्द में स्वय नाई ऐसा सनेत नहीं निसने झावार पर हम इसे शीरतेनी ना परवता रूप मानें। नवींकि सहन्त, प्राकृत या अपनेय के बान्मय में नहीं भी इत शब्द ना प्रयोग हुआ है हसना अर्थ अपनेश है। ज्योतिरियर ठावूर के वर्णराना रूप (१३१५ ईस्ती) नियापित भी मी हिता (१४०६ ईस्ती) के प्रयोगों के और पहले इस सब्द ना उत्लेख निल्या है। १२ वीं राती ने अहहमाण ने अपने सन्देशरासक में भाषानयी और उनके लेखकों की अपनी अवाजिल अर्थित करते हुए नहीं है

अवहट्य सक्य पाड्यिम पेसायिम भासाप् लक्ष्यण सुन्दाहरेण सुकड्त भूसिय बेहि ताण उणु करूँण अग्हारिसाण सुड्सह्सत्य रहियाण रुक्खडुन्द पमुक्क कुकवित की प ससेद्द ।

(स॰ ११० ६-४७)

अहरमाण ने भी सस्दत प्राष्ट्रत के साथ अवहर का नाम विया है। ज्योतिराज्य और विद्यापति ने सस्दत प्राष्ट्रत के बाद ही इस राज्य का उल्लेख किया है। सस्द्रत, प्राष्ट्रत के बाद अपन्नश्च शरूद का प्रयोग सस्द्रत अलक्षारियों ने एकाधिक बार किया है। पट्मापा प्रसम में सस्द्रत प्राप्ट्रत के बाद अपन्नश्च की यणना का नियम था। मल कवि के औक्ट चरित की तीक्ष से ता चलता है कि हा भागाओं में सस्द्रत, प्राप्ट्रत, श्रीरसेनी (अपन्नश्च) मागाओं, येखाली की यणना होती थी।

सस्ट्रत प्राष्ट्रत चैव शुरसेनी तदुद्भवा। ततोऽपि मागधा प्रागवत पैशाची देशजापि च॥

(कॉर्तिस्ता १।१६–२२)

पुत्र कह्सन भाट संस्कृत प्राहत, अवहट पैराची, शीरसेनी मागपी लुट्ट भाषा क सत्वज, राकारी, आभिरी, चाडाठी, सावटी, दाविठी, ओतकर्छा विचासिया सावह उपभाशक कुशल्ह। वर्णरामाकर ५५ स्त्र

डा॰ सुनोतिङ्मार चारुवर्षं और चतुशा मिश्र द्वारा संपादित, कलकत्ता १६४०ई० २ सक्य बागो बुदुवन भावड, पाठक रस को सम्म न पावड

देसिल बंभना संवजन मिट्टा, त तैसन जन्मको अवह्टा

वशोधरने दस वाक्य द्वारा अवहरू भाषा में निर्विमिक्त प्रयोगों को बहुनता देशकर यह चेतावनी दी है। निर्विमिक्त घरों का प्रयोग ग्रीपिनी आभग्र गर्दी तक कि हैमनन्द्र के हांहों में भी कम से क्या हुआ है, क्लिन नय आप भाषाओं में इस मबान की महिमानिक अवन्त प्रवाद दिवाई पदती है, स्टल, प्रवृत और असभ्य के वाक्यिन्यात की स्विमित्तिक प्रयोग वाली विशिष्टता नई भाषाओं में कमात हो गई, इस अनियमितता के कारण परवर्गों की सृष्टि करनी पड़ी और वाक्य गठन में स्थानवैशिष्ट्य (क्टॉ, कर्म, क्रिया की निश्चित तरतीव) को स्वीकार करना पड़ा। यह पहति बेना वशीधर के सन्तेत से स्वष्ट है, अवहरू भाषा में वर्तमान भी, इस प्रकार वशीधर का अवहरू भाषाशान्तीय विकेचन के आधार पर अवभ्रत्य के बाद की

इस स्थान पर एक और पहन्न से विचार हो सनता है। अबहह, बैना कि अनम्रष्ट श्रव्य का विकतित कर है, क्यों १० द्यांती के बाद से प्रयुक्त हुआ। पहले के लेकक, आचार्य इस मात्रा को अनम्रस करते थे। अनम्रस में लिदित 'च्युनि' को कक्त कर देस मात्रा के प्रेमी लेकक इसे देशी मात्रा, लोक मात्रा आदि नानों से अमिदित करते थे। क्यम् , क्यम् , प्यप्तत, 'बैठे गौरतात्य कृषि इस मात्रा को देसी करना हो पमन्त करते थे, उन्होंने अवम्रस नाम का कम से कम प्रयोग किना। सल्लत आल्डारिकों ने तिस्त्रार से यह नाम इस 'यानस्वत' की बोली को दिया, उसी का वे प्रयोग भी करते रहे, अपमस्य उनका हो दिया नाम या। बाद में यह अरास्त्रय अवहृष्ट हो मान, प्रयोग में आते आते हकते भीतर निष्टित तिस्त्रार को भावनो सनात हो गई। अपमस्य विकतिन होकर रोष्ट्र गानी हुई और उसस्त्र गित्राति विज्ञातमान कर नाद में अवहृष्ट कहा बाने लगा। पत्रवी अपस्त्रस माहृत प्रमान से विज्ञित एक कर मात्रा थी, परवर्ता कियों अद्दानान, विद्यापति या प्राञ्च पेंगलम के लेकक ने इसे 'विक्रवयना' के तस्त पर उतार कर लेक्स माह से अमिपिक करने नया कर दे दिया, इस नये और विकतिन कर बड़े मात्रा को इस क्षियों ने अरम्भद्य नहीं अवहृष्ट सानो एक सीची और वार की मात्रा कहा।

§ ७.५. ग्रीरोसेनी अरम्रग्र का अप्रस्तिन्त रूप यानी अवहरू राबस्थान में त्रियल नान से प्रसिद्ध था। अब्दरू हूं। त्रियल था इस बात का कोई ग्रामाणिक सदेत उपल्प्य नहीं होता, किन्तु पत्तवाँ पश्चिमी अम्म्रग्र (अव्दरू) ग्रीर त्रियल के प्राप्त तत्त्वी की एकन्यान त्रेत्वकर मागाविप्तों ने यह लीकार निया कि अवहरू हो पियल है। डाल सुनीविद्यमार चाइन्य ने लिला है कि 'चीरोसेनी ग्रामुग्रं का क्लिय रूप, बो मापिक गठन और साथारण आकार-प्रमार की दिरी से परिनिद्धित अरम्भग्रं १००० ईस्ती और जबमाना १५०० ई० के दीन की

दीह समास पवाहा बकिय, सङ्य पायय पुलिया लकिय
 देमी भाषा उभय तहुजल कविदुष्टर घम सङ सिलायल (पडमचरिड)

२. बायरणु देखि सद्य गाड (पासगाइबरिड) ण विषयाभि देमी (महावराण)

य विश्वताम देना (महावुराय

अवहट्ट सबयो विस्तृत विवेचन के लिए प्रष्टम्य रेलक को पुस्तक कीतिलता और अवहट्ट माया, माहित्य भवन, प्रयात, ११५५ है.

बरीबरने दस वाकर द्वारा अवस्ट भाषा में निर्विमिक्क प्रमोगों को बनुन्या पैराकर यह चेतावती दी है। निर्विमिक्त करी का प्रदोग चीरिकेंगी आपक्ष पर्दी तक कि हैमनन्दर के होहों में भी कम हे जम्बू आ है, क्लिन नाय क्राये भागाओं में इस प्रकार की प्रविमिक्त अवस्त प्रवृत्ति कार्यय प्रवृत्ति है। स्टिक्त मण्ड की स्वाध्य के वाक्यित्यात की स्विमिक्त प्रयोग वाली निरिष्ठवल नर्दे भागाओं में समात हो गई, दल अनियमितता के स्वरण परवारों की सृष्टि करनी पड़ी और वाक्य गठन में स्थापनैरिक्त के स्वरण परवारों की सृष्टि करनी पड़ी और वाक्य गठन में स्थापनैरीक्त के स्वरण में निभिन्न तरवीन) को स्वीमार करना परवारों की क्षारण परवारों की स्वर्ति का स्थापन परवारों की स्वर्ति का स्थापन परवारों की स्वर्ति का स्थापन परवारों की का प्रवृत्ति का स्थापन परवारों की स्वर्ति का स्थापन स्थाप कर अवस्था के बाद को स्थापन स्यापन स्थापन स

इस स्थान पर एक और एइट्स ने विचार हो सरता है। अयहह, वैचा कि आक्रष्ट एउट ना विचित्त कर है, न्यों १० वारी के जार ही अपुत्त हुआ। पहले में लेवन, आचार्ष इस भाग को अपक्षय करते थे। अनक्षय में विदित 'च्युनि' को कच्च कर दे हम भाग के प्रभा लेवन दे देशों भागा, लोक मापा आदि नामों से प्रभिदित करते थे। ल्युन्, 'प्रभाव, 'वेदी गीरवारद कृषि इस मापा को देशी करना हो पलन करते थे, उन्होंने अपक्षय नाम का कम से कम प्रयोग किता। सल्ल खालकादिनों ने तिस्त्रार से यह नाम इस 'पामस्वन' की बोली को दिया, उसी का वे प्रयोग मी करते हैं, अपक्षय उनका हो दिया नाम या। वार में यह अपक्षय खबहुक हो गाम, परेग में आवे आते हक में भीतर निहित तिस्त्रार गाम वान में में स्वराध्य खबहुक हो गाम, परेग में आते आते हक में भीतर निहित तिस्त्रार ने माना का गादी। हम में भाग का नाम हो पहिल तिस्त्रार ने माना का गादी। हम से अवहृद्ध करा तिस्त्रार विकासना के प्रविद्ध तिस्त्रार ने माना के स्वर्ध कर कर मापा थी, परवीं कियों अरहमान, विद्यापति या प्राञ्च व प्रवास के लेख के ने देशित अपक्रम ने के तर पर उतार कर लेखना है अभिप्रिक्त करने ने सा कर दे दिया, इस मने खीर विक्रिता कर की मापा कहा ।

§ ७.७. ग्रीरोसेनी अरम्बय का अप्रस्तिभूत रूत यानी अवहट राजस्थान में तिंगल मान से प्रसिद्ध था। अबहट ही निगल था इस बात का कोई ग्रामाणिक सदेत उपल्यन नहीं होता, किन्तु परवर्ता पश्चिमी अपमय (अबहट) ग्रीर तिंगल के माना तत्त्वी ही एकम्पता देखक मामाविटों ने यह सीमार तिया कि अबहट हो निगल है। डाल सुनीतिहुमार चाइन्सी ने तिला है कि श्वीरोसेनी प्राप्त्रया का कानक होता होता है श्वीरोसेनी प्राप्त्रया का कानक मामाविटों से प्राप्तिनी प्राप्त्रया का कानक होता का मामाविटों से प्राप्तिनी प्राप्त्रया का कानक मामाविटों से प्राप्तिनीतित अपमय १००० हैनी और जबमाना १५०० है के बीच की

दीह समास पत्राहा बिक्य, सक्रय पायय पुलिया लिक्य देमी भाषा उभय तदुवल किंतुष्कर घग सह सिलायल (पडमवरिंड)

शायरणु देसि सद्य गाड (पासगाइचरिंड)
 ण विणयामि देमी (महातुराग)

अवहट सवधो विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य न्टेसक को पुस्तक कोतिलता और अवहट भाषा, माहित्य भवन, प्रयाग, १६५५ हैं

शास्त्र ही है और न तो उसमें रचित काव्य छन्दशास्त्र के निवनों के निरूपण के लिए ही हैं अतएव पिंगल शब्द व्रजभाषा काव्य के लिए एक प्रकार से अनुषयुक्त ही माना जाना चाहिए।' जपर का निर्णय कतित्य उन विद्वाना के मतों के विरोध में दिया गया है जो पिंगल को ब्रजमापा का पुराना रूप कहते हैं और उसे डिंगल से प्राचीन मानते हैं। श्री हरपसाद शास्त्री ने डिंगल-पिंगल के नामकरण पर प्रकाश डाटते हुए लिखा कि डिंगट शब्द की ब्युति 'डगल' शब्द से सम्भव है। बाद में तुक भिलाने के लिए पिंगल की तरह इसे डिंगल कर दिया गया । डिंगल किसी भाषा का नाम नहीं है, कविता शैली का नाम है। श्री मोतीलाल मेनारिया शास्त्री जी के मत को एकदम निराधार मानते हैं। क्योंकि शास्त्री जी ने अल्जू जी चारण के जिस छुन्द से इस शब्द को पकडा उसमें भाषा की बोई बात नहीं है। किन्तु शास्त्री बी ने भी भाषा की बात नहीं कि उन्होंने साष्ट कहा कि डगन शब्द मरुभूमि का समानाया है. सम्भवतः इसी आधार पर मरुभूमि की भाषा डागल कही जाती रही होगी, बादमें पिंगल से तुक भिलाने के लिए इसे डिंगल कर दिया गया। शास्त्री जी के इस 'डगल' शब्द को ही हन्य करते हुए सम्भवतः तेसीतोशी ने नहा कि डिगल ना तो डगल से कोई सम्बन्ध है न तो राजस्थानी चारणों और लेखकों के गढ़े हुए किसी अद्भुत शब्द रूप से। डिंगल प्रक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ है 'अनियमित' अर्थात् को छुन्द के नियमो का अनुसरण नहीं करता । ब्रजभाषा परिमार्जित थीं और छुन्दशास्त्र के नियमी का अनुसरण करती थी. इसलिए उसे पिंगल क्हा गया और इसे डिंगल । दोला मारू रा दूहा के सम्पादक गण पिंगल और डिंगल के सम्प्रत्यों पर विचार करते हुए लिखते हैं: डिंगल नाम बहुत पुराना नहीं है, वत्र ब्रजमापा साहित्य-सम्पन्न होने लगी और सुरदासादि ने उसको ऊँचा उठाकर हिन्दी चेत्र में सर्वोच्च आसन पर निजा दिया तो उसकी मोहिनी राजस्थान पर भी पडी, इस प्रकार ब्रज या प्रविभिन्न भाषा में वो रचना हुई वह रिगळ कहलाई । आगे चळकर उसके नाम साम्य पर पिंगळ से मित्र रचना डिगळ कहलाने लगी । इस प्रकार के और भी अनेक मत उद्भृत किये जा सकते हैं जिसमें डिगल और पिंगल के तुक्साम्य पर जोर दिया गया है और विंगल को डिगल का पर्यवता बताया गया है।

§ ७९ ेडा० वर्मा के निष्का और ऊतर उद्भृत कुछ मधी की परसर निरोधी विचार श्रञ्जल में सम्बन्ध की कोई गुजाइश नहीं माद्म होती । वर्मांबी का मत अति शोमता-क्या और प्रमाणहिन माद्म होता है। यदि हिंगल काव्य ब्रज्ञमाण से प्राचीन है और बाद में ब्रज्ञमाण की उत्तरि हुई तो दीनों में चनाएक कीन-सी उठकत पैदा हो गई बिमने छिए विचल और पिताल की नाम सुनर्य की बहरत का गई। 'जुक्रमाणा में बाल्य एका होने के

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, सशोधित स०, १६५४, पृ० १३१-४०

२. पिर्लाभिनेरा रिपोर्ट शान द आपरेशन इन सर्च आव मैन्युस्किप्स शाब वॉडिंक कोम्राहेल्स, पेत १५

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १७

४. जर्नेल आव दि प्रायाटिक सोसाइटी अव बेंगाल, भाग १०, १६९४, ए० ३७६

प. होला मारू रा दुहा, काशी, सवत् १६६१, पृ० १६०

शास्त्र ही है और न तो उसमें रचित काव्य छन्दशास्त्र के नियमों के निरूपण के लिए ही हैं अतएव पिंगल शब्द ब्रजभाषा काव्य के लिए एक प्रकार से अनुषयुक्त ही माना जाना चाडिए। " जगर का निर्श्य कतियय उन विद्वाना के मतों के विरोध में दिया गया है जो पिंगल को ब्रज्ञमाया का पुराना रूप कहते हैं और उसे डिंगल से प्राचीन मानते हैं। श्री हरप्रसाद शास्त्री ने डिंगल-पिंगल के नामकरण पर प्रकाश डालते हुए लिखा कि डिंगल शब्द की ब्युतिचि 'डगल' शब्द से सम्भव है। बाद में तुक भिलाने के लिए पिंगल की तरह इसे डिंगल कर दिया गया । डिंगल किसी भाषा का नाम नहीं है, कविता शैली का नाम है। अी मोतीलाल मेनारिया शास्त्री जी के मत को एकदम निराधार मानते हैं। क्योंकि शास्त्री जी ने अल्ज जी चारण के जिस छन्द से इस शन्द को पकड़ा उसमें भाषा की कोई बात नहीं है। किना शास्त्री बी ने भी भाषा की बात नहीं कि उन्होंने सप्ट कहा कि डगर शब्द मरुभूमि का समानार्था है, सम्भवतः इसी आधार पर मरुभूमि की भाषा डागल कही जाती रही होगी, बादमें पिंगल से तुक भिलाने के लिए इसे डिंगल कर दिया गया। शास्त्री जी के इस 'डगल' शब्द को ही सब्दा करते हुए सम्भवतः तेसीतोधी ने नहां कि डिगर का न तो उगल से कोई सम्बन्ध है न तो राजस्थानी चारणों और लेखकों के गढे हुए किसी अद्भुत शब्द रूप से । डिंगल एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ है 'अनियमित' अर्थात् जो छुन्द के नियमों का अनुसरण नहीं करता । ब्रजमाया परिमार्जित थीं और छन्द्रशास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी. इसलिए उसे पिंगल कहा गया और इसे डिंगल । होला मारू स दहा के सम्यादक गए पिंगल और दिगल के सम्प्रभी पर विचार करते हुए लिखते हैं: डिगल नाम बहुत पुराना नहीं है. वर बन्भाषा साहित्य-सम्पन्न होने लगी और सुरदासादि ने उसको ऊँचा उठाकर हिन्दी तेत्र में सर्वाच आसन पर विठा दिया तो उसकी मोडिनी राजस्थान पर भी पड़ी. इस प्रकार क्रज का ब्रजमिश्रित भाषा में बी रचना हुई वह विगल कहलाई । आगे चलकर उसके नाम साम्य पर पिंगल से भिन्न रचना डिगल क्हलाने लगी। इस प्रकार के और भी अनेक मत उद्युत किये जा सकते हैं जिसमें डिगळ और पिंगल के तुक्साम्य पर जोर दिया गया है और पिंगल में। डिंगल का पूर्ववता बताया गया है।

§ ७९. बा॰ वर्मों के निन्ध्यें और ऊरर उद्भृत कुछ मतो की परस्य त्रिरोधी विचार प्रकुरों में साम्य को मोहें गुजारंश नहीं माद्म होती। वर्मांबी का मत अति शीमता-कम्य और प्रमाणहीन माद्म होता है। विदि हिंगल काव्य अवभाग से प्राचीन है और बाद में बब्बापा की उत्तरि हुई तो दोनों में वकाएक सीत-सी उडफन पैदा हो गई बिग्ने लिए विग्त और विशव बीते नाम चुनने की बस्तव आ गई। 'ब्रबमाणा में काव्य प्रचार होने के

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, सशोधित स०, १६५४, ए० १३६-४०

र. पिर्लामिनेर्रा रिपोर्ट बान द आपरेशन इन सर्च आव मैन्युरिकप्ट्स आव वॉडिंक कोनव्हित्स, पेत १५

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३७

४. जनल आव दि एशियाटिक सोसाइटी अव बैंगाल, भाग १०, १६१४, पृ० ३७६

प. दोला सारू रा द्हा, काशी, सवत् १६६१, पृ० १६०

अपभ्रश में भी। किन्तु प्राष्ट्रत से भाहा और नाहा से प्राष्ट्रत का अभेव सम्प्र्य है, परिणाम यह हुआ कि 'गाहा' का अर्घ ही प्राष्ट्रत मागा हो गया। केवल गाहा वह देने से प्राष्ट्रत का बोब होने खगा। अपभ्रश्त कालमें उसी प्रकार दूहा वा दोहा सर्दश्रेष्ठ छुद था। परिणाम यह हुआ कि अपभ्रश्त म काल्य-स्वना का नाम दोहा-दिया ही पड गया। अपभ्रश का नाम 'दूहा' इसी छुन्द के कारण कल्यित हुआ।

'दब्बसहावरपास' यानी 'द्रब्यस्त्रभाव प्रकारों के कर्ता माहस्त्रपाठ ने किसी ग्रुभकर नामक व्यक्ति की आगत्ति पर दोहावन्य यानी श्चवप्रश में लिसी हुए पद्य को गायावन्य में किया था—

दन्त्रसहायपयास दोहयववेन श्रासिज दिर्हुं त गाहावन्येग च रह्य माहत्वयवछेग । सुलियठ दोहराय सिग्ध हसिउण सुहक्तो भणह एत्स्र ण सोहह अ'यो साहावयेग त मणह ॥

प्राकृत को कार्य या वर्म वाली समसने वाले शुम्बुद का दोशवन्य या अनभ्रश पर नाक भी चवाना उचित हो या । भला कौन कहर प्रमें प्रेमी बर्दाता करेगा कि कोई पवित्र धर्म प्रमाय के यांद्र वोद्य के स्वार की को को देश प्रमाय के प्राव्य की को क्षेत्र पवित्र धर्म प्रमाय के प्राव्य की को कि को है पवित्र हों है। प्रक्रपविन्तामणि के एक प्रमुक्त में हो माया-अपन्न में कि आप से हो हो हो ने कि है जिसे लेखक में पीहाविष्या सर्थमानों 'वहा है। उनकी कविताओं में एक-एक शहा है एक सीराज किन्तु हो 'शहा निवा' ही कहा गया है। परवर्ती काल में 'रेखतों हुद में किली बाने वाली आपिमक हिन्दों को 'रेखतों भाण कहा गया। 'रेखते के तुर्दी उस्ताद नहीं हो गालिय' कहने वाले सायप ने पुराने भीर को भी रेपता का पहुँचा हुआ उस्ताद रोगित किया है। इस प्रकार एक खुन के आधार पर भाषाओं के नाम परिवर्तन ने उदाहरण मिलते है।

§ स्र ज्ञमाणा सदैव से ही काव्य की माण मानी वाती रही है। यह फलाडा फेनल मारतेन्दु युग में ही नहीं लड़ा हुआ कि गदा और पदा की भाषा बुदा-बुदा हो। बुदा-बुदा इस अभे में नहीं कि दोनों का कोई साम्य हो ही नहीं—आद और पदा की भाषा के प्राचीन मारतेन्द्र बालों ने कि दोनों का कोई साम्य हो ही नहीं —आद अप मिश्रित (पछाड़ी) लड़ी हिदी का प्रयोग होता था किन्द्र कविताते हैं कि गदा में अब मिश्रित (पछाड़ी) लड़ी हिदी का प्रयोग होता था किन्द्र कविताते लड़ी बोलों में ही ही नहीं बचनी थी, ऐसी मन्यता थी उस काल के ठेदकों की। बहुत पहले मन्यता में भी बबमाणा के घर में यही मगता हुआ था। उस समय ब्रज्जमाणा की दादी शौरसेनी प्राकृत के गद्य (अधिकारत) की माला भी बात कि उसी माण कि हिद्दा एसकी माज हुआ क्य परवता शौरसेनी प्राकृत था महाराष्ट्री केचल पदा की माणा मानी बाती थी। शौरसेनी और महाराष्ट्री के इस समय मारता में प्रविद्धा केचल स्वीदित का भाषा के कर में सारे पश्चिमी उसर भारत में छा गया था। बगाल के सिदा के दारे हर सामाणा के स्र में सारे पश्चिमी उसर भारत में छा गया था। बगाल के सिदा के दारे हर सामाणा के स्र में सारे पश्चिमी उसर भारत में छा गया था। बगाल के सिदा के दारे हर सामाण के स्र में सारे पश्चिमी उसर भारत में छा गया था। बगाल के सिदा के दारे हर सामाणा की प्रविनिध रचनायाँ हैं। इस काल में यही भाषा छुन्द

प्रवन्यचिन्तामणि, सिंधी जैन प्रन्यमाला, पृष्ठ १५७

स्वपन्नश्च में भी। किन्तु प्राष्ट्रत से बाह्य और बाह्य से प्राष्ट्रत का अभेव संक्र्य है, परिणाम यह हुआ कि 'पाहा' का अर्थ ही प्राष्ट्रत भाषा है। क्या। केवल गाह्य वह देने से प्राष्ट्रत का क्षेत्र होने लगा। अरम्प्रश्च कार्लमें उसी प्रकार दूहा या दोहा संग्रेश हुद या। परिणान यह हुआ कि अवस्था म काव्य क्वा वा माम दोहा-विचा हो पढ़ यया। अरम्भरा का नाम 'दूहा' इसी हुन्द के शरण करियत हुआ।

'द्व्यस्त्वययात' यानी 'द्रव्यस्त्रमाव प्रकार' के क्यों माहक्षचल ने किनी श्रुभकर नामक व्यक्ति श्री आपत्ति पर दोहाक्त्व यानी श्रवश्रस में लिखे हुए पद्य की गायाक्त्य में किया या—

> दन्त्रसहायप्यास दोइयवर्षन श्रासित दिर्दु त गाहाबन्धेग च रह्य माहत्वप्रवर्छेण । सुणियन दोहरत्य सिग्ध हसिडण सुहकरो भणह पृत्य ण सोहह अ"यो साहाबर्षण स भणह ॥

प्राक्त को आर्थ या वर्ष वाणी समक्रने वां े हुमद्भुः का दोहाक य अनभ्रग्न पर नाक भी बयाना उदित हो या । माल कीन कटर पर्य प्रेमी बदाना उदित हो या । माल कीन कटर पर्य प्रेमी बदाना उदित हो या । माल कीन कटर पर्य प्रेमी बदाना उदित हो या । माल कीन कटर पर्य हो हि हि स्वरूप की ओर सरेत रुप है । माण-विन्तामणि के एक प्रसङ्घ में दो माणा-अपभ्रग्न कि आपक्ष में होडा होडी करते है जिसे लेलक में 'दोहाविषणा सम्प्रेमानो 'क्हा है । उनकी कविताओं से एक-एक होडा है एक सोरात किन्तु इसे 'दोहा निया' ही कहा गम है ।' परवर्ती काल में 'रेखता' हुए में लियां बाने वाली आर्रिमक हिन्दों को 'रेखता' माण कहा गमा । 'रेखते के तुग्धीं उत्ताद नहीं हो गालिक' कदने वाले शायर ने पुराने मीर को मी रेसता का चुँचा हुआ उत्ताद रहीशर जिला है। इस प्रमार एक छुन्द के आधार पर माणाओं के नाम परिवर्तन के उदाहरण मिलते हैं।

६ म्द अवभाषा सदेव से ही काय की माया मानी वाती रही है। यह मताबा के तल मारते जु युग में दी नहीं कहा हुआ कि गया और पत की भाषा अरा-छुवा हो। उदा जुदा सर अरों में नहीं कि दोनों ना कोई साम्य हो ही नहीं——यह और पदा की भाषा छुता जुदा हो । उदा जुदा सर अरों में नहीं कि दोनों ना कोई साम्य हो ही नहीं ——यह जीर पदा की भाषा के मार्थीन भारते-दुस्ताने नमूने सहस्र कर से यह सताते हैं कि गया में अब निश्चित (च्छादी) लड़ी हिंदी वा प्राणेग होता था किन्द्र कीवता तो खड़ी बोलों में दो ही नहीं सन्त्री में, ऐसी मत्यात थी उस काल के छेपकों की १ बहुत पहले म्प्यूप्त में भी करकाण के बदर में यह मत्यात हुआ था। उत्तर स्वत्र को प्रतिकृति को मत्यात हुआ था। उत्तर स्वत्र को प्रतिकृति मात्र के प्रतिकृत को प्रतिकृति मात्र के प्रतिकृत स्वत्र के कर में स्वत्र कीवति स्वत्र पर प्रतिकृति को मात्र के कर में सिर पिश्चिती उत्तर मारत में छुत मत्यात था। बताल के सिदा के हाहि हम साथ के कर में सिर पिश्चिती उत्तर मारत में छुत मत्या के सिदा के हाहि हम का के बारी मित्रीविध प्रत्य के हिस्स के हाहि हम साथ के उत्तर स्वत्र के दिश्च के साथ हम के सिर मात्र के स्वत्र के साथ के सिदा के हाहि हम साथ के स्वत्र मात्र के सिदा के हाहि हम साथ की मतिनिधि परचनार्थ हैं। इस काल में बड़ी मात्रा छन्त के सिदा के हाहि हम हम के स्वत्र के प्रतिकृति परचनार्थ हैं। इस काल में बड़ी मात्रा छन्त के सिदा के हाहि हम हम के स्वत्र मात्र कीवति स्वत्र हम काल में बड़ी मात्रा छन्त के सिदा के हाहि हम साथ कीवति हात प्रतिकृति परचनार्थ हैं। इस काल में बड़ी मात्रा छन्त के सिदा के हाहि हम साथ कीवति हात प्रतिकृति परचनार्थ हैं। इस काल में बड़ी मात्रा छन्त के सिदा के हाहि हो हो हम स्वत्र के स्वत्र हो हम स्वत्र के स्वत्र में हम सिद्य हो हम सिद्य हो हम सिद्य हम सित्य हम सित्य हम सित्य हम सित्य हम सित्य काल मात्र काल हम सित्य वाल सित्य हम सित्य

१. प्रयन्थविन्तामणि, सिंघी जैन प्रन्यमाला, पृष्ट १५७ ११

नागवानी क्या थी. तिंगराचार्य कद हुए और उन्होंने पिंगल शास्त्र का कर प्रज्ञयन दिया र ये सब सवाल अद्यावधि अनुसर हैं क्योंकि इनके उत्तर ने निष्ट कोई निश्चित आधार नहीं भिनता । नाग लेग पाताल के रहने वाले कड़े बाते हैं, इसलिए नागवानी को पतालवानी भी बहा गया । मध्यकाल के क्याल्यानों में नाग जाति के पुरुषों और विशेषकर नाग-कन्याओं के साय अर्सरय निज घरी कथाएँ नियम हुई हैं। नाम-जाति के मूल स्थान के बारे में काफी बिजार है। पाताल सम्भवत कहनीर के पाददेश का नाम था। वेदां में इस जाति वा नाम नहीं आता । मध्यशल में उत्तर-पश्चिम से मध्यदेश की आर आने वाला कई जातिया में एक नाग भा ये । महाभारत के निनाण तक उनका अधिकार ग्रीर आकृतण हस्तिनापुर तक हाने लगा था। बातक क्याओं में भी नाय बाति के सन्दर्भ भरे पहे हैं। गौतम बद्ध के वाधि सम्प्राति के सनव उत्पित तुनान में नागराज मुचिन्दि ने उनकी रहा की । पश्चिमी ओर दक्षिण भारत के बहुत से छाटे-छाटे राने अपने को नागों का वशब बताने हैं। इस प्रकार लगता है कि नागों की एक अर्थ कराला बावन विताने वाली धुमन्त जाति थी, आमार, गुर्बर आदि की तरह इनका मी बहत बडा सास्कृतिक महत्व है। ब्रजमापा में मिश्रित हाने वाले अन्य भारिक तर्जों को चचा करने हुए निवारीहास का व निर्णय में नाग भाषा का मा उन्हेल करते हैं---

> वजभाषा भाषा रचिर कहें सुमति सर कोड मिले सस्त्रत पारसिंह पे अति प्रगट हु होइ वज मागर्थी मिलै अमर नाग जदन भाषानि सहज फारसी हु मिले पर विधि कहत बलानि ।

कारयतिर्णय १।९५

बबन मापाओं के साथ नाग-भाषा को रखकर लेखक ने विदेशी या बाहर से आई हुई जाति की मापा का सकेत किया है। पर यह नाग भाषा क्या थी. इसका आगे खोडे . पता नहीं चच्ता। मिर्जा सौंने ईस्तो सन् १६७६ में ब्रजमापा का एक व्यवस्ता निवा। यह ग्रन्म प्रत्य नहीं है बल्कि उनके मशहूर, तुत्तत उछ हिन्दें का एक भाग है। इस प्राय में विषय की दृष्टि से अवभाषा व्याकरण, हुन्द, कान्य-शास्त्र, नायक-नायिका-भेर, सर्गत, कामशास्त्र, सानुद्रिक तथा पारही जनभाषा राज्य आदि विमाग हैं। प्राहृत को निर्मा खाँ ने पाताल या नाम बानी कहा है। यह प्राष्ट्रत क्या है र प्राष्ट्रत का यहाँ अर्थ वहीं नहीं है चा

I My hological lague are the some of hadra and haswapa been to people Patala or hashmir val ev

Standard D chonary of Fc blore Mythology and Legands Newverk 1950 pp 730 2. Ibid pp 780

^{े.} इ. यह महत्त्वपूर्य प्रन्य क्षमी तक अपकाशित है । इसका सबसे पहला पश्चिय पर विलियम बोन्स ने अपने लेख 'सान दी म्यूजिक्ल मोड्स क्षाव दा हिन्दूस' में १७८९ में उपस्थित दिया। वाद में इस ग्राय का ज्याकाण नाग शान्तिनिकेतन के मीलवी जियाउद्दान ने १६३५ ईस्बी में 'ए प्रामर कार दी सब' के नाम से प्रकाशित कराया ।

> बजनापा मापा रचिर कहें सुमित सब कोड़ मिले सस्हत पार्शसहु पेश्रति प्रगट सु होड़ बज मागर्था मिले समर नाग बबन भाखानि सहब फारसी हू मिले पर्विति कहत सलानि।

इन्द्रिको**य १**।१५

चवन मापाओं के साथ नाग-भाषा को रख़कर टेपक ने विदेशी या बाहर से आई हुई खाती की मापा का स्केत किया है। पर यह नाग भाषा करा यो, इतका आगे कोई पता नहीं चकता। मित्रों को के ईस्तों सन् १६०६ में बबसाया का एक स्वन्करण जिला। यह खल्म प्रभ्य नहीं वे बहिस उनके पासहूर, तुर्त्त उठ हिन्दें का एक भाग है। इस प्रभ्य में विश्व के इटि के ब्रबमाया क्वाकरण, इन्द्र, क्षाय-शाल, नायह-नापिका-भेग, स्वीम्य की हिन्दों की समायाल, वाहरण साहिस के मित्रों की निर्मा की निर्मा की मित्रों की पालाल या नाम वानी कहा है। यह माइत क्या है। माइन को मित्रों की पालाल या नाम वानी कहा है। यह माइत क्या है। माइन को साहिस की नहीं है ना

¹ Mythological Nagas are the sons of hadro and hasvapa both to prople Patala of hashmur valley

Standard D chonary of Fc klore Mythology and Legads Newtork 1950 pp 730

^{2.} Ibid pp 780

३. यह महत्वयूरी प्रत्य अभी तह अमहातित है। इसका सबसे पहला परिचय भर विलियम बोम्स ने अपने लेख 'कान दी म्यूजिक्ल मोइस आव दा हिन्दुस्त' में १०वड में उपस्थित दिया। याद में इस प्रत्य का ज्याकरण भाग शान्तिनिक्तन के सीख्यी जियावदान ने १६३५ ईस्त्री में 'द प्राप्तर आप दी प्रत्यं के नाम से महाशित कराया।

६ म्. न॰ ३ : यानी अवहद्र मापा का कुछ परिचय पहले दिया जा चुका है । सदेशरासक सभवत सबसे पहला प्रन्य है जिसमें इस शब्द का प्रयोग हुआ! कवि अद्हमाण रचित इस महत्वपूर्ण काव्य प्रन्य का प्रकाशन देखी सन् १६४५ में सिधी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत मुनिजिनविजय और डा॰ हरिवल्डम भायाणी के सम्पादकत्व में हुआ । सम्पादक को इस अन्य की तीन पाएड्लिपियाँ प्राप्त हुई थीं को पाटण, पूना (भडारकर रिसर्च इन्स्रीटूट) और दिमार (पजार) में लिखी गई थीं। तीनों प्रतियों के लिपिकार जैन थे। इनमें से पूना और पजान की प्रति में संस्कृत छाया या अवचृरिका भी सल्यन है। किन्त पना प्रति के वार्तिकवार नयसमूद्र और पनाव प्रति का टिप्पणकार रुस्मीचन्द्र दोनों हो संस्कृत के जानकार नहीं मालूम होते इसलिए ये दीकाएँ व्याकरण वी दृष्टि से भ्रष्ट और अर्थ की दृष्टि से महज काम चलाऊ कही जा सकती हैं। पूना प्रति का टीकाकार अर्थ को भी अपनी चीज नहीं मानता और इसका सारा क्षेत्र किसी गाहड छनिय को अर्पित करता है, जिससे उसने अर्थ सीला था। इन दो प्रतियों के अलावा बीकानेर से भी एक खडित प्रति प्राप्त हुई है। जयपुर के आमेर भाडार में भी अहहमाण के सन्देशारासक की एक प्रति उपलब्ध है जो समप्रतः उपर्युक्त प्रतियों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। क्योंकि देवल पञाब की मित को छोडकर यह अन्य प्रतियों से प्राचीन है जिसे जैन माणिक्यराज ने सलीम के शासनकाल में १६०८ सबत् में लिखी । सस्तृत टीका मी दी हुई है जो काफी स्तृष्ट है । दिगम्बर जैन मदिर (तेरह पृथियों का) जयपुर के शास्त्रमाङार में उत्त पति (वे० न० १८२८) सरवित है। इस प्रति का उपयोग नहीं किया गया ।

अद्हमाण को टीक्कारों की अवचूरिका के आधार पर अन्द्रल रहमान कहा गया है बो पश्चिम दिशा में स्थित पूर्वकालसे प्रसिद्ध स्टेन्छ देश में उत्पन्न मीरसेन के पुत्र थे।

पचाएसि पहूँजी पुग्व पसिदो य मिन्छुट्रैसीव्यि तह विसर् सम्पूजी जारहो मीरसेणस्स ॥३॥ तह तमजी हुलकमठी पाइय कन्वेसु गीयविसयेसु अहहमाण पसिद्धो सनेह रासय रहुयं ॥४॥

उसी मीरसेण के पुत्र कुलकमल अहहमाण ने श्रो प्राकृत कान्य और गीति विषय में प्रतिद या, सन्देशरासक की रचना की ।

जगर की गायाओं से अइइमाण का अर्थ अन्दलरहमान और मिन्छुदेश का ग्रेज्छुदेश के विक इसीवित्य सम्मद है कि सत्तृत अवज्वितिका में ऐसा लिखा है। आरह का छर्य खुलाहा दिया है किस्ता राज्य ना अन्य बिजारों से प्रात होगा! इस अइइमाण के रचनाकाल के तिपत में भी भीदें निमित्रत वात तर्यों है। प्रत्य के सम्पादक श्री सुनिवित्रवित्य में अइइमाण को सुन्ताम एक हम निम्मित्र को स्वतं को अवद्भागित किया है। महमूद के आक्रमण के बाद सुन्ताम एक इस निम्मित्र को साथ प्रता के साथ की सुन्ताम एक इस निम्मित्र के आक्रमण के बाद सुन्ताम एक इस निम्मित्र होगा था, उत्तकी सुन्दित और सुन्दला नष्ट हो गाँ थी। सुन्देश गासक में इत्यान (मुख्यमा) का अव्यत्त मध्य निम्मित्र सुन्ता स्वा है अत. यह आक्रमण के पहले के मुलान का हो निम्मित्र हो साम्मित्र सुन्ताम वास्मात का मो नाम आवा है। सुन्देश निम्मित्र के पहले के स्वान साथ आवा है। सुन्देश निम्मित्र के पहले के स्वान नाम आवा है। सुन्देश नाम्मित्र होता है। सुन्मित्र विकास पत्रित होता है। सुन्ताम सुन्ता है सुन्नाम सुन्ता है। सुन्नाम सुन्नाम सुन्नाम सुन्ता है। सुन्नाम सुन्ता है। सुन्नाम सुन्ता है। सुन्नाम सुन्नाम

§ द.४. न॰ ६ : यानी अवहडु भाषा का कुछ परिचय पहले दिया ना चुना है। सदेशरासक समयतः सबसे पहला प्रन्थ है जिसमें इस शब्द का प्रयोग हुआ ! करि अहहमाण रचित इस महत्त्वपूर्ण काव्य प्रन्थ का प्रकाशन देखी सन् १६४५ में किथी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत मुनिजिनविजय और डा॰ इरिवल्टम भायाणी के सम्पदकत्व में हुआ । सम्पादक को इस ग्रन्थ की तीन पाएड्लिवियाँ प्राप्त हुई थीं को पाटण, पूना (भडारकर रिसर्च इन्स्रीट्टर) और दिमार (पजार) में लिखी गई थीं। तीनों प्रतियों के लिपिकार जैन ये। इनमें से पूना और पताब भी प्रति में सरहत छावा या अवन्दिन भी सरुपन है। किन्तु पूना प्रति के बार्तिक्कार नयमपुद्र और पनाब प्रति वा टिप्पणवार रुद्मीचन्द्र दोनों हो संस्कृत के जानकार नहीं मालम होते इसलिए ये टीकाएँ व्याकरण की दृष्टि से भ्रष्ट और अर्थ की दृष्टि से महज नान चलाऊ कही जा सकती हैं। पूना प्रति का टीकानार अर्थ को भी अपनी चीज नहीं मानता और इसका सारा थेय किसी गाइड छिन्य को अर्थित करता है, जिससे उसने अर्थ सीला था। इन दो प्रतियों के अलावा शीकानेर से भी एक खड़ित प्रति प्राप्त हुई है। बयपुर के आमेर भाडार में भी अहहमाण के सन्देशरासक की एक प्रति उपटब्ध है जो समन्तः उपर्युक्त प्रतियों से कम महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। क्योंकि नेवल प्रजान की प्रति को छोडकर यह अन्य प्रतियों से प्राचीन है जिसे जैन भाणिक्यराज ने सलीम के शासनकाल में १६०= सबत् में लिखी । सस्कृत टीका भी दी हुई है को काफी स्तष्ट है । दिगम्बर जैन भदिर (तेरह पथियों वा) जयपुर के शास्त्रमाडार में उक्त प्रति (वे॰ न॰ १८२८) सर्राह्मत है। इस प्रति वा त्रपयोग नहीं किया गया ।

अहहमाण को टीकाकारों की अबच्चिरका के आधार पर अब्दल रहमान कहा गया है जो परिचम दिशा में रिपत पूर्वकालते प्रक्षित्र म्हेण्ड देश में उत्कल भीरतेन के पुत्र ये ।

पचाएसि पहुन्ते। प्राय पसिद्धों य मिच्छुरैसीरिय तह विश्वए सम्यूको आहरो मीरसेनस्स ॥३॥ तह तमनो हुलकमरो पाइय कन्युस गीयविसपैसु अहरभाग पसिद्धों सनेह रास्य रहुपं ॥४॥

उसी मीरसेण के पुत्र कुलकमल अहहमाण ने श्रो प्राक्षत कान्य और गीति विषय में प्रसिद्ध था, सन्देशायसक की रचना की ।

जरा की नाथाओं से अहरमाण का वर्ग अन्दकारमान और मिन्दुरेश का रहेन्द्रहेश का रहेन्द्रहेश का रहेन्द्रहेश का रहेन्द्र का अद्युप्तिक विश्व है। महरद के आक्रमण के शह रहान्द्र के रहेन्द्र का रहेन्द्र के अद्युप्तिक विश्व है। महरद के आक्रमण के शह रहना एक रहा निकल हो। नाम साम उन्हर का रहना का

क्तैय मानने ये । सन्देशसक की तरह अन्य भी बहुत से अन्या में यह प्रदृति सर्वाहत हीती है।

सन्देरापरारु को भागा, ठेसक को अविसाहित्यक कीर पाण्डित पूर्ण रुचि के मारण, अल्पन्त परिविधित, प्राक्ता मभानगत और रूट है। हालांकि उसने प्रत्यारम्भ में यह रशिक्षर क्या है कि इस प्रम्म की मांचा न अपन्त कडिन है और न तो अस्पन्त सरक, जा न वो बहुत परिवृत है न वो बहुत मूर्य, उन सामान्यननों के किए मार्च इरवा हूँ।

> णहु रहद दुरा कुकिबन रेसि अदुहरूमि भदुदद गहु पर्वेसि जिम मुक्त थ पडिच सम्बद्धार विद पुरु पठिच्नड सम्बदार (स० रा० २१)

किन्द्र इस सामान्य बन के लिए लिखी हाति में प्राइति भाग का मुन रूप हो ज्यादा प्रवान हो गया है। हाँ एक वात अक्षर बहुत महत्व की है। वह है प्राइत के साम हो साम क्षमसीमृत अपमान्य या अव्यव्य के दाई ना प्रयोग। की तो लेक को परिनिश्चित अपमान्य याने एन्हों की भागा से यह कालोन विकानस्रोण लोक भागा के बुद्ध ताल यहीत हुए हैं निन्तु दोहां की भागा से एक्स ही नवीन और लोक भागा की और कोंगा करायुत दिखाई करावी है। इस प्रथ की मूनिश में बान हरियहम मामान्यी भागा का विस्तेगण करने के बाद इस निपार्य पर पहुँचे - बैजा समानस्थान पर अनेत हिना पणा है सन्देयराक ने लोहों की गाया कई वालों में अप्य के मुंख हिस्सा की माना से मित्र प्रतीत होता है। यह माना एक ओर समन्द्र के दोश की माया अति निस्ट और समान तथा साथ हो उससे कही क्यां स्व

\$ 5.5, प्रेम पा विरह बाजा में क्षेत्र गीतों के प्रयोग की परांत किलुक मई नहीं हैं । होन्योंतों में प्रेम की एक सहज ब्याउता, स्रितियों की अनवहरूत विश्वति और वेदता ही वित्तानी ग्राही अधिवादि सम्मत्त है, उतनी अभिवाद भाषा में नहीं हो सकती, हरीकिए परिविद्धत सापाओं में क्षित्रों का में में में सो होक्योति के प्रयोग का क्या से क्ष्म उनके अधुक्त्या पर उनकी अपीन पा आता के । विक्रमें क्षित्र के प्रयोग में पा मान किला किला की पित्र में में में सो को क्ष्मों के प्रयोग जाता है। विक्रमें हरीकी में पात्रा की कारता की रिविद्ध की प्रयोग अध्यान के प्रवाद किला की स्विद्ध की प्रयोग अध्यान की प्रयोग अध्यान की प्रयोग की प्रयोग की प्रयोग की अधि प्रतिक के एए ही में प्रयोग की किला दीही वा प्रयोग अध्यान की मान कुल को दस्ता है। अध्यान की प्रयोग अध्यान की प्रयाग की अधि प्रतिक के एए ही

I As suggested at relevent places that the language of the dohas of S R dilfry in several possis from that of the main portion of the text and it is closely allied to though more advanced than the language of the dohas of Hemcandra

क्तैंन्य मानने थे। सन्देशरासक की तरह ब्रन्य भी बहुत से ग्रन्था में यह प्रदृति सन्दित होती है।

सन्देशराहरू को भाषा, लेलक को अक्षिताहित्वक और पानिवरत पूर्ण दलि के कारण, अलस्त परिमिछ, प्राकृत ममावस्त्र और स्ट है। हानाहि उससे प्रत्यारम्म में यह स्रीकर क्यि है कि इस प्रस्य से भाषा न अस्यत कठिन है और न तो अस्यत सरक, जा न तो बहुत परिवरत है न तो बहुत मूर्स, उन सामात्यवनों के बिए काव्य करता हूँ।

> गहु रहद गुहा कुकिवत रेसि अबुहरूमा अबुहर गहु पर्वेसि जिम मुस्स ग पश्चिप समस्यार जिह पुरठ पठिवृत्त सम्बदार (स० रा० २३)

§ 100, प्रेम पा निरह काळा में लोड गीतों के प्रशेम की पदित निक्कुल में नहीं है। लोडमीजों में में में पर एक पहन व्यवस्ता, स्टिलों की अनदस्त निहास और निर्मा करता ही किलानों गरामें अपनी पर करती, हमीजिय परिवृद्धित आपाओं में किले शर्मों में मी लोडमीजों के प्रवेग मा कम से कम उनके अट्रीएटए पर उनकी प्रतिकृत मा को बीच के मा कम के क्षेत्रक एप उनकी प्रतिकृत किलाओं में किले शर्मों में मी लोडमीजों के प्रवेग मा कम से कम उनके अट्रीएटए पर उनकी प्रतिकृत के प्रतिक

¹ As suggested at relevent places that the language of the dobas of S R ddf-rs an several points from that of the main portion of the text and it is closely allied to though more advanced than the language of the debas of Hemcandra

चिरमाप (१८१ क<चिरगप<चिरगव), स मप (२०८८समप), परव्स (२१० ग<परवस<परवग्र) इडम्बर्स (११ क<इटबर्स्ट) तम्माल (५६ ग<तमाल), तुत्सार (१८४ प<तुसार <वुपार) आदि ।

है हह. स्वरसंकोचन (Vowel Contraction) आधुनिक भाषाओं में हर-कक्षेत्र का अक्तन मनोरवक होंदेहार है। सन्हत के तसम श्राद की प्राष्ट्रत काल में तद्दमन हुए, उनमें वृषिणुता की प्रश्चित बने रुगो, स्कों के बीच को निष्ठति वो हरी ही, स्विध प्रक्रिया से उन्हें सप्पत्न रंगा जिया गया, इस प्रक्रिया में शन्तों का रूप-आकार एकदम ही बदल गया और वे नए चेटरे लेक्ट वामने आए 1

श्रंभाँ>आं≃सुतार (१०८ क<*सुन्नभार<स्वर्गेतर), साहार (११४ प< सहपार<सद्कार), अधार (११६ ग<अपभार<अपकार)। अंउं>ओं≃तो (१८ष<तउ<ततः)सामोर (४२ क<सम्पुडार<शाम्बुर)

मोर (२१२ ख<मऊर<मयूर) आसीय (१७२ ब<आसउय <अश्वयत्र), इटोअ (१४३ घ>इन्टाओर<इन्द्रगोर) आदि।

स्तर-शंकोच इसी अवस्था में क्रदन्त से बने निष्ठा क्यों के चांद्रिय> चटी १६१ घ बुंदिय> बुंदी १८ ज, आदि रूप बन जाते हैं। अवस्था में क्रदन्तव विदोयणों में लिए मेर का उतन विचार न या किन्त ब्रवमाया में स्त्रीटिंग क्यों के क्रदन्तव भूत के नए रूप भी स्त्रीटिंग ही होते हैं और चर्ची, ट्री आदि उसी अवस्था के सकेत हैं।

ई. ६०. म् >च् के रूपान्तर को हमने हेमचन्द्रीय अरअस में विधेषता कहा था। यसक में क्हीं बहें यह व् भी हफा हो जाता है। मण्यम ध्य' के लोग की यह प्रश्ति मबभाषा भी खात विधेषता है। चाहुन्य में इसे मब खड़ी बोली की कियोपना बताते हुए प्रारमिक मिथिजों हे इसके उलना की है। (देखिए कांग्लाक्ष हैं ६०) धरेश्वरासक में मध्यम व् लोग के प्रश्तु उदाहरण मिनते हैं। निगति (७४ अ<मंताविव) माइयह (५२ क< मानियह <माजने) माइया (६५ ग<माविण <माविग), सतात (७६ ख<स्ताबु< सतात) बीत (१५४ ग<स्वाहर्ज क्षित्र)।

§ ६६. ल का महाप्राणीकरण । ल>हह । हह, मह, आदि व्वनियाँ प्रज में बहुतायत से मिलतो हैं । मिल्हड (४६ ग<मेल्ल=छोडना) ।

§ ६२ दिल या संयुक्त व्यवनों में केवल एक व्यवन को सुपीवृत रखने तथा इसही इति पूर्ति के लिए पूर्वेवर्ता स्वर को दीर्य कर देने की प्रकृति, को आधुनिक व्यार्गमायाओं में आवर पूर्णविष विवशित हुई सदेशसक की भाषा में आरम्म हो गई थी।

कसात (१७ क< उत्साम < उच्छाम) नीतगर (५५ ग< निस्तरह <िनस्तरि) नीसान (=१ ग< निस्तान < निःशान) शैसिर (६८ घ <िस्सर (६२४ते)।

§ ९३. प्रातितरिशे के निर्धाण में छहापक प्रत्यों में धरेष्ठपाठक का यर <कर प्रत्य अत्यन्त मतलपूर्ण है। यथा दोवपर २२ ल, सबीवग्रर २२ म, उल्लोक्सर ६० म। हेमचन्द्र में भी वेचपर (भाष्टर?) रूप इसी तरह का है। यह प्रत्यन अन्तर स्तर के दोर्च होने पर प्रायः १२ चिरमाय (१८१ क<चिरगय<चिरगत), स मय (२०८ <समय), परव्यस (२१० ग<परवस<परवर्ग) दश्ब्यहल (११ क<दल्बहल) तम्माल (५६ ग<तमाल), तुरसार (१८४ प<तुसार <सुयार) आर्दि ।

ह दह. स्वरसंकोचन (Vowel Contraction) आधुनिक मापाओं में स्वर-कशेच का अत्त्व मनोर कह हतिहात है। सन्द्रत के ततान राष्ट्र की मान्न्य क्ला में तद्भव हुए, उनमें विष्णुता की प्रमृति बन्ने तमो, हतों के बीच को नित्रति तो हवी ही, शिष्ठ प्रक्रिया ते उन्हें सप्यव्दर बना किया गया, इत प्रक्रिया में शब्दों का रूप-आशर एकदम हो बर्ख गया और वे तए चेहरे तेक्दर सामने आए !

श्रेभाँ > औ = सुन्नार (१०८ क< *सुन्नाभार < स्ट्रांगर), साहार (११४ प < सद्गार < सद्दार / स्वार (११६ ग < अपभार)। अंडे > ओं चती (१८५ देवा अपभार)। मोर (११० क< समग्रदार शास्तुर) मोर (११० क< आग्रदार मुर्ग) आसीय (१७२ क< आग्रदार क्रास्तुर), हरोष्ट्रा (१४१ व > इन्याओर < इन्द्रांग) आहे ।

लासंकोच इसी अवस्था में कृदन से बने निश्च क्यों के चडिय> चडी १६१ घ युद्दिय> मुद्दी रेच यह आर्दि कर कर बाते हैं। अवस्था में कुटनाव विशेषणों में लिए मेर का उतना विचार न या किन्दु ब्रह्माया में क्योंकिंग क्यों के कृदनाव सुत्त के नय रूप भी क्योंकिंग हो होते हैं और चडी, हुटी अपदि उसी अवस्था के सकेत हैं।

ई.०. म् >च् के रूपान्तर को हमने हेमचन्द्रीय श्वरप्रश्च मं। विग्रेपता नहा था। यातक में नहीं नहीं नह च् भी इन्त हो जाता है। मध्यम ध्यं के कोय की यह महित महमाया नी तात विग्रेपता है। चाहन्यों ने इत्ते कब लड़ी बोली की विग्रेपता कताते हुए प्रात्मिक मिथियी हे हकते हुतना की है। (विल्य क्यांस्तावर है क्ष्ण) चेश्वरप्रात्मक में मध्यम च् लेय के प्रमुख उदाहरूप निश्वे हैं। मंतायित (अप अ<मंत्रोवित) माइयह (४२ क< मानियह (भावने) माइयह (४४ व<माविय <मानियह (भावने) माइयह (४४ व<माविय <मानियह (अध्यन <ब्योइ)।

ई ६१. ल का महामाणीकरण । ल>ल्ह । ल्ह, म्ह, आदि ध्वनियाँ अब में बहुतायत ते निध्यती हैं । मिल्ह्ड (४६ ग<मेल्ल =ल्लाह्ता) ।</p>

§ ६२ दिल या संयुक्त व्यवनों में केवल एक व्यवन को सुरवित रातने तथा इसही इन्ते पूर्वि के लिए पूर्ववर्ती रातर को दीर्न इर देने की प्रश्लोत, को आयुनिक व्यवसायाओं में आकर पूर्वत्या विवर्तता हुई सदेशरातक की भाषा में आरम्म हो गई थी।

कसात (१७ क< उत्साम< उच्छ्वास) नीत्पर (५४ ग< निस्तर <िनस्तरि) नीतान (=१ ग< निस्तास< निःश्वास) शीसि (६८ घ <िस्सर् (इस्प्ते)।

§ ९.३. प्रातितदिकों के निर्माण में कहाएक प्रत्यायों में सहैराराटक का सर≪कर प्रत्याय अल्ला मत्त्यपूर्ण है। यथा दौनपर २२ ख, सबीत्रस २२ थ, उल्लाक्सर ६० य। देमचन्द्र में भी वेचपर (४१४२२) हम इत्ती तरह का है। यह प्रत्यन अन्तर स्तर के दोर्थ होने पर प्रायः २२

६९९. असमापिका किया में इ प्रत्यय वाले रूपों का बाहल्य तो है ही। इसी का विकास प्रजभाषा में भी हुआ। जब में 'इ' प्रत्यय वाले पूर्वकालिक रूप बहुत मिलते हैं। किन्तु ब्रज में पूर्वकारिक युग्म का प्रयोग एक नई विशिष्टता है। उदाहरण के लिए भई जुरि के लरी' इसि के, ले के आदि रूप में पूर्वकालिक के मूल रूपों जुरि, इसि या लड़ के साथ क का असमापिका रूप भी जुडा हुआ है। इस प्रकार का प्रयोग सन्देशरासक में भी प्राप्त होता है !

बिरह हयासि **दहेवि करि** आसा जल सिचेइ (१०= ख)

६ १००. भृतकाल के कृदन्तन प्रयोगों में कर्मनाच्य के स्थान पर कर्त वाच्य का प्रयोग नहीं दिखाई पडता है, जो ब्रज की विशेषता है। किन्तु कर्तृवाच्य की ओर प्रदृत्ति होने लगी यो। क्लोलिहि गनित १४२ ख, सिहिंडउ रिडेड १४४ ख, साल्रिहि रसिउ ११४ ग, क्रममिटि सोहिउ २१५ ल. इन रूपों में तृतीया कारक के साथ वर्म बाच्य दिखाई पडता है। इसिंडि चडिउ में इस द्वारा चड़ा गया—अर्थ धीरे धीरे इटलने लगा। इसि चटिन से हंस चडिउ >हंस चड्यो ।

§ १०१. संयुक्त-क्रिया का प्रयोग अवहट की श्रयको विशेषता है। इस प्रकार के प्रयोगों ने नन्य आर्य भाषा की कियाओं को नया मोड दिया है। सन्देशरासक के कुछ उदाहरण देखिये--

- (१) को णिसुणे विणु रहह (१८ ग) कीन सुने बिना रहता है
- (२) तक्खर वक्खर इरि गउ (६५ च) तरकर ने सामान हर लिए
- (३) अमेस तस्य पडि बरिगय (१६२ घ) सभी पेडों के पत्ते गिर गए

इस प्रकार के हिन्दी और बजरूपों के लिए द्रष्टव्य (कैलाग हिन्दी प्रामर 8 (8x0,588

§ १०२. क्रियार्थक संख्याओं के साथ नकारात्मक 'गा' के बाद सामर्थ्य सूचक जाह (गम्) ना प्रयोग निया जाता है। इससे किया के सम्पादन में असमर्थता ना बोध होता है---

- (१) न घरणउ बाइ ७१ क, घरा नहीं जाता
- (२) क्हण न बाह ८१ क, कहा नहीं बाता
- (२) किम सहण न काए २१८ ख, सहा नहीं जाता

वे प्रयोग प्रायः सन्देशरासक के दोहों में ही हुए हैं जो भाषा के विकास की परवर्ती श्रवस्था के सूचक हैं। इस तरह के बहुत से प्रयोग छिताईवार्ज में हुए हैं। उदाहरण के लिए एक पंक्ति देखी जा सकती है।

'एक दिवस की कहन न जाइ (हिंदाई बार्ता १२७)

§ १०३. परसर्तों के प्रयोगों में भी अपभ्रश से दुख नवीनता दिलाई पडती है। सर्ज (ब्रज सीं) विरह सर्ज ७६ क, क्ट्रप सर्ज (हह क)

गुरविण एए सउं (७४ स)

सरिस (ब्रज, सरिसों, सरिसों) हाय हेयइ सरिसु (१६१ घ)

मियणाहिण सरिसंड (१८७ घ)

§ ९९. असमासिश किया में इ मत्वय माले रूपों का बाहुल्य तो है ही। इसी वा विनास प्रवमापा में मी हुआ। अब में 'इ' प्रत्य वाले पूर्वकालिक रूप बहुत मिलते हैं। निन्तु अब में पूर्वकालिक सुमा का प्रधान एक नई विशिष्टता है। उदाहरण के लिए मई जुरि के स्ती' इसि के, ले के आदि रूप में पूर्वकालिक के मूल रूपों सुरि, इसि या लड़ के साथ कुका असमायिका रूप मी बुडा हुआ है। इस प्रकार का प्रयोग सन्देशपसक में भी मारा इता है।

विरह हुयाति दहेनि करि आसा जल विचेइ (१०८ ख)

§ १०० न्हाराज के इन्दर्गज प्रमाग में कर्मवाच्य के स्थान पर कर्म वाय्य का प्रयोग नहीं दिवाई पडता है, जो अब की क्रियाजा है। किन्तु कर्मवाच्य की ओर प्रष्टुचि होने लगी थी। क्ज़ालिहि गीजिड १४२ ख, विहिस्ट रिडड १४४ ख, साब्द्रिहि रिखड ११४ म, क्रमुमिडि सोडिड २१% ख, इन स्पा में तुनीया करक के साथ कर्म बाच्य दिवाई पहता है। हमिड चिडिड में इत द्वारा ज्वा गया—अर्थ धीरे पीरे बढ़कने लगा। हिस चडिड से इस चडिड > इस चडिड)

§ १०१ च्युक क्रिया का प्रयोग अवहह की खरनी विशेषता है। इस प्रकार के प्रयोगों ने नच आर्च भाषा की क्रियाओं को नया मीड दिया है। सन्देशरासक के कुछ उदाहरण देखिये—

- (१) का णिसुणे विणु रहइ (१८ य) कीन सुने विना रहता है
- (२) तक्खर वक्खर इरि गउ (६५ च) तर्कर ने सामान हर लिए

(१) असेस तरन पिड परिम्म (१६२ घ) सभी पेडो के पने गिर गए इस प्रवार के हिन्दी और बबरूपों के लिए ब्रख्य (पैलाग हिन्दी ग्रामर § ४४%,७५४)

§ १०२ कियार्थक सल्याओं के साथ नकारात्मक 'शा' ने बाद सामर्थ्य सूचक आह (गय्) मा प्रयोग निया जाता है। इससे क्रिया थे सम्पादन में असमर्थता ना बीघ होता है—

- (१) न घरणउ बाइ ७१ क, घरा नहीं जाता
- (र) पहण न बाइ ८१ क, कहा नहीं जाता
- (र) निम सहण न जाए २१८ ख, सहा नहीं जाता

वे प्रपोग माम रुन्देवरासक के दाहों मं ही हुए हैं जो नापा के विकास की परवर्ती श्रवस्था के सुवक हैं। इस तरह के बहुत से प्रयोग विज्ञाईवाला में हुए हैं। उदाहरण के लिए एक पित देखी जा सकती है।

'धक रिवस की कहन न जाह (खिलाई वार्ता १२७) § १०३ परमर्गी के प्रवानों में भी अपक्षरा से बुद्ध नवीनता दिलाई पहती है । सर्वे (प्रज सीं) विरह सर्वे ७६ क, क्ट्रप सर्वे (१६ क)

गुरुविणु एए सउ (७४ स)

स^रस (ब्रज, सरिसों, सरिसों) हाय हेयह सरिस (१६१ घ) मियणाहिण सरिसउ (१८७ घ) शौरसेनी अपभ्रश या अबहुट में त्थिता हुआ कोई और काय उपलब्ध नहीं होता। इस प्रदेश में त्थि। गई अवदृह रचनाओं दी भाषा में पूर्वी प्रयोग मिलते हैं। परिनिष्ठित या साहित्यिक भाषाओं में मुख्य स्त्रेत्र के बाहर लोग बन साहित्य-रचना करते हैं तो उनरी भाषा के कुछ न वुछ प्रयोग, मुहावरे आदि तो सम्मिन्ति हो ही जाते हैं । किन्तु इन सेत्रीय प्रयागी के आधार पर मापा के मूछ दाँचे को अन्यया मान लेना ठीक नहीं होता। पूर्वी प्रयोगों को देखते हुए विद्यापर्व को कीर्तिंग्या को पुरानी मैथिकी और दौढों की रचनाओं को पुरानी बगरा बहना बहुत उचित नहीं है। यह सही है कि मैथिती भाषा के निर्माण में सहायक या उसके दाँचे को समझने के लिए उपयोगी सकेत चिह्न कीर्तिल्ता में प्राप्त हाते हैं, किन्तु कर्तिल्ता की भाषा की मूल भूत आत्मा में उसकी अनुतेखन पद्धति, लिपि की पूर्वी शैलियों से प्रभावित वर्ण विन्यास और बुख मागधी प्रकार के 'ल' किया रूपों के आवरण के नीचे अवहड़ या पश्चिमी अपभाग की प्रवृत्तियाँ दिलाई पडती हैं । कीर्तिलता का कवि जब जनता के मनी भावों को सन्भते हुए प्रेम-शृङ्कार या भवि के गीत लिखता है तब ता अपनी लाइभाषा यानी मैथिली ना प्रयोग करता है, किन्तु जब राजन्तुति के प्रयाजन से नाव्य लिखता है तब ब्रजभाषा की चारण शैंली और उसके तत्कालीन अवह्ड रूप को ही स्वीनार करता है, क्योंकि यह उस काल की सर्पमान्य पद्धति थी। नाचे कीचिलता का एक युद्ध प्रसम देखिये, भाषा क्लिक्टल प्राइत पेंगलम के इम्मीर सबन्बी परों की तरह या रात्तों के यद प्रचर्गों की भाग की तरह मालम होती है।

> हसि दाहिन हम्प समय्य भह, रचरस पळटिय सन्ना लह तह प्रकृषि एक पहार परे, जह सामहि सन्नाहि धार धरे हय शामिय चिन्न वास्करना, तहसारि समझ्ह विग्न मुख्य हरि टोप्परि इटि सरार रहे, तनु कोनित धारिह धार बहे तनु राग तुरग तराग सहे, तनु हमूह रुग्यह रोस रहे सच्य जन पेप्तहिं जु म कहा, महमानह अग्नन कस्न जहा न भाइन माहब सत्तु करें, बानासुर जुन्मह बुल मरे महरामिह महिल्क पिएल्ड, श्रस्तान निजानह पिट दिड त स्पो पेरेस्टम राथ सो अरु सारकेश करेशो

जे करे मारिश्र वप्प महु सो कर कवन हरेओं

(कीर्तिरता ४।२२६–४३)

इस मापामें पूर्वी प्रयेगों का नामोनिशान तक नहीं मिलेगा। अलिम दोहों में तो क्रेओ>क्र्यो, हरेंओ>हरपा के ब्रब रूप भी स्तष्ट दिखाई पडते हैं। अपभूश के अ+उ का ब्रब में सीचे ओ, होता है। बहुत से रूपों में 'या' बैसे क्खों, मप्पो आदि का प्रयेग मिन्ता है। दूसरे प्रधार के रूप ही ब्रब की प्रवृत्ति के अनुसून् हैं। अउ>औ, यौ के विवास की एक अवस्या एओ रही होगी जो कीर्तिक्ता में बहुत दिखाई पडती है।

§ १०६ तिर्वासह के सिंहासनारोहण के समय लिखे गए एक प्रशस्ति की भाषा द्रष्ट-प है । देवसिंह की मृत्यु के समय तिवितंद ने यदनों से आकृत्व राज्य का कैसे उद्धार किया और शीरतेनी अपग्रध मा अबरह में निला हुआ कोई और बाय उपरूप नहीं होता। इस प्रदेश में निली गई आरह रचनाओं नी भाषा में पूर्वी प्रदेश मिनते हैं। परिलिक्षित मा सार्वित्वक मापाओं में प्रध्य देव के बादर निला का साहित्वक मापाओं में प्रध्य देव के बादर निला का साहित्वक मापाओं में प्रध्य देव के बादर निला का साहित्वक मापाओं में प्रध्य देव के आवर मापा निला डीड नहीं होता। पूर्वी प्रयोगों के कुछ न युक्त प्रभेग के सूर्व देव की अन्यया मान निला डीड नहीं होता। पूर्वी प्रयोगों को देवते हुए विधाप के कीर्तिन्ता को पुरानी मैंपाडी और बौदों की रचनाओं की पुरानी मापा के निला को साहित्व नहीं है। वह रहते हैं के मैंपिशी भाग के निला में में व्यवक मा उत्तक देव को सममने के निल उत्तक स्वा उत्तक होतिन्ता में मापा के तह तह है। कि उत्तक में अपन हाते हैं, कि उत्तक को सामा की मूर मूर्व कालम में उत्तकी अनुलेखन पद्धित, निर्म में पूर्वी गैंपिशों के प्रमादित वर्षा दिन्यास और बुख मामायी प्रकार के 'कि कि कार एप के नीचे अवरह या परिचालों अपन प्रवा में महिला है तह मापा के निल के बीत कि कार पा के निल्या के सामायी में महिला के परिचाल के सामायी मापा की सामायी में महिला का वर्ष वा वव नवता के मापा मों में सनमते हुए प्रमन-प्रकार मा मिन के बीत निल्वा है तह ता अपनी लाकमाया वानी मैंपिली मा मधेग करता है, किन्दा वव साववित के प्रयाजन से बाम्य लिखता है तह प्रवमाया वानी मैंपिली मा मधेग करता है, किन्दा वव साववित के प्रयाजन से बाम्य लिखता है तह प्रवमाया वानी मैंपिली मा मधेग करता है, किन्दा वव साववित के प्रयाजन से बाम्य लिखता है तह प्रवमाया वानी मैंपिली महिला मों मोंपा स्वति में। मापा वित् हुल अपन महिला के सुद्ध प्रवागी ही भाग की वरह माहत है कि साव मा स्वत के साववित में मापा के सुद्ध प्रवागी होती है।

हिस दाहिन इध्य समर्था मह, त्यारा पर्लाप्ट सामा रह तह एमड़ि एम्ड पहार परे, जह समादि समादि धार परे इस सामाद पराय चारकरा, तासारि नमझह किउन माड़ा हिर टीपपर टुटि सस्तर रहे, तु दोशिल धार्माह धार परे तु सा तुसा तस्य बसे, तु सहह रूगाह रोस रसे सम्बद जन रेपपहिं हा करा, महमाबह धारुन कर जहा न साहब माइब सतु करें, बानाहा दुन्य हुन सरे सहस्तर्गह सहिरकें चिपरु, असरान निजानह पिट दिव

त सने पेरेसम राय सो अरु सुरखेन करेंनी से करें मारिभ वप्प महु सो कर कवन हरेंनी

(कीर्तिलता ४।२२६-४३)

हर मापामें पूर्वी महंची का नामीनियान तह नहीं मिनेगा। अन्तिम दोहों में तो में ओ > मर्रो, हरें ओ > हरता के ब्रव्ह कर मी तहा दिखाई वहते हैं। अगन्नय के अ ± उ मा प्रव में सीचे ओ, होता है। बहुत हे रूपों में ध्यां बैते करों, मरपों आदि का प्रयंग मिनवा है। बहुते प्रवार के हरा ही बन्न की महीन के अनुहुन्न हैं। अ उ > औ, यो के विशास बी एक अवस्या एओ रही होगों ओ कीर्जिब्जा में बहुत दिखाई एकती है।

§ १०६ सिर्वासङ् के सिंहासनारोङ्ण के समय लिसे गए एक प्रशस्ति की भाषा द्रष्टन्य है। देवसिंह की मृत्यु के समय किवसिंद्र ने यहनो से आशान्त राज्य का कैसे उद्धार किया और (ग) बई > है (ब्रज, सम्बन्ध) पूज आस ग्रसवार कई उत्थि सिरनवह सन्त्र कई (शरहेप) जाके घर विश्व बने कहाई (सुर)

(ब) को— रान खम्म को भामन न जानह २।३६ (पद्यी) ब्रज में बहुत प्रचलित है।

(इ) केरि, नेरि को

तं दिस केरी राय घर तहणी (४) म्ह्) आय छपेटे सुतह नद केरे (सूर २५१६०)

ने ना प्रमोग दिन्दी में नेवल सब और खड़ी बोली में ही होता है। १४ वी १५ वी भी कोई भी ऐसी पुलक नहीं है जिसमें ने ने प्रमाग के कोई चिन्ह संदेत आदि प्राप्त हो। ने के प्रमाग के आदि रूप बेदक बीतिंग्ला में ही भिन्नते हैं। जैन्ने जावक बन रेजिंद (११६३), जैन्ने गिय दुल उद्धार्थमां १९१४) आदि । इसमें जेग ना निवस्तित जैन्ने—निवस्ते सक्ता का प्रमाण निवस्ति किनो स्व वनता है। पूर्वी अपभ्रश वी शुद्ध रचनाओं में इस प्रमार नि' बाले रूपों झा प्रमाण निवस्ति किनो रूपों का प्रमाण निवस्ति किनो स्व वनता है। पूर्वी अपभ्रश वी शुद्ध रचनाओं में इस प्रमार नि' बाले रूपों झा पिन्ना अस्तम व है।

> २—हर्ननानों के महत्त्वपूर्ण रूत— भेरहु>मेरी, बब भेरहु जेड़ गरिड अछ (२। ४२) भेरी मन अनन नहां रचनाने (सर)

मेरहु के साथ मोरहु रूप मो निव्या है दोनों का ब्रब रूप मोरो मेरी होता है। ही के इटं या हुने) पूर्वरूप तो कीर्तिक्या में बहुत मिन्दते हैं। (देखिए कीर्तिज्ञवा और अवहह; वर्षनाम मक्स्य)

पूर्ववर्ता निश्चन ना 'ऑ' स्त्र अत्वन्त महत्वपूर्ण है। ओ के सम्प्र बोहु ना प्रयोग निश्चित रूप से हिन्दी 'घर' के विशस की सूचना देता है। ऋोहु ना प्रयोग १४वीं शर्ता के किसी अन्य प्रत्य में शायद ही निले ।

बोहु खास टरवार (कीर्चि) ओ परमेसर इर सिर सोहइ (कीर्चि॰)

वह मुधि आनत तोहिं सुरामा (सूर) देखे तम अन ओज (सूर)

देखे तुम अस आऊ (व

सुर के 'ओज' का ओऽरि>श्रो भी अर्थ है । निकटवर्ती के एहु और 'पही' रूप का भी महत्त्व है ।

राय बरित रमालु एहु (कीर्ति०)

स्वाम को यहै परेखों आवे (सूर) विश्वकर्मों एहि कार्व छुज (बॉर्चि॰)

एहि धर बनी बीडा गत्र मोचन (सूर)

निवज्ञच्य अगम्रश अमण्ड वीर्तिच्या में विजिध रूपी में आता है। ग्राने दोस समक (वीर्ति) (ग) कइ > है (ब्रज, सम्बन्ध)

पूज ज्ञाम ब्रासवार कह उत्थि सिरनवह सन्त्र कह (२।२३४) जाकै घर निमि बने कहाई (पुर)

(१) मो--

टान खग्ग को मामन न बानइ २।३८ (पछ) ब्रज में बहुत प्रचलित है।

(क्ष) केरि, केरि को

तं दिस केरी राय घर तरुणी (४। ८८) आय रुपेटे सतह नद केरे (सर २५।८०)

ने का प्रोग हिन्ती में वेबल बब और खड़ी बोली में ही होता है। १४ वीं १५ वीं की कोई मी ऐसी पुलाब नहीं है विसमें ने ने प्रांग के कोई निन्द कीनेत ज्यादि प्राप्त हो। ने के प्रांग के आदि हर वेदन कीतिला में ही मिलते हैं। केनी जानक बन रिवेड (११६३), जेनो जिय दुल उद्युक्त डं (११६४) आदि। इसमें लेण का विकित केनो—विससे तक बनी किन कर बनता है। यूर्वी अपभ्रत्य की शुद्ध रचनाओं में इस प्रकार की युल्त करने किसी किनो कर बनता है। यूर्वी अपभ्रत्य की शुद्ध रचनाओं में इस प्रकार की याति करों का विन्त कर बनता है।

२—सर्वनानी के महत्त्वपूर्ण रूप--मेरहु > मेरी, बज

> मेरह जैह गरिह अझ (२। ४२) मेरो मन अनन कहा रचनावै (सर)

मेरहु के साथ मोरहु रूप मो निष्ठता है टोनों का ब्रब रूप मोरो मेरी होता है ! हीं के इडें या हमी पूर्वरूप तो कीर्तिकता में बहुत मिक्ते हैं । (देखिए कॉर्तिखता और अवरह; सर्वनाम प्रकरर)

पूर्ववर्ति निश्चय ना 'ऑ' रूप अत्यन्त महत्वपूर्ण है । ऋो के ताम ऋोहु ना प्रयोग निश्चित रूप से दिन्दी 'वह' के विनास की सूचना देता है। ऋोहु का प्रयोग १४वीं राती के किसी अन्य प्रन्य में शायद ही निले ।

> औहु खार दरबार (कीर्ति) ओ परमेत्तर इर सिर सोहइ (क्वीर्ति०) वह मुधि आपत तोहिं युदामा (सूर)

देखे तुम अस ओऊ (त्र)

सर के 'आंज' का ओऽरि> द्यो भी अर्थ है । निकटवर्तों के एडु और 'एही' रूप का भी महत्त्व है ।

सय चरित रमालु एहु (कीर्चि०) स्वाम को यहै परेखो आवे (सूर)

विश्वक्रमां एहि कार्य छल (कॉचिं०)

एहि घर बनी जीडा गब मीचन (सूर)

निषयाचक अगभ्रय अयगद वीर्तिङ्वा में विविध रूपों में आता है। ऋरने दोस समक (कॉर्ति) उदाइरण विभिन्न काल-की रचनाओं से उड़्त किये हैं। दो पट राजेश्वर की कर्पूरमंजरी (६०० ई०) से भी लिये गये हैं। डा० चांडुज्यों के मत से अधिकारा पद्य कृतिम साहित्यिक शीरतेनी भ्रपभ्रश या अवहट्ठ के हैं। २६४, ३७५, ४१२, ४३५, ४६३, ४६०, ५१६ और ५४१ सहयांक पद्य निश्चित रूप से प्राचीन पश्चिमी हिन्दी के कहे वा सकते हैं। इसी सिलसिसे में उन्होंने बी० सी० मजूमदार के इस कथन को भी श्राप्रामाणिक बताया है कि पृ० १२. २२७, २३४, ४०३, ४६५ के पद्य बगाली भाषा के हैं। उन्होंने किया सर्वनाम आदि के उदाहरण देकर उन्हें प्राचीन हिन्दी के रूप सिद्ध किया है। डा॰ तेसीतोरी इस भाषा ना बाल १२ थीं शती से पीछे खोंचने के पदा में नहीं हैं। तेसीतोरी के मत से यदापि इस सप्रह की कुछ रचनाएँ १४ वीं शताब्दी से प्राचीन नहीं ठहरतीं, किन्तु यही सब पर्यों के बारे में नहीं कहा जा सकता और पिर पिंगल श्रापभ्रश चौदहवीं शतान्दी की बीबित भाषा नहीं थी बल्कि साहित्यिक श्रीर परानी भाषा थी। पिर भी न्यावहारिक रूप से यह निष्कर्प निकल्ता है कि प्राकृतपुर्वेगलम् हेमचन्द्र के दोहों और नन्य भाषाओं के प्राचीनतम रूप के बीच को कड़ी का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह की भाषा १० वीं से १२ वीं शती की भाषा का आदर्श भानी जा सक्ती हैं। प्राकृतपैंगलम् में परिचमी हिन्दी या प्राचीन व्रज के जो पद प्राप्त होते हैं, उनमें से करीब ह हम्मीर से सबद है। प्र० १५७, १८०, २४६, २५५, ३०४, ३२७, ५२० के ल्रन्टों में हम्मीर का नाम श्राता है। इम्मीर के सर्वधी एक पद में 'जजल भणइ' यह बाक्यार्थ भी दिखाई पडता है :

> हम्मीर कानु जनल भणइ कोहागल सह महं जलउ । सरताण सीस करवाल दह तेवित कलेवर दिय चलउ ॥

श्री सहल साकत्यायन ने इम्मीर सक्त्यी कविताओं को जरजल-कृत बताया है,³ हालाँकि अन्होंने साप्ट कहा है कि जिन कविताओं में जयजल का नाम नहीं है, उनके बारे में सदेह है कि ये इसी किन की कृतियाँ हैं। जो हो जाजल-भणिता युक्त पदों को तो शहल जी जल्जल को कृति मानते ही है। डा॰ इजारीयसाद दिवेदी ने लिखा है 'यहल की का मत प्राकृत-पैंगलम् में प्रशशित टीकाओं के 'बरबलस्य उक्तिरियम्' अर्थात् यह बरबल की उक्ति है-पर आयारित जान पडता है। टीकाकारों के इस बाक्य का अर्थ भी हो सकना है कि यह भरजल की कविता है और यह भी हो सकता है कि यह किसी अन्य कवि द्वारा निवद मात्र अज्बल भी उक्ति है, अर्थात् किन निवद वक्तु-प्रोदोक्ति है। यदि दूसरा अर्थ लिया बाय तो रचना जज्जन को नहीं किमी ओर किन की होगी किन्तु यह किन शाक घर ही है इसना कोई संभूत नहीं। मेरा ख्याल है कि यह काफी स्तष्ट मत है और तन तक इस कथन की प्रामाणिकता असन्दिग्ध है जब तक शार्क्नधर का इम्मीर रासी प्राप्त नहीं होता. और प्राप्त

[🥆] १. चादुर्ज्या, ओ० डे० द० छे० ६०

२. तेसीतोशी, इडियन ऐंटिक्वेशी, १६१४, पूर २२

रे. हिन्दी काव्यथारा, प्र० ४५२, पात्र टिपाली

४. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पटना, १६५२, ए० १५

५. प० रामचन्द्र शुक्ल ने प्राकृत पैंगलम् के इन पदों को शाई घर का अनुमान किया है। हिन्दी साहित्य का इतिहास।

डदाइरण विभिन्न काल-की रचनाओं से उड्डात किये हैं। दो पद्य राजेश्वर की कर्पूरमंजरी (६०० ई०) से भी लिये गये हैं। डा॰ चाडुज्यों के मत से अधिकाश पद्य कृत्रिम साहित्यिक शीरसेनी अपभ्रश या अवहटठ के हैं। २६४, ३७५, ४१२, ४३५, ४६३, ४६०, ५१६ और ५४१ सस्यांक पद्म निश्चित रूप से प्राचीन पश्चिमी हिन्दी के कहे जा सकते हैं। इसी सिलसिले में उन्होंने भी० सी० मजूमदार के इस कथन को भी श्राप्रामाणिक बताया है कि पू० १२, २२७, २३४, ४०३, ४६५ के पद्य बगाली मापा के हैं। उन्होंने किया सर्वनाम आदि के अटाइरण देकर उन्हें पाचीन हिन्दी के रूप सिद्ध किया है। डा॰ तेसीतोरी इस भाषा का काल १२ वीं शती से पीछे खोंचने के पन में नहीं हैं। तेसीतोरी के मत से यदापि इस सप्रह की कुछ रचनाएँ १४ वीं शताब्दी से प्राचीन नहीं ठहरतीं, किन्तु यही सब पर्यों के बारे में नहीं बड़ा जा सकता और पिर पिंगल श्रापन्नश चौदहवीं शतान्दी की बीवित भाषा नहीं थी बल्कि साहित्यिक श्रीर पुरानी भाषा थी। पिर भी व्यावहारिक रूप से यह निष्कर्प निकल्ता है कि प्राकृतपैराहम हेमचन्द्र के दोहों और नव्य भाषाओं के प्राचीनतम रूप के बीच की कड़ी का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह की भाषा १० वीं से १२ वीं शती की भाषा का आदर्श भानी जा सक्ती हैं। प्रावृतर्पेगलम् में पश्चिमी हिन्दी या प्राचीन बज के जो पद प्राप्त होते हैं, उनमें से करीब ह हम्मीर से सबद है । ए० १५७, १८०, २४६, २५५, ३०४, ३२७, ५२० के छुन्दों में इम्मीर का नाम श्राता है। इम्मीर के सर्वधी एक पद में 'जजल मणह' यह वाक्यार्थ भी दिखाई पडता है :

हम्मीर कानु जनल भणइ कोहाणल सुद्द महं जलउ । सुरवाण सीस करवाल दह तेजिन कलेनर दिय चलउ ।।

भी शहुल साकुत्यायन ने हम्मीर सक्त्यी कविताओं को जरजरून बताया है, हालांकि उन्होंने स्ट नहार है कि दिन कविताओं में जरजरू का ताम नहीं है, उनके बारे में सदेह है के ये हों। इसि की हिवारों हैं। जो हो जरजरू मिणा युवा परों को तो शहुल जी जरजरू को हात मानते ही है। आ रु हवारीयादा दिनेदी ने लिखा है 'शहुल जी का मत प्राहतन वित्ता में मतावित यो काओं के 'जरजरूस अधितिया', अभाति यह जरजरू की उत्ति है— पर आणारित बान पड़ता है। यो काओं के 'जरजरूस अधितिया', अभाति यह जरजरू की उत्ति है— पर आणारित बान पड़ता है। यो का का स्वाहत है कि यह किसी अप्त विद्या का का का का की उत्ति है की स्वाहत के स्वाहत की उत्ति है की स्वाहत के स्वाहत की उत्ति है की स्वाहत की स्वाहत की उत्ति है की स्वाहत स्वाह

[🥆] १. चाटुर्ज्यां, ओ० टे० व० छे० ६०

२. तेसीतोरी, इडियन ऐंटिस्वेरी, १६१४, पृ० २२

रे. हिन्दी कान्यथारा, पृ० ४५२, पाद टिप्पूर्णा

४. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पटना, १६५२, ए० ९५

प. प० रामचन्द्र शुक्त ने प्राकृत पेंगलम् के इन पदो को शाईपर का अनुमान किया है । हिन्दों साहित्य का इतिहास ।

में लिखा गया था जिसे लेखक ने स्वर्थ संस्कृत में रूपान्तरित कर दिया। पहला छुन्द इस प्रकार है---

> जिंग वेभ घरिजे महियल िजे पिट्टिहि दवर्डि ठाउ घरा रिउ वस्ट्र विभारे, इंट तणु धारे, विषय सन्तु सुरज हरा कुल सचिय तप्पे, दहशुख कप्पे, क्सभ केमि विणास करा करूण पुत्रले मेड्ड विभले सो देट णरायण सुरह बरा

> > (४० तक्राइक्र)

गीत गोविन्दं का श्लोक :

वेदानुद्धरते जगत्तिग्रहते भूगोळमुद्दिश्चते । दैन्यान्दारयते वर्लि झुट्यते एत्र चय कुर्यते ॥ पीलस्य अयते हरू कलयते कारण्यमातन्त्रते । स्टेस्झान्मुर्ज्यसे दशाहतिहते कृष्णाय तुम्य भमः॥

(अष्टपर्दा १. रहोक १२. ए० १७) वस्तागम के समय की शीतल रार्ते निरही लोग अत्यत कप्ट से निवाते हैं. साथ ही

पराताल के समय का स्वातक थो। तक शिक्ष को भाव अवदा क्षट का निवात है, साथ हा फूलों को गरूप, मौरी की गुजार और कोकिल को कावलों उनके हृदय को प्रिया समागम की स्मृतियों के उद्वास से मर देतों हैं-न फुलरूक कल वन बहुत स्वष्ट प्रवाय

त जुरुष्य करण कर वह शिक्ष विद्वित्यं भकार पण्ड वण रवड़ इहिंड गण विरहिष हिप हुभ दर विरसं आणदिस कुभ अण उल्ला उटिय मण् सम्बद्धित हिम सम्बद्धा परक्ट सिस्सर रिड दिवस दिहर भड इसुम समय अवतरिय वणा

(90 4501713)

गीत गोविन्द का श्लोक :

उन्भीलनमञ्जगन्यलुञ्चमञ्जष्याधूतचूतादुर स्रीदकोबिलकाकणीनस्पैबेस्त्रीणंत्रमञ्जसः । नोबन्ते पथिकै कथ क्षमाणि स्वानावधानवजन प्राप्तप्राणसम् समागमरसोलकासैरमो वासराः ।।

(पृ० २१)

कुरण क्वरी एक और पय प्राष्ट्रवर्षेगव्य सं क्षत्रिव है, यह सीवे बयदेव के गीत-गीवन्द के निशी रलोक मा अनुवाद या कमानार्थी तो नहीं मालूम होता किन्तु वस्तु और वर्णन नी दिह से कपदेव के रूगोर्झ मा उद्गत प्रमाद माद्रम होता है, दो एक रूगोर्झ की साथ रखनर देखने से शायद अनुवाद भी मालूम पड़े।

१. मगेश रामकृष्ण वैलग द्वारा संपादित, बग्बई १६९३

में लिखा गया था जिसे लेखक ने स्वयं संस्कृत में रूपान्तरित कर दिया। पहला छन्द इस प्रकार है---

तिण वेत्र घरिने महियल लिने पिद्विह दतर्षि दाउ घरा रिउ बच्च निक्षारे, इस्त तसु घरो, विधय सतु सुरना हरा इस्त सविष तप्पे, दहमुख कप्पे, क्रात्र केमि बिणास करा करुमा पत्रले मेड्ड विश्रले सो देट गरावण सुम्ह बरा (१० पण्टा२००)

गीत गोविन्दैं का श्लोकः

वेदानुद्धते अगन्निउद्दे भूगोष्टमुद्धिप्रते । वैत्यान्दारपते विरू दुरुयते एव चय दुर्यते ॥ पीलस्य अयते हरू कल्यते कारण्यमातन्यते । स्टेच्हान्मुर्द्धयते दशाहृतिहृते कृष्णाय तुम्य नमः॥

(अष्टवर्दा १. रहोक १२. १० १०) वसन्तामम के समय की ग्रोतळ रातें निरही लोग अस्पत कह से जिताते हैं, साथ ही पूजों को गन्ध, मीरों की ग्रुजार और केंक्तिज को वक्कतो उनके हृदय को प्रिया समागम की स्तरियों के उक्तात से भर देती हैं-

> ज कुल्ल्फ फल वन बहत लड्ड पवण ममह ममर कुल दिसि विदिसं मफ्डार पण्ड वग रवड़ कुहिल गण बिरडिय हिंद हुअ दर विदसं आणदिय जुन अण उल्ह्य उदिय मणु सरस नोटिंग किम सवणा पल्ल्ट सिसिर दिउ दिवस दिहर भड कमम समय अवविध्य वणा

> > (90 4501213)

गीत गोविन्द का इलोक :

उनमीलनमशुगन्धलुञ्चमशुष्य्याभूतचूताहुर स्त्रीहरूकोव्हिलकाकलीकरावेदहीर्जकर्णकराः । नोवन्ते पथिकैः कथ क्षमपि ध्यानावधानसण-प्राप्तप्राणसम् समायमरसोवलासैरमी वासराः ॥

(£0 5£)

कुष्ण सन्त्री एक और तय प्राष्ट्रवर्षेगलम् सं सन्त्रित है, यह सीवे बबदेव के सीत-मोक्टर के निधी स्लोक मा अनुवाद या समानार्थी तो नहीं मालूम होता किन्तु वस्तु और वर्णन नी हिंदे से बचदेव के स्लोक मा रहुत प्रमाद मानूम होता है, दो एक इनोकों को साथ स्लार देलने से शायद अनुवाद भी मालूम वह ।

१. मगेश रामकृष्ण तैलग द्वारा संपादित, बग्बई १३१३

है। आहे (४६२१२ ८अच्छार अव्हित्र), क्रोजे (४०२१२८क्तिबर्ग्ट, क्रिये), क्रीजे (४०२१२८क्तिबर्ग्ट, क्रिये), क्रीजे (४०२१२८क्तिबर्ग्ट, व्यव्यक्ते) च्यवीस (१५५१२८च्ये), चाम (४६१२८च्यमी), जाम (१४३१८८क्तिः) प्रोत्तिक (१४३१८८क्तिः), प्रोत्तिक (४६३१८८क्तिः), होस्य (११५१५८६स्पते) आदि। मप्पम व्यवन-दित्ते के सहवीक्ष्ण की इस प्रवृत्ति (Simplification of Intertocalic) के कारण इस मापा में नई शक्ति और राजनी दिलाई पढ़वी है।

§ ११३, ब्रजापा की दूसरी विशेषता अनुस्वार के हस्वीकरण की है। इस प्रवृत्ति में भी ध्वन्यासक विकास की उपयुक्त परिस्थित ही कारण मानी वा सक्ती है। किसी व्यवन है। परे को आप हुआ पूर्ण अनुस्वार संजुनित होकर निकरण स्वर का नारिक्य रह पाता है। परे का आप का मानी मी चारते हो किसी अवस्था में कभी तो चृतिपूर्ति के लिए पूर्वर्की हमर को शीच कर तेते हैं, कभी नहीं भी करते। प्रवास में कभी तो चृतिपूर्ति के लिए पूर्वर्की हमर को शीच प्रवित्त के स्वर मानी प्रवित्त को शीच आप के अनुसासिक के हरवी हम के उदाहरण पूर्वर्की स्वर को स्वित्त तेते लिए रीर्थ हिम्स हम हिस्सार प्रवृत्ती के हह हमति हम तरह के उदाहरण व्यवस्था में भी विरत्य नहीं हैं।

सँदेसनि < संदेश, गोविंद < गोविन्द, रॅंग < रंग, नॅंदनन्दन < नन्दनन्दन । प्राञ्चतर्गेनलम् में भी इस तरह के रूप मिलते हैं ।

खँषया (१२६।४८ संपक), मँडने (१५७।४८ संयुक्त) चँडेसर (१८४।८८ चण्डेरवर) पँचवालीस (२०२।४८ पचवत्वारिशत्) इस भकार का इस्वीकरण सुन्दानुरोध के कारण और बलाबात के परिवर्तन के कारण उपस्थित होता है ।

§ ११४. प्राकृतकाल में शब्दों के बीच से स्पंतनों का प्राय: लोग हो जाता था। मध्यम क ग च व द प य न आदि के लोग होने पर एक विकृति (Hastus) उत्स्व हो जातों थी। इस विकृति को नन्य भाषा चाल में कई प्रकार से दूर की मन्ति दिखाई पड़ती थे। वा विकित नियमों के अनुतार वे सहस्वर संयुक्त कर दिए जाते हैं, या उनमें य या व या ह श्रुति का समानेश करते हैं। इस प्रकार चर्रात का चरह या चवह रूप, चले या चवै हो जाता है। वहुत का कहा, आयउ वा आयो रूप इसी प्रकार विकास पाते हैं। अवनाया में प्राय: औ और ऐ दिखाई पढ़ते हैं। इन्तीकी में औ के स्थान पर को और ऐ मिन्ते हैं। प्राप्तनीय को भाषा में विकृति को सुर्वित न रखने की प्रशृति आरंभ हो। याई वो स्थान से भाषा में विकृति को सुर्वित न रखने की प्रशृति आरंभ हो। सही था सी

श्र+ ६= भो आओ (५१६।४< ज्ञाभत ५५२।४< ग्रागतः), उगो (३७०।४ उदितः) बरियो (२४।४< व्हिअउ १६८।४< व्हितः), चौद्द (४०४।२< चउद्दर चर्दरंग), बगोओ (२४८।१< बनितः), मौद्दा (४४३।३< भूवै)

x+x=0, आहे ($x\in x$! $x<\infty$), आवे ($x\in x$! $x<\infty$), महीं ($x\in x$! $x\in x$

का नियान या। अपञ्चरा के नह मन्यरा (व) व्यञ्जन का कुछ राज्यों में क्षेत्र दिसाई पडता है। यह कोप मूटतः प्रमुक्त या भृति बन्च दोनी प्रकार के व के प्रयोगों में दिसाई पडता है। है। आहे (४६२१२ ८अच्छर्-अब्ति^{*}), क्रोंजे (४०२१२ -क्षिक्चर्-क्रियते), क्र्हींजे (४०२१२ -क्षिक्चर्-क्रियते), क्रहींजे (४०२१२ -क्षिक्चर्-क्ष्यते) व्यवीस (१५५१२ -व्यविद्यति), चाम (४३६१२ -वर्मा), बामु (१४३१ - व्यव्याति), चीहास (४५३१२ - निःश्रास), खानु (१०१६ - (स्यः), दीखर् (११५५५ - ट्रन्ट्यते) आदि। मप्पम व्यवन-दित्यों के सहवीकरण की इस मानुत्ति (Smplification of Intertocalic) के कारण इस मान्या में नई राक्षि और समानी हिलाई पहली है।

§ ११३, ब्रवमाया की दूसरी विद्यापता अनुस्वार के हस्वीकरण की है। इस प्रवृत्ति में मी प्वन्यासक विकास की उपर्युक्त विदिश्यित ही कारण मानी वा सक्ती है। किसी त्यावन के पहले आया हुआ पूर्ण अनुसार संजुत्वित होकर निकटस पद बात है। प्रेसी अवस्था में कभी तो चुलिपूर्ति के लिए पूर्ववर्ती त्यर को डोर्थ वर सेती हैं, कभी नहीं भी करते । ब्रवमाया में बग्री का बाँतुरी, पंकि का पाँत, पण्डित वा गाँडे, पंच का पाँच आदि रूप असकर मिलते हैं। माइन्तर्यक्रम की भाषा में दस तरह के रूप दिलाई नहीं पबने किन्तु अनुनातिक के हरवीकरण के उदाहरण पूर्ववर्ती त्यर को घरिपूर्ति के लिए दीर्थ किए होगा ही दिसाई पड़ते हैं। इस तरह के उदाहरण व्यवस्था में भी विराज नहीं हैं।

सँदेसिन्< संदेश, गोविंद<गोविन्द, रॅंग<रंग, नॅंदनन्दन<नन्दनन्दन।

प्राकृतपैंगलम् में भी इस तरह के रूप मिलते हैं।

र्संबया (१२६१४८ लंभक), मेंबुने (१५७१४८ वंधुक) वंडेसर (१८५१८८ चण्डेश्वर) पँचतालीस (२०२१४८ वचनतारिसत्) इस प्रकार का हत्वीकरण छुन्तानुरोध के कारण और बलाधात के परिवर्तन के कारण उपस्थित होता है।

§ ११४, प्राइतकाल में उपने के बीच से स्पंतनों का प्राय: लोग हो आता था।
प्रायम क ग च बत द प य ब आदि के छोर होले पर एक विवृत्ति (Hadus) उत्स्व्य
हो आतो थी। इस विवृत्ति को नन्य भाषा थाल में कई प्रकार से दूर करने थी प्रवृत्ति दिखाई
हो आतो थी। इस विवृत्ति को नन्य भाषा थाल में कई प्रकार से दूर करने थी प्रवृत्ति दिखाई
परावी है। या तो चेंचि नियमों के अनुसार ने सहस्वर संयुक्त कर दिए जाते हैं, या उनमें
य वा वा सा हु श्रुति था सालविश करते हैं। इस प्रवार चर्यत्र का चरह या चल्द रूप, चले
या चले हो बाता है। कहुड था कही, आयउ वा आयो रूप इसी प्रवार विकास पाते हैं।
प्रवृत्ति में सा प्रवृद्धि स्वर्ति को स्वर्ति वा रखने थी प्रशृति आरंभ
हो गई थी।

য়+६=ओ आओ (५१६१४<য়৸য় ५५२१४<য়৸য়:), उमो (३७०१४ उदितः) विदेषो (२४१४<वृद्धित १६८१४<वृद्धितः), चौद्द (४०४१२<चउद्दर चर्जरंग), बमोओ (३४८११<बनितः), मौद्य (४४३१३<भूवै)

ग्र+ इ≕ऐ, आहे (४६५।२<भन्डह), आदे (१५८)४<आवइ<आयाति), क्ट्रीने (४४२।२<कहिन्नर २४६।५<कप्यते), घरीने (४१२।१<घरिनट्<प्रियते ।

§ ११४. विद्यति या दायटस को दूर करने के लिए अगन्नश्च काल में या व श्रुति का निपान या। अपन्नश्च के बह मध्यग 'च' व्यञ्जन का कुछ राज्यों में लोग दिखाई पडता है। यह लोग मृख्यः प्रयुक्त या श्रुति अन्य दोनी प्रकार के व के प्रयोगी में दिखाई पडता है। बैसे 'पुलिंग ग्रब्दों में ने प्राय अन्त में 'को' जोडते हैं जैसे क्लूबे। किन्तु बोलचाल में 'श्लो' के स्थान पर 'आ' का प्रयोग करते हैं चैसे कलूब। क्लाग ने भी इस प्रकार की प्रवृत्ति पर म्यान दिया था। जन्मपाय की धन्मपासक विशेषताओं के बारे में केलाग ने क्लिस है—

'ब्रबमाया में बदान्त ना 'ब्रा' विरोपयों और कियाओं में प्राय' 'ओ' दिखाई पडता है किन्तु समा शब्दों में प्राइत ना 'ओ' ब्रा ही रह बाता है। बो हो ओशरान्त और आकारान्त दोनों तरह के प्रयोग कह में चलते हैं।

§ ११७. दूसरी विशेषना है ओकारान्त प्रयोग । प्राचीन त्रव में अभी तक ओकारान्त पदों ना विनास नहीं हुआ या । सूर और सूर के बाद को ब्रव्यभाता में प्राय औनारान्त रूप मिलते हैं । मिल्ली हा ने भी सर्वत्र ओकारान्त ही रूप दिए हैं इस पर विवाददीन ने एक टिप्पणी भी दी है, बिसमें इस ओ-कारान्त का बोल-चाल की मापा की विशेषता बताया है ।

§ १६ व्यवभाषा के सर्वनाभी में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे साधित रूप हैं वो इसे अन्य भाषाओं से भिन्न करते हैं। खड़ी बोली के सर्वनामों के तिर्यंक रूप जिस, जिस, किस, उस आदि के आवार पर बनते हैं जैसे जिसने, उससे, जिसको आदि। निन्नु जनमापा के तिर्यंक् रूप था, ना, ना ना आदि साधित हैं अपाँत जनमापा में ये रूप वामें, वाको, वाको, ताको, ताकी, वादि नते हैं। इस प्रकार खड़ी बोली में चविक साधित-रूप में जिस, तिस, उस ना महत्व है जब में ता, ना, ना, या, या, ना ना। प्राइतर्येगलम् में इन रूपों के बीज विन्द दिलाई पहते हैं।

- (१) कैसे जिविभा ताना निश्रला (४०८।४)
- (२) ताक बणणि किण यक्उ वक्तउ (४७०।४)
- (३) काहु णग्नर गेह मद्रांख (५२३।४)
- (४) जा अद्धर्ग पन्नई सीसे गया जासु

इन सर्वनामा के अरावा को, चो, तामु, जासु ख्रादि ब्रबभाषा के बहुपचरित रूपों के प्रमोग भरे पढ़े हैं। नीचे कुछ विशिष्ट प्रयोग दिये जाते हैं--

- (१) हम्मारो दुग्निंग सहारो (३६१।४ प्रा॰ पै॰)
- (२) हमारे हरि हारिल की लक्षरी (सूर)
- (२) गई भवित्ती क्लि का हमारी (४३५४ मा० पे०)
 - (४) हमरी गत सुनो ब्रवसय (सूर)
- (५) उप्पाय हीणा हुउँ एक नारी (४३५।२ प्रा॰ पैं॰)

मध्यमपुरुष के सर्वनामां के भी बहुत ही विकसित रूप दिलाई पडते है। (१) किंति तुम इरिवम भण (१८४)८)

- (२) सोहर तोहर स्कट सहर (३५१।२)
- १ वैरात, प्रामर आफ दी हिन्दी हैंग्रेब, १० १२८
- २. ए प्रांतर आफ दा बन भाषा, पृष्ठ ३७, फुट नोट

'पुलिंग शब्दों में ने प्राय अन्त में 'ओ' बोडते हैं भैसे क्यूटों। क्यि बोलचाल में 'श्लो' के स्थान पर 'आ' का प्रयोग करते हैं भैसे क्लूटा। केलग ने भी इस प्रकार की प्रवृत्ति पर ध्यान दिया था। जनभाषा की धनन्यात्मक विशेषताओं के बारे में फेलग ने लिखा है—

'बबमापा में पदान्त का 'खा' विरोषणों और क्रियाओं में माय' 'ओ' दिखाई पडता है किन्तु सज्ञा शब्दों में माइत का 'ओ' जा ही रह बाता है।' वो हो ओक्सरान्त और आकारान्त दोनों तरह के प्रयोग कब में चलते हैं।

§ ११७. दूसरी विशेषता है ओकायन्त प्रयोग । प्राचीन बच में अभी तक ओकायन्त पदों ना विशास नहीं हुआ था । सूर और सूर के बाद की बचनाया में प्राय औनायन्त रूप निल्जे हैं । मिन्नों खा ने भी सर्वन ओकायन्त ही रूप दिए हैं इस पर शियाउदीन ने एक टिप्पणी भी दी है, बिसमें इस ओकायन्त का बोल-चाल की मापा थी विशेषता बताया है।

§ १६ = व्रबमाया के सर्वनामों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे साधित रूप हैं वो इसे अन्य भाषाओं से भिन्न करते हैं। खबी बोलों के सर्वनामों के तियंक रूप निस्त, तिस, किस, उस आदि के आधार पर बनते हैं बेसे जिसमें, उत्तरी, जिसकों, तिसकों आदि। रिन्तु व्रबमाया के तिर्वक् रूप बा, बा, बा बा आदि साधित हैं अपांत् ब्रबमाया में ये रूप वार्त, बाको, जाको, ताका, आदि वनते हैं। इस प्रकार खडी बोली में बविक साधित-रूप में निस्त, तिस, किस, उस वा महत्व है बच में ता, वा, वा, वा वा वा। ब्राइवर्षनकम् में इन रूपों के बीज विन्दु दिखाई पडते हैं।

- (१) कैसे जिविआ ताना पिछला (४०८I४)
- (२) ताक वणणि किण यक्त वभाउ (४७०/४)
 - (३) काडु णत्रर गेह मद्रणि (५२३।४) (४) जा अदंगे पन्नई सीसे गंगा जास

इन सर्वनामा के अलाता को, सो, तासु, जासु ख्रादि प्रवभाषा के बहुप्रचटित रूपों के प्रयोग भरे पढ़े हैं। नोचे इन्छ विशिष्ट प्रयोग दिये जाते हैं--

- (१) हम्मारी दुरिन्ता सहारी (३६१।४ प्रा॰ पैं०)
- (२) हमारे इरि दारिल की लकरी (सूर)
- (३) गई भविसी विल का हमारी (४३५।४ मा० पें०)
- (४) हमरी बात सनो जनस्य (सर)
- (५) उप्पाय हीणा हुउँ एक नारी (४३५।२ प्रा॰ दैं०)

मध्यमपुरुष के सर्वनामां के भी बहुत ही विकसित रूप दिखाई पडते है।

- (१) किति तुझ इरिवम भण (१८४।८)
- (२) सोहर तोहर स्वट सहर (३५१।२)

१ कैलान, प्रामर आफ दी हिन्दी लेंग्वेज, पृ० १२६

२. ए प्रामर आफ दा बज भाषा, पृष्ठ ३७, फुट मोट

द—प्रविधाया की असमापिका त्रियायें अपना निजी महत्त्व रखती हैं। इनकी सबसे महत्त्वपूर्ण विद्योगना है समुक्त पूर्वकालिक त्रिया का प्रयोग। बन्नप्राया में इस तरह की त्रियाएँ सर्वत्र दिखाई पडती हैं। पूर्वकालिक त्रिया के साथ√क वा पूर्वकालिक रूप।

मई ज़ुरि के लरी (ब्रूर)

क्छुक दिवस औरो बच चसि के (सर)

खडी बोली दिन्दी में इसका थोजा भिन्न रूप पदनकर, खाकर आदि में दिखाई पड़ता है। प्राकृत पैरारुम् के रूप इस प्रकार हैं।

वह राय विगतित अगुमर खतित कहि कार वहि छुन्द भगी (३३०१३, ४) 'कहिकर' काट वर का पूर्व रुप है। जनामा में 'काटि की' हो वायेगा। के का पूर्व रुप कर भी महत्त्वपूर्ण है। दूसरा उदाहरण देखें—

इय गय अप पसरत धरा गुरू सिक्किसरा (३३०।६)

स्या के तुक पर अतिन शब्द 'कर' का करा हो गया है। 'धिन्नकर' में पूर्वकारिक युग्म मा प्रयोग देखा जा सरवा है, इतने 'कर' सबी शोधों में आज मी प्रचिश्च है। इसी तब 'छुक्कान्तु मुँह संपायि कर' (२५६।४) में भी बढ़ी प्रकृति दिखाई पहती है। छन्देशासक में 'देवि करि' रूप से भी इसी प्रकृति का पता चलता है।

ब्रबमाया में मुतनाट दी सामान्य किया में होजों ने औनारान्त या ओक्सरान्त की महर्षि को लद्द्य किया है। इस तरह के रूप पहले वर्मवाच्य में ये श्रीर बाद में ये कर्तृवाच्य में बहल वर्ष । माइत वैपलम में इस प्रकार के कर्मवाच्य रूप मिलते हैं—

- (१) लोइहि बाणीओ (५४०।३)
- (२) पणिएँ भणीओ (२४८।१)
- (३) पिगलें बहिओ (३२११३)

नर्मवाच्य के ये रूप इन में कर्नु बाच्य में बदल गए । प्राकृत पैगलम् में कर्मवाच्य रूपों ये साथ साथ कर्नु वाच्य के भी रूप दिसाई पडते हैं।

- (१) सिहर कंत्रिओ (२६०११)
- (२) नग्रण मृतिश्रो (२६०१२)
- (१) सो सम्माणीय्रो (५०६।२)
- (४) पफ़िल्ल खुद उसो सहि चद (३००१४)

कित रूपों में और भी बहुत से महत्वपूर्ण मयोग माकृत पैगलम् की भाषा में मिलते हैं, विनक्त आमें चक्टर क्रवामाय में विकास और रूपान्तर दिलाई पड़ता है, सामान्य बर्तमान के लिय त्वीमान करूत के अन्त (रातृ मत्वापान्त) रूपों का मयोग भी इस भाषा की विधेषता है। उद्यो हैएता (५०॥४), मन्के विधि पण्न (५६६।२) आदि। ऐसे रूप ससी, क्योर, चारण रीनों के नरहरिमट आदि की स्वनाओं में बहुत मिलते हैं।

है १२१. बबमापा के अपन्य के बहु प्रचटित थी, हो, आदि रूप प्रकृत वैंगचम् में नहीं मिलते । किन्तु प्राकृत वैंगटम् में 'दु' का प्रचेंग एक स्थान पर हुआ है । 'दु' ब्रबमाया में पारमूरक अन्यर है, बिस्का प्रचेगा बहुतायत से हुआ है । द—प्रवमापा की असमापिका नियायें अपना निवी महत्व रह्मवी हैं। इनकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषण है सबुक पूर्वशिक्त निया ना प्रयोग! अवमाया में इस तरह की नियापें सर्वत्र दिलाई पडती है। पूर्वशिक्त निया के साथ√क वा पूर्वशिक्त रूप।

भई ज़रि के लरी (ब्र्र)

बहुक दिवस औरो बन बस्ति के (सर)

खडी बोली हिन्दी में इसका योडा भिन्न रूप पहनकर, खाकर आदि में दिखाई पडता

है । प्राकृत पैगलम् के रूप इस प्रशार हैं 1

बह राय विपत्तित अणुनर खतित कहि करा वहि छुन् भगी (२३०।३, ४) 'कहिकर' काट कर का पूर्व रुप है। ब्रह्माया में 'काटि की' हो डायेगा। के का पूर्वरूप क्र्ए भी मस्त्वरूग है। दूसरा डराहरण देवें—

हय गय अप पसरत धरा गुरू सिद्धिकरा (३३०)६)

भरा के तुह पर अतिम शन्द 'का' वा करा हो गया है। 'सिजरूर' में पूर्वसिन्ध युम्म ना प्रयोग देखा वा सरता है, इसमें 'कर' खडी घोड़ी में आज मी मचित्रत है। इसी ताह 'जुक्ततु ग्रेंट संपापित कर' (२५६१४) में भी वडी प्रश्नृति दिखाई पडती है। उन्देशसक में 'देहीन न्हरे' कर से भी इसी प्रश्नृति वन पता चलता है।

प्रकारम में भूतकाल की सामान्य क्रिया में स्तेश से श्रीकारान्त या ओकारान्त की प्रकृति की सहय क्रिया है। इस हाइ के रूप पहले कर्मवाच्य में ये खीर बाद में ये कर्तृवाच्य में पहल गए। प्राकृत वैंगतम में इस प्रकार के कर्मवाच्य रूप मिलते हैं—

- (१) लोइहि चाणीओ (५४०।३)
- (२) पणिएँ भणीओ (२४८।१)
- (३) विगलें बहिओ (३२३१३)

क्रमेंबाब्य के ये रूप ब्रज में कर्चु बाच्य में बदत गए । प्राकृत पेगलम् में कर्मबाब्य रूपों हे साथ साथ कर्चु बाब्य के भी रूप दिलाई पडते हैं।

- (१) सिहर करिओं (२६०११)
- (२) नद्राण मापित्रो (२६०।२)
- (३) सो सम्माणीधी (५०६।२)
- (v) पफुल्लिअ दुद उगो सहि चर (३००।v)

किया रुपो में और भी बहुत के महत्त्वतृष्ण प्रयोग प्राकृत पैगलम् की भाषा में मिलते हैं, विनक्ष आगे पक्कर बक्ताया में विकास और रुपात्यर दिलाई एडवा है, सामान्य वर्तमान के लिए यर्तमान कृरस्त के अन्त (रातृ मत्यायात) रूपो वा प्रयोग भी इस भाषा भी विधेयता है। उदा होस्ता (५००१४), मन्ते विशि पक्ता (६६६१२) आदि। ऐसे रूप रातो, क्वीर, चारण रोती के नरहरेसट आदि की स्वनाओं में बहुत मिलते हैं।

\$ १२१. जबभाग के अप्यय के बटु प्रचित्त थी, हो, आदि रूप प्रकृत पैंगव्य में नहीं मिलते । फिलु प्राकृत पैंगटम् में 'तु' का प्रयोग एक स्थान पर हुआ है। 'तु' ब्रजमापा में पारमूरक अन्यर है, जिसका प्रयोग बहुतायत से हुआ है। जिनवर्तमपूरि नाम प्रसिद्ध किया। इति माद्रम होना है कि श्री जिनवर्तमपूरि ११-६८ के आसपास नियानन ये, अत बृहिमद् नामु ना रचनात्राल इसी सबत् ने आस पास मानना ज्यादा उचित होगा। बृहिमद् नाम श्री मुनि जिनमित्रव वो द्वारा सपादित प्राचीन गुर्वेर काल्य क्षमद में सक्तित है। परवा अगम्रत में लिसी दल रचना की भाषा में गुवरासी प्रमाप अगरपाना है, क्षिन्त कामान्यत उसमें ब्रवमाय नी प्रमुख्यों में सरा दिसाई पड़ती हैं। मुनि रहिमद्र पानिशुप में चतुर्वाक व्यतीन नरते के लिए दक्ते हैं, वहीं एक वेरवा उन्हें हुव्य करने के लिए नाना प्रमार के प्रयत्न करती है। लेवक ने वेरवा वे साम श्रद्धार कीर सीटर्य का वर्णन इस माना में हिसा है।

वयान इस मापा म कथा है।

कारिल अजिव नवन जुय सिरि समंग्र फाडेइ
वोरियांडिरि काञुल्य उर महील ताडेइ ॥१३॥

कन्तु लुवल जमु रहरूइत किर मयण दिहोला

प्राप्त वयल तरग चग जमु नयण क्वोला

सोइइ जामु क्वोल पाल जगु गालि मसूरा

कोमल विमल मुक्ट जामु वाजद सलहर्रा॥१६॥

स्वर्णिम रतमारि क्वांच जमु नाहिय देहु

सममार्थ किर विचयलम जमु उरू सोइइ

जमु नत्र पहा विचयलम जमु उरू सोइइ

जमु नत्र पहा कामदेव अनुस जिम राजद्द

रिमिन्सम रिमिन्सम पाव कमिल घावरिय मुवाजद्द ॥५०॥

नव जोवन विद्वाचि देह नव नेद गहिही

परिमल एदरिहि मदमयत रह केलि पहिंही

परिमल एदरिहि मदमयत रह केलि पहिंही

नयन सञ्जीष हात्र भाव बहुगुण सम्पुर्धा ॥१६॥ इणि मिणगारि करेति वर जब आई मुणि पासि जो एवा कडतिय मिलिय सुर किनर आकासि ॥१७॥

भाषा की दृष्टि से सरलीहृत काजि < कजल, काजुलिय < क्श्वुलिय, वाजह < वजह, वाषारिय < वग्यर (देशीनाम माणा) आदि राज्य, निर्मित्तिक कारक प्रयोग, जस, जास, जो आदि राज्या तिहन्त रूप स्था लहकदत, विश्वात आदि हृदन्त का सामन्य बर्तमान में प्रयोग, और भूत कृत्रना वे स्नोतिमी सम्पूर्ण, यमे, प्रदित्ती, आदि हृदन्त का सामन्य बर्तमान में प्रयोग, और भूत कृत्रना वे स्नोतिमी सम्पूर्ण, यमे, प्रदित्ती, आदि रूप भृतवाल हे हृदन्त निष्टा का स्नोतिम 'आई' रूप, तलम राज्दों की अदि तृष्टुला आदि विशिष्टवार्षे इस माथा को पूर्वन्ता अपन्नश्च से काषी दूर और मज हे निकट वृह्न्वार्ती है।

हिडोटा, बचोला, मयुरा, सगराग, आदि प्रयोगों से देखने मे यदापे खडी बोट्यो का भी आमास होता है पर ये प्रयोग इब में भी चल्ते हैं।

ऐतिहासिक जैन काम्य सब्रह, अगरचन्द्र नाहरा और भवरलाल नाहरा, कल्क्सा सवन् १११९, ए० १४-१५

जिनवह्मसूरि नाम प्रसिद्ध किया। इति साहन होता है कि श्री जिनवह्मसूरि १२मस् के आसपास नियमान से, अत बूब्लिस् नामु ना रचनामाल इसी सबस् ने आस पास मानना उपारा उतित होगा। बृद्धिना ना श्री मुनि जिनानिब वी हारा क्यारित पासित माने गुर्वेर काव्य समझ से सहस्ति है। परवता अपकृष्ठ में सित्यी देश रचना की माणा में गुवराती प्रमान कारणमारी है, किन्तु सामान्यत दसमें बनमाया की प्रश्नीयों मी स्पर दिताई यहती हैं। मुनि द्विकाद पानिश्चन में चतुर्वार व्यतीन करते के लिए करने हैं, वहीं एक वेरूपा उन्हें हुक्त करने के लिए नाना प्रसार के प्रयत्न करती है। केनक ने वेरूपा के सामार के प्रयत्न करती है। केनक ने वेरूपा के सामार के प्रयत्न करती है। केनक ने वेरूपा के सामार के प्रयत्न करती है। केनक ने वेरूपा के सामार के प्रयत्न करती है।

कानलि अजिबि नयन जय सिरि समेड फाडेड बोरियादिदि कानुस्य उर मद्दलि साहेह ॥१३॥ कन्तु शुबल जमु लइल्हत किर मयण हिंदोला चञ्चल चपळ तर्गचग बसु नयग कवोळा सोहर जाम क्योल पालि जण गालि मसुरा कोमल विमल सकट जास बाजइ सखतुरा ॥ १८॥ लविम रसभरि कृवडीय असु नाहिय रेहड मयगराइ किर विजयस्त्रम समु उरू सोहद्द जम् नत्र पहार कामदेव अदुस जिम राजइ रिमिम्म रिमिम्म पाय कमलि घायरिय सुत्राजङ्गा । नव जीवन विडसति देड नव नेड गडिझी परिमल लहरिदि मदमयत रह केलि पहिली भडर बिंब परवाल खण्ड वर चपा वर्जी नयन सञ्जीय हात्र भाव बहुगुण सम्पुर्धा ॥१६॥ इणि निणमारि करेबि वर जब आई मुणि पासि ाँ। एवा कडतिय मिलिय सुर किनर आकासि ॥१७॥

भाषा की दृष्टि से सरलीहृत काविं < कवल, कावुलिय < कव्युलिय, वावद < ववद, । पाश्रीय < वव्य (देशीनाप माना) आदि शब्द, निर्मितिक कारक प्रभाग, वस, जास, जो आदि सन्त्राम विम तिम निया मिण्या, अति विमित्त अपग्रश्च ने तिहन्त रूप तथा ल्हळहत, विमस्ति आदि एट्टन सा साम्य्य वर्तमान में प्रभाग, और भूत कृतन्ती के स्निल्ती सानुनी, यो, गरिली, आदि रूप मृतकाल ने इटन्त निष्टा का स्त्रामित के अति वर्णुला की दिशिष्टाण इस माना की पूर्वत्वा अपग्रश्च से कावि दूर और अब ने निकट पहुँचावी है।

हिडोडा, क्योंग, मन्स, सगत्ग, आदि प्रयोगों से देखने से यदापि लडी बोडो का भी आमास होता है पर ये प्रयोग ब्रज में भी चरते हैं।

ऐनिहासिक जैन काग्य सम्रह, अगर्चन्ट नाहटा और अवरलाल नाहटा, कल्कण सबन् १११५, ए० १४–१५

क्निन्तु चर्वागीत ही भाषा अन्ताश्रष्ट्रिक की दृष्टि से अवहृद्ध या परवर्ती अरक्षरा से साम्य रखते हुए भी वृद्धी प्रवोगों से अत्कृत रंगी हुई है।

१२वीं से १४वीं नाळ वी मापा की विचयन-वालिका मैंने परिचनी राजस्थानी वा जिल किया है। इस भाषा वी पुष्कत सामग्री प्रकाशित हो चुत्री है। और बहुत सी अपकाशित श्रवस्था में बैन भाड़ारों में सुर्वित है। इस माषा का अस्पत वैज्ञानिक परिचय द्वार तेसोतारी में अपने मिक्क प्राचीन परिचनी राजस्थानी में प्रख्त क्या को छन् १६१४-१६ के बीच इंडियन रिजकेरी में प्रकाशित हुआ। इस भाषा में भी हम प्राचीन अवभाषा के कुछ सम्बा-स्वक उत्त प्राप्त वर सकते हैं, किन्तु इसे प्रमुख टॉचे के रूप में स्वीकार नहीं दिया चा सकता।

पिंगल या ब्रजमापा की चारण शैली—

§ १२४ गिंगल माया वा किंतित् क्यारग्रं माहत पैंगरम् के फुस्क परी में दिलगई पडता है किन्तु इतना सबसे महत्त्वपूर्ण और गौरव प्रत्य पूर्णायाव पत्ती है। ईस्ती सन् १२०६ में बन बा॰ बृद्ध को पूर्णायाव भी तिवय की यति उपक्रम हुई और उसे अधिक ऐतिहासिक मानक्तर उन्होंने पाय एतियादिक सेत्यादंग की पत्र लिक्सर एती ना प्रत्याय पत्तीत करा दिला ति वा के आव तक हिसी न हिनी क्य में कई विद्वानों ने ऐतिहासिक, माया- यात्तीन, साहत्तिक आदि आधारी पर इस प्रत्य भी मार्गाणिक्य पर कहारोह की, बहुत की और सहत्तिक आदि आधारी पर इस प्रत्य की मार्गाणिक्य पर कहारोह की, बहुत की और सहत्तिक आदि शादि को हम्म दिला होते हैं ने सार्व पर की मार्गाणिक्य पर कार्मार्स तैया दार एत्य पर्या मी दिया। वनंत्र वाट , डा॰ बृद्ध , अम्म मार्गाणिक्य के सोर्म तैया दार एत्य पर्या मी दिया। वनंत्र वहार्य के मार्ग ते मुद्ध की प्रत्य की प्रत्य की कार्य की सार्ग की मार्ग की मार्ग की सार्य की पर हम हम्म का हो विवेचन एत्यांग्र विवाद की पर सार्ग की एत्यांग्र की प्रत्य की एत्यांग्र विवाद की पर सार्ग की एत्यांग्र की प्रत्य की की प्रत्य की सार्ग की प्रत्य की सार्ग की प्रत्य की की सार्ग की की प्रत्य की की सार्ग की की सार्ग की की सार्ग की सार्ग की प्रत्य की प्रत्य की प्रत्य की की सार्ग की सार्ग की प्रत्य की प्रत्य की की सार्ग की सा

^{1.} एनव्य एड एन्टिक्वीटीज आव राजस्थान, १८२६

२. प्रोसिडिंग्स आफ खें ० ए० यस० बों ०, खनवरी, १८६३

सम एकाउण्टस आफ दी जेनिओलाजीत् इम, पृथ्वीराम विजय, विदना ओरियण्टल जर्मल, खड सात, १८६६

नागरीप्रचारिया पत्रिका, नवीन सं० माग १, १६२० पृथ्वीराज राम्यो का निर्माण काळ, क्रोयोन्सव स्मारक संग्रह, १६२० ईस्वी

५ राजस्थान मारती माग १ कक २-३, महमारती वर्ष १, तथा पृथ्वेराज तृतीय और मुद्दमन्द्र विनक्षाम की मुद्दा, वर्नेट साव उम्मिक्सैटिक सोसाइटी आव इण्डिया १९५७ । दिल्हों का स्रोतम बिन्दू सम्राट् पृथ्वेराज नृतीय, वृण्डियन कल्यर, १९९७ इन्याहि

हिन्दु चर्वागीत ही मापा अत्यःश्रष्टिचि की दृष्टि से अवदृष्ट या परवर्ती अरभ्रष्ठ से साम्य रखने हुए भी दूर्वी प्रयोगी से अल्पन रणी हुई है।

१२वी से १४वी बाल की मापा को विकास-सालिका मेंने परिचर्मा राजस्थानी वा जिस क्षित्रा है। इस भाषा की पुष्कर सामग्री प्रकाशित हो सुनी है। और बहुत सी अप्रकाशित श्रवस्था में बैन माडारों में मुरवित है। इस भाषा का अस्पत वैज्ञानिक परिचय डा॰ तेसीतोरी ने अरने निक्य ग्राचीन परिचर्मा राजस्थानी में प्रस्तुत क्षित्रा को छन् १९१४-१६ के बीच इंडियन टेंटिक्टेरी में प्रकाशित हुआ। इस भाषा में भी इम ग्राचीन सबभाया के हुन्दु सनगा-स्वक तत्व ग्राप्त कर सक्ती हैं, किन्तु इसे प्रमुख डॉचे के रूप में क्लीकार नहीं किया सा महता।

पिंगल या ब्रजमापा की चारण शैली—

§ १२४ मिल माना वा किंतित् स्वार्ड्य माइत पैंगण्य के प्रस्कण पदी में टिखणाई पडता है किन्तु इसवा करने महत्त्वपूर्ण और गौरव प्रत्य पृष्मीयव सत्तो है। इंत्ये कत् १८५६ में वव द्या० वृद्ध को पृष्मीयव को तिवय की यति उपण्य पूर्व और उसे स्विपक प्रतिविक्त मानवर उन्होंने अपण पृष्मीयव को तिवय की यति उपण्य हुई और उसे स्विपक प्रतिविक्त मानवर उन्होंने अपण पृष्मीयव को स्वार्ट्य के पण किंदित ने पेठिशाविक मानवर प्रतिविक्त मानवर उन्होंने स्वार्ट्य के प्रतिविक्त मानवर उन्होंने स्वार्ट्य के प्रतिविक्त मानवर विकास के प्रविक्त किंदी के प्रतिविक्त मानविक्त पर कहाने हैं की व्रतिविक्त मानविक्त प्रवार्ट्य के प्रतिविक्त मानविक्त पर इस अप की मानािशका पर कहाने हैं की इति इस विकास की स्वार्ट्य के प्रतिविक्त की स्वर्ट्य की प्रतिविक्त की स्वर्ट्य की प्रतिविक्त की स्वर्ट्य की प्रतिविक्त की स्वर्ट्य के प्रतिविक्त की स्वर्ट्य के प्रतिविक्त में प्रतिविक्त की प्रतिविक्त की स्वर्ट्य के प्रतिविक्त की स्वर्ट्य की प्रतिविक्त की स्वर्ट्य के प्रतिविक्त की स्वर्ट्य की प्रतिविक्त की स्वर्ट्य के प्रतिविक्त की स्वर्ट्य की प्रतिविक्त की सामविक्त की स्वर्ट्य के प्रतिविक्त की सामविक्त की स्वर्ट्य की स्वर्ट्य के प्रतिविक्त की सामविक्त की स्वर्ट्य की प्रतिविक्त की सामविक्त की साम

१, एनस्य एड एन्टिस्बोरीज आव राजस्थान, १८२६

२. प्रोतिर्दिग्स आफ चे॰ ए॰ यस॰ बो॰, जनवरी, १८६३

२. सम प्काउच्यत आफ दी जैनिओलाजीत् इन, पृथ्वीराज विजय, विषना भौरियच्यत जनल, सद सात, १८१३

श. नागराप्रचारियो पत्रिका, नवीन सं० मात १. १६२० पृथ्वीराज राग्ये का निर्माण काल, क्रोयोग्सव स्मारक संग्रह, ११२० हुँग्ली

भ राजस्थान मारती मान १ थड १-२, मरुभारती वर्ष १, तया पृष्टीराज तृतीय भीर सुदग्नद विनक्षाम की सुद्दा, वन्तेत्र शाव उत्यूमिसमैटक सीसाइटी शाव इन्डिया १६५४। दिल्ली का श्रीदम हिन्दू सम्राट् पृष्टीराज तृतीय, हन्द्रियम करवर, १६४४ हन्यादि

हि 'पृथ्वीराच रासे वि॰ स॰ १६०० के आसरास दिखा गया। वि॰ स॰ १५-१० की प्रयक्ति में रासों की घटनाओं का उल्लेख नहीं है। रासे की सबसे पुरानी प्रति १६५२ की मिड़ी है, जिसके बाद यह प्रन्य बहुत मिड़द हो गया, वहाँ तक कि किस्मी सबद १०३-४ की राजध्यति में रासों का सण्ड उल्लेख है यह भी नहीं बहा वा सकता कि पहले पृथ्वीराज रासों का गृत प्रन्य वर्तमान परिमाण से बहुत होंद्रा या क्योंकि आब से १८५ वर्ष पहले उसी के बख्त कि बहुत में के उसने १०५०० रहते हों हो होना लिया है, पृत्यीराज रासों की प्राचीन सिद्ध करने की बो सुक्तियाँ दी बाती है वे निरावार है। भी भी को को का यह निकल्प तकालीन प्राप्त वामग्री के आभार पर पूर्णतः सतत और दुनिपूर्ण था किन्द्र ओक्ता निकल्प समूद के समादक डा० दश्यर यानों के मत से : कई तरह के तस्यों का समुवित रूप के उल्लेख उस निकल्प की विरोपता है, किन्द्र बिन समय यह लेख प्रमाशित हुआ रासों सा केवल एक स्थानतर हात था। अब पाँच स्थानतर प्राप्त है। पुरातन प्रकल्प सम सं उत्पृत अपनान के उत्लेख उत्तरणों से यह मी शत होता है कि रासो सिस अपन्नय पान के रूप में वर्तनान रहा होगा। रासों वा उत्पृत होता है कि रासो किसी समय अपन्नय पान के रूप में वर्तनान रहा होगा। रासों वा उस सम सम्प्रमुत अध्यक्त में न हुआ था। उसने अस मं वर्तनान रहा होगा। रासों वा उस सम सम्प्रमुत के अध्यक्त में न हुआ था। उसन असे अपनान सम्प्रमुत्त के दिल्प केवल रासों सार ही प्राप्त या, उन्हों कारों की सब उत्तरान स्था होगा। रासों वा उस सम सम्प्रमुत अध्यक्त में न हुआ था। उसन असे अपनान पर ही।

पुरातन प्रचन्य सप्रह के चार छप्पयों ने रासो नी भाषा को परवर्ती या नई प्रमाणित करने वालों को अटरल बाजियां को निर्मूल तो सिद्ध कर ही दिया, साथ ही इस प्रत्य के किसी न विसी रूप में प्राचीनतर होने की स्थापना को भी बळ दिया। संवत् १५२८ की प्रति के आधार पर मुनिजिनविजय द्वारा सम्पादित इस सब्रह के पृथ्वीराज प्रकथ में वीन ऐसे छुन्द आते हैं जो विकृत अवस्था में रासी के तीन छन्दों से पूर्ण साम्य रखते हैं। इस साम्य नो देखते हुए मुनिजिनविजय जी ने लिखा कि 'कुछ पुराविद विद्वानों का यह मत है कि वह प्रन्य सम्चा ही बनाउटी है और सत्रहवीं शदी के आस पास उना हुआ है। यह मत सर्पेश सत्य नहीं है। इस सप्रह के उक्त प्रकरणों में वो ३-४ प्राकृत मापा पद्य पृ० ८६, ८८–८६ पर उद्धत किए हुए मिलते हैं उनका पता हमने उक्त रासों में लगाया है। और इन चार पद्यों में से तीन पय, यद्या विकत रूप में लेकिन शब्दशः उसमें हमें मिल गए है। इससे यह प्रभाणित होता है कि चंद की निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुप या और दिल्लीश्वर हिन्द सम्राट प्रयोगज का समकालीन और उसका सम्मानित और राज कवि था। उसने प्रयोगज के कीर्तिक्लाप का वर्णन करने के लिए देश्य प्राकृतभाषा में एक बाट्य की रचना की थी जो प्रव्हीराज रासो के नाम से प्रसिद्ध हुई जिस तरह अनुभवी परीक्षक परिश्रम करके. लाख फूठे मोतियों में से मुद्धी भर सन्चे मोतियों को अन्म छाट सकता है, उसी तरह भाषा शास्त्र-मर्मर विद्वान् इन टाख बनायटी श्लोकों में से उन अलगसल्यक सच्चे पूर्वों को भी अलग निकाल सकता है।³

^{1.} ओमा निवंध सप्रह, भागा, उदयपुर, पृ० ११२

२. वही, प्रस्तावमा, पृ० २

३. पुरातन प्रवन्ध संग्रह, १६३६, पृ० ह-१०

कि 'पृथ्वीराज रासो वि० स० १६०० के आसरास विव्हा गया। वि० स० १५-१० की प्रशास्त में शांतों की घटनाओं ना उल्लेख नहीं है। सासो की घवनी प्रति १६४२ की मिली है, सिकते बाद यह मन्य बहुत मिलिड हो गया, यहाँ तक कि विक्रमी सबत् १०३८ की रावप्रशास्त में सा प्रशास उत्तर है, यह भी नहीं नहा सकता कि पहले पृथ्वीराज रासो ना गृत प्रत्य वर्षमा न पहले प्रव्हे उसी के वश्च का स्वत्र कि पहले प्रव्हे उसी के वश्च का विव्हा के प्रवृत्त के पहले पहले उसी के वश्च की व्हा की के उसी के वश्च की व्हा की व्हा की व्हा की प्रति की प्रति की की प्राचीन सिंद करने की जो शुक्तियों हो बाती है वे निराधार है। गिं औभा जो का यह विकर्ण तन्त कीन प्राचीन प्राप्त सामग्री के आधार पर पूर्णतः समत्र कीर दुनियूण था किन्त ओभा निवन्य का हम कि समादक डा॰ दश्यर धानों के मत से : कई तरह के तथ्यों ना समुचित रूप से उल्लेख उस निकन्य की विशेषता है, किन्त जिस समय यह लेल प्रमारात हुआ रासों में कर प्रति कर के उल्लेख उस निकन्य की विशेषता है, किन्त जिस समय यह लेल प्रमारात हुआ रासों में के वर्ष न कि प्रति की सम्य अपन्न या सा अव पाँच रुगानत प्राप्त है। पुरावन प्रकृत समद में उद्शुत अपन्य के उदल्ली के विश्व के वह यो में शात होता है कि रासो किसी समय अपन्न या न के रूप में वर्तमान रहा होगा। रासों ना उस समय समुचित अथ्यवन मी न हुआ या। उसना अर्थ अन्त पर्यं के विश्व के किरा सा सा अपन्य मान न रही। भी अपना स्वर्ण के विश्व की स्वर्ण के वह परिवार की सा वह विश्व अथ्यवन मी न हुआ या। उसना अर्थ अर्थ सर्वमान्य न रही। विश्व के विश्व के वह रासों सार हो प्राप्त या, उन्हीं सरणों से ओभा जो की सब उत्तर्वी अर्थ सर्वमान्य न रही।

पुरातन प्रकल्प सप्रद के चार हुल्यों ने सात्रों की भाषा को परवर्ती या नई प्रमाणित करने वाली की अटरल शावित की निर्मूल तो तिद कर हि दिया, साथ ही इत मन्य के िनती निर्मूल में आप की अटरल शावित की निर्मूल तो तिद कर हि दिया, साथ ही इत मन्य के िनती निर्मूल में या मार्थानतर होने वी स्थापना को भी बल दिया । चंतर १५१८ को प्रति के आधार पर मुनिश्चितविवय द्वारा सम्पादित इस सम्बर के दुल्यीशव प्रवच्य में तीन ऐसे छुन्द आते हैं को विक्रत अश्वरण में साथे के तीन छुन्दों से पूर्ण साम्य रखते हैं। इस साम्य को देखते हुए मुनिश्चितविवय को ने लिसा कि दुल्य पुराविद्व विद्वानों का यह मत्र है कि वह प्रम्य सम्वा ही बनानरी है और कदावी ग्रारी के आधात साथ नना हुआ है। यह प्रत साथे मार्थ का नहीं है। इस समझ के उक्त प्रवच्य मार्थ निर्मा पाय पृश्व हर्त, प्रवप्त वह पर प्रवच्य के साथे हमें साथे हम साथे प्रवच्य के साथे के साथे के साथे के साथे के साथे साथ के साथे के साथ के साथ के साथ के साथे क

१. ओमा निवंध सग्रह, भाग१, उद्यपुर, पृ० ११२

२. वहीं, प्रस्तावमा, पृ० २

रे. पुरातन प्रवन्थ संग्रह, ११३६, पृ० द-१०

शीर्षक को उद्धृत करते हुए लिखा है कि इस शीर्षक 'वागिय पृथुराज वज़वान पिंगल तसनीप कतों कीने चन्दे बरदाई का आराय है; प्रथुराज का इतिहास पिगल जवान में, रचियता चन्द बरदाई । गार्सा द तासी १२वीं से ब्राजतक के हिन्दी साहित्य को 'हिन्दुई साहित्य' कहते हैं और प्राचीन हिन्दुई को ब्रज के सबसे निकट उताते हैं। 'ब्रजपदेश को खास बोली ब्रजभाषा उन ब्राधुनिक बोजिया में से है जो पुरानी हिन्दुई के सबसे अधिक निकट है। हिन्दुई के महत्त्व मा अतुमान बारहवीं द्यता॰दी में लिखित चन्द के राखों काव्य से दिया जा सकता है जिससे कर्नल टाइ ने एनल्स ग्राव राजस्थान की सामग्री ली ती ती जब ब्रजभाषा बेली की चर्चा करते हैं तो उनना मतलब ब्रजपदेश की बोलचाल की भाषा से नहीं बल्कि सरदास आदि की कविता की भाषा से है। इस भाषा को वह पुरानी हिन्दुई यानी १२वीं शती के रासो की भाषा के सबसे निकट मानते हैं। डा॰ तेसीतोरी पिंगल अपन्नरा के परिचय के तिलसिले में कहते है कि उसकी भाषा (प्राक्तत पैंगलम् की) उस भाषा समृह का शुद्ध प्रतिनिधि नहीं है जिससे पश्चिमी राजस्थानी उत्पन्न हुई । प्राकृत पैंगलम् की भाषा की पहली सन्तान पश्चिमी राजन्थानी नहीं बल्कि भाषा का वह विशिष्ट रूप है जिसका प्रमाण चन्द की कितता में मिलता है जो मलोभाँ ति प्राचीन पश्चिमी हिन्दी वही जा सकतो है। " जार्ज प्रियर्सन चन्द के रासों को ब्रजभाषा की आदि रचना बताते हैं और चार सौ वर्ष बाद होने वाले रएदास को ब्रज का दूसरा कवि । यहाँ प्रियर्सन भी रासो की भाषा को ब्रजभाषा का प्रारंभिक रूप ही स्वीकार करते हैं। डा॰ सुनीतिकुमार चाटुज्यां पृथ्वोराज रासो की मापा को पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभापा) का आरंभिक रूप मानते हैं, किन्तु इस भाषाको रूढ और साहित्य शैली मी भाषा स्वीतार करते हैं। रासो के बारे में वे लिखते हैं 'इसके मुख्य उपादान तो पश्चिमी अपभ्रश के हैं साथ हो साथ आदा पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी और पञ्चावी बोलियो का पुट मिला दिया गया है । यह जनभाषा नहीं थी। डा॰ घीरेन्द्र वर्मा रासी की भाषा को प्रधानतया सन कहने हैं 'यदारि ओजपूर्ण शैली की मुसजित करने के लिए प्राइत अथवा प्राइताभास स्वतंत्रता के साथ मिश्रित कर दिये गए है। पृथ्वीराजरासी मध्यकालीन प्रवभाषा में ही लिखा गया है, पुरानी राजध्यानी में नहीं जैसा कि साधारणतया इस विषय में माना जाता है। "

§ १२६. उपर्युक्त विचारों के विश्तेषण के आधार पर इतना तो निर्तियोद रूप से नहा बा सक्ता है कि रामों में भाषा को प्राचीन जब नाम दिवा जा सक्ता है। बहुत से लेशा को सरों की भाषा को अनिविनित और परवता वरामांस्टर या चारण रेटी के अन्य कार्यों की भाषा से मिन्दी-चुन्ती बहुकर अव्यक्तिक आयुक्तिक बताते हैं वे एक बात भुक बता हैं कि चारण रीकी में भाषा का निर्माण १२वी १३वीं राताब्दी में पूर्ण रूप से हो गया था विसका बता माहचैरालपु के छुन्दों की भाषा से चल्का है, रातां की भाषा से मिन्दती चुन्नती भाषा रेद्दा महच्चेरालपु के छुन्दों की भाषा से चल्का है, रात्तिमह के छुप्यों में मिन्दती है, किना इस आधार अरोर आज भी राजस्थान के चुकु चारण इसी भाषा में कान्य करते हैं, किना इस आधार

१. हिन्दुई साहित्य वा इतिहास, अनुवाद, बा॰ रूपमीसागर वार्व्यंस, १६५६,पू०६६ २. हिन्दुई साहित्य वा इतिहास, प्रथम स॰ की पहली जिल्दु की भूमिका १८३६ है॰

रे. पुरानी राजस्थानी, पृ० ६, काशी, १६५६

४. रिविश्टिक सर्वे भाव इंडिया, खण्ड १, भाग प्रथम पृ० ६१

शीर्पक को उद्घृत करते हुए लिखा है कि इस शीर्पक 'वागीय पृथुराव बज़वान विगल तसनीप कर्ता नि चन्द बरदाई का झाराय है; पुराज का इतिहास पिगल बयान में, रचिवता चन्द कर्ता नि चन्द बरदाई का झाराय है; पुराज का इतिहास पिगल बयान में, रचिवता चन्द बरदाई ! गार्कों द ताकी १२वीं से झाजतक के दिन्दी साहित्य को 'हिन्दुई साहित्य' कहते हैं और प्राचीन हिन्दुई को ब्रज के सबसे निकट स्ताते हैं। 'ब्रजपदेश को खास बोली ब्रजमापा उन ब्राधुनिक बोलिया में से है जो पुरानी हिन्दुई के सबसे अधिक निकट है। हिन्दुई के भइत्व का अनुमान बारहवीं शतान्दी में लिखित चन्द के रासो काव्य से किया जा सकता है जिससे कर्नेल टाइ ने एनल्स ब्राय राजस्थान की सामग्री ली। तासी जब ब्रजभाषा बोली की वर्चा करते हैं तो उनमा मतलब ब्रजपदेश की बोडकाड की भाषा से नहीं बिल्क स्रदास आदि की कविता की भाषा से है। इस भाषा को यह पुरानी हिन्दुई बाती १२वीं बाती के रासो की भाषा के सबसे निकट मानते हैं। डा॰ तेसीतोरी पिंगड अपग्रश के परिचय के तिश्विके में कहते है कि उसकी भाषा (प्राकृत पेंग्लम् की) उस भाषा समूह का शुद्ध प्रतिनिधि नहीं है जिससे पश्चिमी राजस्थानी उत्पन्न हुई। प्राकृत पेंगलम् की भाषा की पहली सन्तान पश्चिमी राजन्थानी नहीं बल्कि भाषा का वह विशिष्ट रूप है जिसका प्रमाण चन्द की किता में मिलता है जो भलोगों ति प्राचीन पश्चिमी हिन्दी वही जा सकती है। 13 जार्ज मिपर्सन चन्द के रासों को ब्रजभाषा की आदि रचना बताते है और चार सौ वर्ष शद होने वाले स्रवास को ब्रज का दूसरा कवि | यहाँ त्रियसँन भी रासो की भाषा को ब्रजभाषा का प्रारंभिक रूप ही स्वीनार करते हैं। डा॰ सुनीतिङ्गार चाटुज्यों पृथ्वीराज रासो की भाषा को पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभाषा) ना आरंभिक रूप मानते है, किन्तु इस भाषाको रूढ और साहित्य शैली मी भाषा स्वीकार करते हैं। रासो के शारे में वे लिखते हैं 'इसके मुख्य उपादान तो पश्चिमी अपभूश के हैं साथ हो साथ आदा पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी और पञ्चाची बोलियो का पट मिला दिया गया है । यह जनभाषा नहीं थी । डा॰ घीरेन्द्र वर्मा रासी की भाषा को प्रधानतया ब्रज कहते हैं 'यदारि ओजपूर्ण शैली की मुसजित करने के लिए प्राञ्चत अथवा पाञ्चताभास स्वतंत्रता के साथ मिश्रित कर दिये गए हैं। पृत्वीराजरासी मध्यज्ञालीन ब्रबभापा में ही खिला गगा है, पुरानी रावस्थानी में नहीं जैसा कि साधारणतया इस विषय में माना जाता है।

§ १२६, उपर्युक्त दिचारों के बिरत्तेयण के आधार पर इतना तो निर्मियर रूप से नहा बा वस्ता है कि रासे सी भावा को प्राचीन बन नाम दिया जा सकता है । बहुत से छोग को परोशे की भाषा को अनिविन्ति और परवता वरामास्तर या चारण शैली के अन्य नाव्यों की भाषा से मिक्टो[चुकती कहकर अव्यक्षिक आधुनिक बताते हैं वे एक बात भूक बता हैं कि चारण शैकी भी भाषा का निर्माण १२वी १२वीं शताब्दी में पूर्ण रूप से हो गया था जिसका पढ़ा प्राहतेयाल्यू के छुटों को भाषा से चळता है, रासे की भाषा से बिटती चुकती भाषा रेद्दा अन्तर्वेश कान मिन के स्वामाधा सना में है, नरहरिमक्ट के छुप्यों में मिलती है, और बात भी राजस्थान के छुटु चारण इसी भाषा में क्षाय करते हैं, किन्त इस आधार

१. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, अनुवाद, बा॰ लष्मीसागर वार्ळोय, १६५३,५०६६

रे. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, प्रथम स० की पहली जिल्द की भूमिका १८३६ ई०

रे. पुरानी राजस्थानी, पृ० द, काशी, ११५६

४. लिविस्टिक सर्वे आव इहिया, खण्ड १, भाग प्रथम पृ० ६६

रासो ना छुप्पय--

अगह मगह दाहिमी देव रिपराइ स्वयक्त इसमंत जिन करी मिछे जादी चगर सो सह गामा सुनी एड परमारय सुम्मे अस्से पंद बिरह विभी कोड़ पहु न दुम्मे प्रियात सुनवि समिर भनी इंड समर्कि वैमास विछेड़ बसोड विन स्टेस्ड वर्ष वयो मिरस

(रासो पु० २१८२ पद ४०६)

(पु॰ सम, पद्योंक २स७)

पुरातन प्रकथ का तीसरा छुप्पर्य—

त्रिन्हि रूप तुपार सबस्र पास्त्री भद्द बसु ह्य चडदसय मयमन दति गर्मात महामय वीस रूक्त पायक सकर फारक धशुद्धर क्टूसहू अरु बतु यान सक इत्यान्द वार्ड पर हुप्ताह स्वत् नराहिबड्ड विडि जिन्हियो हो किम भयक जह चंद्र न जायड जल्हुक्ड गयड कि सुध कि धरि गयड ॥

रासो का छप्पय--

अंतिय छप्त्र तोपार सत्रद पस्त्रर सायहरू सहस हस्ति बौसट्टि ग्रह्म गर्मत महामय पच कोटि पाइक सुफर कारक धनुदर जुप जुपान वर बोर तोर पंपन सद्दनमर

इत्तांस सहस रन नाइबी विहि ब्रिम्मान ऐसो कियी जे चन्द्र राइ कवि चन्द्र व्हड उद्दिष्ट ब्रिड के घर लियी ॥ (रासो पु० २५०२ पद्य २१६)

तीवरे पर से राट है कि केवल सेना की बच्चा ही 'किण्डि' यानी तीन कदा से 'असी रुप्द' नहीं हो गई विक मात्रा भी कम से कम सी वर्ष का ब्यान्यान मिटा कर नद रूप में सामने खाईं।

§ १२≔, प्राचीन छुरतें। की भाषा में सर्वत्र उद्दृत करतें को सुरक्षित रखा गया है बब कि नये छुरतें में विदृति मिटाकर संयुक्त स्वर कर लिए गए हैं। यथा— संदर्शा डैंं >व्यरहत्यों र राज्यान्तर) चुक्य > चुक्यों, करवासह

सहद्वडि उँ>ब्यरहर्यों (ग्रन्थान्तर) चुन्थउ>चुन्यो, कर्यासह >नैमास, जंत्र्य (रू)>बंदनै, बुग्मर>बुग्में, सुग्मर>सुग्मे, विभ (उ)>ब्रियो, चडर्देर>चौंसिंट (ग्रब्यान्तर) भयउ>मयी

इस असरमा को देलने से दो बावों ना पता चलता है। प्राचीन हुएटों मी मापा प्राप्तव पेंगतम् की मापा नी तरह उद्दुत्त स्तरों नो सुरक्षित रसती है अविक नये हुपदों मी भाषा बनमाया भी तरह इन्हें नरखित नहीं रस्ती । इस प्रवृत्ति ना सबसे बहा प्रमान ! रासो ना छन्य-

अप्रत साह दादिसी देव दिरराष्ट्र ध्यष्ठक पूरमंत जिन क्ही तिष्ठे जदूनै नगर सो सह नामा सुनी यह परमारय सुरम्मे अब्देश चंद्र वित्तृ विभी डोइ यह न उसमे प्रधिरात सुनवि समरि धनी इह समेठि वैमास विष्ठ वसीठ विन उस्टेण्ड यथ वथी मरित

परातन प्रकथ का तीसरा खप्पय—

विन्ति रूप तुपार सबरु पास्ती अह बसु हय चडर्सव मयमत हति गर्माल महामय वीस रुक्त पायक सफा फारक धणुदर बहुत्तह अह बहु पान सक हुवागड़ ताई पर हुत्तीह अह नहाहिबह विहि विनक्षियों हो किम भयक जह बंदू न जागड बक्हुब्ह गयड कि मून कि परि गयड ॥ (प० मन, पर्योक २५७)

रासो का छप्पय---

भसिष इन्छ तोपार सजद पस्छर सावहरू सहस हस्ति बौसिट्ट ग्रह्म गर्जन महामय पत्र कोटि पाइक सुक्त फारक घतुटर सुध जुधान वर वीर तोर वंधन सद्धनमर

इत्तीस सहस रन नाइनी निहि विम्मान ऐसी कियी ने चन्द्र राइ कवि पन्द्र कह उद्दिष्ट बुट्टि के घर लियी ॥ (रासो प० २५०२ पद्य २१६)

तीसरे पद से हाट है कि केवल सेना की उपया दी 'शिव्र' यानी सीन लव्ह से 'असी रुप्त' नहीं हो गई महिक मात्रा भी कम से कम सी वर्ष का व्यवधान भिटा कर नद्य रूप में सामने खाई।

§ १२ः=. प्राचीन छुरदो की भाषा में सर्वत्र उद्दुत्त क्यों को मुरव्तित रखा गया है चव कि नये छुरदों में विश्वति मिटाकर संयुक्त स्वर कर किए गए हैं । यथा— सडहांडें डं⊃व्यादर्सी (शन्दान्तर) चुक्पउ⊃चान्यों, कट्यासह

्रक्षात ० ज्वस्त्र (१) अंत्र्वे, वृत्तातर / व्यत्र प्रवास करवास >क्षेपास, वंत्रव (१) अंत्रवे, वृत्तार ज्वामे, सुरम्बर अहमी, विभ (३) वियो, चडर्वे हर्जी सिंह (शब्दान्तर) मगउ > मगी

इस अवस्था को देखने से दो बाती वा पता चलता है। प्राचीन छरदी वी भागा पाइत वैंगतम् की भागा नी तरह उद्दृद्ध करों को सुरक्षित रखती है ब्रवकि नमें छुगरों वी भागा बदमाया की तरह इन्हें सुरक्षित नहीं रखती। इस प्रश्चित का स्वसे ब्रह्म प्रमाव ! § १३२. व>म

य का म परिवर्तन द्रष्टव्य है—

पुहुवीस>पुहुमीस (पृष्वीरा) कहवासह>कहमासह (कदम्बवास)

भिरासेन ने अजीगढ़ की, बबनाया में य>म परिवर्तन छुद्म किया था। मनामन<मनावन (हिन्दी) वामन<्वावन (हिन्दी) रोमवि<्शेवति। अनस्य में ऐसे प्रतिस्थ मिलने थे।

मन्मय>वम्मह

प्राचीन छुपरो में प्रयुक्त ग धनि नतीन छुपरों में सर्वत 'न' कर दी गई है। बाण>बान, नरण>नंदन, सर्वमिष्णु>समिषन आदि। ब्रज्जभाषा में ण का न हो साना है। बस्ततः ब्रज में स रानि पुर्णतः स्त्रव हो सुकी है (देखिये ब्रज मापा ६ १०५।

इस प्रकार प्वांनि विश्लेषण के आधार पर हम कह तकते हैं कि रासों के पुराने परों की भाषा १३ वीं १४ वीं की भाषा है। वो लोग इसे एक्ट्रम अवअश कहते हैं वे इसके रूप तल्य की नवीन अप्रतरीमूत भाषा महित्यों पर प्यान नहीं देते वो परसमें, विभक्ति, क्षित्रक्षों और सर्वतामी की दृष्टि से काली विकल्ति माद्यम होती है। दूसरी और रासों का वो वर्तमान रूप मात है उनकी भाषा से पुराने खुराने की भाषा का सीधा सम्ब है। परवर्षी भाषा हसी का विकास है वो यह आदि की भाषा से पुरानी है और उसमें १३ वीं १४ वीं के भी बहुत से रूपों को सुर्वित किये हुने हैं।

्रव्वीराज रासे की भाषा की मुख्य विरोपताओं का उल्लेख आवश्यक है।' च्चिन सम्बन्धी विशेषताएँ—धनि समन्त्री दुख विशेषताओं का प्ररातन प्रकल्य

के हुन्दों नी मापा के सिल्सिने में उन्तेष्य हो चुना है। कुछ अन्य नीचे दी बार्ता है। है १३३. यसो नी भाषा में तत्सम-प्रयोगों के अलावा श्रन्म शब्दों में प्रयुक्त ग्रह का परिवर्तन अ, इ, प आदि में इता है अमृत > अमिग्र, इत > किंग्र, इंदय > दिय, मृत्यु > मीनु, अमिग्र, विश्व महित्त अपभूश से भी पहले गुरू हो गई थी और बाद में प्रवमापा में भी दिलाई पहती है।

१. लिविस्टिक सर्वे आफ इंडिया, खण्ड १, माग १, ए० ७१

२. रासो को भाषा के लिए त्रष्टव्य—

⁽क) जान बीम्स, सडीज इन प्राप्तर आव चरवरदाई, जे० ए० यस० बी० खण्ड ४२, भाग १ ए० १६५-१६१

⁽स) हार्नेले, गोडियन झामर में यत्र-तत्र

⁽ग) नरोत्तमदास स्वामी, पृथ्वीराज्ञरासी की भाषा, राजस्थान भारती भाग १ अक ४ ए० ११६७

⁽घ) ढॉ॰ नामवर सिह, पृथ्वीराजरासी की मापा, काशी, १६५६

⁽ह) डा० विपिन विहारी निवेदी-चन्द्रवरदाई और उनका काम्य, इलाहाबाद, प० २८१-२११

§ १३२ प>म य का म परिवर्तन द्रष्टव्य है—

य का म परिवतन द्रष्टिय है-पुहवीस>पुहमीस (पृथ्वीरा)

पुहुत्रात>पुहुमात (पृथ्यारा) कहवातर्द>कहमातह (क्टम्बरास)

(क्षेत्रकेत ने अलीगर की, बबमाना में ब>म परिवर्तन ल्ह्स किया था। मनामन<मनावन (हिन्दी) बामन<बावन (हिन्दी) रोमवि<्शेवति। अपभ्रश में ऐसे प्रतिकर किलों थे।

म मय>वम्मह

प्राचीन छुपदों में प्रपुक्त शास्त्रीन स्वाप्त में सर्वन 'न' कर दी गई है। बाण>बान, नरण>नंदन, सद्मिषिणु>समिषिन आदि । ब्रब्साणा में शाका न हो जाना है। बस्तुतः क्रज में गाद्मिन पूर्णत. क्षेत्रा हो सुदी है (वेदिब्ये क्रज मापा हि १०५।

पृथ्वीराज रास्रो की मापा की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख आवश्यक है।'

ध्यति सम्बन्धो विशेषताऍ—धनि तम्मधी दुछ विशेषताओं का पुरातन प्रकथ के छुरटों की माया के सिल्सिलें में उल्लेख है। सुछ अन्य नीचे दी बाती हैं।

है १३३. रातों नी भाषा में तत्त्वन प्रदोगों के अश्वा क्रम्म राज्यों में प्रयुक्त ऋ का परिवर्तन की, इ. ए आदि में हता है अमृत> अमित्र, इत> किर, इदष> दिय, मृत्यु> मीतु, आदि । यह महत्त्व अपश्चय से भी पहले शुरू हो गई भी और बाद में ब्रवमाणा में भी दिखाई पदती हैं ।

१. लिंग्निस्कि सर्वे भाफ इंडिया, सन्ड १, भाग १, ए० ७१

२. रासो की भाषा के लिए त्रश्च्य-

⁽क) जान बीम्स, स्टडीन इन प्राप्तर आव चद्रवरदाई, बै॰ ए॰ यस॰ बी॰ खण्ड ४२, मारा १ ए॰ १६५-१६१

⁽ख) हार्नरे, गोडियन प्रामर में यत्र-तत्र

⁽ग) नरीचमदास स्वामी, पृथ्वीराज्ञरासी की भाषा, राजस्थान भारती भारा १ अक ४ ए० १६४७

⁽ध) टॉ॰ नामवर सिंह, पूर्णाराज्यासी की सापा, काशी, १६५६

⁽ह) डा० विषिण विद्याः त्रिवेदी-चन्द्रवस्दाई और उनका कान्य, इलाहाचाद, प्० २८३-३१३

398

§ १४२, रातो में ने परक्षां नहीं मिलता । अब में 'ने' या 'ने' परक्षां मिलता है । वीमस ने रासो का एक पद - उद्गृत किया है बिस्में उन्हें ने ने का प्रयोग मिलन या, नाल्यान पृथीपात ने, इस प्रयोग का भी उन्हें ने कर्ता करण प्रक्री आरंत नहीं बिलक कम्प्रतान नी आल कागाव देखा । इस प्रनार करते को साथा में ने का पूर्णतः अमाव है कीलिंग्ता के दो बार सर्वामिक प्रयोगी को होडकर ने का प्रयोग र वी रेश वी के विगल ख्रम्पता साहित में नहीं मिलता । किन्तु रासो में अन्य नारकों में विगल ख्रम्पता साहित में नहीं नहीं मिलता । किन्तु रासो में अन्य नारकों में विगल परसर्गों ना प्रयोग हुआ है । करण में दे, यो यथा ख्रम्पत कर्ता मिने, राज मूं कहह । करण में ते का प्रयोग मी हुआ है । करण में द, यो यथा ख्रम्पत कर्ता मिने, राज मूं कहह । करण में ते का प्रयोग मी हुआ है । हारित वा अन्य वापता ने आर्गि या अनित तथा अपन्ता तथा तथाई का विकत तथा कर प्रयुक्त हुए हैं (१) जीच छांग छोंडिय (१) ग्रुनियन तन चाहों। अब में आर्गिभक स्वनाओं में तन या तथा (आर के आर्थ में) ना प्रयोग पिलता है छिंग ना प्रयोग परवता जब में अस्पन्त विरक्ष है, किन्तु ख्रारिमिक अब (१०००-१६००) में द्वका बहुत प्रयोग हुआ है। सम्बन्ध के 'को' 'कउ' और के तीनों लों के नहत से उदाइएण निजने हैं।

१—वि को मन स्तंत्र २—युपीरान कर्ज ३—रोस के दरिया आदि। श्राधिकरण भा प्रसिद्ध परसर्ग मन्कः>मान्कः>मान्कः मह मान्कारि आरि क्ट्रे स्पों में मिलता है।

भा आरक्ष परका संस्कृत नायक त्या का स्वाचित्र करा नायक है। \$ १४३. सर्वनामी की दृष्टि से रासों की मापा बहुत भनी है अर्थात् उसमें नाना प्रकार के सर्वनाम रिखाई पहले हैं।

हों, मै—तो हो छड़ों देहि, मैं मुन्या साहिविन अंप कीन

मो, मोदि-कह्यो मोदनि वर मोहि, मो सरण हिन्दू तुरक

मेरे, मेरी-मेरे क्ञु राय न आवहु, मेरी अरदावि

इम, इमारी-इम मरन दिवस है मगलीक, ब्राल्हा सुनो हमारी वानीय

इसी प्रकार तुम, तुम्ह, तुम्हर, तै, तोहि आदि के मी उदाहरण मिन्ने हैं। वजभाषा की हिंदे से सबसे महत्वपूर्ण वे साधित रूप हैं जिनमें परताों के प्रयोग से कारका का निर्माण होता है। बाको देहन होई, में बाको साधित रूप है। इसी तरह ता की, ता सी,

निर्माण होता है। चासे देहन होई, में बाको स्राधित रूप है। इसी तरह ता को, ता सी, ता पै आदि रूप उपकथ्य होते हैं। सर्वनामी नी दृष्टि से रासों की भागा वित्कुल झन नहीं बा सकती है। § १७४६ वर्तमान में तिहत्त रूपों के श्राखाना को अपभाग से सीसे झाये हैं। और

प्रस्ता विकास नव में भी हुआ, अन्य वाले निद्या रूप भी मयुक्त हुए हैं, ठीक म्राइत पंरालम् प्रिना विकास नव में भी हुआ, अन्य वाले निद्या रूप भी मयुक्त हुए हैं, ठीक म्राइत पंरालम् प्री साह ! अनक्ष्या कर्मा है है जा अन्य दान (रावा दान अनंता है) यह पिंगल और प्राचीन हन की अपनी विशेषता है। भविष्य में—स—याले रूपों के साथ है—ह—मकार के रूप मयुक हुए हैं। भिहि है, वानिहै, मानिहै आदि रूप हम के समान ही है। निद्या के भूत (इन्दर्ग) अधिक रूप की लिंग के अनुतार चली, उठी आदि सनते हैं। निया के भूत (इन्दर्ग) अधिक रूप की निया के मती है। हम नी तरह ही, दिक्कण, चाहण, असि को उत्तरात होने की देखतो, चाहनो आदि अनक्षय नेते हैं।

§ १४५ भृत नाल में इग से बने कुछ विलवण रूप मिलते हैं ! भविष्यत् के गा वाले रूपों के विनास में दनना योग समव है । वैसे ये गतः>ग बने प्रतीत डोते हैं । § १४२. रातो में ने परमां नहीं मिलता । तब में 'ने' या 'नै' परसां गिलता है । योम ने रातो का एक पर - उद्भूत किया है निस्में उन्हें ने ने का प्रयोग मिला था, वालयन प्रभीराव ने, इस मयोग का भी उन्हें ने क्या फैरा उन्हें ने ने का प्रयोग मिला था, वालयन प्रभीराव ने, इस मयोग का भी उन्हें ने क्या फिरा की लोट कर कि लिल सम्प्रान की ओर काया दें रंग दिया है कि लिल के दें। वार सर्वानी कि प्रयोगों को छोटकर ने का मयोग र र वी १४ वी के पिगठ छपन्नरा साहित्य में नहीं निल्वा । किन्तु रातो में अन्य नारकों में विशेष परसारों ना प्रयोग स्वाहुआ है । करण में स्व, से या पर स्वाह के स्वाह के स्वाह में स्वाह के स्वाह के स्वाह के स्वाह के स्वाह के स्वाह के स्वाह में स्वाह के स्वाह के

१—वि को मन स्टंड २—प्रथीरान क्ष्टंड ३—रोस के दक्षिमा आदि । अधिकरण भा मस्टिब परसर्ग मञ्का>मारफ् > माफ, मह माफारि आरि कडे रूपों में मिलता है।

े \$ १६२, सर्वनामां की दृष्टि से यहाँ की मापा बहुत भनी है अर्थात् उसमें नाना प्रकार के सर्वनाम दिखाई बहुते हैं ।

हों, मै-तो हा छुड़ों देहि, मैं मुन्या साहिविन अंप कीन

मो, मोदि-क्यों मोदिन वर मोहि, मो सरण हिन्दू तुरक

मेरे, मेरी-मेरे क्खु राय न आवह, मेरी अरदासि

इस, दमारी—हम मरन दिवस हैं मगडीक, खाल्दा सुनी हमारी वानीय

इधी प्रनार हुम, दुगर, तुगरह, तै, तोई आदि के भी उदाहरण मिलते हैं। जनभाया की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण वे साधित रूप हैं जिनमें परसानों के प्रयोग से भारका का निर्माण होता है। चाको चेहन होई, में बाको स्वधित रूप है। इसी तरह ता को, ता सी, ता दे आदि रूप उपक्रवर होते हैं। सर्वेनामों को दृष्टि से रासों की भाषा विस्तुल अब बढ़ी बा सकती है।

§ १४४. वर्गमान में विद्यत्त कर्मों के झलवा को अराज्य से सीये झाये हैं और जिनका विकास नन में मी हुआ, अन्त वाले निखा कर भी मयुक्त हुए हैं, डीक माम्रुत पैंगलम् की तरा सा भावन्य ने नाव (क्लाक्ट कर्मक (क्लाक्ट में कि ताय । भावन्य ने नाव कर्मका है) यह पिंगत और मार्चीन नन की अपनी विदेशका है। मिल्ट में — ह— नावे क्यों के साम ही— ह— यक्तार के कर मयुक्त हुए हैं। मिहिदे, चानिहे मार्निहे मार्निह कर नाव के समान हो है। निखा के मृद (करना) चालिक कर क्लाक्टिंग कर्मों के अपनार चली, उडी आदि बनते हैं। नियाप के साम क्लाक्ट के साम करने हैं। मिला के साम क्लाक्ट के साम करने हैं। मिला के साम क्लाक्ट के साम करने हैं। में साम का मार्चान क्लाकट के साम क्लाकट करने हैं। में साम का मार्चान क्लाकट करने हैं। में साम क्लाकट करने हो हो हो साम करने हमार्च हो साम करने हमें तो देखती, चाहने आदि व्यवस्था के क्ला है। में साम करने हमें तो देखती, चाहने आदि व्यवस्था करने हमें हो है।

§ १४४ भूत नाल में इस से बने कुछ विलक्षण रूप मिटते हैं ! मिविध्यत् के गा याटे रूपों के विकास में इनका योग समय है । वेसे ये गतः>स बने मतीत होते हैं । शन्दों में भो परिवर्तन हुए हैं। ै चारण शैनी का प्रभाव विदेशो शन्दों पर भी घनिष्ठ रूप से पड़ा है।

§ १७२. एप्तीयब यसो के अन्यात कई अन्य सतो बान्य भी विंगल भाषा में निले गए। इनमें नज्ञसिंद का विवयसल सतो श्रीर नरपति नाहर वा बीतन्त्रदेव सतो दो अत्यत्त प्रतिद्ध कान्य प्रत्य हैं। नज्ञतिह का कोई निक्षित परिचय प्राप्त नहीं होता। विवयसन सतो के ही एक असर से यह प्रतिव होता है कि ये तिरोहिया साता के आर्थ ये। विवयसन के बादव नरेस विवयसल के आसित समान्त्रिय के कर में इन्हें सवा से एक नगर, सात सी गाँग, हायी, योहें श्रीर एल वरित क्ष्मत के आभूता पुरस्त्रार में मिले थे।

भये मह मधु यज्ञ ते हैं सिरोहिया सह । प्रतेषर यदुवस के नज्ञ पज्ञ दल सज्ञ ॥ वीसा सो गजराज वाजि सोल्ड सो माते । दिये सात्र सौ प्राम सहर हिंहोन सुदाते ॥ सुतर दिये हैं सहस रकम गिलमे भरि शवर । कज्ञन रात वहाव यहुत दोने जु भटावर ॥ कुल पृजित राव सिरोहिया यादव पति निज्ञ सम कियव । नप विज्ञवयाल ज विज्ञयाह साह ये ज समम्मीयव ॥

म्मार्थी शतास्त्री में करीली में विवयमत मामक एक भवानी यात्रा अवस्य हुए पे विवास अपन्य मारावुर, घोरणुर आदि राज्यों के बुख मार्गार मो अधिकार कर दिना या। पे पर मंग्रेलाक नेनारिया ने इस प्रथ को १६०० मा तदावा है। 3 व्यक्ति मिश्रवणु इसमा राज्या है। अध्य राज्या है। मारोके कारणों का बिक करते हुए मेनारिया वी दिखते हैं कि 'गवनी ईरान, श्रवण, दिल्की, द्वारा आदि पर विवस्त की अपनेरवन है। दूसरे यह कि इस प्रथ पर एपनीय पातो (१ म्य वी प्रवास्त) और वयमप्तस्त (१ स्टिप्ट) दोनों का मामा साम मालकाता है। 'मानिया वी के दोनों तक बहुत प्रवत्न नहीं हैं। वैचा कि पहले ही कहा याग्रा निमन शैलों का निर्माण १४ वी श्रवास्त में में सी प्रवास के अपने राज्य हैं। इस्त या जिक्त निर्माण की कार विवेद हिताश कि कर कर राज्य हैं का पाति में माल अपने की कार विवेद हिताश कि कर पर ना कहा गया है वह माल अपनेरवाल की अपनित में विवेद हिताश कि कर पर ना कहा गया है वह माल अपनेरवाल की अपनित में विवेद हिताश कि कर पर ना कहा गया है वह माल अपनेरवाल की अपनित में विवेद हिताश कर कर राज्य हैं का पर ना विवेद हिताश कि कर पर ना का स्वास की कार कि विवेद हिताश कि कर पर ना कहा गया है वह माल अपनेरवाल की अपनित में विवेद हिताश कि कर पर ना का साथ है वह माल अपनेरवाल की अपनित में विवेद हिताश कि कर पर ना का साथ है वह माल अपनेरवाल की अपनित में विवेद हिताश कर की अपनेरवाल की अपनित में विवेद हिताश कि कर की कि अपनेरवाल की अपनित में विवेद हिताश कि कर की का साथ की साथ की का साथ की का साथ की साथ की

अरवी फारसा राज्यें को एक विस्तृत सूची, मूल के साय टा॰ विविनविद्यारी विवेदी ने प्रस्तुत को है, चन्द्वरदायी और उनका का य, पु॰ ३११-४६
 द रुखिंग क्रिसेन चोफस आर स्वीटिंग परसोनेनेज इन राजयुताना, सर्वे

सस्करण, पृ० ११५ ३. राजस्थानी भाषा और साहिन्य, पृ० =३~=%

४. वही. ए० =3-८४

शन्दों में भी परिवर्तन हुए हैं। ै चारण शैनी का प्रभाव विदेशी राज्दो पर भी घनिष्ठ रूप से पदा है।

§ १८९. प्रवीसब सत्ती के अनावा कई अन्य सत्ती कान्य भी विंगल भागा में निले गए। इनमें नज्ञसिंद का विवस्ताल सत्ती और नरपति नाल्द का बीतक्देव सत्ता दो अल्पन प्रतिद्ध नाल्य प्रत्य हैं। नज्ञसिंद का कोई सिक्षित परिचय प्राप्त नहीं होता। विवस्तान रात्तो के ही एक असर से यह चित्र होता है कि ये तिरोहिया साला के भार ये। विवस्तान के नादय नरेस विवस्तान के आधित समान्यित के कर में हन्हें सवा से एक नगर, सात सी गाँन, हायी, योई श्रीर एल बहित क्षांत ने आधृता प्रतिकृति में निले ये।

भये भट्ट मधु पज्ञ ते हैं सिरोहिया बाह्य ।
युवेषर युव्वस के तह पह्न दक सह ॥
धांसा स्त्रों ताराज्ञ वाजि सोवह सो माते ।
हिसे सात सी मान सहर हिंदीन चुवाते ॥
सुतर दिये हैं सहस रहम गिरुमें भार अवर ।
कजन स्त्र जटाव महुत होंगे जु अहम्मर ॥
इक पूजित राव सिरोहिया साहब पति जिज्ञ सम कियव ।
नम् विज्ञवाहाल में विज्ञवाह साह में यु सामाधियव ॥

मारहवीं शताब्दी में क्तीली में विवयसल नामक एक प्रवासी राजा अवस्य हुए ये मि इतो अन्यत, मारापुर, पोण्युर आदि राज्यों के मुख्य मार्गोर मी अधिकार कर लिया या । पन मेरीलाज मेनारिया ने इस अम को १६०० मा बताया है। ने ब्वकि मिश्रवयु इसमा राज्यानाड १३५० का अनुमानिय करते हैं। इस अम्य को अस्यन्त पत्वर्दी माननेक कारणों का बिक करते हुए मेनारिया जी जिवते हैं कि 'गवनी ईरान, ध्राञ्चल, १८०%, द्वारा आदि यर विवतस्वालका एक बुर सब्य होने को बो बात नहन्वित ने असने अस में निक्ती है बह १६० ति विवद और अधिकान है। दूसरे यह कि इस अप पर पूर्णीयत्र यातो (१८ वी यातान्दी) और वदामणहर (१८६७) होनों का प्रमान साल करकता है। में मेनारिया ची के रोनों तक बहुत प्रवल नहीं हैं। जैवा कि पहले ही कहा गया मिनन श्रीलो का निर्मान १४ वी स्वाल में से हो हुत्वा या जिकका निर्वाह चरामास्वर जैने परवर्ता अस मानी १८ वीं स्वाल के कहत पहले होता हमा रही बात प्रविद्या विवद सावों के उत्तर्त को ता स्वाल में विवास विवेद दिवास विवद करूप एका यात्र विवास अधिकान और आध्वपदाता की अस्ति में

अरबी फारसा शब्दों को एक विस्तृष्ट स्वी, मूख के साथ ढा० विधिनविद्वारों त्रिवेदी ने प्रस्तुत को है, चन्द्वरदायी और उनका काय, पू० ३१२–४६

२. द रुखित मिसेत चाँक्स आर खोडिंग परसोनेनेज इन राजपूताना, सुटाँ संस्करण, प्र० ११५

रे. राबस्थानी भाषा श्रीर साहिन्य, पूरु =३-=४

४. वहो, पृ० ८३-८४

वर किया था जिसमें क्षिकाल १६६२ दिया हुआ है। रेशमल्ल छुन्द का एक अग्रा नीचे उद्भृत किया जाता है—

जिम जिम लसकर लोह रसि लेंग्ड्ड सासन लक्कि डैंडरवड चडसड चंडड तिम तिम समर कडिक ॥४४॥

एस सामर

कडिक मुंछ मींह मेंछ महरू मोहि सुमारि चमकि बलि रणमञ्ज भन्न फेरि संगारि चमकि थार होडि थान हाण्ड थाडि थमाडा पडिक पाट परस्डन्त मारि मारि मगगडा ॥४५॥

चुपई हय ख़र तल रेगुड रवि छाहिउ, समुहरि भरि ईंडरवर्ड आइउ

खान खबास खेलि वल घायु, ईंडर अंडर दुःग तल गाइयु ॥४६॥
दम दम कार ददाम दमक्कह, उमडम दमडम दोल उमक्कृ तावर तरवर वेस पहुँद , तर तर तुरू परंड लर दुँद ॥४०॥ श्रीपर व्यास की भाषा चारणशैली से चोर रूप में रागी हुई है। भाषा प्रायः पृष्वीयज रासो भी तरह ही है। कहीं कहीं तो भाषा विल्कुल युदन भी भाषा की तरह है जिसके बारे में शुक्क बीने लिखा है "भाषा मनीहर है पर दान्दों की तडा तह, पर्वापड से जी जरने लगता है। निल्हा से भी बीर प्रसागे में इस कैशल का प्रयोग किया है।

§ १४१ चारण शैळी की अबभाषा के इस विवेचन से इम अबभाषा के प्राचीन रूप ना निश्चित आमास पाते हैं । इस भाषा में इकिनता बहुत है, शब्दों के विकार मी स्वामायिक नहीं है, प्रमावकत्य वर्ण महता से ओब पैदा करने के उद्देश के बारण इसमें मयकर विकृति दिखाई पबती है। इस काल की भाषा में सरहत के तत्सम राज्य भी प्रयोग में आने रूपे ये हालांकि उनके रूप भी शुद्ध नहीं थे, उनमें भी चारण शैळों की विकृति का महा प्रमाय परे विना न रह तका। यह सब होते हुए भी इस माम की आस्मा अब ची ही है। भाषा के बाहरी दौंचे के भीतर अब भाषा के सामान्य प्रचलित रूप की एकस्पन्नता अन्तर्निवित है। यापि इस इस मामा को सोळी चाने वाळी अब से मिल मानते है, क्योंकि यह कृतिम और दरवारों की साहित्यक मापा थी, किर भी इसका भाषानत और साहित्यक महत्त्व निर्वित्य और सान्य है।

औक्तिक बनमापा का अनुमानित रूप-

§ १५°. रखों से १४वों राताच्यों के बीच बद कि शिगल ब्रब दरवारों की साहित्यक भाषा के रूप में प्रचलित थी, मध्यदेश या सुरसेन प्रदेश की अपनी बन बोळी का भी विकास हो रहा था। शिंगल भाषा को कारी बनावट और शासीरिक गठन के भीतर यदापि इस

^{1.} प्राचीन गुर्जर काव्य, प्रस्तावना, पृ० 1-२

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, १० ३६४-६५

पर क्या था जिसमें लिनिकाल १६६२ दिया हुआ है। रे रणमल्ल छुन्द **वा एक अरा** नीचे जद्भत किश जाता है----

जिम जिम लसकर लोह रसि लोहुइ सासन लक्कि ईडरवड चडसइ चडह तिम तिम समर कडिक ॥४४॥

पच चामर

कडिक मुंब मींब मेंब महरू मोरि सुगारि चमिक चित्र रणमत्र भन्न फेरि संगारि चमिक धार छोटि धान छुण्डि धाडि धानदा पडिक पार वक्टहरत मारि मारि मगाडा ॥४५॥

स्रग्पर्ड

हय तुर तल रेगुद रिव बाहिड, समुहिर भरि ईंदरवद आहुड बाग खवास लेलि बरू पातु, ईंदर अंदर दुगा तल गाहतु ॥१६॥ दम दम कार दराम दनकड, बमडम दमदम टोल दमकडडू तरवर तत्त्वर वेस पहटडू, तर तर तुरू पदट एक टुटटू ॥१०॥ औपर व्यास सी भाषा चारणरीली से बोर रूप में रागी टूर्ड है। भाषा माथः पृथ्वीपत रातो में तरह ही है। कहीं बही तो भाषा किन्कुल स्टूत को भाषा की तरह है विवस्ते बारे में गुक्क वी ने ल्ला है "भाषा मनोहर है पर सन्दों की तहा तह, पडापड से बी जनने लगता है।" त्ल्लीशास ने भी बोर प्रसारों में इस कीशल का प्रधाप किया है।

§ १११ चाप्य रोठी की अवभागा के इस विकेचन से इस अवभागा के प्राचीन कर मा शिवा वामाय चारे हैं। इस भागा में हिमारा बहुत है, राष्ट्री के दिशा सी स्वामायिक नहीं है, प्रायाकन वर्ष कर हुत हो को देदा करने के उदेश्य के चारण इसमें भागत की दिरा तर के उदेश्य के चारण इसमें भागत कि ती दिराई पब्दी है। इस आज की भागा में सन्द्रत के वत्या राज्य भी मरोग में आनि को दे हागी कि उनके कर भी शुद्ध नहीं में, उनमें भी चारण शैठी की किहति का महा प्रमाद वह विना न रह सना। यह सब होते हुए भी इस भागा की आतमा अब की ही है। भागा के बार होते हुए भी इस भागा की आतमा अब ही है। भागा के बारी दोंचे के भीतर अब भागा के सामाय मबितत कर भी पक्रयुव्या अव्याजितिक है। यापा के सामाय मबितत कर भी पक्रयुव्या अव्याजितिक है। सामा के सामाय स्वाची होते हमें भीतर अब भागा के सामाय मबितत कर भी पक्रयुव्या अव्याजितिक है। सामा के सामाय सामाय हम सामाय होते हम के सामाय सी सामाय सी सामाय सी सामाय सी सी सी हमित माया भी, तिर भी इसका भागामाय और साहित्यक माया भी, तिर भी इसका भागामायत और साहित्यक महत्त्व निर्दिश्य के भीत माय है।

औक्तिक वजभाषा का अनुमानित रूप-

§ १४२. १२वीं से १४वीं ग्रातान्दी के बीच वब कि पिंगल इब द्शारा की साहित्यक भाषा के रूप में प्रचलित थी, मण्यदेश या शुरंसन प्रदेश की अपनी बन बोली का भी विकास हो रहा था। विंगल भाषा को ऊपरी बनावट और बार्गिरिक गठन के भीतर चलुंचे इस

^{1.} प्राचीन गुर्नेर काव्य, प्रस्तावना, पु० १-२

२. दिन्दी साहित्य का इतिहास, १० ३६४-६५

लेखनों के अनुसार यह भाषा भ्रष्ट संन्द्रत ना रूप हो है किन्तु जिस प्रकार से भ्रष्ट ब्राह्मणी प्रायश्चित्त करके ब्राह्मणी ही कहजाती है, वैसे ही यह भी दिव्य ही कही आयेगी। उक्ति व्यक्ति प्रकरण की भाषा को लच्य करके मुनि जिनगिजय लिखते है कि इतने प्राचीन समय की यह रचना थेवल कौराली अर्थात् अवधी उपनाम युवाया हिन्दी की दृष्टि से ही नहीं अपितु समग्र नूतन भारतीय द्यार्यक्रहीन भाषाओं के विकास क्षेत्र के अध्यन की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व का स्थान रखती है। वस्तुतः राजस्थान-राजरात के उक्ति प्रयों की भाषा तो ब्रजमापा के अध्ययन की दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उनमें पश्चिमी अपभ्रश के द्वेत्र की बोलियों का दिवस्स् ब्रबभाषा के अत्यत निकट पडता है। औत्तिक ब्रजभाषा (१२ से १४वीं शबी तक) का व्याक्रिक स्वरूप तो करीन करीन बैसा ही था जैना प्राकृत पैंगलम् की विकसित भाषा का या पिंगल सक्त्यी अन्य रचनाओं की भाषा का, किंतु यह भाषा पहली की तरह कृतिमता श्रीर तदमव शब्दों के कृतिम रूपों से पूर्णन: मुक्त थी, जनता जिन तद्भव शब्दों से (व्यजन लोग के बाद) ठीक से उच्चारण नहीं कर सनी वे या तो सन्ध या सकाच प्रक्रिया के आधार पर बदल दिए गए या उसके स्थान पर तत्सम रूपों का प्रयोग होने लगा। उक्ति प्रथों में इस प्रभार के हजारो शब्द या पर भिलते हैं जी नई भाषा के विकास की सूचना देते हैं। नीचे इम उक्ति व्यक्ति प्रकरण, उक्ति स्ताकर और अन्य उक्ति प्रथों से कुछ विशिष्ट शब्द और पद उद्दत कर रहे हैं। इनमें बहुत से पूर्ण वाक्य रूप भी हैं जिनमें भाषा की नई प्रवृत्तियाँ देखी जा सन्ती हैं। कई महत्वपूर्ण ब्याकरिक विशेषतायें भी श्रवित होती हैं।

उक्ति व्यक्ति प्रकरण से :

§ १४४. १-कृषेण सउ (सीं) सब बाहू तृट (मुटब्लड् कर्मणि) उति व्यक्ति ३७।६२

- (२) हों मरओं (में नरता हूँ) उत्तिव्यक्ति १६।७
- (३) जेम जेम (जिमि जिमि) पूर्वाह दुलाल (इ) तेम तेम (तिमि तिमि) दूजण कर हिप साल (३) उक्ति पक्ति (३८।१७)
 - (४) चीव (चीरो) घन मूस (३) मूसे ४०।५
- (५) सुओ (सुआ < शुक) माणुस लेउ (ल्यों) बाज (१) ५०।२६

उक्ति व्यक्ति प्रकरण के अतिम पत्र घृष्टित हैं इसिट्य भृतकाल के रूपों का पूर्ण परिचय नहीं मिलता । भाषा कौराली है, परत्तु प्रव के कई प्रभाव 'उ' कारन्दा प्रतिपदिक (प्रमामें') इंड सर्वनाम का बहुल प्रयोग, परसभी की हांह से अब के प्रयोग साथ ही 'हैं' विमक्ति का मिल कारकों में प्रयोग (विसे चाहुत्यां प्राचीन अब का प्रमाव बताते हैं ।) रएहतवा परिल्वित होते हैं। उक्ति व्यक्ति में सतनम शान्दों का प्रयोग भी प्रसुर भात्रा में हुआ

¹ I am inchard to look upon—u—as a form taken from Western Apab hrainsa later strengthened by the similar affix from old Bra; Ukti vyakti Prakarana, Study, pp 40

² This hi is a short of made of all work so to say, it would appear to be an imposition from literary Apaberamsa and form old Brai

Uktı vyaktı Prakrana Study, pp 37

लेखकों के अनुसार यह भाषा भ्रष्ट संस्कृत का रूप हो है किन्तु जिस प्रकार से भ्रष्ट ब्राह्मणी प्रायश्चित करके ब्राह्मणों ही कहजाती है, वैसे ही यह भी दिव्य ही वही आयेगी । उक्ति व्यक्ति प्रवरण की भाषा को लब्द करके मृति जिन्दिजय लिखते है कि इतने प्राचीन समय की यह रचना केवल कीशली अर्थात अवधी उपनाम प्रवास हिन्दी की हिए से ही अर्दी अपित समग्र नतन भारतीय थार्यक्लीन मापाओं के विकास कम के अध्यन की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व पा स्थान रखती है। वस्तुतः राजस्थान-गुजरात के उक्ति प्रयों की भाषा तो ब्रजभाषा के अध्ययन की दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उनमें पश्चिमी अपभ्रश के चेत्र की बोलियों का दिवरण् श्रवभाषा के अत्यत निकट पडता है। औत्तिक ब्रजमाषा (१२ से १४वीं शती तक) ना ध्याक्रिणिक स्वरूप तो करीन करीन बैसा ही या जैमा प्राकृत चैंगठम् की निकसित भाषा का या र्षिगल सक्त्यी अन्य रचनाओं की भाषा का, किंतु यह भाषा पहली की तरह कृतिमता और तरभव शब्दों के कृतिम रूपों से पूर्णन: मुक्त थी, जनता जिन तद्भव शब्दों ने (व्यजन लोप के बाद) दीक से उच्चारण नहीं कर सती वे या तो सन्धि या सकीच प्रक्रिया के आधार पा बदल दिए गए या उसके स्थान पर तत्सम रूपों का प्रयोग होने लगा । उत्ति प्रयोगे में इस प्रकार के हबारों राज्य या पर भिलते हैं जो नई भाषा के विवास की सूचना देते है। नीचे इम उक्ति व्यक्ति प्रकरण, उक्ति रताकर और अन्य उक्ति प्रयों से कुछ विशिष्ट शब्द और पद उद्धत कर रहे हैं। इनमें बहुत से पूर्ण बाक्य रूप भी हैं बिनमें भाषा की नई प्रवृतियाँ देती जा सक्ती हैं। कई महत्वपूर्ण ब्याकरिएक निशेषतार्वे भी ठिव्हित होती हैं।

उक्ति स्पक्ति प्रकाश से :

§ १५४. १~दूजेण सउ (सीं) सद बाह् तूट (बुटबलह बर्माख) व्यक्ति ३७।६२

(२) हो नरओं (में करता हैं) उत्तिव्यक्ति १६।०

(३) जेम जेम (निभि निमि) पूर्वीह दुलाल (६) तेम तेम (तिमि तिमि) दूजग फर हिय साल (इ) उक्ति प्रक्ति (३८<u>११७)</u>

(४) चोद (चोरो) धन मूस (३) मूसे ४०।५

(५) स्औ (स्था< शुक्) माणुस क्षेत्र (क्यों) बाज (१) ५०।२६

उक्ति व्यक्ति प्रकारण के अन्तिम पत्र प्रतित हैं इसन्टिए भृतकाल के रूपों का पूर्ण परिचय नहीं मिलता । भाषा कौशली है, परन्तु बच के कई प्रभाव 'उ' कारान्त प्रातिपदिक (प्रयमार्ने) इंड सर्वनाम का बहुल प्रयोग, परसर्गों की दृष्टि से हव के प्रयोग साथ ही 'हिं' विमक्ति का भिन्न करकों में प्रयोग (बिसे चाटुस्या प्राचीन द्रज का प्रमाव बताते हें)) रुप्टतना परिलद्वित होते हैं। उक्ति व्यक्ति में तत्तम शब्दों ना प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुन्या

¹ I am inclined to look upon-u-as a form taken from Western Apab later strengthened by the similar affix from old Bras Ukta syaktı Prakarana, Study, pp 40

² This hi is a thort of made of all work so to say, it would appear to be an imposition from literary Apabaramsa and form old Braj

Ultı vyaktı Prakrana Study, pp 37

१—प्राचीन बन में संभवतः तीन लिंग होते ये । प्रियर्सन ने नपुसक लिंग के प्रयोग लिवत किये थे । उनके मतानुसार कियार्य बोधक सज्ञा (Infinitive) वा लिंग मूल्तः नपुसक था। सोना ना नपुसक रूप उन्होंने 'सोनों' बताया। 'ऋपनो घन' में अपनो को भी उन्होंने नपुरक ही माना । सप्रामसिंह बालशिक्षा के प्रथम प्रक्रम में लिग-विचार करते हुए डिखते हैं---

हिंगु तीन । पुलिंगु स्त्री हिंगु, नपुंतक लिंगु । भल्ल पुलिंगु, भलो स्त्रीहिंग । भल्ल नपुत्रक लिंगु ।

यहाँ भी नपुषक लिंग की सूचना अनुस्वार से ही मिलती है बैसा उपर्युक्त रूप सोनों या अपनों में । उत्ति व्यक्ति के लेखक भी तीन विंग का होना मानते हैं । लगता है कि यह नियम बाद में अत्यन्त अनावश्यक होने के कारण छोड दिया गया।

२—१४ वीं शतो तक के किसी पिंगल या ऋपभ्रश के अथ में निम्निखलित किया विशेषणों का पता नहीं चलता जो अजमापा में पर्यात सख्या में प्राप्त होने हैं श्रीर जिनका सनेत औतिक प्रथों में पहरी बार मिलता है छ > सें :

> उपरि सूं=जगर तक, उक्ति रत्नाकर प्र० ५६ हेडिल् = नीचे तक ., " तत्र >तो : तौ तर्हि उक्ति रलाकर ५० ५६

३—रचनात्मक कुटादि प्रत्ययों का सद्धित विवरण नीचे दिया जाता है ।

- (१) करता, लेता, देता इत्यादी कर्तरि वर्तमाने शक्तहानशी
- (२) कीवतड, लीवतड, लीवतड इत्याडी कर्मरयानश (३) करणहार, लेणहार देणहार इत्यादी वर्तमाने वुण तृची
- (४) कोचड, टीघड, लीघड इत्वादी श्रतीते निष्ठा क्वमुकानी च
 - (५) करीज, लेज, देउ इत्यादी करना

 - (६) बरिवा, लेबा, देवा, इत्यादी तुम् (७) करिवड, लेवड, देवड इत्यादी कर्मण तत्मानीयी
 - (द) करणहार, लेणहार इत्यादी भविष्यति काले तमन

कपर के सभी प्रत्यया से बने रूप बजनाया में किंचित ध्यनि परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होते हैं। करती, लेती आदि (कर्नीर वर्तमान के) कीजी, लीजी, दीजो (कर्मणि प्रयोग में) करनहार, देनहार, भृतनिष्ठा के रूप कीधो दीधों के स्थान पर कीवा दियो वाले रूप, बला के करि, हो, दे, कियार्थक सहा में करिया, तेवा के स्थान पर करिया, लेवा, देनो आदि तथा त'यत के फरिवा, लेवो, देवो रूप बन में अत्यन्त प्रचलित हैं।

१. लिग्वस्टिक सर्वे आफ इंडिया, खण्ड ३, भाग १, प० ७७

र. बालशिका सज्जा प्रक्रम. प्राचीन गुजराती गद्ध संदर्भ, ए० २०५

 प्राचीन ब्रब में संभवतः तीन लिंग होते थे । ब्रियर्सन ने नपुसक लिंग के प्रयोग लिबत किये थे। उनके मतानुसार कियार्थ बोधक सज्ञा (Infinitive) का लिंग मूळत. न्पुसक या । सोना ना नपुसक रूप उन्होंने 'सोनी' बताया । 'श्रपनी धन' से अपनी की भी उन्होंने नपुरक ही माना 🕴 सप्रामसिंह चालशित्ता के प्रथम प्रक्रम में लिग-विचार करते हुए हिखते हैं---

थितु तीन । पुलिंगु स्त्री लिंगु, नपुंतक लिंगु । मल पुलिंगु, मली स्त्रीलिंग । मल नपुसक लिंगु ।

यहाँ भी नपुसक लिंग की सूचना अनुस्वार से ही मिलती है बैसा उपर्युक्त रूप सोनों या अपनों में । उक्ति व्यक्ति के लेखक भी तीन लिंग ना होना मानते हैं । लगता है कि यह नियम बाद में अत्यन्त अनावश्यक होने के कारण छोड दिया गया।

२—१४ वीं ग्रतो तक के किसी पिंगल या श्रयभ्रश के अथ में निम्नलिखित किया विरोपणों का पता नहीं चण्ता जो बजभाषा में पर्यात सख्या में प्राप्त होते हैं श्रीर जिनका सकेत ओक्तिक ग्रथों में पहली बार मिलता है छ्र>लें :

> उपरि सं = उपर तक, उक्ति रत्नाकर प्र॰ ५६ हेठिल ≃नीचेतक ,, ,, तं >ती : ती तर्हि उक्ति रत्नाकर प्र० ५६

उ—रचनात्मक क्रतादि प्रत्ययों का सिक्क्षित विवरण नीचे दिया जाता है !

(१) करतड, लेतड, देतड इत्यादी कर्तरि वर्तमाने शक्तृहानशी

(२) कीजवड, श्रीजवड, श्रीजवड इत्यादी कर्मस्यानस

(३) करणहार, रेणहार देणहार इत्यादी वर्तमाने बुण तुची (४) कीयउ, टीयउ, रीयउ इत्यादी श्रतीते निष्ठा क्वमुकानी च

(५) करीड, लेड, देड इत्यादी क्ला

(६) करिवा, छेत्रा, देवा, इत्यादौ तुम्

(७) करियज, लेवज, देवज इत्यादी कर्मणि तत्रानीयी

(c) करणहार, लेणहार इत्यादी भविष्यति काले वसन्

ऊपर के सभी प्रत्यवा से बने रूप ब्रजमाषा में किवित ध्वनि परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होते हैं। करती, लेती आदि (कर्त्तीर वर्तमान के) कीजी, लीजी, दीजी (कर्मण प्रयोग में) करनहार, देनहार, भूतनिष्ठा के रूप कीयो दीयों के स्थान पर कीयो दियों वाले रूप. क्ला के करि. हो, दे, कियार्थक सज्जा में करिया, तेवा के स्थान पर करिया, लेवा. देशे आदि तथा त'यत के करिना, लेबो, देवो रूप ब्रम में अत्यन्त प्रचलित हैं।

१. लिवस्टिक सर्वे आफ इंडिया, खण्ड ३, भाग १, ५० ७७

२. बालगिषा सज्ञा प्रक्रम, प्राचीन गुजराती गद्य सर्दर्भ, पृ० २०५

व्रजभाषा का निर्माण

जीकिक से परिनिष्ठित तक [बि०सं० १४००∽ १६००]

के मूच में यह वारणा रही है कि इतनी हुन्बरिस्त भाषा का माहुमाँव इतने आकृतिक रूप से मैंने हुआ। सर के साहित्व को आकृतिक मानने वाले विद्यानों के विवास की ओर इस धालामिक में ही सरेत कर चुके हैं। यह स्वत्य है कि हिन्दी साहित्य ने संपूर्ण इतिहास पर विचार करते कमन बहु और उत्तरी पुत्रपृषि की समस्या को उठता नहल नहीं दिया का मनता मा, इनोलिए देवल कुन्हरूल व्यक्त करते ही मतीय कर विधा गया क्यांकि अव्यक्त तो इस कुन्हरूल को साल करने के किए कोई समुचित आचार न या, यह के पहते की प्रकाशाम-काव पायरा अव्यत विग्रहान्ति और मननाय पी, दुसरे १४०० से १६०० विक्रमी का वो भी साहित्य सास या, उक्त में माना यह मुख्यहित्य तरी के ते विचार भी नहीं किया गया। ह्याचार्य पीनवर्ष्ट

शुक्त ने अपने दिन्दी साहित्य के इतिहास में तिमित्र घायाओं का साहित्यिक और सैद्धानिक इटि से नितना सूत्रन विरक्षेपण किया, उतना हो मित्र मित्र पायाओं के कियो द्यारा स्वीवृत भाग का निरक्षेपण मी उनका उद्देश रहा। बहु बात दूसरी है कि इस उद्देश्ण की पूर्ति के किए उनके पास त्यादा अवकारा और स्पष्टन था, किन्तु १४००वेश रूप तक के हिन्दी साहित्य की सांविक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट निर्मुण क्यत धारा के सहित्य के प्रति, उनके हृदय में स्वटन बहुत उसलाई नहीं या, कीम ही उनकी साथा के प्रति मी बहुत आकर्णण नहीं दिखाना

§ १५७, अटलाग के निवयों की जनमाया के माध्ये सीष्टर और अभिन्यिकिकीशल को देलकर इस मापा~सहित्य के विद्वानों ने प्रायः आस्वर्य प्रकट किंग्र है। इस आस्वर्य

गया । सन्तों को मापा को 'स्युनकटो' नाम देकर शुक्क जी आगे बढ़ गए । कहीं कुछ विस्तार १७

व्रज्ञभाषा का निर्माण

जीकिक से परिनिष्ठित तक [बि॰ सं॰ ३४०००~३६००]

को देलकर इस भाषा-साहित्य के विद्वानों ने प्रायः आञ्चर्य प्रकट किया है। इस आञ्चर्य के मूल में यह शारणा रही है कि इतनी सुल्यवृश्यित भाषा का पाटुर्भाव इतने आकरिएक रूप में कैमें हुआ। सुर के साहित्य का आवरिमक मानने वाले विद्वानों के विचारों की ओर इस 'पालापिक' में ही सरेत कर चुके हैं। यह सत्य है कि हिन्दी साहित्य ने संपूर्ण इतिहास पर विचार करते समय सूर और उनको पृष्ठभूमि की समस्या की उतना महत्व नहीं दिया जा मनता था, इमीनिए देवल बुत्हल व्यक्त करके ही मतीय कर लिया गया क्योंकि अञ्चल ती इस बुनहल को शान्त करने के लिए कोई समुचित आधार न था, सूर के पहले की द्रवमाधा-मध्य परवरा अत्यत विश्रह्मन्ति और भग्नप्राय थी, दूसरे १४००से१६०० विकमी का जो भी साहित्य प्राप्त था, उसको भाषा पर सुन्यवश्थित तरीके से विचार भी नहीं किया गया । ख्राचार्य रामचन्द्र शुक्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में निभन्न धाराओं का साहित्यिक और सैद्धान्तिक हिं! से जितना सद्दम विश्लेषण किया, उतना ही मिन्न भिन्न धाराओं के कविनो द्वारा स्वीकृत मापा का निरुक्तेपण भी उनका उद्देश्य रहा। यह बात दूसरी है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनके पास प्यादा अपनाश और स्थल न या, किन्तु १४००से१६०० तक केहिन्दी साहित्य की सर्गाधिक महत्वपूर्ण और विशिष्ट निर्मुण सन्त घारा के सहित्य के प्रति, उनके हृदय में सरहत बहुत उत्साह नहीं था, वैमे ही उमकी भाषा के प्रति भी बहुत आकर्षण नहीं दिखाया गया । सन्तों को भाषा को 'सबुदक्टी' नाम देकर शुक्क जी आगे बढ़ गए । कहीं कुछ विस्तार

§ १४७. अष्टद्वार के कवियों की अजमाया के माधुर्य सीष्टन और अभिन्यक्ति-कीशुरू

मारत में हु। मनी मी, इसमें बहुत बार दन काल रचना होती वहीं। १= भी राजी में भी 'बंग मानतर' वैने मत्य इसमें दिले गए, किन्तु वह सर्वभाव्य साहित-मता का स्थान की सुकी मी। इस प्रकार विचारणीय केंद्रच दीन मात्राएं बच बनी हैं, तमाइधित सहक्कां, पत्थी और हव !

६ ६५२. 'पूर्वा' ग्रज्य को टेक्स बुद्ध विद्वानों ने बहुत सीच-तान की है। पूरवी का अर्थ मोजपुरी या मा कवरी या इन्हा और रह पर निर्मादक दंग से विचार नहीं हो दश है। इन्हा सोग 'दूरती' हा आपन्तिक अर्थ करते हैं। को परशुपन चहुनेंदी 'दूरती' के बारे में हित्तते हैं कि 'पूरत रिया द्वारा उस मैसिक स्थिति (!) को अर सकेत दिया गया है दिसमें बोतात्मा और परमारमा के बीच हिसी प्रकार के अन्तर को अनुमृति नहीं पहती। अद्भाव कर्वर साहब नी कार उद्भुव मासी का अर्थ आप्यानिक दृष्टिकोंन के अनुसार हो समाना समीचीन होगा । बबीर के राज है-बोली हमारी पूर्व की । 'पूर्व की बोली' का आयापिक अर्थ संगत हो सक्दा है, कर्पात् पूर्वश्चल के होगों ऋषिने या स्वन परमात्मा की। टीकाकारों ने मी रेश अर्थ दिया है। होंबाहि इस आपानिक हिन्दोन हा प्रतिसदन करते हुए मी चतुर्वेदी वी ने क्वीर की मापा में अवधीतकों के सीवर्वान का मनल दिना है। सुने लगता है कि 'पूर्वा' राज्य कर्बर ने वान बूक्त कर 'पहाँही' या 'पश्चिमी' से अपनी मापा ही मिन्तत स्वित करने के दिर प्रमुक्त किया। 'प्वीं शन्त 'परिवर्ता' का कारेदर है, वो इस बात को स्वना देता है कि हिन्दी प्रदेश में दोनों प्रकार को मापार प्रवित्त सी। पूरवी का अर्थ शंधारएक वही है को पूर्व हिन्दी का है। अर्वीस्तान मापा के सुदन मेरी के प्रति प्रचिक सचेत मंद्रे ही न रहे ही किन्तु तत्वार्थन सन्तो द्वारा प्रयुक्त बचमामा और सर्वा बेंदी से अपनी निर्वा दोली का मेंट तो ने पहचामते ही पहे होंगे । सम्मदतः क्वीर ने सर्व-मान्य माना मानी ब्रथ में अरते पूरवी परोगों का सर्शकरण करते हुए स्वीकार किए कि पूरव का होने के बारण अरनी मात्रा 'पूरवी' का कुछ प्रमाव मी आ गर्ना है। वैने क्वीर के कर पर मोजपुरी या अवधी में मी दिलाई पढते हैं। समैती ही मापा में ऋवधी हा ममान सप्र है। देहे चौगई में जिली अबची रचनाओं का करीर के सनद तह कारी प्रचार हो। पुत्त था। 'पूरक्तयां, 'धूरिनाक्षि देते काल प्रत्य किने वा जुके ये और उनका कार्य प्रचार था। पूर्वा का वर्ष मेलपुर्वे ही है। बिन त्यों में मोबपुर्वेदकोग है वे किन्ने प्रार्थान है, यह बहना बहिन ही है। चीवक में सी यह अधिक नित्या है। चीवक सदसी सहस्थी में घनौतों (हमरा) मठ से प्रथम प्रचल्ति हुआ । ऐता बुद्ध विद्वानों का मत है ।

है १६०, वपासीय वसुकती और बच पर इन वाय-साम विचार करें तो जाटा वनचीन होंगा। नहीं नैसी और बच के उद्दान, विचान और पास्तरिक सन्तयों पर बहुत विचार हुआ है। परिपात्ता उनकी विभिन्ना की उन्तय के कराया मरल दिना गांग और रूपी राजारों के अपने में रानेक समर्थों में करानी बार भी हुआ। नहीं देशों और बच देनों ही पढ़ेग्यी बोर्ट्सी हैं इस्तियर इनमें सम्मा कराया है, विभिन्ना कमा। देशों के उद्दान और विचार के मोदी का वहीं अभिन्ना उन्होंक क्यन की कराया गांगिक कराया है।

^{1.} कर्बर माहिय की पत्स, संदन् २०११, पृत्र २९०

प्रजभाषा वा निर्माण १३३

स्पानगत सवय नहीं माद्यम हो पाया है लेकिन समनत इनका निर्माण राजस्थान और मज के उत्तरी भाग में पजाब ने पान बाले प्रदेश में हुआ होगा। रहरी बोजी को आधारत पहाले का मूल कारण प्रवासी माया को आधारत पहाले का मूल कारण प्रवासी माया को आधारत पहाले का मूल कारण प्रवासी माया को आधारत पहाले का मूलि कही वा सकती है। वाल जाइनारों ने किन्या है कि किमी नारापत्रय दिल्ली में विक्तित नई माया (लड़ी योग) पर प्रवासी जगर सन्तर दिल्लागी मा सिर्मिलन प्रभान परा माति होता है। ' वालुक्षों ने लड़ी योगों में दिल्ल स्थवन-मुख्या को भी प्रवासी प्रमान ही। माना है। यही नहीं सही बेली के उत्तर पर सामादित हो भी रास्त्रों प्रमान है। माना है। यही सही स्थान के उत्तर लक्ष्म हामानिक टर्ग में विक्रम नहीं, श्रीरिक्ती असम्रय की मई महिपायी सामान्य वर्तनात के तिहत्त करा सर्विभाविक पर (लड़ी बोजी में नेवा पर स्वास्त्र प्रवासी स्थान पर स्वासी की स्थान पर स्वासी स्थान पर स्वासी स्थान पर स्वसी स्थान की सर स्वासी है। यहा प्रमान के कारण सही विश्वीय स्थानों ने ने वा स्थान प्रमान के कारण सही वेशी में निवास की सरका नी सहग निया हतने तिस्रीत प्रवासी के प्रमान के कारण सही वेशी में निवास की, हिम्सील प्रवासी के प्रमान के कारण सही वेशी में निवास की, हिम्सील प्रवासी के प्रमान के कारण सही वेशी में निवास की, हिम्सील प्रवासी के प्रमान के कारण सही वेशी में निवास की, हिम्सील प्रवासी के स्थान पर की निवास की सरका निवास की स्थान की कारण सही के निवास की निवास की स्थान की

६६२ खडी बेली के इसी प्रारम्भिक कर को जिसमें आप्तरा के बीज क्लिनु भी वर्तमान में खीर वो पास्त्रामी और पचारी प्रमानी को मी समेटे हुई थी, और दिल्ली के झास-मान की बोली होने के चारण बिले मुख्यमानी चार में बहुत प्रचार और प्रेरनाहन मिला, सही ने अनावाण था लोके वे इस बहु प्रचारित मापा के माध्यन से अपने सदेशी को दूर तक बहुँचा कहें।

१. मारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० १८५

² The History of India as told by its own Historians by Henery Illiot Vol 3 PP 300

ब्रजभाषाका निर्माण १३३

है १६२ खडी देणी के इसी प्रारोभिक रूत की बितमें आग्नरा के बीद दिन्हें भी वर्तमान में और वो रादरणानी और पवादी प्रभातों की भी सेनेट हुई थी, और हिल्ली के आस-पान की बोली को के बारण बिते मुसलमानी बाल में बहुत प्रचार और प्रोरनाइन मिल, सुतों ने अन्तापा या ताकि वे इस बहु प्रचारित भाषा के माध्यम से अरने सदेशी को दूर तक पहुँचा सहें।

१. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, ए० १८५

² The listory of India as fold by its own Historians by Henery Illiot Vol 3
PP 336

सं तथा परनतों मीर को भी इसी रेखने का उत्ताद कहा है। रेखना का ही एक रूप रिवृण में रिक्तनो हिन्दी के ताम से मंग्रहर हुआ ! दिन्तनी का अपना कि बलाबा क्लानवाज मंग्रहाज मुहम्मद हुनेनी हैं (१२८८-१४९२ ई०) क्रिप्तिने कई रचनाएँ लिली किनमें उनकी गवन्यना भीसाइक अग्रीन बहुत महत्वपूर्ण है। इसके जाद बहुत सी क्लियों की प्रचारों निक्ती हैं जिनमें गुहम्मद्दती गुडक्या, इन्तिन्याती, शेखनादी आदि कार्या

§ १६३. उत्तर भारत में खडी बोली या शुक्ट की के शब्दां में 'तपुक्कडो' के पुराने लेखकों में गोरखनाय के कुछ पद उद्भुत किये आते हैं। गोरखनाथ के ये पद क्सि समय की रचनाएँ माने सायँ, यह तब नहीं हो पाया है। वैसे मोरए का समय ७ वी शसी चताया जाता है। बुद्ध लोग उन्हें १२ वीं शतान्दी ना चताते हैं। तिब्बत में लोग इन्हें बीद ऐन्द्रज्ञालिक मानते हैं। वहा बाता है कि ये पहले शैद्ध ये किन्तु शरहवीं शताब्दी के अन्त में सेन पहा के निनास के समय धीन हो गये थे। बारख के एक शिष्य का नाम धर्मनाथ था जिल्हाने चौदहवीं शताब्दी में बनफटे नाय सम्प्रदाय का प्रचार कच्छ में किया। यदि धर्मरास को गोरखनाथ का साजात शिष्य माना आय तो उनका भी काल १४ वीं या १३ वीं का प्रबार्ट मानना चाहिए। गोरहानाथ को सिद्धों की परपरा में मानते हुए शहल साजत्यायन उनका बाल पालनशीय राजा देवपाल के शासन-बाल ८०६ ४६ ईस्वी में निर्धारित करते हैं। इस प्रशर गोरलनाथ को वे नर्नी शती का मानते हैं। डा॰ इबारीपसाट द्विवेदी गोरलनाथ का आविर्मात विक्रम की दसवीं शताब्दी में मानते हैं। डा॰ बडावाड ने गोरखनाय का समय सबन १०५० माना है और डा० फर्रेंडर उन्हें १२५७ सबत का बताते हैं। वस्तन गोरखनाथ के बीवन का सड़ी विवरण जानने के लिए कोई भी ऐतिहासिक सामग्री प्रात नहीं है। जो भी हो गाँरलनाथ का समय यदि नवीं शताब्दी का माना जाय तो भी उनके नाम की कही जाने वाली स्वनाओं वा समय १३ वीं शताब्दी से पहले नहीं साना जा सकता क्योंकि ये भाषा की दृष्टि से अतनी परानी नहीं मालम होती । इन्हें यदि १३वीं शताब्दी का मानें तो भी दनका महत्त्व कम नहीं होता और खड़ों, बोली के उदयम और विकास के अन-सन्धित विद्यार्थी के जिए तो इनका और भी अधिक महस्य हो बाता है।

§ १६७. गोरसनाथ नी धानागिक मानी खाने वाली रचनाओं में वे बिन १६ फ्रें डा॰ बदायाल ने गोरसवानी (बोगेसुरी बानी भाग १) में प्रकाशित किया है, उनकी भाषा भी एक वर की नहीं है। अधिकाश की माना खड़ी बोली है अरस्य हिन्द उनमें पूर्वी भागक भी कम नहीं है। यह प्रभाव कही-नहीं तो इदना पत्रक है कि इसे जिन्हियों का दोप कहक हो नहीं यह समने 1

^{1.} देखिए—देश्विमा हिन्दी का गय और पर, छेलक श्री रामशर्मा, हैदराबाद

२. इनसाइक्कोदोडिया भार रेलोजन एण्ड इधिरस, माग ६, पष्ट ३२४

३. इनसाइक्लोपीटिया बिटानिका, ए० ३२४-३३०

४. हिन्दी काव्यधारा, ६० १५६

५, नाथ सम्बद्धाय, पृ० १६

को तथा परवर्ती मिर को भी इसी रेखते का उत्ताद कहा है। रेखता का ही एक का दिवल में शंकतनी हिन्दी के नाम से मराहूर हुआ! दक्षितनी का पुराना कवि क्लाबा क्दाननात भेयूरचात प्रदानस हुसेनी हैं (१३५८—१४२२ ई०) क्षित्रिन कई रचनाएँ विख्ती वितमें उनको मयदरमना भीधाइन अरागीन' बहुत महत्वपूर्ण है। इसके बाद बहुत सी क्षियों भी स्वामार्थ मिक्दी हैं क्षितमें सुद्दमस्टुली दुनुक्सा, इन्तिशादी, शैलसादी आदि कार्या प्रसिद्ध हैं।

§ १६३. उत्तर भारत में लड़ी बोली या शुक्त भी के शब्दां में 'सधुक्त टी' के पुराने लेखकों में गोरखनाथ के कुछ पद उद्भृत किये बाते हैं। गोरखनाथ के ये पद निम समय की रचनाएँ माने बायँ, यह तय नहीं हा पाया है। वैसे बोरप का समय ७ वी शबी बताया जाता है। सुद्ध लोग उन्हें १२ वीं शताब्दी का बताते हैं। तिब्बत में लोग इन्हें बीख क्षेत्रजालिक मानते हैं। वहा बाता है कि ये पहले बौद्ध ये किन्तु बारहवीं शताब्दी के अन्त में सेन बश के विनास के समय शैव हो गये थे। विशेष्य के एक शिष्य का नाम धर्मनाप या जिल्हाने चीटहर्वी शताब्दी में कनफटे नाथ सम्प्रदाय का प्रचार कच्छ में किया। यदि धर्मदास को गोरखनाथ का साहात शिष्य माना आब तो अनुका भी काल १४ वीं या १३ वीं का पूर्वार्ड मानना चाहिए । गोरखनाथ को सिद्धों की बरपरा में मानते हुए शहल साक्रायायन उनको बाल पालनशीय राजा देवपाल के शासन-बाल ८०६ ४६ ईस्वी में निर्धारित करते हैं। इस प्रभार गोरखनाय को वे नर्री शती का मानते हैं। डा॰ हजारीपसाद द्विवेदी गोरखनाय ना आविर्मात विक्रम की दसवीं शताब्दी में मानते हैं। डा॰ बटप्याङ ने गोरखनाथ ना समय सबन १०५० माना है और बार पर्यहर उन्हें १२५७ सबत का बताते हैं। बखन गोरसमाथ के जीवन का सही विवरण आनने के लिए कोई भी ऐतिहासिक शामग्री प्रारा नहीं है। जो भी हो ग्रेरखनाय वा समय यदि नवीं शखाब्दी वा भाना जाय हो भी उनके नाम की कही जाने वाली रचनाओं का समय १३ वीं शताब्दी से पहले नहीं माना जा सस्ता क्योंकि ये माया की हार्रि से उतनी प्रसनी नहीं मालूम होती । इन्हें बदि १३वीं शताब्दी का मानें तो भी इनका महरत कम नहीं होता और खड़ो बोली के उद्यम श्लीर विकास के अन-सन्धित विद्यापों के लिए तो इनका और भी अधिक महत्व हो बाता है।

है १६४८ मोस्स्ताय की भागाणिक मानी जाने वाली स्वताओं में वे दिन १३ को दार करवाल ने भास्तानी (वीमेहरी बानी भाग ?) में प्रशासित किया है, उनको भागा भी पत तरह की नहीं है। अधिकारा की भागा सडी बोली है असस्य किन्दु उसमें 'पूर्वी' प्रभाव भी कम नहीं है। यह प्रभाव कहीं-कहीं तो इतना प्रका है कि इसे जिस्कितों का दोप करका है। यह प्रभाव कहीं-कहीं तो इतना प्रका है कि इसे जिस्कितों का दोप करका है।

^{ा.} देखिए—देश्विना हिन्दी का गय और पर, खेलक थ्री समधर्मी, हैटराबाट

२. इनसाइनवीपीडिया आप रेखांजन एण्ड स्थितस, साम ६, प्रह ३२४

२. इनसाइस्लोपीढिया विद्यानिका, पु० ३२४-३३०

४. हिन्दी काव्यधारा, १० १५६

प, नाय सम्बद्धाय, पृ० **३**६

नहीं था। गोरखनाय के ब्रवमाधा पर इस बात वा सकेत करते हैं कि परों के छिए ब्रवमाधा का हो प्रयोग होता था। हतों की वाणियों की भाषा का अध्ययन करने पर माल्म होता है कि ये विश्व क्रान्तिस्तरी आंक्सवी उपरेखों, करिन्दाहन, पालड दियोग था उसी मनार के अन्य परप्रता—प्रथित विचारों का विन्दुंद करने के छिए बिस भाषा का प्रयोग करते ये वह नयोदित रही बोधी थी, किन्तु अपने साधना के सहब विचारों, गगारमक उपरेखोत्या निज्ञी अनुमृतियों की बात पर शैंधी की ब्रवसाया में करते थे। रिख्ता या राडी बोधी शैंदी में बाद में कुछ पर भी विश्व गए, किन्तु परों की मूक माण ब्रव ही रही!

§ १६५. गोरखनाय की ही तरह उनके गुरु बहे जाने वाले मत्येग्द्र नाम जी का भी समय विवाद का ही विवाद है। उनकी रचनाओं का भी दुख वदा नहीं चलवा। है दिन्सी दोतों के आत विद्यों की माना देवें में गुरु में के नाम दिए हुए हैं। मत्येन्द्रनाथ की दुई से और मीनवाथ भी कहा गया है। डा॰ करवाणी महिल इन तीनों नामों को एक व्यक्ति से सबद खताती है। मत्येन्द्रनाथ का समय दक्षों शतायों के पूर्व ही माना जाता है किन्न उनकी आत रचनाओं की माना को १३ वी १४ वों के पहंदे की नहीं माना जाता है किन्त उनकार वे सत्येन्द्रनाथ को है। स्वाद तिवाद की स्वाद किन्त है जिसका रचनाकाट १३ वी शताब्दी बताया गया है। मित्र तिवाद पढ़ितों में डा॰ महिल ने मान्येन्द्रनाथ के दे हिएते एद उड़क किन्न हैं। जन उन्होंने चौचपुर को किसी प्रति में प्राप्त हिन्द में। इन दो पढ़ों में हो एक पुष्टिक कमाचा गया है। है।

राग धनावरी

पत्तेस्त्र जिहसी आय होंगो वीसराम ज्यो ज्यों तर स्वारप हरें होई त सजायों काम ॥ टेक ॥ जत कु पारे मासूछी छग कु बाहे मोर सेवन चाड़े राम कु ज्यों निवत्त्व चन्द्र चकोर ॥ १ ॥ यो स्वारय को सेवटो स्वारप होडि न जाव जब मोर्सिट किरवा करी क्यारे मन वो समायो खाय ॥ २ ॥ जोगी होई जार्गोर जग तें रहें उदास । तत निरजण पाइय कई सहन्दर नाप ॥ ३ ॥

मत्स्पेन्द्रनाय के साथ ही इस पुलक में चर्तरी नाय तथा भरम्यों के हिन्ही वर भी दिये हुए हैं, किन्तु इनकी माथा बड़ी मिश्रित चचमेल यानी रेख्ता है। बा० मिल्किन ने दह प्रत्य में गोंस्कनाय के नाम से सबद एक गोरस्त उपनिषद् मकाशित कराया है जिसकी भाषा ग्रुद ब्रबमाथा और कायो गुड़ और परिमार्कित मनमाया कही वा सकती है। गोरख उपनिषद् की मिलिकी नोषपुर की ही किसी मिति के गोर्ट। बित मिति से यह अस लिया गया है यह सकत् २००२ की है जिसे किसी औ साल्याम साधु ने तैयार की थी। मूल मित का मुख्य पता नहीं चळता। लेखिका ने गोरख उपनिषद् की भाषा की रोजस्थानी और

तिद् सिद्धान्त पद्ति, क्ल्यामा मित्रक, पूना, १६५४, पृ० १५-१६

नहीं था। गोरखनाथ के ब्रजभाषा पद इस बात का सबेत करते हैं कि पदों के लिए ब्रजभाषा का ही प्रयोग होता था । सर्तों की वाणियों की भाषा का अध्ययन करने पर मालूम होता है कि ये कवि क्रान्तिनारी श्रोजस्वी उपदेशों, रूढ़िन्सडन, पालड विरोध या उसी प्रकार के अन्य परपरा-प्रथित विचारों का विच्छेद करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग करते थे वह नवीदित एडी बोली थी, किन्तु अपने साधना के सहज विचारों, रागात्मक उपदेशोतथा निजी अनुभृतियो की बात पद शैली की अजभापा में करते थे। रेखता या खडी बोली शैली में बाद में कल पद भी लिखे गए, किन्तु पदों की मूल भाषा अब ही रही।

६ १६५. गोरलनाथ की ही तरह उनके गुरु कहे जाने वाले मस्येन्द्र नाथ की का भी समय विवाद का ही विषय है। उनकी रचनाओं का भी दुछ पता नहीं चलता। तिब्बती स्रोतों से प्राप्त विद्धों की नामायली में गुरुओं के नाम दिए हुए हैं। मत्त्येन्द्रनाथ की लुईपा श्लीर मीननाय भी कहा गया है। डा॰ क्ल्याणी मिल्लिक इन तीनों आमों को एक व्यक्ति से सबद बताती है। मत्स्पेन्द्रभाष का समय दसवीं शताब्दी के पूर्व ही माना जाता है क्षिन्त उनकी प्राप्त रचनाच्यों की भाषा को १३ वीं १४ वों के पहले की नहीं धाना वा सकता। डा॰ वागची ने मत्स्येन्द्र के कौल ज्ञान निरंबन नामक प्रन्य का संपादन किया है जिसका रचनाकाल ११ वीं शताब्दी दताया गया है । 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' में डा॰ प्रक्लिक ने प्रतम्येन्टनाथ के दो पुराने पद उद्भव किये हैं। जो उन्होंने बोधपुर को किसी प्रति से प्राप्त किए थे। इन दो पदों में तो एक पूर्णतः जनभाषा का ही है।

राग धनावरी

पक्षेम उहिसी भाव लीवो वीमगम उपी उसी नर स्वारथ करें कोई न सजायो कास 11 रेक 11 जल कृ चाहे माचली घण कृ चाहे मीर सेवन चाहे राम कू ज्याँ चितवत चन्द चकोर ॥ ९ ॥ यो स्वारथ को सेवडो स्वारथ होडि न जाय जब गोविंद किरपा करी महारो मन वो समायो आय ॥ २ ॥ जोगी सोई जाणीये जग ते रहे उदास । तत निरंजण पाइय कडे सहन्दर नाथ ॥ ३ ॥

मत्त्येन्द्रनाय के साथ ही इस पुस्तक में चर्परी नाय स्था भरथरी के हिन्दी पद भी दिये हुए हैं, किन्तु इनकी माया वहीं मिश्रित पचमेल यानी रेख्ता है। डा॰ मल्लिक ने इस ग्रन्थ में गोरखनाय के नाम से सबद एक गोरख उपनिधद प्रकाशित कराया है जिसकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा और कानी पुष्ट और परिमार्जित ब्रजमाषा कही जा सकती है। गोरख उपनिपद् की प्रतिलिपि नोषपुर की ही किसी प्रति से की गईं। जिस प्रति से यह अग्रा लिया गया है यह सबत् २००२ की है जिसे किसी श्री याळगम साधुने तैयार की थी। मूळ प्रति का कुछ पता नहीं चलता। लेखिका ने गोरख उपनिषद् की भाषा को राजस्थानी और

१. सिद्ध सिद्धान्त पद्धि, कर्याणी मिहिक, पूना, ११५४, पृ० १५-१६ १८

६ ६६७. व्रवमापा में पद्स्चना ना आरमा नव से हुआ, यह नहना निव्य है। पद्मीको ना प्रयोग निर्मृतियो सन्तों ने तो किया है। वाद के विष्णाम मक निव्यों की दर्जनाओं में तो यह प्रमुख काय प्रवार ही हो गया। यहतुक व्रवमापा के नेया पर्दों ना प्रवन्त १२ वों से तो यहां का प्रवन्त १३ वों वालारी में ही हो गया मा, यदारि हसना नोहे ऐतिहासिक माणा नहीं निव्यता किन्तु प्राहर्तियोग्यम् भी स्वनाओं, १३ वों वालों के पुत्रोग, गोगाला नायक आहि सर्पावत कवियों के नेया पर्दों के आपार पर पर वारणा पुत्र होती है। कोक भाषाओं में आरमिमक साहित्य प्रायः केत गीतों के देव का हो होता है। देशी भाषा के संगीत की चर्चां तो बुहदेशी के लेखक ते भी गाती में ही को भी हो की स्व

श्वरतात्रात्रमोषात्रैः चितिपात्रैनिनेन्द्रया गोयते सानुरागेण स्वदेशे देशि रूचवे

१२वीं ग्रांती में सामनी दरवारों में संपीत ना बहा मान या और राजपूत रजाड़ी वा देशी माणा प्रेम भी विरुत्यत है हो, दिर देशी भाषा के माण्यम से स्पीत के आनन्त्रेणमीण के जिए गेयररों हो रचना अक्सर हुई होगी। सुसरी ही पूरी रचनार्ण प्राप्त नहीं होती, यही हाल गोणाल नातक की रचनाओं वा है किन्दु दनके डिंड पुट जो पर मिलते हैं वे हर बात के प्रमाण हैं कि ब्रज माणा में १३ वीं गतारों में पर किल खाते हो। नायों की वार्षियों में भी सत ताह के गेय पर मिनते हैं। गोयल वार्षों में सहुत के ऐसे पर दिने हुए हैं, जो गेय हिं यागरातिनी सामितिना नायों के बाद सन्तों ने इस प्रकार के बहुत से श्रेष्ठ कीटि के पर लिखें। १४२२ विजमी में ग्वाविष्ट के विश्वासक के वह प्रचाण के अक्ष्ट्य निधि हैं। ब्रजमाण के स्वाव पर सुद्ध पुर पुर में अप्रम के शंकरदेव (दे॰ § ४२७-४०) से लेकर पश्चिम सुवात के कि देशों पर हा गाया था।

इरिहर निशास द्विदेश, मध्यदेशीय भाषा, पृ० ५०

श्रीर मापा के दियत में प्रचित्व सभी स्यापनाओं की किसी स्वतन चिन्तन का परिणाम मानकर चरा ही सदी निक्त्य पर नहीं बहुँचा जा सकता।' और तब असने दिन्तन से निकाले हुए वहां निक्त्य के दिन्तन के दिन्तले हुए वहां निक्त्य के दिन्तले के दिन्तले के दिन्तले के दिन्तले के एक दिन्तले के पहले वहा उदाहरण दे हिंदी हो मण्यकांचीन काव मापा का ब्रव्यमाण नामकरण और सीलहर्जी-वाहरी गतान्दी के पहले के नाम करनी में निम्नी नाहरानिक वन्त्रमाण की खोळ।' 'नाव्यदेशीय नामा' नामक पुलाक में लेखक ने और भी कई निक्य पाता की खोळ ।' 'नाव्यदेशीय नामा' नामक पुलाक में लेखक ने और भी कई निक्य पिताले हैं बिन पर आगे रिचार करेंगे । यहाँ हमापा निवंदन हतना ही है कि लड़ी बोळी और बन्न के विकास पर ठीक टेंग से विचार होता पाहिए। मुक्तमाण खाओं बोली ने आरम्भवाल से उत्तक के हुए पहले से हो एक अट्टर श्वालन में विवास होती आ रही है। इस भाषा के बहुत से पर सन्ती जो बाजियों के रूप में मिलिल हैं, वो हमशे शक्ति और निवंदाल की विचार होती आ रही है। इस मापा के बहुत से पर सन्ती जो बाजियों के रूप में मिलिल हैं, वो हमशे शक्ति और निवंदाल की स्वालिल के स्वाल की सर्विश्व का स्माण की स्वाल की स्वालिल की स्वालिल के स्वाल की सर्विश्व का स्माण की स्वाल की स्वाल की सर्विश्व का स्वालिल के स्वाल की सर्विश्व का स्वालिल की स्वालिल की स्वालिल के स्वाल की सर्विश्व का स्वालिल की स्वल की स्वालिल की स्वालिल की स्वालिल की स्वालिल की स्वालिल की स्वाल

§ १६७. जनगाया में पद-रचना ना आरम्म नय से हुआ, यह नहना नित्त है। पद-रांडो ना प्रांधा निर्माणिय सत्तों ने तो हिया ही, बाद के हैण्या मक्त निवासे हो रचनाओं में तो यह मधुल काच मनार हो हो गया। उच्छा जनमाया के येष पहाँ ला प्रवच्छा रहन हो है से वी शतायों में ही हो गया था, यदारे इसना नोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं निक्रता किन्तु प्राह्यतेंगचम् वो रचनाओं, १३ वीं शती के खुकरो, गोगाल नावक आदि स्पतिक क्वियों के तेष परों के आधार पर पर पारणा पुट होती है। बोक मापाओं में आरम्भिक साहित्य प्रायः होग गीती के दंग का ही होता है। देशी भाषा के संगांत को चर्चा तो बहुदेशी के केवक ने ७ वीं शती में ही की थी।

भवलातालगोपालैः चितिपालैनिनेप्त्या गोयते सानुसागेण स्वदेशे देशि रूपते

१ २वीं शती में सामची दरवारों में संगित ना बड़ा मान या और राबपूत रवाडों वा देशी माना ग्रेम भी विख्यात है हो, किर देशी भाषा के मान्यम से सर्गत के आनन्त्रेपभोग के लिए गेग्सों से रचना अपरा हुई होगी। सुबसी भी पूरी रचनायाँ मात नहीं होती, यही हाल भोषल नातक की रचनाओं का है किन्तु हमके द्विष्ट पुर वो पर मिनते हैं वे हस बात के प्रभाग हैं कि ब्रब माना में १३ वीं याताची में पर लिखे बाते थे। मार्गों भी वाणियों में भी सत तह के नेय पर मिनते हैं। योरख बाणों में बहुत से ऐसे पर दिने हुए हैं, जो गेय हिं यानामांगी सामान्त्रिया नायों के बाद स्पतों ने इस प्रभार के बहुत से शेष्ठ कोटि के पद लिखे। १ ४१६२ विक्रमी में स्वाक्तिय के विद्यासक के पर प्रकार के अहुन मित्र हैं। जनाया के नेय परी ला बातु सुर्गर पूरव में असम के बंहरदेव (दे॰ § ४२७-४=) से लेकर पश्चिम गुवात के हिंदी पर हा गया था।

इरिहर निवास द्विदी, मध्यदेशीय भाषा, पृ० ५०

द्विदी जो ने अरनी इस थीतिस के मंदन में बहुउम संवदाय से मुगले के सॉटगॉट मा जो किस किया है, यह तो और भी निराधार भतीत होता है। मुगले के सन्तरा या यहाम समझ्य के भीत उन्हों निहा-भद्दा की बात तो समझ में आती है, हिन्तु इसके कारण बन-जियती नाम के स्थान पर प्रवाशय नाम प्रवर्णित करने में बहुउम सहाय के मुगले ने सहास दिन्दु क क्यों कारती है। नायाओं के नाम इस तरह नहीं पड़ा करते नहीं नायाओं के नाम इस तरह नहीं पड़ा करते हैं। नायाओं के नाम इस तरह नहीं पड़ा करते हैं। सायाओं के नाम इस तरह नहीं पड़ा करते हैं। सायाओं के नाम इस तरह नहीं पड़ा करते हैं। सायाओं के नाम इस तरह नहीं पड़ा करते हैं। सायाओं के त्राप्त पर देश आप है। स्रतिन में देश पड़ा कर माम करता की साया के साया के साया करता आप है। अपने साया के साया करता आप है। अपने साया के साया करता आप है। उसिपाल साथ अपने के साया के साया के साया के साया के सी उसिपाल साथ की और सिल्तुत कामा। में साया के साथा के सी सिल्तुत कामा। में साथा है। साया की और सिल्तुत कामा। में साथा के साथा के सी सिल्तुत कामा। में साथा की साथा की सी सिल्तुत कामा। में साथा के साथा के सी सी सिल्तुत कामा। में साथा की साथा की सी सिल्तुत कामा। में सी सिल्तुत कामा। में सी सी साथा की सी सी सी हो की अपनीत माना वाता है।

\$ १६६. ईस्वो १६७६ में मिर्जा सा ने जनमाया का वो व्याहरण दिला, उसमें जब चेत्र का विवरण इस प्रकार दिया गया—

'मधुरा से ८४ कोष के पेरे में पड़ने वाले हिस्से को अब कहते हैं। अब प्रदेश की भाषा सभी भाषाओं से प्रष्ट है। 'हर कपन के बाद पत्त स्वत्ता १६५ सा पर मित्रां सो हस सेन में बालियर को भी समिलित करते हैं। बार्ज विस्तरन ने ब्रमानात के देन में पालियर को समिलित किया है तार हो अब के मेदोस्मेदों में पालियर की बोनी को परिविज्ञ अब एक कर खोत्तर किया है। बार्ज विस्तरन ने ब्रम्माचा के निम्मित्तरित भेद बताये हैं—

(१) परिनिष्ठित अच—चल्यो

मधुरा, अलीगङ्ग, पश्चिमी आगरा

(२) परिनिष्ठित अत्र नम्पर २—चल्यो बलन्दशहर

(३) परिनिष्ठित सज नं० ३ चलो

पूर्वी आगरा, घोलपुर ग्वालियर

(४) क्नौजी—चुलो

एटा, मैनपुरी, बदायूँ, बरेही

(५) बुन्देल्खरडी ब्रज—चलो

तिकरवारी, ग्वालियर म उत्तर परिचमी भाग (६) रावस्थानी ब्रज, जैपुरी—चल्पो

भरतपुर, डॉम बोलियाँ

(७) राजस्थानी बन्न नं॰ २ मेवाती—चल्पो गुडगाँव

(a) नैनीताल के तराई की मिभित ब्रबभाषा

भी हरिस्र निवास दिवेदी ने लिखा है कि 'हिन्दी में ब्रबमण्डल को फेन्स्र मानकर चलने वाली ब्रबमापा का कमी अस्तित्व नहीं रहा, न उसरी कल्पना ही कमी मध्यदेश में

दिवेदी सी ने अपनी इस थीसिस के मंहन में वरूप्य संप्रदाय से मगरों के सींटगाँड भा को जिल किया है, यह तो और भी निराधार प्रतीत होता है। सुगर्ने के शतुराग या दल्लम सप्रदाय के प्रति उनकी निज्ञ-भद्धा की बात तो समक्त में आती है, क्लिंच इसके कारण ग्या-ियरी नाम के स्थान पर प्रजमाया नाम प्रचित्रत करने में बल्लम सपदाय को सगलों ने सहायता दी-यह बात विजन्तर व्यर्थ लगती है। भाषाओं के नाम इस तरह नहीं पड़ा करते। शुरसेन के जाभार पर शौरसेनी नाम मध्यदेशीय भाषा का बहुत पहले से रहता आया है। श्रातिन प्रदेश बाद में बब प्रदेश फे रूप में विख्यात हुआ, इसिन्ट यहाँ की भाषा बनभाषा क्ही जाने लगो. और इस भाषा का प्रभाव सदा से एक ब्यापक मून्भाग पर रहता आया है. वही उत्तराधिकार अवभाषा की भी भारा हुआ। वैध्यव आन्दोलन ने इस भाषा के प्रभाव क्षेत्र को और बिलत बनाया । ग्यानियर सदा से ब्रजभाषा चेत्र के अन्तर्गत माना काता है।

६ १६६. ईस्वो १६७६ में निर्वास्तां ने अवभाषा का वो व्यक्तण तिला. उसमें अब क्षेत्र का विवरण इस प्रकार दिया गया-

'मध्य से ८४ कोश के घेरे में पड़ने वाले हिस्ते को अब कहते हैं। अब प्रदेश की भाषा सभी भाषाओं से पुष्ट है। इस कथन के बाद पन संख्या १६५ ख पर मिर्जा खा इस द्वीर में खालिपर की भी सम्मिलित करते हैं। बार्ज जिपर्सन ने ब्रजभागा के द्वेन में खालिपर को सम्मिन्ति किया है साथ ही ब्रज के भेदोरभेदों में स्वालियर की बोनी को परिनिधित अब का एक रूर स्वीकार क्यि है। बार्ज विवर्तन ने जबभाषा के निम्नलिसित भेद बताये हैं-

(१) परिनिष्ठित अब-चल्यो

मध्य, अलीगर, पश्चिमी आगरा (२) परिनिष्टित अञ नम्बर २-चल्यो

बुलम्दशहर

(३) परिनिष्ठित अज नं० ३ चले

पूर्वी भागरा, घोलपुर ग्वालियर

(४) क्लीबी—च्लो

पटा. मैनपुरी, बदायू, बरेली (५) मन्देलखरडी मन—चलो

तिकरवारी. ग्वालियर का उत्तर पश्चिमी भाग (६) राबस्थानी बन, बैपरी—चन्यो

भरतपर, डॉन योलियाँ

(७) राजस्थानी ब्रब नं ० २ मेवाती-चन्चे

गहरावि (a) नैनीताल के तराई की मिभित अबमाया

श्री इरिइर निवास द्विवेदी ने लिखा है कि 'हिन्दी में ज्ञबमण्डल को फेन्ट्र मानकर चलने वाली बनमापा का कभी अखिला नहीं रहा, न उसकी कलाना ही कभी मध्यदेश में

अप्रकाशित सामग्री का परिचय-परीचण

प्रद्युम्न चरित (विक्रमी १४११)

१. सर्च रिपोर्ट, १६२३-२५, प्र० १७

अप्रकाशित सामग्री का परिचय-परीचण

प्रद्युम्न चरित (विक्रमी १४११)

चारित है जिसमा निर्माण विकसी १४११ अर्थात् १३५४ ईस्ती में जबस्चे के केंद्र नगर आगर में हुआ। सर्व प्रथम नागरीप्रचारिणी समानंचादित दिनी मंधी की सीन के विलिशते में इस प्रत्य सा पता चला विस्ता विदय्त १६२३-२५ की सोन रिपोर्ट (सर्वे आगर दिन्दी मैन्युक्तिन्द में प्रमुख्त किया गया। सल डाठ हीराखाल ने इस प्रत्य का परिवाद देते हुए लिखा। "यह प्रत्य भाषा और साहित्य दोनों हांख्यों से अल्पन्त महस्तपूर्ण है। विभिन्न बैन लेखकों ने इसी नाम से इसी विषय पर कई रचनायें लिखी, परन्त बैन विद्यानों को मी इस प्रत्य सा कहीं उत्लेख नहीं है। वंदर्भ भी जेन १२वामचर समा द्वारा महत्त केन प्रत्याक्ती में भी इस प्रत्य सा कहीं उत्लेख नहीं है, पत्यित बार्य साच प्रत्याक्ति की सित्त में प्रत्य १२९० विकस्त में से विद्याल के सा प्रत्य ना किता किया है। उत्लेख की स्वता है। इस हितसी एक १२०० विकसी से से विद्याल है। उक्त सोज रिपोर्ट में इस हल्लिखित प्रति मा लिखिनाल १७६५ इस किया गया है निते प्रत्यक्ता मामक कियी व्यक्ति ने दिल्ली में विद्याल में प्रति सा सा स्वता मामक कियी व्यक्ति ने दिल्ली में विद्याल में में में से व्यवस्त में से अपित ने वहनी प्रत्यक्त के बाद भी मुसे उक्त मारिर से कीई विदरण प्राप्त न हुआ। अक्तुल १९६५ में ब्रुप्त मंत्र की वर्ता स्वीद हो। अक्त की की किया मितर से कीई विदरण प्राप्त में, विवत्न वह किया कहा कि विद्याल है। उक्त अंव

§ १७१. ब्रबभाषा के अद्यावधि प्राप्त ग्रंथों में सबसे प्राचीन श्रग्रवाल कवि का प्रदान

१. सर्च रिपोर्ट. १६२३-२५. प्र० १७

रविवार ब्रत कथा से-

दोन्हीं इष्टि में रच्यो पुराण, होण बुद्धि हो कियो बखाण होण अधिक अनुर सो होय. बहुरि सवारे गुणियर छोय

प्रद्यम्न चरित से-

हीं मिति होण धुद्धि अवाग, सह सामि को कियो बखाग मैं मन उछाह सह कियउ विचित्त, पडित जण सोहह दे चित पढित जण विनवर कर नोरि, इंड मित होण म सायहु खोरि।

ह १९०२ इसी मनार सरस्वती बंदना, नगर-वर्णन आदि प्रसम बुख साम्य रखते हैं मिन्तु इन्हें रुवियात साम्य भी वह सनते हैं। को भी हो, दोनों अप्रवाशक कवियों को एक विद्र करने मा कोई पुष्ट आधार प्राप्त नहीं होता है। इधर श्री अपरस्वय नाहग ने १४९१६ के प्रयुक्त चरित का चर्ची शोर्थक एक निवक बनवरी १६५६ के दिन्दी अनुवाशक में मनाशित कपाया है। श्री माहरा ने बुख अन्य प्रतियों के उपरुष्ट होने की सूचना दी है। दो प्रतियों की सूचना हम आरम में हो हे चुने हैं। तीक्ये प्रति श्री माहरा ने विद्यों से प्राप्त की है जिसमें लिपिकाल चन्द १६६८ दिया हुआ है। चीधी प्रति उन्नेन के सीधिया ओरियरज इन्स्पेट्यूट में सुरवित है विसवस प्रति नवर ७४१ है जिसमें इस प्रय का रचना बाल सवत १५११ दिया हुआ है। लिपिकाल आरोग वदी ११ आदिस्वार सवद १६५४ है।

> सम्बत् पषसङ् हुइ गया ग्यारहोत्तरा भरतङ् (?) भया भादव वदि पचमी ति, सारू स्वाति नम्रत्र रानीचर वारू ।१६।

रू महं १३५६ की 'बीर वागी' में आगेर माहार के कार्यकर्ता थी कर्ट्रवन्द कार्यवाव ने 'वास्थान के देन प्रथ माहार में उपकल्प हिन्दी साहित्य' शीर्षक एक लेल खुगाय है किसमें उ होने कच्युर की प्रति के अतिरिक्त कामा के बैन माहार में प्राप्त क्यों प्रति का भी उच्छेल किया है। हम गाँच प्रतियों में संच्युर, नामा, वारायकी और दिली की चार प्रतियां में रचनावान सकत् १४११ ही दिया हुआ है। भी आरस्वन्द नाहरा ने लिखा है कि 'लियि का निर्मय करने के लिए प्राचीन सबतों की बची को देखा गया पर बदी पचती, ग्रारी पचनी और नगमी लीगों दिनों में खाँचिकार और स्वाति मञ्चन नहीं पहता' किन्त सर्च रिमार्ट के निरीदक दान होएलाव ने लिखा है कि गणना करते पर देखी तम १२५४ के ह असता में शनिवार को अपर्युक्त विर्मय और नवन कायून में क दिखाई पडता है। औ नारग ने सम्मदन उपर्युक्त निर्मय देते समय बार ही रामणन कर हम कर कर कर स्थान नहीं

१ हिन्दी अनुशीलन वर्षं ६ अरू १ ४, ए० १३

² He wrote his work in Samvat 1411 on Saturday the 5 th of the dark of Bhadra month which on calculation regularly corresponds to Saturday the 9th August 1354 A D Search Report 1923 25 page 17

रविवार व्रत कथा से-

दोन्हीं दृष्टि में रच्यो पुराण, होण बुद्धि हो कियो बखाण होण अधिक भन्नर मो होय, बहुरि सवारे गुणियर लोय

प्रद्युम्न चरित से---

हीं मित हीण युद्धि अपाण, सह सामि को दिवो बखाण 'सन उबाद सह कियउं विचित्त, पृष्ठित जण सोहह दे खित पृद्धित जण विनवड कर जोरि, इस्ट मित होण म खावह खोरि ।

§ १७२. इसी प्रकार सरस्वती बंदना, नगर-वर्णन आदि प्रका चुछ साम्य रखते हैं निन्तु इन्हें रुविगत साम्य भी बह सबने हैं। को भी हो, दोनों अग्रवाल कवियों को एक सिद्ध बन्ते वा कोई पुष्ट श्रावार प्राप्त नहीं होता है। इसर श्री अगरच्य नाइटा ने '१४११ के प्रयुक्त चरित का बन्ती' शीर्षक एक निवय जनवरी १९५७ के हिन्दों अनुस्थितन में प्रवाशित वर्गया है। श्री नाइटा ने चुछ अन्य प्रविशे के उपन्त्रय होने की सूचना दी है। श्री प्रतिशे की त्यवन हम आरंभ में शे दे चुके हैं। तीतियों प्रति श्री नाइटा ने दिल्लों से प्राप्त को है विसर्ग विशेषक बन्तु १९६८ दिया हुआ है। चौथी प्रति उन्नेन के सीथिय औरियंटल इन्टोट्यूट में मुर्श्वत है विसर्ग प्रति नवर ७४१ है जिसमें इस प्रंप चा रचना श्रल सवत् १५११ दिया हुआ है। विशेषल श्राहोग वरी ११ अदिख्यार सवत् १६३४ है।

> सम्बद् पंषसङ्ग हुइ गया ग्यारहोत्तरा भरतह (?) भया भादव वदि पंचमी ति, सारू स्वाति नम्रत्र शनीचर वारू ।१६।

रद्र महे रश्यह की 'बीर वानी' में आनेर माहार के कार्यकर्ता श्री कर्रास्तर कार्यकर्ता श्री कर्रास्तर के किन प्रेम माहार में उपलब्ध हिन्दी सहित्य' शीर्यक एक छेल छाता है किनमें उन्होंने क्युर को प्रति के अतिरिक्त क्या के बैन माहार में प्रात एक हुत्तरी प्रति का भी उल्लेख किया है। इन यांच प्रतियों में संवयुर, कामा, वारावकी और दिली का तार प्रतियों में स्वतावान क्यतर १४११ ही रिवा हुआ है। श्री अधारन्य नाहर ने लिला है कि 'तियि का निजय करने के लिए प्राचीन सबसे की बड़ी को देखा गया पर वरी पचमी, सुरी पचमी और नवसी सीती रितो में शतिवार और स्वाति नवस नहीं पढ़ला' किन्तु सर्व रिशाई के हिला है कि सामा करने पर हैली सन १४५४ के है आतत में शतिवार की उसके है के सामा करने पर हैली सन १४५४ के है आतत में शतिवार को उपयुक्त तिये और नवस स्वाप्त में दिखाई पढ़ता है। भी नाहरा ने समयतः उपयुक्त तिये वर्ष देत समय डा॰ ही।खाल के इस कपन सा प्यान नहीं

^{1.} हिन्दी अनुर्शालन वर्ष ६ अक १-४, पू० १६

² He wrote his work in Samvat 1411 on Saturday, the 5 th of the dark of Bhadra month which on calculation regularly corresponds to Saturday the 9th August, 1334 A D Search Report 1923-25, page 17

पुन क्षियोग से ब्याङ्क किसमी को नारद ने समफाया-बुम्धया और वे प्रयुग्न सा पता पूछने के किए 'पुण्डरीकपुर' में किनेन्द्र बद्धनाम के पास पर्चेचे। मुनि ने नताया कि प्रयुग्न से पूर्व जन्म में अथन नरेश मधु के रूप में कम किया था, उसने बहुपु के राजा हेमस्य की रानी च द्वावती ना अमरण किया। रानी के विरद्ध में हेमस्य पागन होकर मर गया जो इस जम में उस देश वे रूप में पैरा हुआ है। मुनि ने स्वाया कि प्रयुग्न सोल्ड वर्ष की अवस्या में सोलद मनार के लाम और दो प्रकार की विद्याओं सहित पुन अपने मीं-बार से मिलेगा।

बड़ा होने पर प्रवुक्त ने सालस्वर के तमाम शब्ब श्री को परावित किया। राजा को अन्य रानियों से उत्तव पुनों ने दंप्यांत्रण उसके विनारा के लिए नाना प्रयत्न किए। विजयार्थ शिवर से नीचि शिवरा, नाना गुदा में भेजा, कुर्वे में गिराया, वन में छोजा, कियार सी राजारों से प्रयुक्त ने चेवल सकुराल व्यक्ति ही लीच निरुक्त वार्त में प्रवत्त प्रयान के छाणीव आह्व वर्षमा तथा क्षा भी साथ लया। निपुक्त वन में उसने एक सर्वांग सुन्दरी वर्षवित्ती से ल्याह किया। वस पत्रों का क्षत्र मुक्त प्रयान में उसने एक सर्वांग सुन्दरी वर्षवित्ती से ल्याह किया। वस पत्रों कहकसाल प्रवृक्त पर मोदित हो गई, उसने सामेल्झ से प्रयुक्त की सुन्दर्ग नी सुक्त ना चाहा, किन्तु प्रयुक्त का चरित्र कुदन की तरह निर्दोग ही रहा।

नारद के साथ प्रदास्न द्वारका लीना, उसने न केवल अपने मायावी घोडां से सत्यभामा के बाग को नण करा डाला बल्कि नक्ली ब्राह्मण वेश में सत्यभामा का आदिष्य ग्रहण करके खाद्य सामग्री ना दिवाला भी निवाल दिया । तरह तरह से सत्यभामा को परेशान कर वह माँ के बद्ध में पहेंचा। सत्यभामा ने बन्देव के पास शिकायत नी, यादवों की सेना ब्राह्मण वेशवारी प्रयुम्न को पकड़ने आई, विन्तु उसके मायास्त्र से मोहित होकर गिर पडी। नाराज बलराम स्त्रय पकड़ने आये और मत्र प्रभाव से सिंह बनते बनते बने ! प्रचम्न ने अपनी माँ को असली रूप में प्रणाम किया, सत्यमामा से दिल्लगी की बात मुनाई और पिता से मिलने ने निए नया स्त्रात रचाया । माँ को अपने साथ लेकर उसने बादवों की सभा में जाकर कृष्ण को ल्लकारा 'ओ यादवो और बीर पाडवों से मुसजित कृष्ण, मैं तुम्हारी प्राण-बल्लमाको अगहत करके ले जाता हूँ, मैं दुर्गुनी नहीं हूँ केवल वल-पारखी हूँ, ताकत हो तो उन्हें छहाओ, यादवों की सेना आगे बढी किन्तु मायाओं से पराजित हुई । विवश कृष्ण युद्ध करने के लिए उठे। इष्ण के सभी ऋस्त-रास्त्र वेकार गए, हर बार वें नया अस्त उठाते, हर बार प्रयुक्त उर्हें विश्ल कर देता। दाहिने अगों से बार बार एडक्ने से कृष्ण को किमी रक्त सःशीसे मिलने की सूचना हुई। कृष्ण ने लडके से विक्मणी लीग देने की प्रार्थना की। अन्त में मल्ल युद की तैयारी हो रही थी कि नारद ने आकर सारे स्ट्रस्य का भडाकोड किया। कृष्ण ने व्यापूर्वक प्रयुक्त से हिनागीको से बाने को कहा प्रयुक्त ने गर्दन मुक्त लें। नारद ने प्रयुक्त ने निवाद ना समानार मी बताया, कि नैसे उठने रास्ते में कौरयों नो पराक्षित कर दुयावन की पुत्री से विवाह क्या । द्वारका में वधू ने साथ प्रवुम्न का स्वागत हुआ । वधाइयाँ वजी ।

प्रगुप्त के दो एक बिवार और हुए । दो एक बार राक्तमामा को उत्तते और परेशान हिया । अन्त में पहुत बर्गों के बाद जिन ने मुख से कृष्ण ने मारे जाने और यादन निनाश द्वारका एस का हमाचार सुनक प्रयुक्त ने सिनेन्द्र से दोंचा की और कटिन तरस्या के बाद केल्स पद मात किया । अन्त में कहि ने अपनी दीनता प्रकट करते हुए प्राय के अवण, मनन, पठन आदि ने एलों ना निवस्ण दिया है । पुत्र क्रियोग से व्याङ्क बहिन्गी को नारद ने समध्यपानुमत्रया और थे प्रयुक्त हा पता पूछने के लिए 'पुण्डरीक्सूर' में जिनेन्द्र पद्मनाम के वास पर्जेचे । मुनि ने त्रवाया कि प्रयुक्त ने पूर्व जन्म में अवच नरेश मधु के रूप में कना लिया था, उसने बहुपुर के राजा हेनस्य की रानी च वात्रवाती का अरदरण किया। रानी के विरद में हैमस्य पागत होकर मर पाया जो हर जाम में उस देश के राजा में उस देश के प्रयुक्त होता होनस्य हो हो हो से उस वात्रवात के प्रयुक्त से सेह वार्य में उस होता के स्वाप्त के प्रयुक्त सेहह वर्य की अरदरण में सीलद प्रकार के लग्म और दो प्रकार की विद्याओं सहित पुत्र अपने मी-बार से मिलेगा।

बड़ा होने पर प्रयुक्त ने कालस्वर के तमाम शब्द खों को परावित किया। राजा को अन्य रानियों से उत्थल पुत्रों ने दृष्णीवर्ध उसके विनार्ध के लिए नाना प्रयन्त किए। विजयार शिवर से नीचे गिराया, नाम शुरा में भेजा, कुर्ये में गिराया, वन में छोड़ा, किय समी रापाों से प्रयुक्त ने केवल कर्कुड़ल वारिस ही लीटा विल्ल खपने साम प्रत्येक मन्यर राजा के अध्योगत आर्थ्यम न केवल एक सर्वा साम स्थान हो अध्योगत आर्थ्यम वर्षा में साम स्थान स्थान

प्रमुक्त के दो एक विवाद और हुए ! दो एक बार रत्यभामा को उतने और परेशान निया ! अन्त में महुत क्यों के बाद जिन ने मुख ये हुष्ण हे मारे जाने और बादब विनाश द्वारक एव ना बमावार सुनक प्रमुक्त ने किनेन्द्र के दीवा की और निव्न तरस्या के बाद केन्द्रव पद मात निया ! अन्त में नहीं ने अपनी दीनदा प्रकृत करते हुए ग्रन्थ के अपूर्ण, मनन, पठन आदि ने एने ना विश्वण दिवा है !

ग्राँचली

सृरिज बस राज सरविज, धन हरिचन्द्र न मेल्हो विज सुगो भाव धरि जापू कहै, नासे पाप न पीडी रहे ॥=॥

\$ १७५ हरिवर प्राय की क्या राज हरिवर की पीराणिक कथा पर ही आधूत है किन्तु बिन ने अपनी मीलिक उद्मावना के बड़ पर कई प्रकार्ग को बाकी भावपूर्ण और मार्थिक उनाने का प्रयक्त किया है। हरिवर प्राया के बड़े क्या परिशयट में दिने गए हैं, इनमें भाषा के सकत के बनकारण को समय देशी जा सकती है। बाजू की भाषा में तक्षमाया के अीलिक प्रयाण के साथ ही अवस्था के अनिष्ट कर भी दिखाई पढ़ते हैं। हैंगीरनाइ, गूणीनंबर, सुमन्तु, आवर्णेंड (पड़ी) भावड, दीघड, तोवड कादि बहुत से कर असम्बद्ध प्रमाय की स्वत्ना देते हैं, किन्तु भाषा में जन-मुक्स महत्वता और कार्य भी दिखाई पढ़ती है। रोहिताइन की मृत्यु पर होंडण के विभाव का बढ़ते हुए कि की भाषा सारे इन प्रयोग में क्षेत्रकर स्वामाणिक गति में उत्तर आती है—

वित्र पुढ़ि वन भीतर जाह, रानी अवली पूरी विल्लाह ।
सुत सुत कहै वरण ऊपहर, नवण नीर तिमि पाउस म्माह ॥
हा मिन हा मिन करें समार, चारड़ हियो अति करें पुकर ।
तोडह स्ट अर फाडह चीर, देपे मुख अर चीरे नीर ॥
पि उद्देश मुच चूना देर, और बस्तु हिम यान न पेट ।
दीपड करि दोगेड औरपार, चन्द्र निहुण मिति चोर अंचार ॥
वह दिण गी जिम कार्चो आहि, रोहितास दिणु जीवो काहि ।
तोहिं विग्र मो जग पाटर मयो, तोहि विग्र विवह मारड गयो ॥
तोहि विग्र में दुप देह अपार, रोहितास ला्नो अँकवार ।
तोहिं विग्र में दुप देह अपार, रोहितास ला्नो अँकवार ।
तोहिं विग्र सात च अवग सुनेह, तोहिं विण्य सात उपा मुक्ते सर्रार ॥
तोहिं विग्र सात न अवग सुनेह, तोहिं विण्य सात उपा मुक्ते सर्रार ॥
तोहिं विग्र सात न अवग सुनेह, तोहिं विण्य सीव प्याणी देश ॥

विष्णुदास (संवत् १४६२)

§ १९६. विण्युद्दास जवभाया के गौरवास्तद कवि से। स्ट्रांत के बन्म से अर्थ राजारंगे एस्ते, जिन दिनों जबभाया में न तो वह शक्ति थी न यह अर्थवन्ता, जित्तरा विश्वास अरुराय के विरुद्ध की स्ट्रनाटकों में दिखाई क्या, जिल्लुधान ने एक ऐसे साहित्य की खुष्टि की तितने कृष्णमति के अरुर्वस्त मार्थिक और मधुर काल्य की पुष्टमूनि मखुत नौ अ विण्युत्तत ने एक ऐसी माना का निर्माण किया स्ति १७ वी राजान्त्री में भारत की सर्वश्रेष्ट साहित्य भाषा होने ना गौरव मिला ।

विष्णुनास की रचनाओं को सूचना ज्ञाज से पचान वर्ष पूर्व, १६०६—⊏ की लोज रिपोर्ट मंत्रकारित हुई थी। १६०६ की लोज रिपोर्ट के निरीयक डा० रचामसुन्दरदात ने त्रवादि इस विश्व के बारे में बुद्ध निरीप नहीं लिखा, क्योंकि उस साम दिल्पपरेदेश की लोज का जो विषयण पर्युत्त निया गया उसमें शिक्ष्युतात की दो रचनाओं, महामारत कथा और स्वारीय की सामान्य सूचना मात्र ही गई। वे होनी पुसाकें दिवया साज मुस्तक्रायम मुस्तिक स्वार्ट महा

श्रॉचली

सृरिज वस राज सपवित्त, धन हरिचन्द्र न मेल्हो चित्त सुगो भाव धरि जापू कहै, नासै पाप न पीडी रहे ॥=॥

§ १७५ हरिनद पुराय को कथा राजा हरिनद की पीराणिक कथा पर ही आधुत है किन्द्र किन ने अपनी मीलिक उद्भावना के बड़ पर कहें प्रध्यों को क्लांग भावपूर्ण और मार्गिक ननाने का अपना किना है। हरिनद पुराय के कहें अपना परिश्राय में दिने गए हैं, इनमें भागा की सकाई और जन-कारय की मन्द्रक देखी का घकती है। जायू की भागा में जनमाय के ओकिक प्रयापों के साथ ही अक्टब्र के अनिश्य कर भी दिखाई पहते हैं। हैंगी:जह, पूणीवनद, मुणजु, आवर्षाद (पष्टी) भावद, हीयज, तोवद आदि बहुत से कर अपनस्र मनाव की स्वचा देते हैं, किन्द्र भागा में जन-मुख्य महत्वता और सकाई भी दिखाई कहा प्रयोगी है। रोहितास्व की मुख्य पर सैख्या के विश्राय का करने हुए क्षि की माया सारे कह प्रयोगी को होइकर स्वामाविक शक्ति में उत्तर आती है—

वित्र पुष्टि वन मीतर थाइ, रानी अवजी पूरी विल्खाइ।
मुत मुत कहै वयण जयाइ, नवण नीर निर्मा पाठस माह ॥
दा मित मा किया कर समार, नामद दियो भित करें पुरुत ।
सोडद स्ट अरु साइट चार, वेरी मुख अरु चोंवे नीर ॥
सीडवर युवा मुत्र चुमा देह, और वस्तु दिन मान म पेरा ।
पीड उदम मुत्र चुमा देह, और वस्तु दिन मान म पेरा ।
वह चित्र मो जिस कार्यो आहि, रोहितास विद्यु जीवो काहि ।
सोई विद्यु में जम पास्ट मणे, सोईट विद्यु जिवह मास्ट गयो म
नोईद विद्यु में दूप दोड अपार, रोहितास कार्यो अकारा।
सोईद विद्यु नमा दर्छ हो मीर, तेहिद विद्यु सास उमा मुक्ट सारिर ॥
सोईद विद्यु नमार दर्छ हो मीर, तेहिद विद्यु सास उमा मुक्ट सारिर ॥
सोईद विद्यु नमार दर्छ हो मीर, तेहिद विद्यु सास उमा मुक्ट सारिर ॥
सोईद विद्यु नमार वर्ष हो मीर, तेहिद विद्यु सास उमा मुक्ट सारिर ॥

विष्णुदास (संवत् १४६२)

§ १७६. विण्युदास जनभाया के गौरवास्तर कवि हो। स्ट्रास के अन्म से अर्थ रातास्त्रों परते, जिन दिनों जनभाया में न तो वह शक्ति थी न वह अर्थवता, जितहा विनास अरुष्ट्राय के विषयों की राजाआं में दिसाई यहा, विण्युदास ने एक ऐसे साहित्य की सृष्टि की विसने कृष्णभाकि के अरुष्य मार्थिक और मधुर काल्य को पृष्टमूमि प्रदात की विण्युदास ने एक ऐसी माया का निर्माण किया विसे १७ नी राजान्त्री में भारत की वर्षक्रेष्ट साहित्य भाषा होने वा गौरव मिला।

िण्युवाद की रचनाओं को सूचना खात्र से पचात वर्ष पूर्व, ११.०६ — की लोज रिपोर्ट में प्रभावित हुई थो। ११.०६ की लोज रिपोर्ट के निरीदक डा० रचाममुन्दरदास ने क्यारे इस विके के के से सुद्ध निरीद के से सुद्ध निरीद को लोज का जो विवाद कर के स्वाद कि का को लोज का जो विवाद कर सुद्ध निया प्रधान कर का को स्वाद कर सुद्ध निया प्रधान कर सुद्ध निया प्रधान के सुद्ध निया प्रधान के सुद्ध निया प्रधान का को स्वाद कर सुद्ध निया प्रधान के सुद्ध निया

घट घर न्यापक सन्तर जानी दिस्पन स्वामी सब सुसरास । विष्णुदास रहमन सपनाई सनम जनम की दाय ॥

दा सनान परों में निर्मा के कारण कितना बड़ा अन्तर उपस्पत हो बच्छ है। पहने पर की पिछनों भ्रष्ट और हुरियाँ है। बहिनाी माछ हुम्म और बहिना के पिशाई का मग्डनाय है विवर्ने विसानव ने मक्ति और शतर का अने ला कनव्य किया है।

१७७ प्रवसास में स्ता क्रम्यमित वा आरम्य वहमाचार्य के ब्रह्मवन प्रवासने के ८०, ६० साल पहने ही कवि विश्वानत द्वारा किए वा चुका था। यह एक नया ऐतिहासिक स म है। १६२६-रंज की रिपर्ट में हा विश्ववास की दूसरी कृति सनेह रूप्य का मी विवरण दिमा हुआ है। हिनेहजला भनतगत का पूर्व रूप है। कृष्य का एक दिन अचानक ब्रव की स्मृति अवी है। स्तेर-विश्वन कमा उद्धर को गानियों के लिए हान का स्तेश देखा गांकन मेबरे हैं। राज-गर्मार उद्भव बच का घुनि में स्पी निर्मान देना को हायकर वासिस बाने हैं । विष्णागत के शब्दों में ही उद्धव का उत्तर मुनिदे-

> तब ऊपो आये वहाँ था रूपा चन्द्र के धान पाय लगि बादन हियो दोलत ले ले नाम १०६ ाल बाज सब गोचिका ब्रज के जाद सनन्य तुमही पाव सागन कहा सुनो देव ब्रह्मन्य ११० नन्द जसोदा हेत की कड़िये कड़ा बनाय वे जाने के तम सने भी पे क्या न जाय 111 वे वित टारत नहीं स्वप्त राम का ओर मध नामक पुरती बहै मुरति सपुर किशोर ११२ अस गोपिन के प्रेम का महिमा कर अनस्त में पूछा पर मास को तड न पायो अन्त ११३ देह गेंद्र सब लाचि के करत रूप का ध्यान दन को सबन विचारिये सो सद छको मान ११४ सन्त मक्ति भवत विषे वे सब मूत्र का नार चरा सरा रहीं सदा मिण्या रूप विमार १९५ उनके गुण नित गाइदे करि वरि उत्तम प्राति में नाहित देखेँ कहें अब वासित का रात 11६ सब हारे कथा सो कही हैं जनत सब अग हीं कहें चात्यों नहीं यत वासिड का सन ११० प्रव तिव पनत न बायडो मेरे तो या टेक मूबल मार बतारही घरिहा रूप बनेक है 115

९. साब रिपोर्ट, १०२६-२८, पृ० वरह, सहया ४६८ ए

र दहा, पृ० ७६०, सहदा ४६६

घट घर न्यापक सन्तर वामी दिमुदन स्वामी सद सुब्रास । विष्णुदास रुकमन अपनाई जनम जनम की दाम ॥

दा समान परो में निर्मा के कारण हितना बड़ा अनतर उनस्पत हो बच्चा है। पहने पद की पछिलों प्रष्ट और दुरिपूर्ण हैं। बहेनची भाज कुमा और बनेनची के विवाह का माञ्ज्या है विवास विमानक ने मन्ति और प्रागर का अनेचा कमन्या हिना है।

\$ (७० प्रवताय में सुना इस्त्मात हा आरम्म ववमावार्य के कृतावन रहाले के ८०, ६० साथ परि है विश्वास द्वारा कित वा सुद्ध या । यह एक नया ऐतिहाति का दे । १६६६-६० की रिलर्ग में हा विश्वास की दूसरी कृति स्तेत हरण हा मी विश्वास प्रिस हुआ है। के सेहर ममस्यास का पूर्व कर है। इस्त का एक रिल अवनत्त प्रव की स्वति आती है। स्तेत हर का उद्ध को सामित के निय हन का स्तेत देहर राष्ट्र के में विश्वास की स्ति का स्वति अती है। स्ताममार्ग उद्ध क स्व का धूर्ण में स्त्री की स्ति हम स्वास हरी है। स्वत्रास द्वारा का धूर्ण में स्त्री निर्मात की द्वारा सामित अति हम स्वति का स्त्री है। सिन्तान के सन्ती में हो उद्ध का उत्स सुनेने—

तब ऊपी आये यहाँ हा कृष्य चन्द्र के धान पाय लागि बादन कियो बोचत ले ले नाम १०३ खाल बाज सब गोपिका ब्रज के जान सनक्त तमडी पाय सागन कहा सनो देव ब्रह्मन्य ११० गन्द जसोडा हेत की कड़िये कहा बनाय वे जाने के तम भने भी प क्या न वाय १११ वे वित टारत नहीं स्वाम राम का ओर मध नामक पुरती बहै मुरति सपर कियोर ११२ अस गोपिन के प्रेम का महिमा कुछ अनस्त में पूदा पर मास हो तक न पायो सन्त ११३ देह रेड सब दाचि के करत रूप का स्वास बन को भवन विचारिये सो सद फ्रको मान ५१४ सन्त मन्द्र मृतन विषे वे सब ब्रह का नार चरा सरा रहीं सदा मिय्या रू'म विमार ११५ उनके गा नित गाइये करी करी उत्तम माति में नाइन देखें करें अब बासिन का राव १९६ त्तव हरि कवा सो कहा है जनत सब अस हीं कर्ते चाट्यो नहीं प्रव वासित का सा ११७ मत तित्र भवत न जायही मेरे तो बाहेक मूवल मार उतारही घरिहा स्प बनेक ॥ ११८

^{1.} साब रिपेर्ट, ११२६-२८, पृ० व १६, सरदा ४६८ वृ २ वहा, पृ० ७६०, सस्या ४६६

रिपोर्ट में इस प्रति का लिपिकाल संबत् १६६६ दिया हुआ है। अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है।

्ति को बोरहपा टरमनेन प्रभावती छारूमाँ धमता, चंत्र १६६६ वर्षे माद्र मुद्दि समानि स्तित पूलरोज मध्यो पोपी के विद्याल में १० पद, ६३ "X X" दह पतिची और प्रव्य-पत्र पत्र हात्रण तिमा हुआ है। भमी बात हम में एक दूनती महि पत्र वाल पत्र की भीत्रपारवर्ष-गाइरा के पात मुत्रित है। भी वदस्पंत्र शास्त्रों ने इस मति वा परिचय देते हुए एक लेल तिमयमा में प्रकरित हस्पत्र है। नाह्य की के पात मुर्तिय प्रति को भनित्य पुनिका हत महार है 'दुने भी बीराव्या त्यमनेत पत्मावती समूर्य समाज्ञा संदर्श १६६६ वर्ष माद्र मुद्दि स्वती शित्रित पूत्रोंच्या मण्ये। यही दह पत्रिक, बद्दि १३ "X " के १० पत्र । एक ही शाना पत्र हो विदेशक, याद, पत्रमुत, वर्ष कर एक। उदस्य प्रत्या हो हे तहनी सात्री है किला ल व विशेष्ट में स्वित्र, विद्याप्तारियों वित्र सम्म, वयपुर की मित्र संदि है। में है मिन्ता गरी। न तो आब बस्पुर में उस समा वा बोई पता है और न तो मित्र सा प्रक्ति एक्स है। किन्तु वेलों में देनी सी सात्र में कुछ असर अवस्य दिखाई पड़ता है। माह्य वो के प्रति के उदस्य परिगिट में दिरे हुए हैं, क्ष्त दिर्दर्श में द्वित वहा को इस हर है।

सुनो क्या रस साँछ विजास, योगी सरन राय बनवान मेसो करि क्वि दामो करूद्र पदमारको पहुल दुन्छ सह्ह ॥।॥ काराना हुँव मीसाह, एवन सक अयुक्तस सरह सुक्वि दामठ लगाइ पाय, हम दर दांघो सारद माय ॥२॥ वर्षे पत्तेय होय, मृसा बाहन हाय करेस लाहू कात्र सस मेरी पाल, विचन हरन समस् दुदाल ॥३॥

केवन तंत्र नीताइयों में ही माया-मेर देखें। हुनाउ (ता०) सुयों (हर्च०) मेलड (ता) मेंनी (हर्च) दानड (ता) हानी (त) बाहम (ता०) वाहम (ता०) वाहम (ता०) हाइन (हरू)। हर्च दियोर में अस्तिम क्रेस मी दिसा हुआ है। माना की दृष्टि के यह पूर्वडा प्रवास है। किन्तु नाहरा वाली आते में उद्दुष्त कर यो के त्यों है उनमें पुग्तानन दिलाई पद्मा है, बलाई कर्ज दिशा बली आते में यहचा तोतक ने उद्दुष्त की हिथे करके अडे > औं कर विना है। यो के त्यान पर प्राप्ता न विला हुआ है। इस प्रदार देखें मानूची क्रवर पन्त हैं वार्ष है पा मीजर्म मान्य एक हो मान्यम होती है।

दानो बिंद के बारे में हुई किसेय हुआ नहीं चच्छा। इस आवरान की रचना के दिया में क्षेत्र को निम्न परिवर्षी महत्वार्ग हैं—

सबतु पनरइ सोलोचरा मकारि बेड बद्दी नवभी बुधवार सत चारिका नवत इट बान बार कथा रस कर्से बलान ॥४॥

१. खोंत्र रिवोर्ट, सन् १६००, नन्बर ८८, पृ० ७५ २. त्रिरपना अंक १०, जुलाई, ११५६ ए० ५३–५2

^{÷.}

रिपोर्ट में इस प्रतिका लिपिकाल संबद् १६६६ दिया हुआ है। अन्त की पुश्चिका इस प्रकार है।

्ति श्री बोरहमा लग्मनेन प्रावती समूर्गं समता, संबन् १६६६ वर्षे माद्र मुद्दि स्वती विवित कूलोडा मुले। पोर्मा के दिस्ता में १० पड़, १३ " × द" र ६ पतिलों और ४ व्या पा १ वाण में १ वाण में १० पड़, १३ " × द" र ६ पतिलों और ४ व्या पा १ वाण में १ वाण में १ वाण में वो भी श्राप्तवन्त नारा के पान सुर्वति है। भी उदस्तंत्रेष्ठ शास्त्रों ने १ स्व प्रति का पतिलम देते दुर्म एक व्या पत्र साम में १ वाण में १ वाण में १ वाण में १ वाण में १ विवाद मात्र के १ वाण में १ विवाद मात्र के १ वाण में १ विवाद मुलेश मात्र के १ वाण मात्र के १

सुनो क्या रस कील विज्ञास, योगी सरन राय बननाय मेलो करि की पामी करह, पदमावती बहुत हुन्छ सहह ॥॥॥ काणमीर हुँत मीसह, पंचन सत अवतस्त सरह सुकी दासक लगाइ पाय, हम वह रोगी सारद माय ॥३॥ नम् गरेस इंजर सेप, मुसा बाहन हाथ फरेस

छाद्द लावन बस सिर पाल, विवन हरन समस् दुदाल ॥॥॥
हेवन तीन चीताइसी में ही माया-मेद देसे । हुन्य (ना॰) सुर्यो (वर्न॰) मेल्ड (ना॰) मेले (क्ले) राम्य (ना) सानी (ल) खहरा (ना॰) पहन (ल॰) खहरा (ना॰) लावन (ल॰)। वर्ष चिहाँ में असिन करंग्र मी दिश हुआ है । मात्र को दि से पार पूर्वः । बस्तामा है। छिन्दु नाइश साली प्रति में उद्दृष्ट दर प्यों के तो हैं उनने पुमानान दिखाई पद्मा है, वचके कर्ष सिर्ट बाली प्रति में उद्दृष्ट दर प्यों के तो हैं उनने पुमानान दिखाई पद्मा है, वचके कर्ष सिर्ट बाली प्रति में पद्मा तेलक ने उद्दृष्ट की सिप हरके अउ> औं कर जिस है। य के स्थान पर प्रत्यः न लिखा हुआ है। इस प्रदार हुल मानूनी अन्तर प्रका होता है हरा। प्रतिनी प्रान्ट एक ही ग्राह्म हुली हैं।

रामों इति के बारे में हुछ किये दुझ नहीं बनदा । इस आयसन की स्वना के विषय में कवि को निम्म पटियाँ महत्वार्ग हैं-

सबतु पन्ध्ह सोन्नेतरा सम्मारि बेड बड़ी नवमी बुधवार सत तार्र्या नचन दृढ ज्ञान बार कथा रस करूँ बलान ॥थ॥

^{1.} सोज रिपोर्ट, सन् १२००, मन्बर मम, पृत ७५ २. जिरमना अंक १०, जुटाई, ११४६ ए० ५२-५८

असली परिचय देकर पद्मावती से शारी भी। एक रात को सिदनाय योगी आकर राजा से बोल—मुमे पानी पिता, नहीं दुमे शान दूँगा। सब के शरण राजा ने वह उसकी लीकवीन की। योगी ने तर तक इकर पीने से हन्मार किया जब तक राजा बचनवर्द नहीं है। गया कि वह पायावती से उरावर पहली कियान को योगी। के पात कानेगा। समय बीतने पर प्याचाती के आप है को है। योगी के मत से राजा वन सब उन्हों मारे परिचा को तथा है। तथा में बीत है। योगी के पात पहुँचा तो उताने उसे पार इकड़ी में बाटने को कहा। राजा ने बैसा ही किया। वे टुकरे खग, चतुरचाया, वाल और कन्या के रुप में परिचात हो गए। याजा ने सिता विद्या हो है। याजा के स्वा में परिचात हो गए। याजा हम्से पात पार में पहुँचा कहीं हिंदिया नामक एक प्रचानुके रोज किया था। याजा ने उत्तरे हुन्द राजा ने पहुँचा कहीं हिंदिया नामक एक प्रचानुकेर ते उनिया करता था। याजा ने उत्तरे हुन्द राजा ने पहुँची स्वा को राजा करता हो। योग में प्रचान के स्व सी काणा दी, किया नारी क्या मुनका उत्तरे हुन्द राजा ने पहुँची प्रवतन्या को रेसा और दोनों में में में में में या या। याजा ने उत्तरे हुन्द राजा ने पहुँची प्रवतन्या को रेसा और दोनों में में में में सा या यार नोरा कर्युनगिन के दस की काणा दी, किया नारी क्या मुनका से सा प्रवार उत्तर है। राजा नर्द राजी के साथ लीश को साम सा नार देशे सा सा वार सामी करा भी आह रही। राजा नर्द राजी के साथ लीश और दोनों पिता के साथ मुलकुईक हजानीती भाकर रहने हमा।

§ १.८१. दामों की मापा प्राचीन ब्रक्तभाषा है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु रावस्थानी का प्रमाव भी प्रत्यक दिखाई पडल है। प्रांतिकिर बहुत शुद्ध नहीं है। शक्तथानी विषिकार की स्प्रापाप्रियता भी राजस्थानी प्रभाव में सहावक हो सकती है। भीचे एक अशा उद्भुत किया बाता है। आदि स्त्रीर अत के कुछ अंग्र परिशिष्ट में संखग्त हैं।

> परि चाव्यव व्हावारती राय, श्रति भागर इराव्यव मन भाय ६६६ बयावव भावव राह, एक िण लावव बहुत प्रसाह ॥६२॥ छहान सेन छहानीती गयव, राज माँ हि बयावव भायव व्याग भाट वरह कह बार, मिलियो बेग सह परिवार ॥६२॥ मिल्यो महाजा राजा हाता, नयव देश भाव वहाह कणा माय पुत श्रम चांच कुमारि, व्याव सेन मेट्यो हिण्य वार ॥६१॥ भगइ स्थान स्वामि श्वयारि, बाह देव रहियो हाण्यार योगी सारिसर्व मह दुन्छ सहयुँ, वाल्यव कुँ क्षा ब्रह मागेयव ॥११॥ गढ़ कामर रहह बुद राम, वालु योग वस्ती देग मावि । गढ़ कामर रहह बुद राम, वालु योग वस्ती व्याव विवास

शाय प्रायः विवरणात्मक है इविलय् भाषा में बहुत सीन्दर्ग वहीं दिखाई पडता, किन्तु आर्यिमक भाषा के अध्यदन के लिए इस प्रन्य का महत्त्व निर्विवाद है, काव्यरूप की दृष्टि से तो यह अरुपेनुजीय प्रन्य है हो !

हंगर वावनी (विक्रमी संवत् १४३८)

§ १८२. शवन छुप्परों की इस स्वता के टेलक कवि ट्रगर उपनाम पग्ननाभ बहुत प्रतिद्ध वैन भावक और निव में । ट्रंगर बावनी की रचना इन्होंने १५३८ विक्रमी अर्थान् अवली परिचय देकर पद्मावती से बादी भी । एक रात को सिद्धनाय योगी आकर राजा से बोल—मुक्ते पानी पिता, नहीं बुक्ते बाद दूँगा । अय के नारण राजा ने यह उसकी शोजवीन की । योगी ने तर तक बल बीन ने हरनार किया व तक आजा बचनवढ नहीं हो अपने कि स्पाद किया ने वह आजा बचनवढ नहीं हो अपने कि सर पद्मावती से उराल पहली सनाम ने घोनों के पास लांचे को किया । समय बीतने पर पद्मावती के आप ह और योगी के अपने सामा बाव स्था उराल अच्छे के किया पोनी के पास पहुँचा तो उत्तरे उद्दे चाद हुकतों में कान के बच्चे को किया । वे हुकदे खार, पद्मावाग, पास जे बेला हो किया । वे हुकदे खार, पद्मावाग, पास जे बेला हो किया । वे हुकदे खार, पद्मावाग, पास जे बेला हो का बात हुक्ते हो हुआ और राजवाए खोडकर तम में चला था। इचर-उभर पूर्त-अस्कर सामा करूर पास पास में पहुँचा आई हिरिया नामक एक धनकुष्टेर लेट निवास करता था । राजा ने उसके हुक्ते हुए अडके की हिरिया नामक एक धनकुष्टेर लेट निवास करता था । राजा ने उसके हुक्ते हुए अडके की उत्तर हो में पर सहा कुळ हुक्ता और अहमणित के वच भी आजा रो, किया तारी कल्यानों के के इस कार्य पर बडा कुळ हुआ और अहमणित के वच भी आजा रो, किया तारी करानी करना भी लाइ रों। राजा नरें राजी कार हो जो पर होनों में प्रिका सिक्त असनी करना भी लाइ रों। राजा नरें राजी कार हो हा और रोनों पति वे के साथ मिएक बल्तीती आकर रहने लगा ।

§ १८१. दामों डो भाषा प्राचीन ब्रवभाषा है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु राजस्थानी षा प्रमाव भी प्रायच दिखाई रवला है। प्रावित्यि बहुत गुद्ध नहीं है। शावस्थानी लिपिकार की स्प्रमापाप्रियता भी राजस्थानी प्रमाव में सहायक हो सकती है। मीचे एक अरा उद्युत किमा पाता है। आदि खीर थत के कुछ अंग्र परिशिष्ट में संखान हैं।

> परि चात्रपट क्रमण्यती राग, श्रति भगद इरल्यट मन भाग कहर व्यावट भागट राह, तब तिग लायट बहुत पसार ॥६२॥ कहम सेन ख्वनीतो मयट, राज मों हि यश्चय प्रवाद व्याव स्थान भाट कर्ड् कर्ड बार, मिलियो वेरा महा प्रवाद १६२॥ मिल्यो महाज्य राजा तथा, नयर देव भट बहार घणाः माय पूत भड़ पीय कुमारि, छ्लन सेन मेन्यो तिनि बार ॥६१॥ भगड़ तथान स्वामि श्वयारि, कांड देव रहियो इंग्यार योगी सरिसर्ट मह दुनस्थ, साहय दें आह यह सामेपर्ट ॥६१॥ एट स्वास्ट स्वाद राज, राहु पीय परको रंग साहि ।

काव्य प्रायः विवरसातम्ब है इसकिए मापा में बहुत सौन्दर्य नहीं दिखाई पडता, किन्तु आर्पिमक भागा के अध्ययन के किए इस प्रन्य का महत्त्व निर्विवाद है, काव्यरूप की दृष्टि से तो यह अपुपेदाणीय प्रन्य है हो।

इंगर बाबनी (विक्रमी संवत् १५३८)

§ १८२. बावन छप्पयों की इस रचना के टेलक कवि द्वार उपनाम पद्मताभ बहुत प्रसिद्ध जैन भावक छोर निव में । ड्वंगर बावनी की रचना इन्होंने १५३८ विकमी अर्थाण जिस कालि जिसन दोन्दर, सिसन विन काल पायंस जन संग पति राय होगर कहद अलिय दोष दिजह कघन ॥२०॥ इन्द्र अहत्या रायड जानि समु अहीत उपधी कान्द्र रायड वालियों पेसि करि रूप रवती दस कंपर दस सीस सीय कारि सिर सम्द्रय अंवक अरु दुर्ग कज देउल सिरी अपूर्वेद राखिय न अप्याद हीगि सी तर अन्याद हुन्यव हित समय नृपति हुगर कहद को को को न विद्र्यय ॥३॥ औष्टि अस्त मां पति हित समय नृपति हुगर कहद को को को न विद्र्यय ॥३॥ औष्टि अस्त मां सार्च नहीं मानह दुर्वेन सर्वे दसो वेदना पृष्टि दिहुद हुई गजन लगाइ दोष अनन्त क्रियह सेसमें पृति परि तवडों कल हाद पड़ी पीटियद सुफल्ली वहरी वेसास कीजह नहीं, वीद न आवह सुम्ल करि परिसाद वहरी वेसास कीजह नहीं, वीद न आवह सुमल करि

पात्राद सरा हुनार कहर मण्ड न पद्म राज्य ना राज्य हूंगर के बुक कुप्पय अत्यन्त उद्यक्तेटि के हैं । भाषा अत्यन्त पुष्ट, गर्टा हुई छीर शक्तिपुर्ण है। सुप्पयों को यह परम्परा बाद में और भी वित्रक्ति हुई । साहित और भाषा दोनों ही टिप्रेंगों से इनका महत्व त्वीकार किया जायेगा ।

§ १८४. मानिक कवि

१६३२-३४ ईस्पो की स्रोज रिपोर्ट में मानिक क्षत्र की बैतालराचीसी की सूचना प्रचारित हुई। इस बैमासिक विचरण का सद्वित अरा नागरीप्रचारिणी पत्रिच में सवत् १९६६ में लगा. बिसमें मानिक कृषि का नाम दिया लगा है।

मानिक क्वि ने विक्रमी स्वत् १५५६ अर्थात् १५८६ इंस्वी में वैदाल-पचीसी की रचना की 1 रचना के विषय में क्वि ने शिवा है :

संबद् दनरह सै तिहिक्का, ओर वरम आगरी दिवाल । निर्मेख पाल आगहन मास, दिमरित कुम्भ चन्द्र को बास ॥ माठे पोस वार तिहि भातु, कवि भाषे चैताल पुरातु । यह म्वाल्यिद बस्त अतिमलो, मातुसिध तोवर जा वली ॥ सम्बद्ध सेमल बीरा लांची, मातुसिध तोवर जा वली ॥ सेहि सुनावह कथा अगुरन, जो बैताल कियो वहु रूप ॥ म्वाल्यिद में मानसिंद तबर का राज्य था । उनके राज्यका में १%

म्याहिस्य में मानिष्ट तबर का राज्य था। उनके राज्यकाल में १५४६ विक्रमी संवर् के अगहन महीने के गुक्क यद अटमी रविवार को यह क्या राजा की आजा पर लिखी गई।

दूतर कवि का यह परिचय पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है। प्रति, श्री अगरचन्द्र नाहटा बीकानेर के पास सरिचता

२. मैमासिक खोज विवरण १६३६-३४ ए० २४०-४१

३. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ भाग २. संक ४

भारबार बदा हुमार कहन शब्दा न पद्म मध्य न स्वाम का अवस्त हुई छीर हुंगर के मुख्य हुम्प अस्पत उद्यक्तिट के हैं। मापा अस्पत पुष्ट, गठी हुई छीर शक्तिपूर्ण है। हुप्पयों की यह परम्परा बाद में और भी दिक्कित हुई। साहित और भाषा दोनों ही हटियों से दनका महत्त्व स्वोगर किया जायेगा।

§ १≓४. मानिक कवि

१६२२-२४ हैसी की खोज रिपोर्ट में मानिक विव की वैवालराचीती की सूचना प्रकाशित हुई। इस वैमासिक विवरण का सद्वित अग्रा नागरीप्रचारिणी पत्रिक्च में सवत् १९६६ में लगा, विसमें मानिक विव का नाम दिया हुआ है।

मानिक क्षि ने विक्रमी सबत् १५४६ वर्षात् १४८६ ईस्वी में वैदाल-पचीसो की रचना की । रचना के विषय में क्षि ने विसा है : संबत् पनरह से तिहिकाल, और बरम आगरी दिशाल ।

निर्मेंड पांड भागहन मास, हिमरित कुम्भ चन्द्र को बास ।। भाटे पोस वार तिहि भागुं, रुदि भागे येताल प्रायु । गड़ न्यान्यिय वस्त्र मसिनको, माझिक्ष्य तोश्य जा बडी ।। समई सेमड बोरा छोयो, मानाई कॉट कर जोरें 'संखे ! मोहि मुनाबडु क्या अनुय, जो बेताल कियो बहु रूप ।। म्यान्यिय में मानसिंह तबर का राज्य था। उनके राज्यग्रज में '१५५६ विक्रमी संवर् के अगहन महीने के शुक्र-यद अपनी पेविश्त को यह क्या रावा को आजा पर जिली गई ।

इतर कवि का यह परिचय पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है। प्रति, श्री अगरचन्द्र नाहटा बीकानेर के पास सुरक्षित ।

२. श्रेमासिक स्रोज विवरण १६३६-२४ ए० २४०-४१

रे. नागरीपचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ माग र, संक ४

बजमापाका निर्माण १५६

जैन लेखक ये । विषे ये बारे में इससे ज्यादा कुछ मालूम न हो सका । विक्रमी सवत् १४५० में उन्होंने पवेटिप्रविक्ति या मुख बेठि नामक रचना जिली को माया और मात्र दोनों हो हरियों से अल्पन महत्त्रपूर्ण कृति है। पवेटिप्रविक्त की अतिम पत्तियों में लेशक और उसके रचनाताल के लिग्प में जिल सुनना पास होती है—

> कवि वेश्ह मुजग गुण गावो, जग मगट ट्ह्स्सी नावो। ते देखि सरस गुण गावो, चित चतुर मुस्य समुद्रायो ॥३५ सबत् पन्द्रह सी पचासो, तेरस मुद्रि कार्तिग मासो। इ पाँचो इन्द्रिय बस गारे. सो इस्त करत कर दारी ॥३६

'द्रति श्री पञ्जेन्द्रिय देनि समात । सवत् १६८८ आसोज वदि दूब, सुकूर धार लिखितम् जेवावारणी आगरा मध्ये ।'

पेल्ह सम्मयत टक्कुरसी के तिता का नाम या। पार्यनाय राकुन समानीसी के अत में 'बेल्ह नट्यु-टक्कुर सी नोंदे' यह पिक आती है। किन्तु गुणवेकि से इस प्रश्नार मा काई सकत नहीं मिन्दा। टकुरसी ने प्रश्नेत्वय वेकि में इन्द्रियों के अनियमित ज्यापार और टाक्नय पतन का वर्णन करें हरें के स्वीत रखनी से वेतायनी ही है। लेखक की माणा प्रायः अब है। किखित राबस्थानी प्रमाय मी वर्षमान है। नीचे एक त्रग्र उद्धुत किया पाता है, पूरी रचना परिष्ठिष्ट में दी हुई है।

केंक्र करामो जन्म ब्रांट माश्यो कोम दिवालि ।
गीय साया सार सार सार को कायो चीवर कालि ॥
गीय सायो चीवर कालि ॥ दिवालयो कोम दिवालि ।
महि चीर गाईर पहेंदे, दिन्दे जाह गई। वह दंगेंदे ॥
इहि रसना रस के चालै, घळ बाह मुखे दुव साले ।
इहि रसना रस के काथे, यर कीच कुकम न कायो ॥
इहि रसना रस के काथे, तर मुने वाच गुढ़ माहे ॥
इहि रसना सा के वाहे, तर मुने वाच गुढ़ माहे ॥
पर कोट मारे चाटा ॥
मुनि मूठ साव बहु चोले, चिर चुंकि देवाडर होते ।
इहि रसना विश्व कहां, विश्व की कार धन चाटा ॥
मुनि मूठ साव बहु चोले, चिर चुंकि देवाडर होते ।
विव चहा विश्व वस चीले, विश्व माहच वक्त विग्रंह ।
विव चहा स्वी वस चीले, विश्व माहच वक्त विग्रंह ।
विव चहा सो सक्यों नीति सक्यों न सहि ॥

उन्दूरपी ने नेमि राज मति के प्रेम प्रतग पर मी एक बेलि की रचना की है। इनकी शीवरी इति पार्यनायसञ्जन सत्तावीसी है।

छिताई वार्ता

\$ 2.50 द्वितारं चरित जामक अन्य नी पहली सूचना इस्तलिश्वित हिन्दी ग्रन्थों को सोब को १६४१-४२ की रिशेट में मख्तुत की गई। उत्त ग्रति इलाहाबाद म्यूनिसल अ्यूनियम में सुरवित है जिल्हा निपिचल १६म२ विक्रमी उल्लिखत है। सोब रिपोर्ट में द्विताई चरित ब्बभाषा का निर्माण १५६

जैन लेखक में । बिद के बारे में इससे स्वादा कुछ मालूम न हो सका । विक्रमी सवत् १५५० में उन्होंने प्रवेटिप्रविलिया गुण बेलि नामक रचना किसी बी भाषा और माव दोनों हो इंडियों से अस्पन्त महरनपूर्ण कृति है। प्रवेटिप्रवेलिक की श्रतिम पत्तियों में लेसक और उसके रचनाताल के विषय में निम्म सुचना प्राप्त होती है—

> कवि घेरह मुजग गुग गावो, जग प्रगट रकुरसी नावो । ते देखि सरस गुन गायो, चित चतुर मुख्य समुख्यायो ॥३५ सबत् पन्द्रह सी पचासो, तेरस मुद्रि कातिग मालो । इ पाँचो इन्द्रिय बस राये, सो हरत घरत फल वाये ॥३६

'इति भी पञ्जेन्द्रिय वेलि समात । सवत् १६८८ आसोज यदि दून, सुकूर बार लिखितम जोतावारणी आगरा मध्ये ।'

चेल्ह सम्मयत टनकुरसी के विता का नाम था। पार्यनाथ शकुन सचानीसी के अत में 'चेल्ह नट्यु-टक्कुर सी नोंने' यह पिक आती है। हिन्तु गुणबेलि से इस महार सा काई सकत नहीं मिलता। ठकुरसी ने पश्चीत्व में कि में इन्द्रियों के अनियमित व्यापार और ताजन्य पतन का वर्णन करके इन्हें सबमित रखने की चेतावनी ही है। लेलक की भाषा मायः कब है। किश्चित राजस्थानी प्रमान मी वर्णमान है। गीचे एक अश टद्युत किया जाता है, परी सनाम परिश्चिट में ही इंड है।

कैंद्रि करमो जन्म बिंह गारुपो होम दिवालि । सीन मुनिय सदार सर सीं हारों भीवर हारि ॥ से हारों भीवर हालि, दिवाश्यों होम दिवालि । महि नीर गर्होर पहेंदें, दिहि हाह नहीं तहुँ होंहें ॥ इदि रसना रस के खालै, यह काह मुखे दुव साले । इदि रसना रस के हाई, नर सुने बाप गुरु माई । यर फोडे मारे यहा, नित कर कर घर घर घाटा ॥ मुनि मुठ साथ बहु बोले, परि हाहि देवाइर होंहें । इदि रसना विषय कहारी, वसि होई लोगिन गारी ॥ विन कहर विषय वस मीते, विन्ह मानुष कम्म विम्हों । विन कहर विषय वस मीते, विन्ह मानुष कम्म विम्हों ।

ठक्द्रस्थी ने नेमि राज मति के प्रेम प्रसग पर भी एक बेलि की रचना की है। इनकी तींसरी कृति पार्रानायसङ्कन सत्तावीसी है।

छिताई वार्ता

§ १८७ छिनाई चरित नामक अन्य की पहले सूचना इस्तलिरित हिन्दी ग्रन्थों को रोज की १६४१-४२ की रिपेर्ट में प्रस्तुत की गई। उस प्रति इलाहागढ़ म्यूनिसक स्यूजियम में मुरुद्वित है जिसका लिपिडाल १६८२ विकसी उल्लिखत है। स्रोज रिपोर्ट में छिताई चरित के मुचार भी समानरूप से मिडते हैं ।* इसक्षिप दोनों कवियों की उक्त सामान्य पूर्वज प्रति भी स्तर्गरंग के पाठानुबाद के बाद ही जिली गई होगी । नारायणदास की मूठ रचना तो स्तर्गरंग की प्रति से भी पूर्व की होगी ।

इस प्रकार नायननदास सी रचना की स्वनरंग ने पाठानुदानसुक्त प्रतिश्चित की।
तिसकी कोई परवर्ती प्रतिश्चित प्राप्त प्रतिश्चित की सूर्वंत प्रति थी। संबद्ध १६९७ की प्रतिश्चित्व
और उसरी विकाल-परम्पा से संत्री के उपर्युक्त विकेचन के बाद यह सहस असुमान से सम्बन्ध के मान्य कि सिंद की स्वार्त पर सहस असुमान से सम्बन्ध के साम प्रति होगी। डा॰ गुप्त ने इस विकेचन के आधार पर द्विताई बातों के रचनात्त्रत का अप्ताप्त करते हुए लिखा कि '१६९७ की प्रति और नायनणदास की रचना के बीच चाठ की तीन रिधनीयों निरिच्य रूप से पदती हैं और परि हम प्रत्येक स्वित विश्वति के लिए ५० वर्षों का समय मानें की कि मेरी सम्प्र अधिक मी है—तो स्वत्य के प्रति हैं नी स्वत्य रूप के स्वाप्त की नायनचार की एवना का समय अप्ताप्त है कि मानी खोत में सुद्ध और प्रतिश्चा को स्वत्य १५०० के स्वाप्त की एवन स्वत्य हैं की स्वत्य के पर स्वत्य रूप के स्वाप्त की स्वत्य की स्वत्य की स्वत्य की स्वत्य के स्वत्य की स्वत्य की स्वत्य की स्वत्य स्वत्य की स्वत्य की स्वत्य की स्वत्य की स्वत्य स्वत्य की स्वत्य स्वत्य स्वत्य की स्वत्य स्वत्य की स्वत्य स

पाठ ग्रोथ के आचार पर रचनाकाल का यह अनुमान बहुत सन्तोपप्रद तो नहीं कहा वा सकता, किन्द्र किसी अन्य ऐतिहासिक प्रमाण की उपलिन के आमाव में इसी से काम लेना परेगा। वैसे लिपिताल १६४७ को देखते हुए इतना तो अनुमेप है कि रचना १६मी ग्रातान्दी की अपरव है।

रतनस्य की निम्न चौषाई से माद्रम होता है कि उसने भारापनद्रास की स्थना को संबार सुधार कर उपस्थित किया है—

रतन रंग रुवियन बुधि लई सभी विचरी कथा वर्नई।

गुनियन गुनी नरायन दास, तामहि रतन कियो परगास ॥५०४॥ २. प्रेमासिक आलोचना. अळ १६. ए० ७१

के मुबार भी समानरूप से भिड़ते हैं। ' इसल्प दोनों क्वियों की उक्त सामान्य पूर्वज प्रति भी स्वतरंग के पाठातुवाद के बाद ही लिखी गई होगी। नासगणदास की मूळ रचना तो सनरंग की प्रति से भी पूर्व की होगी।

इस प्रकार नायवनदास की रचना की स्वनरंग ने पाठानुदानमुक्त प्रतिब्धि की। क्षित्र को हो परवर्षी प्रविश्विष प्राप्त प्रतिवों की पूर्वज प्रति थी। संवर्ष १६५० को प्रतिविश्विष और उसकी विकास-परम्या से संतों के उपर्युक्त विजेचन के बाद यह सहज अनुमान हा सकता है कि दिवाई वार्तों कू रूपमें काणी पुपानी रचना रही होगी। डा॰ सुत ने इस विवेचन के आपार पर द्विजाई वार्तों के रचनाका का अनुमान करते हुए विचा कि '१६५० की प्रति और नायवण्यास की रचना के बीच पाठ की तीन स्थितियाँ निहित्त रूप से प्रवादी हैं और यह इम प्राप्त कि स्वर्तित विकर्तन के विष्य ५० वर्षों का समय मानें जो कि मेरी समक्ष्म में अधिक नहीं है-चो स्वत्ररा के पाठ का समय १५८० के काममा और नायवण्यास की रचना का समय १५०० संवत् टहरता है, वैसे मेरा अपना अनुमान है कि मायी खोज में कुछ और प्रतिवर्ती प्राप्त होने पर एकाप स्थित बेच में और निक्रण सकती है, और तब रतनरंग के पाठ का समय १५०० के काममा और नायवप्रता की रचना का समय स्वर्त १४५० के काममा प्रमाणित हो वो आजवर्ष नहीं।"

पाठ गोप के आधार पर रचनाकाल ना यह अनुमान बहुत सन्तोपबर तो नहीं कहा वा सकता, किन्तु किसी अन्य ऐतिहासिक प्रमाण की उपलिट के अमाव में हमी से काम लेना परेता। वैसे लिपिशल १६४७ को देखते हुए इतना तो अनुमेप है कि रचना १६वों बतान्दी की अपरप है।

§ १८=. दिवार वार्ता प्रवमाया की अल्पन महत्वपूर्ण गीरवास्तर रचना है। इसकी मण अल्पन रोमानी और मर्मतरार्थी है। अवाउर्दोन विकथों ने अपने सेवापित नियुत्तर खा को देविगिर के माना राजा राजा रामदेव को एपजित करने के लिए मेबा। युक्तमानी तेना के अकागण और अल्पनार से सरक्षा प्रवा ने राजा से रखा की प्रार्थना की। राजा शतिय रेजिए दिल्ली गया। वहाँ उपने मुख्यान के मार्ट उद्ध का को एक साल टंक प्रदान करके अना मिर वना दिया। राजा को दिल्ली में तीन वर्ष बीन गर—हपर उचकी युक्ती क्या किता कि पान को सेवापित के मेम्स हो गई। राजी ने राजा के पान सन्देश मेज, वारशाह ने रामदेव के देविगिर होटेनी आखा दी, साथ है। उपहार में एक अल्या चित्रनार भी साथ मेज दिया। विकास ते पुराने महत्व को विवस्तर एक अल्या चित्रनार भी साथ मेज दिया। विकास ते पुराने महत्व को विवस्तर एक अल्या चित्रनार भी साथ मेज दिया। विकास ते पुराने महत्व को विवस्तर एक अल्या चित्रनार भी साथ मेज दिया। विकास पान कर विकास के प्रता विवस्त रहता के प्रता के प्रता के प्रता की विवस्त रहता है। विवस हो के प्रता के विवस्त के प्रता के विवस्त के प्रता के प्रता के विवस्त है। इसकी का दिला है विवस स्वस्त के प्रता है को विवस्त है। हम बीच हिलाई से विवाह स्वद्भाव के प्रता कर के लिए के प्रता के प्रता के प्रता के प्रता कर के प्रता कर के प्रता कर के प्रता के प्

रतनरग की निम्न चीवाई से माद्म होता है कि उसने नारायनदास की रचना को संबार सुपार कर उपस्थित किया है—

रतन रंग कवियन बुधि लई सभी विचरी कथा वर्नहै।

गुनियन गुनो नरायन दास, तामहि रतन कियो परगास ॥५०४॥ र. येमासिक आलोचना, अंक १६, ४० ०१

वदनि जोति वें सप्ति कर इसें, मूँ सुख क्यों पावहि सुन्दरी । हरे हरिण रोचन से नारि, ते मृग सेवें भर्ती ऊजारि ॥ १४५॥ जे गज इस्म तोहि कुच भए, ते गज देस दिसन्तर गणु । तें बेडरि मम खुळ इच्यो, तो इरि ग्रेह करल नीसन्यी ॥५४६॥ दसन ज्योति ते दारिजें भए, उदर फूटि तें दारिजें गए। कमल वास लड़ अब दिवाह, सजल गीर ते रहे लुकाई ॥५४०॥ जड तें हरी इस की चार, मलिन मान सर गए मराल । होइ सन्त मानना मान, तबै देस के छुड़े जान ॥५४८॥

किया, सर्वनाम, परसर्ग सभी रूपों से खिलाई वार्ता की मापा १५वीं शताब्दी की वजभाषा की प्रतिनिधि कही जा सकती है।

थेघनाथ

६ १९०. मानसिंह ने शासन-काल में म्वानियर ब्रजभाषा कवियों का केन्द्र हो गया या । वेपनाय मानसिंह के दरवार से सीघे रूप से सम्बद्ध नहीं मादम होते किन्तु उनके किसी राज पुरुप भावकेंवर से इनका सम्बन्ध था। वेधनाथ के विषय में सर्वप्रथम सचना स्रोज रिपोर्ट (१६४४-४६) में प्रकाशित हुई 1³ इस ग्रन्य की प्रतिलिपि धार्यभाषा पुस्तकालय के याजिक संप्रद में सरवित है। इस प्रति का टिपिकाल सवत १७२७ ही मानना चाहिए क्योंकि यह प्रति सवत् १७२७ की चतुरदास कृत भागवत् एकादस स्वन्य की प्रति के साथ ही लिखी हुई पी जाबाद में जिल्द टूटने से अलग अलग हो गई। स्व० यात्रिक जी ने लिखा है 'पेवनाय कृत गीता अनुवाद का लिपिकाल १७२७ निकमी मानना चाहिए कारण की चतुरदास कृत एकादश स्कृष की प्रति जो इसी जिल्द में थी. उसका लिपिकाल १७२० है। दोनों के िंपिकार एक ही व्यक्ति हैं। देखो प्रति नम्बर २७८।५०। जिल्द टूट जाने से दोनों पुस्तकें अलग-अलग हो गई हैं।³

श्री येघनाथ ने अपनी 'गीता भाषा' में रचनाकाळ और आश्रयदाता के बारे में कुछ सनेत किया है। विक्रमी १५५७ अर्थात इस्ती १५०० में यह प्रन्थ लिए। गया—

पन्द्रह सौ सत्तावन भानु, गढ गोपाचल उत्तम थानु । मानसीह तिहि दुमा नरिन्द्र, जसु असरावित सोहै इन्द्र ॥४॥ नीत पुँच सौ गुन आगरी, बसुधा राधन को अवतारी । जाहि होड सारदा बुद्धि, के बद्धा जाड़े हिय शुद्धि ॥५॥ जीभ अनेक सेस ज्यू घरे, सो धुत मान स्यथ की करें। बारै राजधर्म की जीति, घड़ै छोक कुछ मारग रीति ।।६॥

^{1.} पुस्तक प्रकाशित होते होते सूचना मिली है कि डा॰ मातापसाद गुप्त हारा सम्पादित खिताई वार्ता नागराप्रचारिंगी सभा, काशी से प्रकाशित हो गई है र. ११४४-४६ की रिपोर्ट अभी तक प्रकाशित है

३ याजिक सम्रह, नागरीमचारिणी सभा की प्रति के अन्त की टिप्पणी

बद्दिन जोति में सांत कर हरीं, हूँ सुख वर्षो पायदि सुन्दर्स । हरे हरिण शोधन में नारि, ते मृत्य सेवें भर्ती कवारि ॥ १९४॥ ने पात उनन होष्टि कुच भए, ते पान देख दिसन्दर नाष्ट्र । तें बेहरि सम्म सुख हच्यी, तो हरि मेह कहर गोसन्त्री ॥५९६॥ इसन ज्योति ते दारिकें भए, जदर दृष्टि में दारिकें नष्ट् । कसन बास वह बय दिवाह, सजल नीर ते रहे लुकहूं ॥५९०॥ वह तें हरी हस की चार, सरिन मान सर नष्ट्र सहार । होह सन्द मानवी मान, तबै देस के छुडे जान ॥५९८॥

ितया, सर्वनाम, परसर्ग सभी रूपों हे छिताई वार्तो हो भाषा १५वी राताब्दी की अजभाषा की प्रतिनिधि नहीं जा सकती है।

थेवनाथ

प १९०, मानहिंद ने शासन-नाल में स्वानियर प्रजमापा परियों ना नेन्द्र हो गया या। वेननाम मानहिंद के दरवार से सीचे कर से सम्बद्ध नहीं मानूस होते किन्तु उनने किसी शाब पुरुष मानुहेंनर से इतना सन्यत्व या। वेपनाम ने निषय से स्वर्धमन प्रज्ञार रोज हिंदी होते हैं। देश सम्ब की मुतिनिष्ठ स्वर्धमापा पुलकाल्य के मानून सामित है। इस प्रति ना लिपिनाल स्वत् १०९७ ही मानना चाहिए स्मोकि स्वर्ध में सुरिवृत है। इस प्रति ना लिपिनाल स्वत् १०९७ ही मानना चाहिए स्मोकि स्वर्ध में सुरिवृत है। इस प्रति ने लिपिनाल स्वर्ध में स्वर्ध में निल्द हुन से अलग अलग हो यह। सन्य मानिक जी ने लिया है हैं मी जाता द मी लिएन इस स्वर्ध में मानना चाहिए सामा भी सुरुद्धान कुत एनारस स्वर्ध में सित जो हों। जिल्ह में भी, उसना लिपनाल १०९० है। होनों के लिपनाल स्वर्ध प्रति की हों। जिल्ह में भी, उसना लिपनाल १०९० है। होनों के लिपनाल स्वर्ध हों हैं। देशों प्रति ने स्वरान्ध हों से हैं। है हों से प्रति मान्य रुप्धान हिंद हुट जाने से होनों प्रति स्वरान्ध हों महै हैं।

श्री येषनाय ने अपनी भीता भाषा में एकनाकार और आश्रयदाता के बारे में हुछ सनेत किना है। किनमी १४५७ अर्थात् इस्ती १५०० में यह मन्य डिखा गया— पन्नद्र सी सपावन आहु, गढ गोपावरू उत्तम श्रानः।

भारता है हिंदू जुना निर्मुल, कर आपारण देशन यांद्रा मामानाह हिंदि दुना निर्मुल मुझ्का स्थानको है हुन्दु आशो मीत दुन सी गुन भारती, बसुवा राखन को भरताहो । जाहि होई सारदा दुन्दि, के महा जाके हिंद गृहि ॥था। जाहि होई सारदा दुन्दि, के महा भारत कर को की । जाहि सोई सारदा दुन्दि, हो पुत्र मान स्थय को की । जाहि राजपमें की जीति, पर्छ होक हुन्ह माराम मिता ॥॥॥

पुलक प्रकाशित होते होते सूचना मिली है कि डा॰ मातावसाद गुप्त हारा सम्पादित दिलाई वार्ता नागराप्रचारिको समा, कांक्षी से प्रकाशित हो गई है

२. १२४४-४६ की रिपोर्ट भभी तक प्रकाशित है

३ याज्ञिक ममह, नागरीप्रचारिणी सभा की मीत के अन्त नी टिप्पणी

चतुर्भ्रजदास की मधुमालती कथा (१४५० विक्रमी के लगभग)

हुँ १६०. बनवरी सन् १६३६ की दिन्हुस्तानी में श्री अगस्चन्द नाहरा ने मधुसालती तामक दो अन्य स्पनार्थे वार्षिक छेल बनाशित कराया । मेकन की प्रशिद्ध मधुमालती से निल्न दो अन्य स्वनाओं का गरियय उक्त लेल में दिया गया । सितन्य १६५५ की सह्या में डाठ, मातासवाद गुत ने च्युद्धेन्दात्व की सुभावती का स्वना काल श्रीर्थक लेल प्रकारित कराया । डाठ गुत ने अपने लेल में मधुमालती का स्वना काल स्वर्ग १५५० विकासी से प्राचीन प्रमाणित करने का मध्या किया । दाठ गुत ने बताया है कि प्रस्य के अन्य के स्वरों से इस पुलक्त की स्वना प्रतिया तथा तिथि आदि के विषय में बुल्ल सन्तेत मिठते हैं । श्रानिय अग्र

मञ्जमारतों बात यह गाई, दोष बजा मिलि स्तेह बताई। एक माथ माइन सांहे, दुवी कायय दल में होई एक नाव माधन वह होई, मनोहारपुरी जानत कर कोई कायय माधन वह होई, मनोहारपुरी जानत कर कोई कायय माध चतुर्वंत्र बाकी, मास्ट देश मधी गृह तारी पहली कायय कही वब जानी, गाई माध्य उच्चों बाती कर्ड क यामें चरित सारारी, श्री इन्दावन की सुखकारी माधव ता से माहची घें रस प्रतन सोय कीन काम सा स्वीं हु ती जानत हैं सब कोय काइचि मां हानि के रसक निरक्ति को बात

डा॰ रहत जिसते हैं कि पिन्दी समार को माभय का उपहरा होना चाहिए कि उन्होंने यह राष्ट्र कर दिया कि पहली काइथ कही बच नानी पाढ़े मापय उचयो बानी यही नहीं अतिभ होंहें में पह रोकेत भी कर दिया कि मधुमानती के उत्तरार्थ का यह रूपानार उन्होंने तब किया जब चतुर्ध का नाम भारत्येश में विख्यात हो चुना था। 'डा॰ गुप्त का कहना है कि माधवानल शामकन्त्रण नामक रचना के छेखक माधव वही मीधव हैं जिन्होंने मधुमानती के उत्तरार्थ का स्वान्तर किया और चूँकि माधवानत कामकन्द्रण का निर्माण संवत् १६०० में हुआ जो निम्म पर से स्वष्ट है—

सवत् सोरै सै वरसि जैसलमेर ममारि । फागुन मास सुहावने करी वात विस्तार ॥

'इससे यह निरिचव रूप से जात होता है कि मागब सबत १६०० में न केतल बर्तमान मै, वे मेन रुपाओं की रचना भी कर रहे में, खतः यह अनुमान सहबू हो में किया का सकता है कि मधुमालती में उनके इरावोच ना समय सकत् १६०० था उसके अरुन्त निरूट होगा। उस समय तक, जैसा माथव ने कहा है चतुर्धवहात निस्त्रत कवि हो चुके से, उनका रचना बाल १५५० किमनी के आरुप्तमा माना जा सकता है। दो गुत इस सम को इससे मी अधिक प्राचीन मानने के पद्ध में हैं।

^{1.} चतुर्वेत दास की मधुमालती का रचना काल, करवना, सिसान्तर ११५७ ए० २०-२१

चतुर्भुजदास की मधुमालती कथा (१५५० विक्रमी के लगभग)

§ १६२ जनपरी सन् १६३६ की दिन्दुस्तानी में श्री अगारजन्द नाइय ने मधुमालवी तामक दो अन्य पजापं ग्रीषंक लेख प्रशस्तित कराया । मंफन की प्रसिद्ध मधुमालवी से मिल दो अप्य पजाओं का परित्य उक्त लेख में दिया गया । विद्यन्त १६५५ भी करन्य में डा०, मातामगाद गुप्त ने चतुर्धंजदास को मधुमालवी का रचना काल ग्रीपंक लेख प्रमाशित कराया । जात गुप्त ने अपने लेख में मधुमालवी का रचना काल सवत् १५५० किकमी दो प्राचीन प्रमाणित करने का प्रसत् किया । डा० गुत ने दताया है कि अन्य के अन्त के पद्यों से इस पुस्तक की रचना प्रस्तिय तथा विदि आदि के विषय में दुख सनेत मिलते हैं । अन्तिम अग्र इस प्रकार है ।

मञ्जमालती बात यह गाई, दोय जना मिलि स्नेह बनाई ।
एक साथ माहान सोई, दूजी कायच दल में होई
एक जाब साथव यह होई, मनोहरपुरी जानत सब कोई
पायन माम बनुईज जाठी, माह देस मर्थी गृह तावी
पायन का बजा जाती, पाई माथव उपमी बाती
कर्जु क्र याने बिलि सुरारी, भी कृत्यावन की सुखकारी
माथव ता तें गाहुथी यो रस पूरन सीय
कीम काम सस स्वीं हु ती जानत हैं सब कोय
कायुंग माई जानि के ससक निरक्ति की बात

आग चनवुन के नवा तर ला है। एउटान्य ।

डांग ग्राह किवते हैं कि दिन्दी संग्राद को मानव का उपन्त होना न्याहिए कि उन्होंने
यह सरह कह दिया कि पहली काइस कही वब बानो पाढ़े मानव उनसे बानी यही नहीं अतिम सोदें में यह सफेत मी कर दिया कि मधुमारची के उत्तरार्थ का यह क्याचर उन्होंने तब किया जब नतुर्धुंग का नाम मारुदेश में दिख्यात हो जुला था। डांग ग्राह का नहना है कि मायवानक बामकन्दना नामक स्तना के केवक मायव वही मायव हैं जिन्होंने मधुमालती के उत्तरार्थ का स्तान्तर हिया और चूँकि मायवानज कामकन्दना का निर्माण संवत् १६०० में हुआ जी निम्म पद से स्वष्ट है—

सवत् सोरै सै वरसि जैसलमेर ममारि । फारत मास सहावने करी वात विस्तार ॥

'इससे यह निश्चित रूप से शत होता है कि मापन सबत् १६०० में न केनल वर्तमान में, वे प्रेम रूपाओं की रचना भी कर रहे थे, खतः यह अनुमान सहबू हो में किया जा सकता है कि मुद्रामानती में उनके इसतेहेंग ना समय सबत् १६०० था उसके अरूपा निकट होता। उस समय तक, जैना मापन ने कहा है चतुर्यं बतासे विस्पात कवि हो चुके थे, उनका रचना नाल १५५० किम्मी के आरम्पामाना जा सकता है। बा॰ ग्रुस इस अप को इससे भी अधिक प्राचीन मानने के पक्ष में हैं।

चतुर्युत दास की मधुमालती का रचना काल, क्हवना, सितम्बर १६५६ ए० २०-२१

भादो विदि तिथि पवमी, वार सोम मयत रेवती । चन्द्र नन्य वहु पाइयो, रुगन भली सुभ उपनी मती ॥ रचना सामान्य ही है । भाषा ब्रज है ।

धर्मदास

§ १६४. नैन कि ये । इन्होंने सन्तर् १५३८ (१५२१ ईस्ती में) में धर्मोरदेश आन्नाशास नामक बन्नमाया प्रत्य किया । इस प्रत्य में नैन आनक क्यों में निष्प पारनीय आनारों हा बहा सुन्दर विश्वण किया गया है। विनि ने अनने बारें में क्या से किया है कि वा स्वादिनी बाति से में । अनने बुरें पुत्रमें वा परिवच देते हुए लेखन ने किया है कि चूल स्व विस्थात आवक बायकों नी बाति में हैं रिक्ष खाडु नामक पुरुष हुए । उनके क्येंग्र पुत्र नस्मती विन ने परम उनाकक और परमिनिवेडी दयाहु व्यक्ति में । उनने पुत्र पत्र हुए वो बिल, वेच और कणातर से, उनके दो पुत्रों में एक पर्मदात हुए बिल्डीने इस आवनाचार ना उनदेश दिया । प्रशित्त संबद में दनने बना के खुळु अशा उद्धुश्त विने हुए हैं । क्रम को पचना के नियम में निवे में किया है—

> पन्द्रइ सो अरहतरि वरिसु, सम्बन्धर कुचलह कन सरसु विमेल वैसाखा अलतांज, तुपवार सुवियह जानोज तादिन पूरो कियो यह प्रन्य, निर्मेल धर्म भनी जो पंप भगत कर शर विपनि हाजु, परस सुख कवियन कह करन

प्रत्य में लेलक ने इत उपरेश सुनने बानों के प्रति अपनी ,मगन कामना व्यक्त की है। यह प्रत्य पर्यव्यक्त में सहकता और क्रमयन की सरिस्का का परिचायक है। भागा अल्पन नोषणस्य और प्रवादयक है।

> थन बन दूर पूत परिवार, बाड़ै मंगर सुबसु अवार मेदिनि दयबडु अब अनग्त, बारि माम मिर जरू बरायन्त माण बाबडु घर घर हार, कामिनि गावड़ि मगरू बार पर घर सीत दयबडु सुबस, बासे रोग मायदर दुवस घर घर दान पूत्र अनिवार, आवक पत्रहि आर आवार नदर जिन सामत सतार, पर्मे द्यारिक चली अवार नदर जिन सामत सतार, पर्मे द्यारिक चली अवार नदर जिन दावत सतार, पर्मे द्यारिक चली अवार

छीहल

§ १९५. १७वी ग्रतान्त्री का हिन्दी काहित्य एक ओर बहाँ सुर और तुन्सी वैते अमतेम प्रतिभाशाली भन्न कविया की गैरिकवाणी से पवित्र होक्ट हमाग्र अदा-मादन क्या वरी देव, विश्तों और पद्माकर बैने कवियों की श्वकारिक मावना पूर्ण दचनाओं के बारण स्ट्रास व्यक्तियों के ग्रते का हार भी 1 बहुत से लेग रिकाणीन श्वकारभारना के साहित को

नशरित संग्रह, अतिशय क्षेत्र खबदुर से प्रकाशित । पाण्डुलिपि आमेर मानार, जयदुर में पुरावित

भादो बदि तिथि पबर्मा, बार सोम नपत रेवती । चन्द नृत्य वलु पाइपी, रुगन भली सुम उपजी मती ॥ भवता मामान्य ही है । भाग ब्रज है ।

धर्मदास

> पन्द्रइ सो अडहतरि वरिसु, सम्बन्धर कुषजट कर सरसु निर्मेख वैसासी असतीय, इप्यार सुनियह बातील तादिन पूरो कियो यह प्रन्य, निर्मेख धर्म भनी जो पंच मगल कह अठ विधनि हरतु, परम सुख कवियतु कह करत

प्रत्य में लेलक ने इस उपदेश सुनने वालों के प्रति अपनी मागव कामना व्यक्त की है। यह प्रत्य पर्मेश्य नी सहबंश और बनमण्ड की सदिन्छ। का परिचायक है। माग्र अत्यन्त बोषमण्य और प्रवाहबक्त है।

> यन कत दूर पूत परिवार, वाहै मंगल मुच्छु अपार मेदिनि दपबडु अब अनरत, चारि मास मिर जरू वरापन्त मारत बाबडु पर धर हार, कामिति गार्वह सगल चार पर घर सीत उपबडु सुरस, नासे रोग आपदा दुरख पर पर दान पूच अनिवार, आबक चर्लाई आद आचार नदर जिन सीसन सतार, प्रमें द्यादिक चली अपार नदर जिन सीसन सतार, प्रमें द्यादिक चली अपार नदर जिन सीसन सतार, नदर सुन निर्मेष्य अदेह

बीहरू

§ १९५० १७वीं ग्रतान्त्री का दिन्दी साहित्य एक और वहाँ सुर और तुन्त्री वैसे अयंतिम प्रविभागालां भक्त कविषा की गैरिकवाणी से पवित्र होकर हमार्च अदा-मावत बना वहीं देव, विहास और पद्माकर बेने कविषों की ग्राङ्गारिक मानना पूर्व रचनाओं के सरण सहरूप व्यक्तियों के तले वा हार भी । बहुत से लेग रिविकार्णन ग्राह्मर-मानना के साहित्य हो

त्रशंक्त संप्रद, अतिराय क्षेत्र अपशुर से प्रकाशित । पाण्डुलिपि आमेर माहार, अपशुर में सुर्राचत

बस्तु को देखने से लेखक के जैन हाने का अनुमान किया वा सकता है। बावनी के शुरू के कुछ छुपया के प्रथम अहर से 'ॐ नम सिंढ' बनता है, इससे भी छेखक के जैन होने का पता चलता है।

§ १६७, पच सहेळी के अन्तिम दोहों से मार्म होता है कि कवि ने इस रचना को १५७५ सबत में लिखों—

र वनस्य । १९४१ — सम्बत पनरह पचुहत्तरह युनिम फासुन सास ।

पञ्च सहेली वरतवी, कवि धीइल परगास ॥६८॥ छीहल कवि मा कुछ विस्तृत परिचय छीहल बावनी के अन्तिम छुप्प में दिया हुआ है—

चडरासी आगरूल सह लु पन्द्रह सम्बन्धर । सुङ्क पम्ह अप्रशी मास कातिया पुरवासर ॥ हिरदय उपनी चुन्दि नाम की गुरू को छोन्दो । सारद तनह पदाह कितित सम्मूरण कीन्द्रो ॥ नाडि पाव सिनाय मुठनु आगरबाठ कुळ प्रगट रिव । थावनो चसुधा दिस्तरी किवि कब्ज कीहरूल कित ॥ विश्व पदार प्रथम सबत में हुई दम पण्डम (मोनी) उन्मे ह मार्ग विश्व पदार प्रथम सबत में हुई दम पण्डम (मोनी) उन्मे ह मार्ग

बाउनी की रचना रेश्नर सबत में हुई इस प्रवार 'बहेली' इससे द वर्ष पहले लिखी गई। विवि छीहरू के अञ्चलर उनका बाम स्थान नालि गाँव या। पिता शिवनाथ ये बो अग्र-बाल क्लीय थे।

वि ह्येष्ट की पच सहेटी आर मिक रचना माझूम होती है। क्वि ने इस छोटे किन्तु अवनत उचनेटि के सरस काव्य में पाँच विराहणी नापिकाओ की ममैन्य्यथा को अव्यत सहज उप से अच्च किया है। माहिला, वविलिनी, छोपनि, कलादी और होनादित अपनी अपनी विराह ज्या विश् को ताती हैं। ये मोती नाविमार्थ अपने दु ख को अपने श्रीयन की सुपरिचित बस्तुआ तथा उनके प्रति के मिल ने साने रामात्मक बोध के मालिन अपने हु ख को इन राज्यों में बच्च करती हैं। वैसे मालिन अपने हु ख को इन राज्यों में बच्च करती हैं। वैसे मालिन प्रति हैं को इन राज्यों में बच्च करती हैं—

बालो जीवन छुटि के चलो दिसाउरि कत ॥१७॥ विस दिन बहुडू प्रनाल उर्च नयनह नोर अपार ।

विरहर मालं दुरस का सूमर मरवा कियार ॥ १ = 11 कमल बदन कुमलाइया सूक्षं सुत्र बतराह ।

पिय किय ग्रुम्म इस्क्रे पिन बतर सारद बाइ ॥ १ ६ ॥

पाय केरी पत्ता ग्रुप्त । नवसर हार ।

को एडि पहिरहें पाव बितु लगाइ क्ष्मु अवार ॥ १ २ ॥

वैशेलिनी कहती है कि है चतुर, मेरा हुल तो मुम्ते कहा ही नहीं जाता—

हाथ मरोरल हिर पुनत किस सो कहूँ पुकार ।

तन दामद मन करमलड् सवन से सब्द धार ॥ १ ५ ॥

पान कर्य केव सुन्त के दीलत न सक्द धार ॥ १ ५ ॥

दूमरी रात वसत की गयो विवास सुक्ते ॥ १ १६ ॥

बल को देखने से लेखक के बैन होने का अनुमान किया वा सकता है। बावनी के शुरू के कुछ छुप्पा के प्रथम अब्दर से 'ॐ नम सिख' बनता है, इससे भी लेखक के जैन होने का पता चलता है।

§ १६७. पच सहेली के अन्तिम दोहों से माजूम होता है कि कवि ने इस रचना को

१५७५ सबत में लिखा-

हुआ है---

सम्बत पन्तह पञ्चहत्तह पूनिम फागुन मास । पञ्ज सहेठी वरमवी, कवि होइल प्रयास ॥६८॥ श्रीहन कवि मा कुछ विरात परिचय होइल भावनी के अन्तिम छुप्पर में दिया

चडरासी आगल्ड सह ज पन्द्रह सम्बन्ध्य । सुरुष परब अष्टमी मास काजिम गुरुवासर ॥ बिरदय उपनी तुब्दि नाम भी गुरु को कीन्द्रो । सार वन्द्र पसाह भीवत सम्मूरण कीन्द्रो ॥ नाजि माम सिनाम सुनन्तु भगरबाठ कुळ मगर सी । वाजनी बसाय सिन्दरी कहि बक्का कींडल्ड कींव ॥

वाननी को रचना १५८५४ सनत् में हुई इस प्रकार 'राहेसी' इससे ६ वर्ष पहले लिखी गई। विष होइल के अनुसार उनवा बाम स्थान नालि गाँव था। पिता शिवनाथ ये को अम-वाल वर्ताय थे।

पि छोहर भी पच छोहरी आरमिक रचना माद्म होती है। कवि में इस छोटे किन्तु अध्यन्त उचमेटि के सरस माद्य में पाँच विराहेणी नारिकाओं की मार्म-व्यथा को अस्पत तरहत उन से स्पर्स किया है। माछिन, वशिलिनी, छोपनि, कहाड़ी और सोनारिन अपनी अपनी विरह व्यथा निव में मुनाती हैं। ये मोली नाविकार्य अपने हु स को अपने बीचन की मुनारिवित बन्दुआ तथा उनके प्रति अपने तथास्पर-क्षीय के माध्यम से प्रकट करती हैं। बैसे माछिन अपने हस की इन शाद्य में द्वाच करती है—

पहिलो बोली माखिनी हम कू दुश्य अनन्त । बालो वोजन छुटि के बजो दिसायदि कह धा शा निस दिन बहद प्रबाल रहुँ नवनद नोर अपार । विस्टड मालो दुश्य को सुभर मरवा किमार ॥११८॥ कमल बदन कुमलाह्या सुको सुप बनराह । पिय जिम मुख्य हुइके पित बसस बारतर बाद ॥१४॥ स्था बेरी पन्दी गुँप्या नवसर हार । जो पहि पहिल्ड पाव पितु लगाइ अगु असार ॥२२॥ स्तीवेशिकी बहती है कि है नगुर, मेग्र सुक से इससे बहर हो नहीं जाता—

हाथ मारेरड सिर पुनर किस सो क्टूँ पुकार । तन दाफद मन कटमळ्डू नयन न खडरू थार ॥२५॥ पान कर्षे सब सुब के बेलि गई सत्र सुक । दूमरि रात बसत की गयो विवास मुक्ति ॥२६॥

- (१) पच सहेली री बात (नम्बर ७८, ह्यंद सख्या ६६, पत्र १६-२२ लिपि-काल १७१८ स०)।
- (२) पचसहेली (नम्बर १४२, पृ० ६७ ७६)।
- (३) पचसहेरी री शत (नम्बर २१७) अन्त में कुछ सरकृत श्लोक भी दिए हुए हैं।
- (४) पचतहेशी से बात (नग्पर ००) पत्र ६८ १०२। लिपिबाल १७४६ स०।

इन प्रतियों में ७ प्रमास वाली और ७ 3 नगर पालो प्रतियों की भाषा सबभाया थे निकट है वब कि नगर २१७ और १४२ में 'राजस्थानी प्रभाव ज्यात है। अमेर भाड़ार की प्रतिशिष्ठ में भी राजस्थानी प्रभाव अभेरूक दिसाई पड़ता है। इसे न्यिकितां की विशेषा मान सकते है। मैंत कई प्रतिया में राजस्थानी प्रभाव को देशते हुए यह मानना रवेगता कि प्रवास सरेली की भाषा शहस्थानी विशेष तक्यामा है। राजस्थानी प्रभाव नियेष कर से न>ण में तथा भूतमांक्र निया के आकारान्त क्यों में दिलाई पड़ता है। जुगरूवा (४८) काड्या (४६) बीटिया (३३) जुमलाइया (१६) झादि में। क्षिती किसी प्रति में ये ही कियायें ओकारान्त भी दिलाई पड़ती हैं। प्रथमा बहुवचन में 'या' अन्त वाले रूप भी राजस्थानी प्रभाव हो जबाते हैं। सहेलियाँ (६), प्रवालियाँ (१२) बीवनवालियाँ (१३) आदि। वाकी प्रयोग पूर्णतः जबभावा के ही हैं।

बाबनी

§ १९ म. बनि झोइन की वाबनी भाषा और मात्र दोनों के परिशक का उत्तम उदाइरण है। जीते और उपदेश की सुकरतः विषय बनाते हुए भी रवनाकार कभी भी कारने से दूर नहीं हुआ है इसीिएर माय उसकी कविता में जीति की एक नए दग से तथा नए भाषों के साथ अभिपालि हुई है। रवना के क्या परिशिष्ट में सल्ला हैं। इसलिए वेयक एक खुष्पय ही पढ़ी उद्भुष क्या आता है—

> हांन्द्र कुराली हाथ प्रथम खोदियत शेस करि । किर रासम आहड घरि आनियो ग्रम भरि । देकि क्व प्रहार सुद्द गति चह चहामो । पुनरिष हाथिई पूर पूर परि अधिक खुरायो ॥ पुनरीन बीहरू कहै कुम कहे हुउँ सहाँ सब । पर तरिम याद्द उठसहमें थे दुसताले साँहि अब ॥

चावनी नी रचना छुण्य छुट में हुई है इसी छारण इसकी मापा में प्राचीन प्रयोग ग्यादा मिलते हैं। इस पहले ही कह आपे हैं कि छुण्यों में अनक्षय ने प्रयोगी को जान यूक्त-नर छाने को शैंगी ही बन पाँद पी को बहुत बाद तक चण्डी रही। मापा अब है, आने बावनी भी मापा पर बहुन रूप से विवास रिखा गया है।

- (१) पच सहेली री बात (नम्बर ७८, छुंद सख्या ६६, पत्र १६-२२ लिपि-काल १७१८ स०)।
- (२) पचसहेली (नम्बर १४२, पृ० ६७ ७६)।
- (३) पचसहेनी री बात (नम्बर २१७) अन्त में युक्त सस्तत इलोक भी दिए हुए हैं।
- (४) पचत्तहैनी से बात (नम्बर ७७) पत्र ६८ १०२ । लिपिकाल १७४६ स॰ ।

इन प्रतिशों में ७ प्रमुख्य बाली और ७ 3 नम्बर बाली प्रतिथों की भाषा ब्रह्माणा के निकट है बह कि नम्बर २१७ और १४२ में राजस्थानी प्रभाव ब्लावा है। आमेर भाषार की प्रतिशित में भी शहरधानी प्रभाव को बेह दिसाई पढ़ता है। इसे न्याविश्त की भी प्रमाव को देखते हुए यह मानना पढ़ेगा कि प्रसाव होते हैं। मेचा प्रवासनी विश्तित ब्रह्माणा है। शहरधानी प्रभाव निर्मेष क्या है निर्माण कियानी विश्तित ब्रह्माणा है। शहरधानी प्रभाव निर्मेष क्य हे ने निर्माण कियानी किया भूतमाशिक निया के आक्ष्मानत को में दिलाई पढ़ता है। युगदमा (४८) काट्या (४८) बीटिया (३३) ब्रह्माइया (१६) ब्राह्मि में विसी विसी प्रति में ये ही क्रियाँ औष्टापन्त भी दिलाई पढ़ती हैं। प्रभाव बहुवचन में 'या' अन्त बाले रूप भी राजस्थानी प्रभाव ही बताते हैं। योदालवीं (१२) भाविश्वाँ (६२) मार्थिता हुवचन में 'या' अन्त बाले रूप भी राजस्थानी प्रभाव ही कताते हैं। वोहीलवीं (६), म्वालियाँ (२२) योवनवालियाँ (१२) आदि। वाची प्रयोग पूर्णतः व्यवासा के ही हैं।

बावनी

§ १९.८. कि छोदन की वाबनी भाषा और भाव दोनों के परिशक का उत्तम उवाइरण है। नीति और उपरेश को मुख्यतः विषय बनाते हुए भी रचनावार कभी भी काव से दूर नहीं हुआ है इसील्प्र माय उसकी कविता में नीति की एक नए दग से तथा नए भाषों के साथ अभिनाति हुई है। रचना के अर्थ परिशिष्ट में सलस हैं। इसल्प्र वेचल एक खुष्पय हो पढ़ी उत्पृत क्षिण जाता है—

> होत्ह कुराली हाप प्रथम खोदियउ रोस करि। करि रासम आरूड घरि जानियो गुग मेरि ॥ देक्रीर रूप प्रदान गाँड पह बहायो। पुनारि हार्थोई कृट पूप परि अधिक सुखायो॥ दांगी अगिति बांहल कहै कुम कहे हुई सस्में सद। पर तरिंग याद टक्साहले में दुखसाले मोहि अव॥

मानती भी रचना छापन छुन्द में हुई है इसी छारण इसही भाषा में प्राचीन प्रयोग न्यादा मिन्दों हैं। इस बहुके ही कह छात्रे हैं कि छुन्यों में अपभाश के प्रयोगा को जान कुफ-कर छात्रे की श्रीणी ही बन गई थी जो बहुत बाद तक चन्न्दों रही। भाषा तक है, आसे बाउनी भी भाषा पर सकुक रूप वे दिवार किया गया है।

गुरुप्रन्थ में वजकवियों की रचनाएँ

§ २००. गुख्यन्ति १६०० शा के पूर्व के कई सन्त-सिविधी ही एचनाएँ हम्हित हैं । सन्त-आणी धार्मिक भारत देश के लिए अन्त-अल की तरह हो आवन्त आवश्यक बता रही है। इसी भारण एक ओर बार्रे अनन्त अनता के उच्छ में निविस्तिय ने बार्णियाँ विधियों में लिखीं प्रत्या की अपनेत प्रयाद श्री हैं। वहीं निव्य मित्र प्रयोग में आगे के नारण इनके के क्लेवर में परिवर्तन और विद्यार मों कम नहीं आया है। बीभायमध्य अवत् १६६१ में सिक्सी के पविचे मुक्त अर्थुनिय ने इन वाणियों को निविद्य कराकर इन्हें धर्म प्रत्य का एक हिस्सा बना दिया, जित्रके कराण मुद्ध स्वनार्थ अन्त के 'भीति भावन' के आतिवादी परियाम से बच गई। इन सत्तों की दस्ताओं की भाषा १६६१ तक बित्त स्थित में पहुँची थो, उत्थर वीच की काल-व्यति का प्रमाद वो अक्षयर दी वदा होगा, निर मी इनकी प्राचीनवा के प्रति वृद्ध आराध तो हो सन्ती है।

मुख्यम्य सहव में निश्चित काल-वीमा के अन्तर्गत आविगृत, बिन कथियों से एक्ताओं

सरहांत हैं, उनमें बपदेव, नामदेव, तिलोचन, छवना, बेनी, पमानन्द, पन्ना, पीना, सेन, कबीर, दैराह, परीद, नानक और मीरा का नाम सम्मिति है। इन कवियों की रूचनाओं पर अब तक नहुत उन्न लिया का जुका है। लादियक हिए से इनके हितियों का मुख्यकन हुआ अब तक नहुत उन्न लिया का मुख्यकन हुआ है। इनमें से कुल प्रसिद्ध कंगों की भागा पर भी अवस्व विचार मिलते हैं, पवर्ष कहुत विकारों की रूचना है। इनमें कि उन्न कि उन्न कि विचार के स्वाप कर से कि विचार के स्वाप के स्वाप कर से कि अविकारित अवस्था की स्वना देती हैं, विवार के इन कि विचार के स्वाप इन कि स्वाप के स्वन कि हैं। मीचे इन किसी के अवस्था सित्त परिचय के साथ इनके स्वनाओं, विदोषतः भागा का विरुप्य प्रस्ता विचार बात है।

गुरुप्रनथ में वजकवियों की रचनाएँ

\$ २००. गुज्यन्यमें १६०० त० के पूर्व के कई सन्त-कियों की रचनायें सहित हैं। सन्त-जापी वार्तिक भारत देश के लिए अन्यन्त की तर ही अपन्त आवश्यक यहा रही है। इसी मार एक और वहाँ अनन्त बनता के अच्छ में निवासित ये वाणियों में अपने स्वान्त अंति होती है। इसी मार एक वोर वहाँ अनन्त बनता के अच्छ में निवासित ये वाणियों में अपने के नारण इनके कता में निवासित में अपने के नारण इनके कता में निवासित और विवास के अधिकार के अधिकार के अधिकार के अधिकार के अधिकार के विवास के अधिकार के विवास के अधिकार के अधिकार

मुख्यन्य सदन में निश्चित बारू-सीमा के अन्तरीत आविभूत, विन बिवयी की रचनाएँ स्पर्धीत है, उनमें बपदेश, नामदेन, त्रिकोचन, सकता, वेनी, प्रमानन्द, प्रमा, पीमा, तेन, कारी, देशा, परीद, नानक और मीरा मा नाम सिमालित है। इन कवियो की, स्वाम कर अविद्या के स्वाम के स्वाम की, स्वाम के स्वाम के स्वाम के स्वाम के स्वाम के स्वाम के स्वाम की स्वाम के स्

प्राप्तः ब्रह्म की विराक्तर भागरियति, धारांड स्टडन, शास्त्र बेद की असमर्पता, साधु के एकड कीउन की महत्ता सम्बन्धी विराद्यों हुंसी रेखता हीओं में चन्द्री हैं, किन्द्र मावदूर्ण सहत मासि की रचनाएँ प्रकाशया में ही हिराइं पहती हैं। नामरेप ने कर रचनाएँ सुद्ध ब्रह्मभाषा में किसी। इन रचनाओं के ब्रह्मभाग मृनुम्न चित्ता, हरीवेरेसुराण आदि की भाषा भी तरह कारी पुरानी सर्वति होती है। दो उदाहरण नीचे दिये बाते हैं।

> राद्दर से प्रतु जब से टाइंद पेल परिट है सोसिड आपन देंड रेंडुरा आएन भार त्यावी पूजा जल से तरम सारा से उन्हें हंक्टन सुनन को दूजा ॥१॥ आरहि गाँचे आएडि गाँचे आप बजाने दूरा कहत नामपेड में सेरो टाइट अर्जु उरा गूप्रा ॥१॥ २—में बडरों मेरा राम मतारु रचि रचि तास्ट करने सिंगार मार्ट मिंदुड मार्ट निंद्रन स्टे निंद्र लोग । तत सतु राम पिचारे जोगु ॥॥। बाद खिवाद काह सिट क कोजी, रमना राम रसाह्य भीजी।

1-वदह किन होड माध्व मोसिव

बाद विवाद काहु सिंउ न कांजे, रमना राम रसाइनु पांजे । अब जीअ जानि ऐसी यनिआई, मिठउ गुपाल निसान बजाई ॥५॥ उस तींत निन्दा वरे नरु कोई, नामे श्री रग भेटल सोई ॥४॥

§ २०२. इन पदी भी भागा पूर्णतः अब है। इसमें आचीन जब के प्रयोग भी पर्धात मात्रा में दिलाई पडते है। भाषउ >मार्था, मो सिउ >मो सी, परिज >पर्यो, गोसिउ >ते त्या, सुरन बड >मुझन की, करउ >वर्ष, निरंड >निर्शं में उद्हृष्ट स्थरी की सुखा, सिड, कड आदि परसर्गों के पुराने हम इस भाणा भी आचीनता के मनाण है। सन्देखसङ की भाषा में ब > उसे परसर्गा शीरोजेंनी अपप्रदा की जानेमुखी प्रद्रांत वा प्रचक्त दाला गया है (दित्ये सन्देखसङ ई. ३) नामदेव की भाषा में बडते < दाइल व्याहक, नामदेव की भाषा में बडते < दाइल व्याहक, नामदेव नो मार्यों देव की दासर्ग है।

क्रियापट, सर्थनाम (ताकड, मोसिड, मेरो) तथा वाक्यविन्यास सब दुछ ब्रजमाया के वास्तविक रूप की सचना देते हैं ।

नापरेव की कृतियों में मधाडी प्रभाव भी दिखाई पहता है, न्यान तीर से रेखता रीडों की अपना पुपानी राजस्थानी रीडों की रचनाओं में यह मुक्ति भत्नमती है, किन्द्रा प्रकाशाय बाती रचनाओं में यह प्रभाव कम से नम दिखाई पहता है। यह प्रकाशाय के विशास और उसने मुनिश्चित स्थानी स्थिता का भी योजन है।

§ २०३. बिलोचन—महायष्ट्र वे छन्त विविश्वेचन के जीवन कुत की कीई सिनेस्तर सुनना नहीं मिजती। चे० एन० पर्जुहर के मतानुसार इनका करम १३२४ ईंग्वी मे हुआ, पढरपुर में रहते ये। नामदेव के समकालीन ये। निक्षेचन और नामदेव के आध्या-

१. ऑडर लाइम आव द शीलितस लिटरेचर इन इव्डिया, पृ० २६०-२००।

प्रायः बहा की निराकार भावस्थिति, वारांड स्टाडन, शास्त्र वेद की असमर्थता, चाधु के पृष्ट की नक की महत्ता सम्बन्ध किताई होती रेखता शैळी में चनती हैं, किन्तु मावपूर्ण सहज मित की स्वनाएं ब्रज्ञभाषा में ही रिसाई पडती हैं। नामदेव ने कई रचनाएँ द्युद हजनायां में किता । हन रचनाओं की ब्रज्ञभाषा में किता । हन रचनाओं की ब्रज्ञभाषा मनुम्न चरित, हरीचेंटपुराण आदि की भाषा की तरह काशी पुरानी प्रतीक होती है। दो उदाहरण नीचे दिये चार्ज है।

1—बद्दु किन हो ह मायउ मोसिट हाइर से अतु जन से हाइर पेळ परिड है सोसिट आपन देज देहुरा आपन आप क्याबि पूता जल से तरग सरग से बतु है कदन सुजन को दूजा ॥१॥ आपदि गाये आप क्षाब सहाये तरा कहत नामदेड मूँ मेरो हाइर जनु जरा तृ प्रा ॥२॥ २—में बदरी मेरा राम अतार रिच रचि साडड करड सिगार मले मिन्दु भले मिन्दु केले मिन्दु क्या । सन मनु राम प्याच होता हो ॥१॥ बाद विवाद काहु सिड न केले, रमना राम रसाइनु पोने । अब जीश जानि ऐसी बनिआई, मिलड गुपाल निसान बनाई ॥१॥

सुरद्वा, सिउ, कड ब्यादि परसर्वी के पुशने रून इस आपा की प्राचीनता के प्रमाण है। सन्देशरासक की भाषा में व>उ की परस्ता शीरवेंनी अपग्रश्च की व्रजान्मुखी प्रदृत्वि का स्वक स्ताचा नगा है (दिस्त्वे सन्देशरासक हु३३) नामदेव की भाषा में यउरी <वाउल< ब्याष्ट्रल, नामदेव<नामदेव, देउ<देव, माघउ<माघव आदि इसके उदाहरण है।

कियापट, सर्थनान (ताकड, मोसिड, मेरो) तथा वाक्यवित्यास सब दुछ अजभाषा के बासविक रूप की सचना देते हैं।

नामदेव की कृतियों में मदाडी प्रभाव भी दिखाई पडता है, जान तौर से रेखता रीडों की अपना पुरानी राजस्थानी रीडी की रचनाओं में यह मुश्ति भत्तनती है, किन्तु ज्ञबभावा बाली रचनाओं में यह प्रभाव वस से नम दिताई पहता है। यह ज्ञबभावा के विशास और उसमें मुनिश्चित रूपनी स्थिता का भी गोंतन है।

§ २०३. त्रिक्टोचन—महाराष्ट्र वे उन्त विवि त्रिक्षेचन के जीवन कुत वी कोई सिस्तर स्वना नहीं मिळती। जे० एन० पर्जुहर के मतानुसार इनका कम १३२४ ईन्यों मे हुआ, परपुर में रहते वे। नामदेव के समशकीन वे। त्रिक्षेचन और नामदेव के आध्या-

१. बाउर लाइम बाव द शीलेजस लिटरेचर इन इण्डिया, ए० २६०-३००।

प्राकृत पेंगलम् के एक पद की भाषा देखिये—

जिण वंश्र धरितने महियल रिज्ने पिट्टिहि दंतिर्हि ठाउ घरा। रिउवच्छ विचारे हण्ठलमु धारे वंधिश समु झुरज्ज हरा।। कुछ स्तिय रूपे दहमुह तप्पे कंस्रश्र केंस्रि विज्ञास करा। कुछा। प्रयक्षे मेबुह विश्रले सो देउ परायण सुम्ह बरा।।

(ब्राकृत पैंगलम् २०७१५७०)

जबदेव के गीतगोबिन्द के दशाबतार बाले इलोज से इस पर का अवस्थाः साम्य इम पहले ही दिखा चुने हैं। बन्देव के गीतगोबिन्द के परवार्ती झाल में नई अवुवाद हुए, इस्तिष्टर यह कहा था सनता है कि किसी व्यक्ति ने गीतगोबिन्द का पिगल अवस्था में अनुवाद किया होगा किन्तु अन्यत्व तो प्रान्त वेंगलम् का रचनाकाल १४०० के बाद नहीं स्वीचा वा सनता, दूसरे अनुवाद में यह सहबता, यह मामान्यिक कम दिलाई पहती है। जो भी हो प्रान्त पेंगलम् के कृष्ण कीला सम्भावी पद, गीतगोबिन्द से उनका पूर्ण साम्य, पुत प्रम्य साहव के क्यदेव भणितारी चुक्त दो पद तथा उनकी भागा से प्रान्तियंकम् की भागत मा इतना साहद्य-१स बात के अनुमान के लिए कम आधार नहीं है कि सस्कृत के प्रतिव्य गीतकार नयदेव ने कुछ कविवायों प्रारमिक्त प्रकाशा अववा स्थित अपन्नप्रय में भी लिली भी।

व्यदेव के रचनाक्षल के विषय में अब भी अनुमान का ही सहारा लेना पडता है। व्यदेव का सम्बन्ध सेनवंदी राजा ल्हमणसेन से जोड़ा जाता है विनका शासनपाल १९७६—१२०५ ईस्ती माना बाता है। मागवत की (दराम स्कच २२।८) भावार्ध-रीपिया को बैप्पावतीरिणी टीझ से विदित होता है कि उक्त लहमणसेन के दरनार में जबदेव, उत्पादिकर के साथ रहते थे। व्यदेवने गीतनीविन्द में जिन कान्यों की चर्चां की है उनमें अमायिकर के साथ का निकास के स्वाविकर का माना अनात है:

वाचः पहत्र युमापतिषरः सन्दर्भग्रद्धि गिरां आर्माते जयदेव एव शरगः रक्षाचो हुस्हद्रतः । श्रगारोचरस्वमेयरचनेराचायमोवर्धनः स्पर्धे कोऽपि न विश्वतः श्रुतिषरो धोधी कविः रमापतिः ॥

(गीत० ११४)

इस रुलेक में आये कवियो ना सम्बन्ध मो सेनवारी राजा छत्तमणसेन से जोड़ा जाता है। दुख लंगा कपरेष को उद्दोशानरेश कामाणपेरेब (१२६६-१२१२ हेंस्वी) तथा राजा पुरमोत्तमदेव (१२२०-१० हेंस्वी) ना समसामिक मानते हैं। इन तथ्यों के आधार पर इम जपरेब को विक्रमी १३ सी ग्रताब्दी के अला ना नहीं मान सकते हैं।

सान सारू, सुद्दम्य साहब, पद १, यृ० ११०४, तरन तारन सस्कला ।
 भ्रां जयदेव सहचरेण महाराज छच्मणसेनमजिबरेणोमायात्रेपरेण सहः (दराम स्कृत्य ३२१८ की टॉका)

रे. रजनीकान्त गुप्त, जयदेव चरित, हिन्दी, बौँकीपुर ६८१० पृ० १२

प्राकृत पैंगलम् के एक पद की भाषा देखिये—

जिल वेंत्र परिज्ञे महिष्ठ लिज्जे चिट्टिहि दंतिहि ठाउ घरा। रिवबच्छ विवारे छुठनेशु धारे बेधिश समु सुरज्ज हरा।। छुठ खरिष कप्पे दहसुह तप्पे कंसश्र केसि विशास बरा।। करुणा परछे मेहह विश्रके सो देउ परावण सुग्ह बरा।।

(प्राकृत पैंगलम् २०७१५७०)

जबदेव के गीतगोविन्द के ररावतार वाले इलांक से इत पर का अवस्याः साम्य इम पहले ही दिवा चुके है। इब्बदेव के गीतगोविन्द के परवर्ती बाल में बई अनुवाद हुए, इसलिए यह कहा या सकता है कि किसी व्यक्ति ने गीतगोविन्द का पिताल अवस्क्ष में अपुराद किया होगा किन्तु अन्तव तो प्राष्ट्रत चैंगलम् का रचनाकात १४०० के बाद नहीं लीचा वा सरता, दूसरे अनुवाद में यह सहकता, यह माया-शिक इम दिनाई पटती है। जो मी हो प्राप्त पेंगलम् के कृष्ण डीला सन्तव्यी पद, गीतगोविन्द से उनका पूर्ण साम्य, गुह अन्य साहब के सबदेव भणिताने युक्त दी पद तथा उनको भागा से प्राष्ट्रतयेगलम् की भागा था इतना साहस्य-इस वात के अनुमान के लिए कम आयार नहीं है कि सहस्त के प्रतिक्रत गीतकार लयदेव ने दुक्त करितारों प्रारम्भिक प्रकाशा अयवा दिनल असक्रय में भी लिखीं थी।

बरदेन के रचनाताल के नियम में अब भी अनुमान का ही सहारा लेना पड़ता है। व्यदेव का सम्बन्ध सेनवंद्यी राजा स्ट्रमणसेन से जोड़ा जाता है जिनका शासनकाल ११७६-१२०५ देखी माना बाता है। मागमत की (दशम रक्त १२।८८) भाराध-रीविका से बिप्पत्नोशियों देखा से बिदित होता है कि उक्त सहम्मासेन के दरनार में जयदेव, उम्मादिकार के साथ रहते वें। बयदेवने मीतगोबिन्द में जिन करियों की चर्चों की है उनमें उनमाविकार का भी नाम आता है:

बाचः पष्टव सुमापतिधरः सन्दर्भशुद्धि गिरां बागिते त्रपदेव पृत्व शरागः रहात्यो हुरुद्दवः । श्यारोत्तरस्वमेवर्षचैराचायगोवधेवः स्पर्भो कोशिव च विश्वतः श्रुतिधरो धोयी कविः स्मापतिः ॥ (गीत० ११४)

इम रुलेक में आये कवियों ना सम्बन्ध भी केनवारी सजा शहमणकेन से जोडा जाता है। दुख लंग चयदेव को उडीसानरेस कामाणवदेव (११६६–१२१२ ईस्वी) तथा राजा पुरपोतानदेव (१२२७–३० ईस्वी) ना समजानिक मानते हैं। इन तम्बी के आधार पर हम जयदेव को विक्रमी १३ भी खालदी के अन्त ना निल मान सक्ते हैं।

^{1.} राग मारू, गुरुप्तम्य साहब, पद १, ए० ११ ३४, तरन तारम सस्करण । १. आं जयदेव सहयरेन महाराज रूपमणतेनमजिवरोणोमापतिधरेण सहः (दराम रूज्य १२१० की टॉव्स)

३. रजनीकान्त गुप्त, जयदेव चरित, हिन्दी, बौँकीपुर ६⊏१० पृ० १२ २३

ब्रजभाषा का निर्माण १७६

रप, फिर भी यह भाषा १५ वीं शती के बाद की नहीं है। भाषा बन ही है, रेखता-रीजी की यर्लिवित खाप भी दिखाई पडती है।

§ २०६. सप्रमा—संत यचना के बारे में प्रचित्रा बनकुतियों के आंतिरिक भीई ग्रामाणित त्रचान्त नहीं मिलता । ऐसा समस्य बाता है कि इनश बन्न सेहाना (लिय) में हुआ था । मेनरिक ने लिला है कि नामदेव और ज्ञानदेव की तीर्थयाता के सिल्हिले में संत सपना से एत्यों को करदा के निकट मुलानत हुई थी। है हु आधार पर अनुनान किया जा सन्ता है कि वे नामदेव के समझलीन ये अतः इनका अविभाव वाल भी १४ वो शतान्ती ही मानना चाहिए । सम्मा बाति के बनारि थे, माम बेचना पुरतेनी पेशा था, बिन्तु इस निकृष्ट कर्मा के तंक से उनकी आरमा बन्मी कर्लित न हुई । गुरु मन्य में उनला एक ही वह मिलता है ।

नृप किनवा के कारने इक्त मह्या वेषधारों।
कामारधी सुआरधी वांधी पंज वेंबारी ॥ ॥
तव मुन कहा जमत हुए जब करमु न नासे ।
सिंह सरन कत आद्ये जब अंदुक मामे ॥ ।
एक बूँद जब कारने चात्रिक हुप पांचे।
मान गये सागर निष्ठे कुनि काम न आदे ॥ ॥ ॥
मान जो यांके थिव नहीं कैसे विस्मावर्ड ।
पूँदि सुवे नडका निले कहु काहि चहावर्ड ॥ ॥ ॥
संस्ति सुवे नडका निले कहु काहि चहावर्ड ॥ ॥ ॥
अडकर कवा राखि केट सचना जबू तोरा ॥ ॥ ॥
अडकर कवा राखि केट सचना जबू तोरा ॥ ॥

भागा माचीन है। नामदेव को भागा की तरह इसमें भी प्राचीन बच के कई चिद्ध दिलाई पडते हैं। बउ>बो, नउका>मीका, विरमावउ>विरमावी, चवावउ>चदावीं ग्रादि इतके राष्ट्र प्रमाण हैं।

§ २०७ रामानन्द्र—उत्तर मारत में मिक-आन्दोहन के संस्थापक रामानन्द्र माराम आदिम है। रामानन्द्र के बीचन वृत्त सम्बन्धी बीई महत्यपूर्ण सामग्री उपत्रव्य नहीं होती। परवर्ता क्षीयों और उनके सुक्षेत्र शिया और पनताओं में इनके बच्चे आती है वो ऐतिहासिक कम प्रवंतान्त्रक अधिक है। रामान्य स्वामो रामाञ्जावार्ष की रिप्प परिच चे चीचे थे। जा॰ रामानुसार वर्मों ने किसा है कि मत्देक रिप्प के हिए यदि ७५ वर्ष स समय निम्पतित किमा साने तो रामान्य सा आदिमांच काल चीद्रह्वी ग्रतान्यों का अन्त उद्धाता है। यथारे पर बहुत वही तरिमा नहीं है क्षीक सामुझे की रिप्प परमारा में एक वीझी के लिए ७५ वर्ष का समय बहुत वही वरीना माद्दम होता है और इत्यों अस्विक अनुमान की शरण तेनी पडती है, हिर भी १४वीं ग्रती का अनुमान जी बतती है हिस्सीक कुछ और प्रमाणों से इतने

^{1.} मैंडलिफ : दि सिख रिलीजन भाग ६, ए० ३२

२. राग विलावल पद् १, पृ० ८५८

३. हिन्दी साहित्य का आलोचनहमक इतिहास, पृ० २२१

व्रजभाषा का निर्माण १७६

रुप, फिर भी यह भाषा १५ वीं शती के बाद की नहीं है। भाषा ब्रज ही है, रेखता-शैची की गरिंचित छाप भी दिलाई पडती है।

\$ २०६. सप्रमा—संत सबना के बारे में प्रचल्टिय जनभूतियों दे आतिरिक कोई ग्रामाणित चुवान्त नहीं मिखता । ऐका समम्य जाता है कि इनना जनम सेराजा (सिप) में दुआ था । मेनिक्त ने लिखा है कि नामदेव और जानदेव की तोर्थयाजा के सिल्सित में संत सप्ता से एकींग की क्या के निकट मुखानात हुई थी। इस आधार पर अनुमान किया जा सन्ता है कि वे नामदेव के समझालीन ये अता इनका अविमांव काल भी १४ वो शतान्दी ही मानना चाहिए । सप्ता जाति के क्याई थे, मास बेचना पुरतिनी ऐशा था, किन्तु इस निक्ष्य क्यों के यंक से उनकी आदमा क्यों करीहित न हुई । गुरु प्रन्य में उनना एक ही यर मिखता है, को नीचित्रया जाता है।

नुष किया के कारने इन्न सहया वेषधारों।
कामार्स्स मुकारसी वाकी पंज सँवारी 818
तव मुन क्हा जगत गुरा जब करमु न वाले।
सिंह सान करत आहरे जब अंद्रक माने।।
एक दूँद जल कारने जातिक हुए पारे।
पान गर्म सागर मिले फुनि काम न कारी ॥१॥
प्रान वो सागर मिले फुनि काम न कारी ॥१॥
प्रान वो सागर मिले कुनि काम न कारी ॥१॥
प्रान वो सागर मिले कुनि काम न कारी ॥१॥
प्रान वो साने स्वत् कु काहि चहावडा ॥१॥
मैं नाहीं कह वह नहीं विद्व शाहि न मोरा।
अउकर कहा राखि होड सामा जब सोरा ॥५॥

भारा प्राचीन है। नामदेव की भाषा की तरह इसमें भी प्राचीन बज के कई चिद्ध दिलाई पडते हैं। बउ>बो, नडका>नीका, विरमावउ>विरमावी, चरावउ>चड़ावीं ग्रावि इसके राष्ट्र प्रमाण है।

§ २०७ रामानन्ट्—उत्तर मारत में मिल-आन्दोलन के संस्थापक वामानन्द वा स्थान आदिम है। यानानन्द के बीवन वृत्त सम्बन्ध की महत्वपूर्ण सामग्री उपरुक्त नहीं तेती। पत्ततीं कियों और उनके मुक्के विष्यों की रचनाओं में इनकी चर्चा आधी है जो ऐतिशालिक कम प्रतीवाङ्क अधिक है। यानान्द सामा यानाञ्चामार की शिष्प प्रस्ताम ने चीवे वे। जा यामहुमार वर्मा ने दिखा है कि प्रतिक शिष्प के दिखा वाई च्छे प्रसार में ने विष्य को तिया मानान्द का आदिमांव काल चीवहुंबी शतान्दी का अन्त उद्धाता है। याची पत्त वाई तिया मानान्द का आदिमांव काल चीवहुंबी शतान्दी का अन्त उद्धाता है। याची पत्त वाई तिया नहीं है क्योंक सामुओं की श्रिष्ण परम्पा में एक वीही के लिए ७५ वर्ष का समान बहुत कारा साम्द्रम होता है और हम्में अपनान अनुमान की शरार तेनी पत्र की स्थान वहुत कारा माना वहुत कारा साम्द्रम होता है और हमों अनुमान की शरार तेनी पत्र ती

^{1.} मैहलिफ : दि सिख रिलीजन भाग ६, ए० ३२

२. राग विलावल पद १, पृ० ६५६

३. हिन्दी साहित्य का भारोचनात्मक इतिहास, पृ० २२१

चिन्तामणि, शान तिलक, सिद्धान्त पञ्चमात्रा, भगति बोग, रामाष्टक आदि रचनार्ये संकलित की गई हैं। पुस्तक में स्व० डा॰ पीताम्बरदत्त बडध्वाल के लिखे हुए कुछ महत्वपूर्ण लेख भो संग्रहीत हैं। 'सुग प्रवर्तक रामानन्द,' 'अध्यातम्य,' 'रामानन्द सम्प्रदाय,' 'सस्कृत और हिन्दी रचनाओं नी विचार परम्परा का समन्वय,' शार्यक इन चार निक्यों में डा॰ बडस्वाल ने बड़ी सुद्मता के साथ निर्मुण-काव्य की वैचारिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए रामानन्ट के व्यक्तिल और उनके सास्कृतिक योगदान का जिवेचन किया है। डा॰ श्रीकृष्ण लाल ने 'स्वामी रामानन्द का जीवन चरित्र' में इन प्रतिद्ध आचार्य कवि के तिथिकाल तथा जीवन सम्बन्धी घटनाओं का सकेत देनेवाले स्त्रों का अध्ययन किया है।

इस प्रस्तक में सक्रलित रामानन्द की उपर्युक्त रचनाओं में दो प्रकार की भाषा पाई बाती है। योग चिन्तामणि, ज्ञान तिलक आदि की भाषा मिश्रित राडी बोली के नजदीक है जबकि ज्ञान लीला, हनुमान् की आरती तथा पृ० ७ पर प्रकाशित एक पद आदि रचनाओं की भाषा ब्रजभाषा है। नोचे इम दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

हरि वित जन्म ब्रथा खोयो रे ।

कहा भयो अति भान बहाई धन मद अंधमति सोयो रे ॥ भति उतंग तह देपि सुहायो सैंबल इसम सुवा सेयो रे । सोई फल पुत्र कल्प विषे स अति सीस धनि-धनि रोयो रे ॥ सुमिरन भजन साधु की संगति अंतरमन मेल न धोयो रे । रामानन्द स्तन अम शासै श्रीपत पद गहे न जोयो रे ॥ (एष्ट ७)

शान लीटा का आरम्भिक अंश इस प्रकार है---

मुख तन धरि कड़ा कमायी, राम भजन बिनु जनम गमायी। राम भगति गति जाँणी नाडीं. भंदें भूली घंधा माँडी ।। मेरी मेरी करतो फिरियो, हरि समिरण तो दव न करियो । नारी सेती मेह लगायी, कवहें हिरदे राम नहिं भायी ॥ मुप माया सूँ परो पियारो, कवहूँ न सिंदन्यो सिरजन हारी। स्वारय माहि चहुँ दिसि ध्यायो, गोविंद को गुन कवहूँ न गायौ ॥ (१० ६)

रामानन्द का निम्नलिसित पद गुरुग्रन्थसे उद्घृत किया जाता है-

राग वसन्त

कत आहुये रे घर लागो रंग मेरा धितु न चलै भन भइड पंग । एक दिवस मन भई उमंग घरि चौआ चन्द्रन वह सुगंध । पूजन चाली बहा टांड, सो बहा बताइउ गुरु मन ही मांहि ॥१॥ जहाँ जाइये तेंद्र जल पपान, तू परि रहिउ है सम समान । वेद पुरान सब देपे जोह उहाँ तउ जाङ्गों जड हहाँ न होह ॥२॥ सतगुर में बलिहारी सीर जिनि सकल विकल भ्रम कारे मीर । रामानन्द सुआमी रमत बरम, गुरु का सवद कारे कोटि करम ॥३॥

रामानन्द की भाषा ऋत्यन्त सहज और पुष्ट है। भाषा की प्राचीनता ना पता किया-पटों को देखने से विदित होता है। भृत निष्ठा के रूप छागो > लागी (ब्रज) ओकारान्त है चिन्तामणि, ज्ञान तिलक, सिद्धान्त पञ्चमात्रा, भगति बोग, रामाष्टक आदि रचनार्ये सकल्ति की गई हैं। पुस्तक में रा॰ डा॰ पीताम्बरदत्त बडय्वाल के लिखे हुए बुछ महत्वपूर्ण लेख भो संग्रहीत हैं। 'सुन प्रवर्तक रामानन्द,' 'अध्यातम्य,' 'रामानन्द संग्रहाय,' 'सस्कृत और हिन्दी रचनाओं नी विचार परम्परा ना समन्वय,' शीर्यक इन चार निवामों में डा॰ बडध्वाल ने बड़ी सुद्दमता के साथ निर्मुण काव्य की वैचारिक प्रष्टभूमि को स्पष्ट करते हुए रामान द के व्यक्तित्व और उनके संस्कृतिक योगदान का निवेचन किया है 1 डा॰ श्रीहृष्ण लाल ने 'स्वामी रामानन्द का जीवन चरित्र' में इन प्रसिद्ध आचार्य कवि वे' तिथिकाल तथा जीवन सम्बंधी घरनाओं का संकेत देनेवाले सूत्रों का अध्ययन किया है।

इस पुस्तक में सक्तित रामानन्द की उपर्युक्त रचनाओं में दो प्रकार की भाषा पाई बाती है। योग चिन्तामणि, ज्ञान तिलक आदि की भाषा मिश्रित एडी बोली के नजदीक है जबकि हान लीला, हनुमान् की आरती तथा प्र०७ पर प्रकाशित एक पद आर्टि रचनाओं की भाषा ब्रजभाषा है । नीचे हम दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

हरि विनु जन्म वृथा खोयो रे । कहा मयो अति मान बदाई धन मद अधमति सोयो रे ॥ अति उत्तग तर देषि सुहायो सैंवल दुसुम सुवा सेयो रे । सोई फल प्रत्र करत विषे सु अति सीस धनि धनि रोगो रे ॥ सुमिरन भजन साधु की सगति अतरमन मेल न धोयो रे । रामानस्य रतन जम यासै श्रीपत पद गडे न जोयो रे ॥ (प्रष्ट ७)

शन लीला वा आरम्भिक अश इस प्रकार है---मरप तम धरि कड़ा कमायी. राम भजन विन जनम गमायी। राम भगति गति जाँणी नाहीं, भर्दे भूली घघा माँही ॥ मेरी मेरी करतो फिरियो, हरि सुमिरण तो कव न करिया । नारी सेती नेह लगायी, कबहुँ हिरदे राम नहिं आयी ।। मुप माया सँ परो पियारो, कवहें न सिंव-यो सिरजन हारी। स्वास्य माहि चहुँ दिसि ध्यायो, गोविद को गन कवहूँ न गायो ॥ (४० ६)

रामानन्द का निम्नलिरिात पद गुरुप्रन्यसे उद्घृत किया जाता है-4-

राग वसन्त

कत जाइये रे घर लागो रग मेरा चितु न चलै भन भइउ पग । एक दिवस मन भई उमग घरि चौआ चन्द्रन बहु सुगध । पूजन चाली बहा टाइ, सी बहा बताइउ गुरु मन हा माहि ॥१॥ जहाँ जाइये तेंह जल प्यान, तु परि रहिउ है सम समान । वेद पुरान सब वेपे जोइ वहाँ तउ जाइयों जड इहाँ न होड़ ॥२॥ सतगुर में विरहारी सोर जिनि सकल निकल भ्रम काटे मोर । रामानन्द सुआमी रमत बरम, गुरु का सबद कार्ट कोटि करम ॥३॥ रामानन्द की भाषा ऋत्यन्त सहज और पुष्ट है। भाषा की प्राचीनता का पता क्रिया पटों को देखने से विदित होता है। भृत निष्ठा के रूप लागो > लाग्यों (ब्रज) ओकारान्त है मगध क्रर्य लेकर बाबू साइव ने कवीर की भाषा में 'मैथिली' और विहारी बोलियों का प्रभाव हुँदने की कोशिश की। यदि पूरवी का अर्थ वे 'अवधी' मानते हैं तो पिर मोजपुरी क्यों नहीं १ भोजपुरी तो विहारी भाषाओं में रखी भी जा छक्ती थी। वस्तुतः यह भाषा सम्बन्धी निष्कर्य देने का बहुत उपयुक्त तरीका नहीं है, इस उनके मत से सहमत है कि 'कदीर की भाषा का निर्णय करना टेटी खीर है क्योंकि यह खिचडी है।" डा॰ उदयनारायण तिवारी, डा॰ श्यामसुन्दर के इस निष्कर्ष को अत्थन्त महत्वहीन बताते हुए क्वीर की 'पचमेल' भाषा के लिए उत्तरदायी कारणो की खोज करते हैं। उनके मत से कनीर की मूल भोजपुरी में लिखी वाणी बुद बचनों की करह कई भाषाओं में अनृदित हो गई थीं. इसोलिए उसमें इतने प्रकार की विविधता पाई जाती है। कवीर की भाषा की प्रासिगक चर्चा करते हुए भोजपुरी भाषा के विवरण के सिल्सिले में डा॰ सुनीति स्मार चारज्यां ने लिखा कि 'कबीर यदापि मोजपुरी इलाफे के निरासी ये, विन्तु तत्कालीन हिन्दुस्तानी (हिन्दी) क्वियों की तरह उन्होंने प्रायः बजभाषा का प्रयोग किया, कभी-कभी अपधी का भी! उनकी ब्रजमाया में भी कभी-कभी पूर्वी (भोजपुरी) रूप भी भन्य आता है किन्तु जब वे अपनी बोली मोजपुरी में लिखते हैं तो ब्रजमाया के तथा अन्य पश्चिमी भाषिक तत्व प्रायः दिखाई पडते हैं। ³ कवीर मतावलम्बी बीजक को बहुत प्रामाखिक प्रन्य मानते हैं। भीजक, उस प्रन्थ को कहते हैं जो अतरालिश्व परम सत्यसे भक्तजन का साजातकार कराये । बीजक में आदि मगल, रमेनी, शब्द, विश्रमतीसी, क्वडरा, बसन्त, चाचर, बेलि, शिरहली, हिंडोला, साखी और 'सायर बीजरु को पद' श्रादि रचनाएँ सम्मिलित है। बीजक सम्बन्धी निभिन्न जन-श्रतियों और सम्प्रदाय प्रचलित कथाओं आदि का उचित निवेचन करने के बाद डा॰ हजारी प्रसाद दिवेदी इस निष्कर्य पर पहेंचे कि यह ऐतिहासिक तथ्य जान पडता है कि मगवानदास के शिष्य प्रशिष्यों ने कवीरदास की मृत्य के दीर्घनाल के बाद उसे (बीजक को) प्रचारित निया । उसमें कुछ परवता बातों का मिल जाना नितान्त असभव नहीं है ।³⁵ इस बीजक में कई प्रकार की भाषाय दिखाई पडती हैं। रचनाओं पर राजस्थानी का प्रभाव कम है जैसा कि कबीर अन्यावली की रचनाओं में मिलता है, यह संभवतः बीजक के पूरव में सुरक्षित रहने अथवा लिखे जाने के बारण हुआ ।

§ २१०. उपर्कुल मतो ने आचार पर नोई भी पाठक यह निष्कृषं निकाल सकता है कि क्वीर की भाषा वावह पश्चमेल खिचडी है और तब यह भी सम्मव है कि इनके बीच

१. कवीर प्रन्थावली, पृ० ६६

२. टा॰ उदयनारायण तिवारी, भोजपुरी भाषा और साहित्य, तथा हिन्दी अनुशीलन वर्ष २ अक २ में कवीर की भाषा शोर्षक निवन्ध

³ habir was an inhabitant of the Bhoppura tract but following the practice of the Hunduntan poets of the time he generally used Brajbhakha and occasionally Anadha His Brajbhakha at times betraye an austern (Bhoppura form) form here and there and when he employes his own Bhoppura form) form bere and there and when he employes his own Bhoppura foliable, Brajbhakha and other watern forms (frequently show themselves Origin and Development of the Bengali Language 0 99 V. Alli & Aug 444, [Arganilla] [ViEx. [Aug 4. 11] 2, 9, 113

मगध श्रर्थ लेकर बाबू साइव ने कबीर की भाषा में 'मैथिली' और विहारी बोलियों का प्रभाव हुँदने की कोशिश की। यदि पूरवीका अर्थ वे 'अवधी' मानते हैं तो फिर मोजपूरी क्यों नहीं १ भोजपुरी तो विहारी भाषाओं में रखी भी जा सकती थी। वस्तुनः यह भाषा सम्बन्धी निष्कर्य देने का बहुत उपयुक्त तरीका नहीं है, इस उनके मत से सहमत है कि 'कबोर की भाषा का निर्णय करना टेटो खीर है क्योंकि यह खिचडी है।" डा॰ उदयनारायण तिवारी, डा॰ स्यामसुन्दर के इस निष्टर्य को अत्थन्त महत्वहीन बताते हए क्वीर की 'पचमेल' भाषा के लिए उत्तरदायी कारणों की खोज करते हैं। उनके मत से कबीर की मूल भोजपुरी में लिखी वाणी बुद्ध बचनों की करह कई भाषाओं में अनुदित हो गई थी. इसीलिए उसमें इतने प्रकार की विविधता पाई जाती है। कवीर की भाषा की प्रासिक चर्चा करते हुए भोजपुरी भाषा के विवरण के सिल्सिले में डा॰ सुनीति रूमार चारूज्यां ने लिखा कि 'कबीर यद्यपि मोजपुरी इलाके के निपासी थे, विन्तु तत्कालीन हिन्दुस्तानी (हिन्दी) क्वियों की तरह उन्होंने प्रायः ब्रजमाया का प्रयोग किया, कमी-कमी अपधी का भी! उनकी ब्रजभाषा में भी कभी-कभी पूर्वें (भोजपुरी) रूप भी भन्क आता है किन्तु जब वे अपनी बोली भोजपुरी में लिखते हैं तो ब्रजमापा के तथा अन्य पश्चिमी भाषिक तल प्रायः दिखाई पडते हैं। केबीर मतावलम्बी बीजक को बहुत प्रामाखिक मन्य मानते हैं। बीजक, उस प्रन्य को कहते हैं जो अतरालस्थित परम सत्यसे मकजन का साद्वातकार कराये। बीजक में आदि मगल, रमैनी, शब्द, विव्रमतीसी, कक्ट्ररा, बसन्त, चाचर, बेलि, बिरहली, हिंडीला, साखी और 'सायर बीवफ को पद' आदि रचनाएँ सम्मिलित है। बीजक सम्बन्धी निभिन्न जन-श्रतियों और सम्प्रदाय प्रचलित कथाओं आदि का उचित निवेचन करने के बाद डा॰ हजारी प्रसाद दिवेदी इस निष्कर्ष पर पहेंचे कि यह ऐतिहासिक तथ्य जान पडता है कि भगवानदास के शिष्य प्रशिष्यों ने कशीरदास की मृत्यु के दीर्घकाल के बाद उसे (बीजक को) प्रचारित निया । उसमें कुछ परवता बातों का मिल जाना नितान्त असभव नहीं है ।" इस बीजक में कई प्रकार की भाषाये दिखाई पड़ती हैं । रचनाओं पर राजस्थानी का प्रभाव कम है जैसा कि कवीर प्रन्यावली की रचनाओं में मिलता है, यह संभवतः बीजक के पूरव में सुरक्षित रहने अथवा लिसे जाने के बारण हुआ ।

§ २१०. उपर्युक्त मतो ने आचार पर मोई मी पाटक यह निष्कृर्य निकाल सनता है कि क्वीर की भाषा वाहर्द 'पञ्चमेल' खिचडी है और तब यह मी सम्मव है कि इनके बीच

१. कवीर प्रन्थावली, पृ० ६६

२. डा॰ उदयनारायण तिवारी, भोजपुरी भाषा और साहित्य, तथा हिन्दी अनुशीलन वर्ष २ अक २ में क्वीर की भाषा शोर्षक निवन्ध

³ habit was an inhabitant of the Dhoppura tract but following the practice of the Hindh-Lam protes of the time he generally used Brajbhakha and occasionally Anadha. Hise Brajbhakha at times betrays an lastering (Bhoppura form) form here and three and when he employes his own Bhoppura form) form bere and three and when he employes his own Bhoppura foliate, Brajbhakha and oth rawstra forms (frequently show themselves Ongua and Developarat of the Bengui Language p. 99 the ratio Ray and Raymantill Tylasia, Eure & 188 e. yo. 113

शाहि श्राह कर हरी पुकारा, साथ संगति मिलि करह विचारा ।

रे रे जीवन नहिं विधाना, सब हुस मंदन राम को नामा ।

राम नाम संतार में सारा, राम नाम भी तारन हारा ।

सुश्चित वेद सबै सुर्ते नहीं आवे कृत काज

नहीं जैसे कुंडिक बनिक दुस भी तिन दान ।

हरी याद तहीं पुतेगा, अब जीन जरसि समक विष संगा

हरीं चाह तहीं पुतेगा, अब जीन जरसि समक विष संगा

हरीं चाह तहीं पुतेगा, अब जीन जरसि समक विष संगा

भेंदु सहंध जे लागे काना, कान, ख़ाहि अकाने जाना करते लोग सब में घरमाणी, पोट बहुदि महि चीन्हे विवाधी कुत्तर बाँधे भूपन सर्हे, आदर सो पर सोह चराई ॥ चन्दन काढि करिले जे लावा, आँ वि काढि वरार वोआवा। कोकिल हैत सजारहि मारी, बहुत जबाट बागाई प्रतिपाली ॥ सरोहेक पंच प्रपारि पालै तमसुर जा संसार। लखन बीते तह न बसै काहि जो खाँहि उचार॥

क्तीर हो रमेनी भी भाषा को अपेदा स्ववनहेनी को भाषा अधिक शुद्ध अवधी है। रिर भी कहीर के उपर्युक्त पदारा में बरिंग, वर्तमान मध्यम पुरुष, करहु (आज्ञार्यक मध्यम पुरुष) बनि (अज्य) खाँग (परहार्ग, वर्तुर्थ) पुष्पार (सामान्य वर्तमान, अन्य पुरुष) आहि रुष सरशः अपर्थ का सन्येत देने हैं बैसे भी बाली पुरा व्याकरणिक दाँचा अवधी का हो है किन्तु भी (वियान्त) में (सतमी परहार्ग) को (पष्टी, पर०) अब प्रमाव को स्वना देते हैं। करीर क्रमावदी ही रमेणी पर अब का प्रमाव बैसे व्यादा है भी।

§ २१२. नवीर की भापा का दूसरा रूप उनकी साखियों में दिराई पहता है । साखियों की भाषा की परणपा भी क्वीर को पूर्ववर्ती करती हो ही मित्री । अपप्रंत्य में दोहों की परम्या एमें विस्तित अपस्या को पहुँच चुत्री थी, पश्चर्ती अपश्चर्य में दे देंदे दो शैठों में लिखे बाते थे । एक तो शोरिनेनी अपश्चर्य के विश्वतित शुद्ध जिंगत की शैठों और दूसरी पत्तरपानी की पूर्ववर्ती शेची । हेमचन्द्र के प्राष्ट्रत व्यावरण के दोदों की इन दो मित्र वीलियों का उल्लेख पहले हो चुना है । (देखिये § १६०) कबीर प्रवास्त्रीनी शैठी का प्राप्तन्य है, क्लियु कबशैठी के पीरे भी कम नहीं हैं। नीचे बच्च दोहे दिये बाते हैं।

> यह तन आठों मिस क्यें किसी राम को नाम । देखिन करूं करंक की लिखि लिखि राम पढाउँ ॥७६॥ कपीर पोर परानतों पंजर पीर न बाद । एक जु पीर पिरीत की रही करेंचा झाद ॥=०॥ होंसी सेठी ही मिले सी कोज सहै पासान । काम कोच तिष्णों तजे ताहि मिले अमदात ॥६०॥

^{1.} हरिचरितत्र, अप्रकाशित, देखिये सर्च रिपोर्ट १६४४-४८

प्राहि आहे कर हरी पुकार, साथ संगति मिलि करहु विचार। । रे रे जीवन निह विश्वासा, सब हुस संहन राम को नामा। राग नाम संदार में सारा, राम नाम भी तारन हारा। सुप्रित वेद सबै सुर्जे नहीं आबै कृत काज नहीं जैसे कुंडिल बनिल हुत सोमित बिन राज अब बाहि राम नाम लविनायों हिरे सिज जिन केतह सै जासी जहीं जाइ तहर्षे पतंगा, अब जिन जरसि समफ विष संगा

इरि चरति से-

भींदु सहंध ने लांगे काना, कान, ख़ांहि अकती जाना करारी लोग सब में परामधी, पीट बहीद नहिं चीन्हे विवाधों कुशर बींचे भूपन सर्दं, भादर सो पर सेह चराईं ॥ चन्दन कादि करिले ने लावा, भींवि काटि बयुर बीभावा। कोकिल हंस समारिह मारी, बहुत चतन कार्यह मतिपाली ॥ सारीक पंर पराधि पालै तमझुर बना संसार। रुखत सींत ताह न बसै काटि जो साँहि उपार।

क्वीर को रमैनी भी भाषा की अपेदा स्थलनकेनी की भाषा अधिक शुद्ध अवधी है। रिर भी कवीर के उपर्युक्त पदाश में बरिंग, वर्तमान मध्यम गुरुष, करतु (आजार्थक मध्यम गुरुष) विन (अन्यष) खाँग (परकार्ग, वर्त्तुष्म) पुष्प (सामान्य वर्तमान, अन्य पुरुष) आदि रूप सरदाः अपर्थी वा सनेव देने हैं बैसे भी बाली पुरा व्याकरणिक दाँचा अवधी वा से है किन्तु मी (वियान्त्त) में (सतमी परकार्य) को (पष्टी, पर०) अब प्रमाव को स्वना देते हैं। क्वीर अन्याव्ती की समेणी पर अब का प्रमाव बेसे व्यादा है भी।

§ २६२, नबीर को भाषा का दूसरा रूप उनकी सालियों में दिखाई पहता है। सालियों की माषा भी परनय भी क्वीर को पूर्ववर्ती सन्तों से ही मिन्ती। अनअंश में दोहों की परम्परा पूर्ण विकक्षित अरखा को पहुँच चुठी थी, परवर्ती अपश्चरा में ये दोहे दो रीजी में लिखे बाते थै। एक तो शोरिनेनी अरअंश से विकक्षित जुद्ध चिंता को शैजी और दूसरी राजस्मानी की पूर्ववर्ती शैंथी। हेमचन्द्र के प्राप्टत ब्याकरण के दोहों की इन दो मित्र शैलियों का उल्लेख पहले हो चुना है। (देलिये § १६०) क्वीर में राजस्मानी शैली का प्राप्तान्य है, किन्ता ज्ञजशैली के दीहें भी इम नहीं है। नीचे कहा दोड़े दिये बाते हैं।

> यह तन जालों मिस क्यों लिखी (ाम को नाम । ऐसान करूं करेंक की लिखि लिखि राम पढाडें ॥क्शा क्यों(पीर परावनी पंजर पीर न बाद । एक जु पीर पिरीति को रही कटेंबा द्वाद ॥=०॥ होंसी सेली हिरी मिले तो कोम सहै परावात । काम कोथ लिक्सो तने ताड़ि सिले असवात ॥क॥

^{1.} हरिचरितत्र, अप्रकाशित, देखिये सर्च रिपोर्ट ११४४-४८

का यह अपना छुन्ट है। चन्द ने सतों में इस छुन्द को बो पूर्णता मिली वह अद्वितीय है। कवीर की सावियों (टोहों) के बीच दो छुन्यय छुन्द भी उपरन्य होते हैं।

मन नहिं हाडे विषे विषे न हाडे मन की । इनकीं इहे सुमाव पूरि लागी लुग जन की ॥ सहित मूल विनास कही किम विगतह कीते । वर्षुं जल में प्रशिप्तव क्षेत्र केल रामहिं बार्गाने ॥ सो मने सो तन सो विषे सो जिसुबन पति कहूँ नस । कहे क्षींग चन्हतना ज्यों कल प्रन्या सहस्र रास प्रभश्श

दसरा छुप्पय 'वैसास को अग' में दिया हुआ है।

जिन नरहारे जहार उद्दिक के एड प्रकट कियो । सिरजे अवण कर चरन जीव जीम मुख तास दियो ॥ उत्त्य पाँव भरप मीरत भीच प्रया इस रियो ॥ अन पान जहाँ जरे तहाँ तें अनक न चरियो ॥ हहि साति भयानक उद्द में उद्द न कहाँ हुन्दे ॥ कुत्तन कुराक क्योर कहि इस प्रतिपालन क्यों करें ॥५६०॥

हुत्य हुत्य भी मह विरोगता रही है कि उसमें ओजसिता लाने के जिए पुराने राज्यें लात तीर से परातों अपन्धा के रूपों का बहुत बाद तक व्यदहार होता रहा। चन्द के ह्या के हिए प्राप्त की विचित्र राज्यें में अपन्धा के रूपों की मो आइष्ट किये विचा न रही और उन्हें मी 'सरस्तत वस्तत्वत' का प्राप्त करना ही पड़ा। कचीर के इन हुप्यायों में माया कानी पुराने तत्तों को हुए हित किये हुए है। जागोजै < लागिजह, कीजै (केजह, विगतह ('हैं' अपन्ध्र पत्रों) प्राप्ति (राम का) वड़पाई (शहें, रहा) रापिजो > रास्ति (राम का) वड़पाई (शहें, रहा) रापिजो > रास्ति (राम का) वड़पाई (शहें, रहा) रापिजो > रास्ति (राम का) वड़पाई करते हैं तथा प्रतिविध-प्राप्ति पत्र उदर > उदर उदर वें > उदर में तो वीवन्दाय कर वार्ट्स वैद्या की तक भी की नी गई है।

१ क्वीर ग्रन्थावली, ए० ५६-४७

२ परशुराम चतुर्वेदी कवीर साहित्य की परस, पू० २१७

का यह अपना छुन्ट है । चन्द ने रातों में इस छुन्द को बो पूर्णता मिली वह अद्वितीय है । कदीर ही सालियों (टोहों) के बीच दो छुप्पय छुन्द भी उपनम्प होते हैं । 1

मन नहिं छुन्नै विषे न छुन्नै मन की । इनकी इहे मुमाव पूरि लागी लुग जन की ॥ खदित मूल विनास कर्दी किम बिगतद काँने । ज्यूँ जल में प्रतिप्पय पूर्ण सकल रामादि जागीने ॥ सो मन सो तन सो विषे सो त्रिमुदन पति कर्दूँ नस । कहे क्योर चन्द्रतगा वर्षों जल पूर्णा सकल रहा प्रधारश

दुसरा छुप्पय 'बैसास की अग' में दिया हुआ है।

कुत्तर नरहार जराह उद्दिक के पड़ प्रकट कियी। सिरते अवण कर चरन जीव जीम मुख तास दियी। उरुप रॉव अरुप सीस सीच पया इस रियों। अन पान नहीं जरे कहते के जनक न चरियों। इहि माति स्थानक वह में उद्द न कबहूँ बहुयै। कुसन कुराव क्योंर कहि इस प्रतिपालन क्यों करें। ५६०।

छुप्प खुन्द में यह विद्येषता रही है कि उसमें ओवलिता लाने के लिए पुराने राज्यें लात तीर से परतों अपसूध के रूपों मा बहुत बाद तक व्यवसार होता रहा। चन्द के खुप्पों की विचित्र राज्येंसी उप्पीदास को मो आष्ट्रष्ट किये किना न रही और उन्हें भी 'क्रस्ततत वस्ततत' मा प्रयोग करता ही पड़ा। कवीर के इन खुप्पों में भाषा झानी पुराने तत्त्वों को हुस्तित किये हुए है। जागोवै < लागिजह, कीवै <िक्चड, विगतह ('हैं' अपभूश पढ़ी) प्रगादि (यान में) चटराई (खाई, पद्धी) रिप्तो > सर्पता (पराठ) आदि रूप भाषा भी आचीनता स्वित करते हैं तथा प्रतिविक्ष प्रति पद, उदर > उद्र उद्ध उपने > उद्द में स्वर्थों की तीड़ मरेड कर वाहरण रोज्यें की नक्क भी भी गई है।

कशिर की भाषा के इस सिद्धित विवरण के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि पही में अधिकारा जकशाया में ठिखे गए। कशिर ते प्रकाश में नहीं लिखा ऐसा प्रमाणित करने के लिए यह कहना कि 'विक समय क्षत्री स्वाहर (मृट कर १५७५) का आविमाँव हुआ या उस समय व्रवमाणा का अभी आधिपत्य नहीं जम सका या। अभेर साथ ही यह भी कहना कि जकशाया का अभी आधिपत्य नहीं जम सका या। अभेर साथ ही यह भी कहना कि व्यक्ता था। उस समय व्रवमाणा का दिनों पिताक कहनाइट प्रसिद्ध थी और उसका चेन पूर्वी रानस्थान से लेकर व्यवस्था हन दिनों पिताक कहनाइट स्वाहर प्रसिद्ध थी और उसका समाय विश्व मुक्त कर प्राह्म थी उसका समाय चीन गुजरात से लेकर नमाय नहीं भा क्षत्रीक सका समाय कि नहीं का प्रकाश या प्रमाण कर सिद्ध कि कहन क्षत्रीर तक के सत्वी की एचनाएँ हैं जिनका बहुत बढ़ा अग्र जवमाया में लिखा गया। सुसरों से देश में प्रसाण निर्मां से लिखा गया। सुसरों से देश में प्रसाण निर्मां से लिखा गया। सुसरों से देश स्वी ही (१५वी शती) तक के सारीविक्षरों रोग रागाणितियाँ

१ क्वीर प्रन्यावली, पृ० ५६-५७

२ परशुराम चतुर्वेदी कबोर साहित्य की परख, ए० २१७

पहले हा ही मान सकते हैं ।

मीराबाई की पदावली के भी कुछ पदों में रैदास का नाम आता है।

(१) रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी (२) यह मिलिया रैदास जी दीन्हीं स्थान की गृटकी

एक तरण मीरा-साहित्य के अन्तर म साहमें पर माद्म होता है कि देशस मीरा के गुर थे ! दूगरी छोर क्रियाशात सन्त देशत के जीवन का जो निज अपने मक्तमात की टीना में उपियाश करते हैं, उसमें भी किसी काली राणी का उल्लेख हुआ है ! कुछ लोग काली राजी का मदक्वम मीरा हो समक्ते हैं ! मीरा के जन्मकाल के बियम में देशे ही विचार है ! कुछ लोग उन्हें (१४६०-१५०० सबत्) १४भी शती का मानते हैं कुछ हरियों १०भी हरी हैं ! इस उन्हें स्वाप की स्वाप से मी देशत की स्वाप के बात के बात की साम साम के हैं कुछ हरियों १०भी हम साम से स्वाप से मी देशत की बात के बात की हमिश्री हमान के बात क

रविदास ने अपने को जात का चमार या टेट कहा है तथा श्रपने को बनारस का निवासी नताया है। अपने को बार-बार चमार और नीची-जाति का कहा है।

ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार, इदय राम गोविन्द गुन सार ॥१॥ जाति मी ओद्धी करम मो भोदा कसन हमारा । नांचै से मुभु ऊँच कीयो है कह रैतार चमारा ॥२॥

(रैदास जी की बानी पृ० २१, ४३)

इस प्रकार से श्रवनी जाति श्रीर बंदा के बारे में स्वष्ट उस्तील करने वाले रैदास की आप्ता कितनी विद्याल थी। उनकी रचनाओं का एक सहुलन रेदास को को वाणी के नाम से कुछ वहले प्रकारित हों हुन हैं। ग्रीसम्य साइव में इनके बहुत से पर कहालित हैं। श्री रप्याप्ता नव्यवेंदों ग्राक्त्य माहर की रचनाओं के विषय में लिखते हैं कि रीभो साइदों (वाणो और गुक्त्य) में आई हुई रचनाओं को मात्रा में कहीं-कही बहुत अनतर है वो संप्रकारों की अपनी मात्रा के कराल में सामा का कहता है। विचार के सामा का सम्याद्ध सामा कि होने वह सामा कि स्वाप मी सामा के सामा के हैं तो यह स्वामाविक दोप कहा वा सकता है, किता विद अनहा मतलब मापा-मेर से है, तो इसे स्वष्ट करना चाहिए था। मुमे रोतात को किता की माणा की वही दो पुरानी शैक्षिय रिखता और बन रिलाई पहली हैं। इनके वीर में माणे विवार करेंगे।

§ २१४. देहास की रचनाओं के सिलसिले में 'महलाद चरित्र' का भी बिक होना वाहिए। स्रोत रिपोर्ट सन् १६२६–३१ में रैदासके दो प्रन्यों की सूचना प्रकारित हुई है

१. मारावाई का पदावली हि॰ सा॰ सम्मेलन प्रयाग, प्र॰ १० और प्र॰ १५६

२. भक्तमाल, नामादास, पु० ४८३–८५

^{3.} ऐन आउरलाइन आब दी रिकांत्रस लिटरेचर आब इंडिया, पूर ३०६

४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पु० ५६५-५५२

५. रैदास की बाणी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

६. उत्तरभारत की सन्त परम्परा, ए० २७३

मीराबाई की पदाचली के भी कुछ पदो में रैदास का नाम आता है। (१) रैदास सन्त मिले मोहि सलगुरू दोन्हा सुरत सहदानी

(१) रदास सन्त मिले माहि सतगुरु दोन्हा सुरत सहदान
 (२) गुरु मिलिया रैदास जी टीन्हीं ग्यान की गुटकी

एक तरा मीय साहित के अन्तर म साह्यों पर माह्यम होता है कि देशत मीरा के मुख्य में दूबरी छोर विमादास सन्त देशह के जीवन का जो चित्र अपने अचनात की दोना में उपरियत करते हैं, उसमें भी किसी अध्यो सामान के जिपम में से ही विचाद है। मीरा के जन्मताल के जिपम में से ही विचाद है। इह लोग उन्हें (१४६०-१५०० सबत्) १५वीं राती का मानते हैं इह १६वीं २५३ (१४५५-१६०) के जिपम में से ही विचाद है। प्रथम-१६० सबत्) के में रीता की मानते हैं इह १६वीं २५० के वीवनकाल के वार में सुख्य होता उन्हें १४५० के वीवनकाल के वार में सुख्य होता विचाद में रीता के वीवनकाल के वार में सुख्य होता निर्णय नहीं हो वाता। अनुमानतः हम इन्हें १४५० के पहले ना हो मान सकते हैं।

रविदास ने अपने को आत का चमार या देंद्र कहा है तथा छाने को बनारस का निवासी जाया है। अपने को बार-बार चमार और नीची-जाति का कहा है।

ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार, ष्ट्रय राम गोनिन्द गुन सार ॥ १॥ जाति भी ओड़ी करम भी ओड़ी कसव हमारा । तीचे से प्रभू ऊँच कीचो है कह रैदास चमारा ॥२॥

(रैदास जी की बानी प्र०२१, ४३)

इस प्रसार से श्रवनी जाति श्रीर चंद्र के बारे में स्पष्ट उस्लेख बरने वाले रैदाछ में आता कितनी विद्याल थी। उनकी रचनाओं ना एक सहुलन रैदास की की वाणी के नाम से बहुत पहले प्रकारित हो चुना है। गुरुबन्य साहब में इनके बहुत से पर सहुलित हैं। श्री पर्खापान बर्ज़ेदी गुरुबन्य साहब की रचनाओं के विषय में लिखते हैं कि रोगों अपहाँ वाणी और गुरुबन्य) में आई हुई रचनाओं की भाषा में कहीं-हों बहुत अन्तर है वो तीमस्तां में अपनी भाषा के नाराण भी सम्भव समझ जा सकता है। है चतु अन्तर है वो तीमस्तां में अपनी भाषा के नाराण भी सम्भव समझ जा सकता है। है चतु स्वामाविक दोग नहा जा सकता है, किन्द्र महि उनना मत्त्रक भाषा-मेर से है, तो इसे राख करता चाहिए था। मुझे रोगों को किता की में माणा में बही दो पुरानी शैक्षियों रेखता और बन दिवाई पडती हैं। इनके दोरों में आगे विचार करेंरे।

§ २१७. रेतास की रचनाओं के सिलमिले में 'महलाद चरित्र' का भी बिक होना बाहिए। खोब रिपोर्ट सन् १६२६–११ में रैरासके दो प्रत्यों की स्वना प्रकारित हुई है

१. मीरावाई की पदावली हि॰ सा॰ सम्मेळन प्रयाग, पृ० १० और पृ० १५६

२. मक्तमार, नामादास, पृ० ४८३-८५

३. ऐन आउरलाइन आव दी रिलीजस लिटरेचर आव इंडिया, ए० ३०६

४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पु० ५६५-५८२

५. रैदास की वाणी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

६. उत्तरभारत की सन्त परम्परा, पृ० २४३

अति अपार संसार भवसागर जामे जनम मरना सरेह भारी। काम अस होप अस छीन अस मोहअस अनत अस देदि सम करिस भारी॥२॥ पंच सत्ती मिल्रि पीवियो प्रान यो जाय न सक्यो बैराग भागा। पुत्र वस्ता कुठ चुपु ते भारता भरते दसो दिए सिरकाल लगा।।१॥ परम प्रकास अदिनाशी अयमोचना निरक्षि निज रूप विसराम पाया। वर हैरास होगा पर चितना जुपी जगहीस गोविद् रामा।।६॥

इस पर की भाषा मूल्ट खड़ी बोली ही है किन्तु इनमें मी बामें (सर्व० अधि०) श्रीर पीड़ियों, सक्यो आदि क्रिया रूप ब्रजमापा प्रभाव को सूचना देते हैं किन्तु जहाँ आत्म निदेरन आदि के पर आते हैं, बहीं रैताल की भाषा अध्यन्त मार्मिक और शुद्ध ब्रजमापा ही रिखाई पड़ती है। नीचे इस रैतास के तीन ब्रजभाषान्यद उद्भृत करते हैं। ये तीनों पर गुरु प्रस्य से हैं।

> दूध बहरे यनह बिदारिड कुल, वर्भेर अरू भीनि विचारित ॥१॥ माई गोविद पुना बहा है वर हावड, अवह न कुल अपूर न पावड । मेलागिरि बेरहे हैं सुद्दना, विद्य आंद्रत वसहिं इरू समा ॥२॥ पुर दांप नहवेददि बासा, कैसे पुन करिंहे तेरी हासा ॥२॥ मनु अरपडे पुन बमावड, गुरू प्रसादि निश्जन पावड ॥४॥ पुना अरबा आहि न तोरी, कहि रविदास कुबन गति मोरी ॥५॥

आत्मनिवेदन सम्बन्धी दूसरा पद—

जड हम बाघे मोह फास हम प्रेम वर्धान तुम बाँचे । अपने हुटन को जतन करहु हम हुटे तुम आरापे ॥१॥ मध्ये बातत हुड वैसां तैसां, अब करत करहु हमें हों। मोंच पकर प्राक्तिक अर काहित, साचि की बहुवानी । पट पर करि मोजन कीनो, तट न विसारिट पानी ॥१॥ आपन वार्ष वाहि कियो को मावन को हिर राजा । मोह पटल सब जाता विचापिट मातत नहीं संतापा ॥१॥ किह रिवरास माति हुक बार्य भव बृह का सिड कहि में । जा काहित कहि में । जा काहित हम तम आरापे, सो टम अजर्ड सहित कहि में ॥३॥

दैन्यभाव का चित्रण करनेवाला तीसरा पद---

नाप कट्टम न जानड मनु माइया के हाथि विकानड, दुम कहोवत है जातततुर सुआमी, हम क्होमत किन्तुग के बामी । इन पचन मेरी मन जु विगारिड, पढ़ पढ़ हिर्र जो ते अन्तर पारिड ॥२॥ जत देपड तत दुप की रासी, अर्ज न पत्माइ निगम मए सासी ॥३॥ गोतम नारि डमार्चत स्थामी, सीसु घरनि सहस भरपामी ॥१॥ इन दूतन पनु कु कि मारिड, वां निलाज अजह नहिं हारिड ॥५॥ किंदि रावदात कहा कैसे कींज, विन्तु रमुनाथ सरत कांजी लींड ॥॥॥ किंदि रावदात कहा कैसे कींज, विन्तु रमुनाथ सरत कांजी लींड ॥॥॥

व्यवभाषाका निर्माण १६९

अति अपार संसार भवसागर जाने जनम मरना सदेह मारी। काम अस बोध अम छीन अस मोह अस अवत अस देदि सम करिस मारी॥१॥ पंच समी मिल्र पीरियो प्रान यो जाय न सक्यो वैराग भागा। पुत्र वरन कुठ वधु ते भारता मरवे दसो दिव सिरकाल छाता।।१॥ परम प्रकाश अविवाशी भयमोचना निरक्षि निज रूप विसराम पाया। वट वैटास देशा पट चिंतना वदी जगदीस गोविद् राता।।१॥

इस पर की मापा मूलत खड़ी बोली ही है किन्तु इनमें भी बामें (सर्व० अधि०) श्रीर पीडियो, सस्यो आदि किया स्व प्रजमापा प्रभाव को सूचना देते हैं किन्तु जहाँ आत्म निवेदन आदि के पर आते हैं, बहीं रेदाल की भाषा अध्यत्त मार्मिक और शुद्ध प्रजमापा ही रिसाई पड़ती है। नीचे इस रैदाल के तीन प्रजमापान्यद उद्भृत करते हैं। ये तीनों पर गुरू प्रम्य से हैं।

> दूधु बढ़रें यनहु विदारित कृत, वर्भेर अक मोनि विचारत ॥ १॥ माहें गोविद पुता बहा के चर्हावड, अवह न कुरू अन्त्य न पावत । मैकानिरि बैर्ग्हे हें सुद्धना, विदु अब्दित वस्ति हुं कर सा ॥ २॥ पुत्र दोंग नृद्धिद्ध बाता, केसे पून करिंहे तेरी दासा ॥ १॥ मत अपन्त्र पून बरावड, गुरू वरसादि निरजन पावड ॥ १॥। पूना अपना आहि न तौरी, किंदि रविदास कवन गति मोरी ॥ ॥॥

भारमनिवेदन सम्बन्धी दृसरा पद—

जड हम बाये मोह फास हम प्रेस वयनि तुम बाँचे ।
अपने हुटन को जतन करहु हम एटे तुम आराचे ।।।।
माथवे जानत हहु तैसां तैसी, अब कहा काहूले ऐता ।
सांग पकरि साकित सक काटित, राधि कांत बहुवानी ।
पट पद करि भोजन कोनो, तत न विस्तारित पानी ।।२।।
आपन बाये बाढि कियो को भाजन को हिर राजा ।
मोहु परसु सब जाता जियापित भागत नहीं संतापा ॥३॥
कहि विहास साति हक बाई अब दह का सित कहि भें ।
जा कारीन हम तुम आराये, सो दूप अजहुँ सहिम्मै ॥॥
दैन्यमाय मा विश्वण करनेवाल तीसरा पट—

नाय कट्ट न जातर मनु माइया के हाथि विकानक, सुम कहोयत है जातगा सुमामी, हम कहोयत है जातगा सुमामी, हम कहोयत के कामी । इन पत्त्व मेरी मन जु विचारिक, पढ़ पत्त हिरी जो ते अन्तर पारिक ॥२॥ जात देशक तत दुश्व हो हाथी, अर्जे न एताह निराम मर् सार्था ॥३॥ योवम मारे कामीत स्वामी, सीधु परिन सहस अपपामी ॥१॥ इन दूसन पत्तु करू करि मारिक, क्यों निराम अजह नहिं हारिक ॥५॥ कहिं रविदास कहा कैसे कीज, वित्तु प्रमास समस्त कार्ज लोजी ॥६॥

§ २१७. धना भगत—धन्ना जाति के जाट और राजपूताना के निवासी थे । अपने एक पट में उन्होंने अपने को बाट कहा है श्रीर कवीर, नामदेव, सेन, आदि नीच जातियाँ में उत्पन्न लोगों को भक्ति से आक्रुप्र होकर स्वय भक्त हो जाने की बात लिखी है।

इदि विधि सनकै जारते उदि भगती लागा सिले प्रतिप गुसाइयां धनां यह भागा

श्री मेकालिफ ने इनका जन्मकाल सन् १४१५ ईस्वी अर्थात् सवत् १४७२ अनुमानित किया है। भेकाबिक का यह अनुमान मुख्यतः घना और रामानन्द के शिष्य गुरु-सन्बन्ध की अनुश्रति पर ही आधारित है। नाभादास ने भक्तभाज में धन्ना के बारे में एक छप्पय लिखा है। नाभादास ने इस छप्पय में लिखा है कि खेत में बोने का बीज धन्ना ने भक्तों को बाँट दिया और माता पिता के डर से फुठे इराई खींचते रहे, किन्तु उनकी भित्त के प्रताप से विना भीज नोये ही अकुर उदित हो गए। धन्ना के हृदय में अचानक उत्पन्न होनेवाली मिक्ति के हिए इससे मुन्दर कथोपमा और क्या हो सकती है !

धर आए हरिदास तिनहि गोधूम खवाए । तात भात हर खेत थोथ खाँगछहि चलाए ॥ भासपास क्रपकार खेत की करत बढाई । भक्त भने की रीति प्रकट परतीति ज पार्ट ॥ अचरत मानत जगत में वह निपत्रयो कहें वै वयो। धन्य धना के भजन की जिनहिं बीज अंकर मयो॥ —भक्तमाल, प्र० ५०४

धना के कुल चार पद गुरुप्रत्थ साहब में मिलते हैं। इन पदों की भाषा पर खडी मोली और राजस्थानी का घोर प्रभाव दिखाई पडता है। नीचे एक पद दिया बाता है जो गुरु-प्रन्थ साइन में आसा राग में दिया हुआ है ।

रे चित चेतसि की न दवाल दमोदर विवहित जानसि कोई । जे धावहि यद ब्रहिमड कर करता करें स कोई ॥ रहाउ॥ जन्ति हैरे उदर उदक महि पिड कीया दस दुआरा । देह भहार अगिनि महि रापै ऐसा पसम हमारा ॥१॥ क्मो जल साहि तन तिस बाहरि ९प मीरु तिन्ह नाहीं । परन परमानन्द अनोहर समस्ति देख मन माही ॥२॥ पापणि कंद्र गुपतु होड़ रहता ताको मारत नाहीं। कहे थना पूरन साह की मत रे जीअ डराही ॥३॥

§ २१८ नानक—नानक ना रचनाकाल हमारी निश्चित काल सीमा के अस्तर्गत श्राता है। इसका जन्म संवत १५२६ में लाहीर से ३० मील दर तलवडी नामक ग्राम में

^{1.} मेकालिफ-दि सिख रिलीजन भाग ५ पृ० १०६

२. राग आसा पद १ और ३ ए० ४८७, राग आसा पद ३ ए० ४८८. घनाचरी पद १ ए० ६६५

§ २१७. ध्वता भगत—चन्ना जाति के बाट और राजपुताना के निवासी थे। अपने एक पद में उन्होंने अपने को बाट कहा है और कबीर, नामदेव, सेन, आदि नीच जातियों में तत्का ठोवों की भक्ति से आकृष्ट केक्ट स्वय भक्त हो जाने की बात निवास है।

> इहि विधि सुनके जारते उठि भगती लागा सिले प्रतिष गुसाइयां धनां यह भागा

श्री मेकालिक ने इनका जन्मकाल सन् १४१५ ईस्ती आर्यात् सवत् १४७२ अनुमानित किया है। मेकालिक का यह अनुमान सुल्यतः भन्ना और रामानन्द के शिष्य गुरुसान्यत्व की वनशुति तर ही आयारित है। नामादास ने भन्नान में बहा के बारे में एक लुपय लिखा है। नामादास ने इस लुपय में लिखा है कि खेत में बोने का बीव धना ने भन्तों को बौट दिया और मातारिता के बर से मूठे हराई लीचते रहे, किन्तु उनकी भन्ति के प्रताप से दिना बीव बोये ही अकुर उदित ही गए। धना के हृदय में अचानक उत्पत्त होनेवाली मिक्त के लिए इससे सुन्दर क्योपमा और क्या हो सकती है।

> घर आए इरिदास तिनिह गोधूम खवाए । तात मात बर लेत थोध खांगळहि चळाए ॥ आसवास कुपकार ऐत की करत चढाई । भक्त भने को रीति शब्द परवीति जु पाई ॥ अचरम मानत जात में कहुँ निष्ठयो कहुँ वै वयो । धन्य धना के मतन की विनिह धीत अंकुर मयो ॥

—भक्तमाल, पृ० ५०४

पना के कुल चार पर गुरुप्तय साइव में मिनने हैं। इन पदों की भाग पर खडी बोली और सबस्थानों ना घोर प्रभाव दिखाई पडता है। नीचे एक पर दिया बाता है जो गुरू-प्रत्य साइव में आला राग में दिया हुआ है।

> रे चित्र चेतिस की न दवाल दमोदर बिवहित जानिस कोई। ते धावाँद पट प्रहिमद कड करता करें सु कोई। प रहाडा जनि केरे उदर उदक महि चित्र काँचा दस दुआरा। देह जहार अभिनि महि रागे पेला पत्तमु हमारा घा॥ इमी जरु माहि तन तिहा चाहिर पर मीह तिन्ह नाही। प्रश्न परमानन्द मनीहर समित देस मन माही। १२॥ पापनि कोई गुण्तु होई रहता ताको माहन लाही। कहें धना प्रश्न ताहु को मत रे जीअ द्वाही ॥३॥

§ २१८ नानक—नानक का रचनाश्रत इसारी निश्चित काल सीमा के अन्तर्गत आता है। इसका अन्म संबत् १५२६ में लाहीर से ३० मील दूर तत्वडी नामक ग्राम में

^{1.} मेकालिफ-दि सिख रिलीजन भाग ५ पृ० १०६

र. राग आसा पद १ और ३ पृ० ४८७, राग आसा पद ३ पृ० ४८८, धनाचरी पद १ पू० ६०५

तक विन शवर न कोड मेरे विवारे तुम विनु अवर न कोई हरे सखी रंगी रूप हुं है तिस वरवसे जिस नटिर वरे सास वरी घर वासन देवे पिउ मिउं मिछन न देह बुरी मधी माजनी के इउं चरन सरेवरं, हरि गरु किरण से नदिर धरी ॥२॥ आर जिचारि मारि मन देखियां तुम सौ मीत न अवर कोई । जिनं त राखीं तिनं ही रहणा मुख दप देवहि करहि सोई ॥३॥ आसा मनसा दोउ विनासा त्रिह गुण आम निरास मई नरिक्षा बस्या गरु सुपि पाइणै संत सभा की उतलहीं ॥४॥ गियान ध्यान सगले सभि जप सप जिस हरि हिरदै अलख अभेवा । नानक राम नाम मन राता गर मति पाये सहज सेवा ॥५॥ जो नर दय में दय नहि मानै। सल सनेड अरु भय नहि जाके बज्जन माटो जाने ॥ न्हें निन्दा नहि अस्तति जाहे होभ मोड अभिनाना । हरप सोक ते रहे नियारी नाहि मान अपमाना ॥ आसा मनसा सन्द त्याचि के जग ते रहे निरासा । काम होय जेडि परसै नाहिन तेडि घट ब्रह्म निवासा ॥ गुरु कृपा जेडि नर पर कोन्डी तिन्ड यह जुगति पिछानी । नानक लीन भयो गोविंद सो ज्यॉ पानी संग पानी ॥

कपर ना पर मुख्तः बन का है बैगा कि हुउँ (धर्मनाम) भिउँ, सउँ, कर, ते (परमाँ) सरेवर्ड >सरेसी क्रिया, बिरं > बिरी, तिवं > बिमि (अप्यय) आदि से प्रकट है, किन्तु इस पर पर पर नत कहा बांग्ये की भी छुत्त अवस्य है, मिन्यि, सता, देरिया, रहणा, आदि आहारात्त कियापद हसकी सूचना देते हैं। किन्तु दूसरा पर एकर्स गुद्ध बन ना है और सर के हिमी भी पर से तकरीन हो सकता है।

गुरु प्रत्य में नानक की कुछ सावियाँ मी संबक्षित हैं। दोहों की भाषा पर पंजाबी की छान अवस्य है, किन्तु दोहे ब्रज के ही हैं। किया कहीं-कहीं आकारान्त अवस्य हैं।

सम काड निवें सांप कड पर कड निवें न कोह ।
सि तराम् लीकिय निवें सो गडरा हो हूं ॥ १॥
विमान न पाइड में स स्मु कंत न पाइड साड ।
सूने पर का शहुना जिड आहुना तिड आड ॥ १॥
पनवंता इन हां कहें अवरी घन कड आड ।
- नानक निरथन तिड दिन निव दिन विसरी नाड ॥ १॥
विनकें पर पुज वस तिनको नाड फहोर ।
विनकें दि दें नु बसे ते नर सुनों गहोर ॥ १॥
वेड दु डाहरा वेड्गों पनहि हडोडे वाँह ।
भीडा वेंद्र न जान है कहक कडों मोह ॥ ५॥

तक विन शवर न कोड मेरे वियारे तुक विनु अवर न कोई हरे सची रंगी रूप तं है तिस वरवसे जिस नदिर करे साम बुरो घर वामुन देवे पिउ मिर्ड मिलन न देह बुरी मखी माजनी के इंड चरन मरेवडं, हरि गुरु किरपा ते निदेर घरी ॥२॥ आप निवारि मारि मन देखियां तुम सौ मीत न अवर कोई। जिवं त राखिं तिवं ही रहणा सुख दुप देवहि करहि सोई ॥३॥ आसा सनसा दोउ विनासा त्रिह गण आम निरास मई नरिक्षा वस्त्रा गर स्वि पाइएँ संत सभा की उत्तरही ॥४॥ वियान ध्यान सगले सभि जप सप जिस हरि हिरदे अलख अभैवा । नानक राम नाम मन राता गर मति पाये सहज सेवा ॥५॥ जो नर दय में दय नहि मानै। सुल सनेह भर भय नहि जाडे कञ्चन माटो जाने ॥ नहिं निन्दा नहि अस्त्ति जाहे छोभ मोह अभिमाना । हरप सोढ ने रहे नियारी नादि सान अपसाता ॥ भागा प्रतमा सन्द त्याति के जग ने रहे निरासा । काम कोच जेडि परसै नाहित तेडि घट ब्रह्म निवासा ॥ गुरु कृपा जैडि नर पर कोन्डी तिन्ह यह जुराति पिछानी ।

कपर ना पर नृस्ता जब का है बैना कि इर्जे (सर्गनाम) भिजें, सर्जें, कड़, तें (परमाँ) सरेवर्जे>सरेंबें किया, बिजें>बिमें, तिवं>तिमि (अन्यव) श्रादि से प्रकट है, क्लिंड स्व पद पर सर नत बड़ी बोण्जें की भी खुष अबस्य है, मिण्यि, साता, देरिया, एड्या, आदि आदायन नियापद रक्षके सूचना देते हैं। क्लिंड कुसा पद एकरम शुद्ध जब ना है और सर्फ के मिभी भी पद से तुलगित से सकता है।

नानक लीन भयो गोबिंद सो ज्यॉ पानी संग पानी ॥

गुर प्रत्य में नानक की कुछ सावियों भी संकटित हैं। दोहों की भाषा पर पंजाबी की हार अनस्य है, किन्तु बोदे बच के ही हैं। किया कहीं-कहीं आकारान्त अवस्य हैं।

> सम काड निवें आप कड पर कड निवें न कोड़ । मिर तराज् तीकिय निवें सो गदरा होद ॥१॥ जिनी न पाइड मेम स्मु केत न पाइड साड । सूने पर का पाइना निव आहपा तिव जाड़ ॥१॥ धनवंशा इन हो कहें अवरो धन कड आड । गानक निरम्प निव्य हिन निवृ दिन वितरे नाड ॥१॥ जिनके परै पतु वसे तिनको नाड फर्जार । विनके दिरदे तु बसे तैं नर गुणी गहार ॥१॥ वेतु खुलारु । देशी पाइस ॥१॥ वेतु खुलारु । देशी पाइस ॥१॥

हरिदास निरंजनी

निर्धय नहीं हो हवा है। ये निर्धयन संप्रदाय के आदि ग्रुप प्रतीत होते हैं। निर्धयन संप्राय के चार्मिक परंपराओं और वैद्यानिक मान्यताओं का निरीच्या करने पर पता चन्या है कि यह संप्रदाय नाय संप्रदाय के प्रमालित था। इस संप्रयाय के ब्राविष्ट करने पर पता चन्या है कि उड़ी हा हो संभित्ता: इस संप्रदाय की क्यान्य माने या हा कि उड़ी हो संभित्ता: इस संप्रदाय की क्यान्य माने था हो से वह प्रदाय कंगाल आदि में प्रशासित हुआ होगा। उड़ी ता में के हुए इस संप्रयाय से उत्तर भारत हास तीर से पश्चिमी प्रदेशों में कैं हुए निर्ध्यनी संप्रदाय का क्या संवय है, यह तताना संदेश पत्र संप्रयाय माने के स्वायत संद्र हों परिचानी मारता में रीलो हुई निर्ध्यनी परंपराय मा सुद्ध परिचयत बाहू संपी पायोद्ध के मतमान ही है। पहुंच्यी मारता में रीलो हुई निर्ध्यनी परंपराय मा सुद्ध परिचयत बाहू संपी पायोद्ध के मतमान ही है। एक संदत्ती मारता मारता का कार्य है प्रदान हों से संपी में सारह निर्द्धनी मारता कार्य है। यह संपी में सारह निर्द्धन मारान्य कार्य स्थान स्थान की स्थान स्थान की स्थान स्थान की स्थान की स्थान से सी है से सो ती होती कारा है। भागन है से सार निर्धाण संप्रदार के भी भी शर्वक से प्रीति बताया।

§ २१९. हरिवास निरंबनी के बन्म-काल आदि के विषय में अब तक कोई सुनिश्चित

रामानुब की पधित चरों तस्मी मूँ आहें। विष्णुस्तामि को पधित सुती संकर ते आहें।। सथवाचार्य पधित ज्ञाँत हवा सुविचारा है। गोंवादित की पधित प्यारि सनकारि कमान।

१. मिदिवल मिस्टिसिउम आव इण्डिया, पृ० ७०

अन्य कवि

हरिदास निरंजनी § २१९. हरियास निरंबनी के बन्म-काल आदि के विषय में अब तक कोई सुनिश्वित

संप्रदाय नाय संप्रदाव से प्रभावित या। इस संप्रदाय के अवशिष्ट रूपों भी मीमीना करते हुए भी विकिमोहन देन ने लिखा है कि उड़ीका हो संभवतः इस संप्रदाय की अन्यमूमि या, और वहीं से दह सप्रदाव की काल के हिंदी हों हों हो है के हुए इस संप्रवाय की वह तो हो तो है के हुए इस संप्रवाय के उद्याव की ता और से पहिंचमी प्रदेशों में कैंटे हुए निरंबनी संप्रदाय का क्या संक्ष्य है, यह सताना करित है। परिचमी प्रदेशों में कैंटे हुए निरंबनी परिचार का क्या संक्ष्य है, यह सताना करित है। परिचमी प्रावत में कि हुई निरंबनी परिचार का कुछ परिचय बादू पंची पायोदास के मक्तमान ही (१७५० संवत्) मिच्ता है। इस मंग में बारह निरंबनी महत्त्री का स्वर्थ में स्वर्थ में बारह निरंबनी महत्त्री का स्वर्थ में स्वर्य में स्वर्थ में स्वर्थ में स्वर्थ में स्वर्थ में स्वर्थ में स्वर्थ में स्वर्थ

निर्णय मही हो सका है। ये निरंबन संप्रदाय के आदि गुरू प्रतीत होते हैं। निरंबन संप्रदाय के चार्मिक परंपराओं और सैदालिक मान्यताओं का निरीदण करने पर पता चलता है कि यह

> रामानुज की पधित चली तस्मी मूँ आई । विष्युस्वामि को पधित सुती संकर ते आई ॥ मधवाचार्य पधित सुत्त कहा सुविचारा है । गोंजादित को पधित स्पारि सनकादि कमाता।

संप्रदायों को भी निरंजन से प्रेरित बताया ।

९. मिडिबल मिस्टिसिय्म आव इण्डिया, पृ० ७०

पन्दासे बारोलरे कागुन चुदि घुटकार बैरान झान भगति कु लंगी हरि बदवार पन्दाह से का बाहर गयो हरि धारवो अवतार इंगत भकि बैरागय से भाष दियो भववार पन्दाह से छुपन समें बसन्त बद्धमां जान तब हरि गोरच रूप परि काम दियो बहु जान सोल्ड सो को चुहि दुन्ति सागुन मास प्रमा थान में अमुकी नाम मेंड हरियान

इस उल्लेस के बुवाबिक हरियान का काल १५१२-१६०० संबन् मान्त्रम पहता है को मुद्दरवान के उल्लेम से बितमें हरियान को दादू का पूर्ववर्षी बदाया गया है, मेल खाता है। मत्त्राहरात की के पात एक हत्तिविरात गुटिन में निधिवाल सम्बन्धी एक दूषरा उल्लेख मिन्ताहर, यह गुल्का बहुन परवर्षी मान्त्रम होता है, इसे किमी गूर्णदाछ ने नवलगढ़ में किया था।

> चवरेमे चोहतरे जन्म लियो हरिदास सांवठ से पर अवतरे हतरी वश निवास इटरी वंश निवास तेज सो सुरति विराजे हतरि येष सो सुरमाय को कूथ न लाजे मिलियो गोरप रुप हरि दियो ज्ञान परहास चवरह से चोडोचरे जन्म लियो हरितास

पन्दरसी पिचामने कियो जोति में बास फागुन मुदि को छड़ को परम जोति परकास

इसी से मिन्नता लुन्नता दूसरा उल्लेख मनराज प्रभाकर प्रन्थ के १३ वें उज्ञास में इस प्रकार आता है :

> चवरायत संबद् सहवार, प्रक्टे सुदेस सुरधर ममार । पथासी प्रज्ञानवे सुद्र फालुण सुद्रे जाग । विंता सो बसुराखि के पहुँचे पर निर्वाग ॥

इन सभी उल्लेखों में इरियास चा काळ ११श्री १६वीं कितनी के बीच पडता है। नीचे के वीनो उल्लेखों में ती १४७५-१४.६५ सबत् पर गतैक्व भी दिसाई पडता है। इन उल्लेखों में बक्त रननाकाल को चैराते हुए भी बगबर उपनी गुलेश का मत भी उपयुक्त ही भावम है। थी शुलेश इरियास का चलनानाल १४५० और १५५० इंग्ली (अयॉत् १५००-१५६० वितमों) भावनों है। इन अपनी के आधार पर यह इहना आपन अनुचित न होगा कि इरियास निरक्षती वितमी १६०० के पहले अवस्य विद्यान में।

^{1.} नागर्।प्रचारिली पत्रिका, संबत् ३६६७ वर्ष ४४, पृ० ७७

पन्दरसे बारोक्त कागुन सुदि स्टरसार बैराम्य ज्ञान भगति क् स्पेती हरि अववार पददहर से का बाहद गांती हरि पारको अवतार ज्ञान मिंक देशमार से आप दियो अवगार पन्दरह से क्षणन समें वसन्त पढ़मी जान तब हरि गोरण रूप पार्र आप दियो मह सान सोल्ड सी को सुद्ध सुदि प्रागुन मास एक्स साम से प्राप्ती नगर होंड हरिटास

इस उल्लेप के मुजाबिक हरियात का काल १५१९-१६०० संबन् मान्यम पडता है जो मुन्दाराम के उल्लेख से बिनमें हरियाम को दाहू का पूर्ववर्ती बताया गया है, मेल खाता है। मानदास बी के पात एक इस्तीलिरित गुटिने में निधिकाल सम्बन्धी एक दूसरा उल्लेख मिलता है, यह गुटका बहुन परवर्ती मान्यम होता है, इसे किमी पूर्णदास ने नवल्याट में लिखा था।

> चबरेमे चोहतरे जन्म लियो हरिदास सांस्रङ से घर अवतरे हुनता बद्य निवास इतर्ता पंग्र निवास तेज सो शुरति विराजे इतिर भेष सो सुरागय को शूज न लाजे निस्थि। गोरप रूप हरि दियो ज्ञान परकास चबरह से चोडोसरे जन्म लियो हरिदास

पन्दरसी पिचागवे कियो जोति में वास फागुत सुदि को इंड को परम जोति परकास

इसी से मिन्न्या जुन्न्या दूसरा उल्लेख मनराज प्रभाकर अन्य के १३ वें उज्ञास में इस प्रभार आता है :

> चवरारात संबद्ध सहचार, प्रबटे सुदेस सुरथर ममार । प्रवासी प्रज्ञानवे सुद्ध फासुग छठि लाग । विंदा। सो वसुराखि के पहुँचे वद निर्वांग ।।

इन सभी उल्लेखों में हरिदास वा काछ १५वीं १६वीं बित्रमी के बीच पडता है। मीचे के शेनो उल्लेखों में तो १४७५-१४६५ कबत् पर मतैक्य भी रिशाई पडता है। इन उन्हेखों में कक स्वनाक्षक को देखते हुए भी बमदर रामां गुलेखे का मत भी उपकुक ही माद्य होता है। भी गुलेश हरिदास का स्वनाक्षत १५२० और १५५० ईस्ती (अर्थात् १५७-१५६७ किरमी) मानते हैं। इन मत्रवों ने आचार पर यह कहना शायद अनुचित म होगा कि हरिदास निरक्षनी विक्रमी १६०० के पहले अवस्य विद्यान थे।

^{1.} नागर्।प्रचारिणी पत्रिका, संवत् १६६७ वर्षे ४४, पृ० ७७

201

मापा पर वहीं नहीं राजस्थानी प्रभाव मी दिखाई पडता है। सत शैली ने रूढ प्रयोगों के बावनुर, को प्रायः वह भाषाओं से शहित हुए हैं, इनकी भाषा पुष्ट जनभाषा वही बा सकती है। हरिदास के विचार अस्वत सहब और भाषमय है अतः भाषा वडी ही साप और व्यवनापूर्ण है।

निम्वार्क संप्रदाय के कवि

६२२१. वैष्णव सप्रदायों में निम्बार्क सप्रदाय काफी प्रतिष्टित श्रीर प्रशाना माना जाता है। निम्बार्क के जन्म-काळ आदि के विषय में कोई मनिश्चित धारणा नहीं है। सप्रदायी मक्त लोग निम्नाकीचार्य के श्रारिमांब का बाल आज से पाच हजार वर्ष पूर्व मानते हैं। उनके मत से २०१३ वा विक्रमी वर्ष निम्बार्क का ५०५१ वा वर्ष है। ऐतिहासिक शेति पर विचार करने पर इम इस सप्रदाय का ऋारभ १२वीं से पूर्व नहीं मान सकते । १२वीं शती में निम्बार्कका का जन्म आन्त्र प्रदेश में हुआ था । उन्होंने दैतादैत के सिद्धान्त पर आधारित वैष्णय भक्ति का प्रतिपादन किया, वे बाद में बन्दावन मे आकर रहने भी छगे थे। अन्य वैष्णव सप्रदायों की तरह इस सप्रदाय के भागों ने भी भांचि-साहित्य का निर्माण किया । श्रीभष्ट इस सप्रदाय के आदि ब्रजभाषा-कवि माने जाते हैं। श्रीमड़, हरिव्यासदेवाचार्य, परशुरामाचार्य ये तीन इस सप्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य और गृह शिष्य परपरा से ब्रिमिड उत्तराधिकारी के रूप में सप्रद माने जाते हैं। इन तीनों ही आचार्य-कवियों के कीयन वृत्त का यथातस्य पता नहीं लग पाया है। श्रीमह का परिचय देते हुए शुक्ल बी लियते हैं 'इनका जन्म सवत् १५६५ में अनुमान िष्म जाता है अतः इनका कविता काल सवत् १६२५ या इसते कुछ आगे तक माना जाता है। युगल शतक के श्रांतिरिक्त इनकी एक छोटी सी रचना आदि बानी भी मिन्नती है। ' शुक्त जो ने जन्म काल को जिस तरह अनुमान रूप में १५६५ विकमी बताया वैसे ही 'स्माल रात' के साय ही 'आदि नानी' का भी अनुमान कर लिया । आदिनानी और यगल्यातक दोनों एक हो चार्जे हैं। ब्रजभाषा की निम्नार्क सम्प्रदाद गत पहली रचना होनेके सारण यह आदियानी वहलाई। शुक्ल जी ने हरिय्यासदेवाचार्य और परश्रराम के बारे में कुछ नहीं लिखा । डा॰ दीनदयाल गुप्त ने अप्टछाप से पहले हिन्दी में कृष्ण भक्ति काल्य की परम्पा ना सन्धान करते हुए ब्रह्मचारी विदारीशरण की 'निम्पाकमाधुरी' में उपर्युक्त करियों पर जिले हुए बीजन-हुत नो अधामाणिक बताया है। विदारीशरण बी ने श्रीमट्ट का करूप १३५२ किस्सी और उनके शिष्य इरिल्यात की का १३२० विकसी दिया था। बा॰ गुप्त खिलते हैं 'बस्तुत. ब्रह्मचारी बी ने इन दोनों मर्कों की विद्यमानता का सबत गलत दिया है। निम्बार्क सप्रदायी तथा सुगल शतक के रचिवता श्रीमट केशव कश्मीरी के शिष्य माने बाते हैं। इनका (श्रीमद्दक्ष) रचना काळ संबत् १६१० विक्रमी है। श्री हरिव्यास देव का रचना काल भी सरदास के समय का ही है। यसे निम्बार्क सप्रदायी हरिव्यास देव जी आमु में सूर से बड़े थे। वहार सुत ने अपनी स्थापना के मण्डन के लिए कोई आधार

^{1.} हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत् २००७, काली, ए० १८८

र. अष्टलाप और बहुम सम्प्रदाय, प्रयास, २००४ विक्रमी, ए० २५ १. बढी, ए० २५

[₹]६

भाषा पर वहीं नहीं राबस्थानी प्रमाव भी दिलाई पड़ता है। सत शैली ने रूढ प्रयोगों के बातवर, जो प्रायः वह भाषाओं से यहित हुए हैं, हनकी भाषा पुष्ट वयभाषा वही जा सकती है। हरिहास के विचार शखत सहज और भाषमय है अतः भाषा वडी ही साए और व्यवतापूर्ण है।

निम्बार्क संप्रदाय के कवि

६ २२१. वैष्णव सपदायों में निम्बार्क समदाय काफी मतिष्टित ख्रीर पुराना माना जाता है। निम्हाक के जन्म-काळ आदि के विषय में कोई मुनिश्चित धारणा नहीं है। सप्रदायी मक्त होग निम्त्रार्काचार्य के आदिमांव का काह आज से पाच इवार वर्ष पूर्व मानते हैं । उनके मत से २०१३ वा विक्रमी वर्ष निम्बर्क का ५०५१ वा वर्ष है। ऐतिहासिक रीति पर विचार करने पर इस इस सप्रदाय का आरभ १२वों से पूर्व नहीं मान सकते । १२वीं शती में निम्बार्कका वा जन्म आन्त्र प्रदेश में हुआ था। उन्होंने देतादेत के सिद्धान्त पर आधारित वैष्णव भक्ति का प्रतिपादन किया, वे बाद में बृन्दावन मे आकर रहने भी छगे थे। अन्य बैष्णुव समदायों नी तरह इस सप्रदाय ने भर्चों ने भी भवि-साहित्य ना निर्माण किया । श्रीभष्ट इस सप्रदाय के आदि बनभाषा-कवि माने चाते हैं। श्लीमड, इरिव्यासदेवाचार्य, परशुरामाचार्य ये तीन इस सपदाय के मसिद आचार्य और गह शिष्य परपरा से ब्रिमिड उत्तराधिकारी के रूप में सबद माने जाते हैं। इन तीनों ही आचार्य-कवियों के जीवन वृत्त का यथातच्य पता नहीं लग पाया है। श्रीमट का परिचय देते हुए शुक्ल बी लिखते हैं 'इनका जन्म सवत् १५६५ में अनुमान क्या जाता है अतः इनका कविता काळ सवन् १६२५ या इससे कुछ आगे तक माना बाता है। युगल शतक के अतिरिक्त इनकी एक छोटी सी रचना आदि बानी भी मिलती है। शुक्ल जी में जन्म माल को जिस तरह अनुमान रूप में १५६५ विकमी बताया बैसे ही ध्याल रात' के साय ही 'आदि वार्नी' का मी अनुमान कर लिया । आदिवानी और युगल्शातक दोनों एक ही चार्चे हैं। ब्रजभाषा की निम्त्रार्क सम्प्रदाय गत पहली रचना होने के बारगा यह ग्रादिशनी वहलाई। शुक्ल जी ने हरिल्यासदेवाचार्य और परशुराम के बारे में कुछ नहीं लिला । डा॰ दीनदयाल गुत ने अप्रद्वाप से पहले हिन्दी में कृष्ण मिक्त काव्य की परम्परा मा सन्धान करते हुए ब्रह्मचारी विहारीशरण की 'निम्पार्कमाधुरी' में उपर्युक्त कृतियों पर जिले हुए बीजन-बुत को अग्रामाणिक बताया है। ब्रह्मरीशरण बी ने श्रीमङ् का समय १३५२ विकमी और उनके शिष्प हरिव्यास जी का १३२० विकमी दिया था। बा॰ गुत छिखते हैं 'ब्लुत ब्रह्मचारी वो ने इन दोनों मत्तों की विद्यमानता का सबत् गलत दिगा है। निम्बाक समदायी तथा सुगल शतक के स्वविता श्रीमह केशव कर्मारी के शिष्य माने बाते हैं। इनका (शीमह का) रचना काळ संबत् १६१० विक्रमी है। श्री हरिव्यास देव का रचना काल भी सरदास के समय का ही है। वैसे निम्बार्क सप्रदायी हरिव्यास देव जी आयु में सुर से बड़े ये । डा॰ गुत ने अपनी स्थापना के मण्डन के लिए कोई आधार

^{1.} हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत् २००७, काशी, पृ० १८८

२. अष्टदाप और बहुम सम्प्रदाय, प्रयाग, २००४ विश्वमी, ए० २५ १. वही, ए. २५

^{76 49} 78

गोविंद भक्ति गद रोग गति तिलक दास सद बैद हद जंगली देस के लोग सब परशुराम किय पारपद

नामादास के इस ळप्पय में श्रीमट के बाद हरिज्यास और परशुराम को कमरा: शिष्य परमत्ता में स्थापित किया गया है। परशुराम के निषय में नाभाशस ने एक ऐतिहासिक तथ्य ना उद्पाटन भी किया है। परशुराम ने 'अगली देस' के लोगों को वैष्णव बनाया। यह 'बंगली देस के लोग' पर बुख उलमा हुआ प्रतीत होता है ।' बगली' शब्द होगों के असम्य, पर्यर और अतस्कृत होने ना आभास तो देता हो है किन्तु मूछतः यह देशमेद सूचित करता है जागल देश राजस्थान के एक हिस्ते का नाम था। सभवतः दिल्यी मेरठ के होत्र के जिसे करदेश कहते थे, दक्षिणी भाग को बागल कहते थे। कर के परव का देश पाचाल या इसी से 'कुरुपाचान' और 'कुरुवागन' दोनों पढ़ों का उल्लेख मिलता है। देसे बावल किसी भी ऐसे हिस्से की कहा जाता या जो ग्रल्योदक, तुगहीन, सूला देश हो तथा जहाँ हुना और गर्मी तेज रहती हो। भावप्रशास में बागल देश वा परिचय देते हुए कहा गया है कि शुभ आकाश बाज तथा योडे जरु से देदा होनेवाते पीघों ग्रामी, करीर, विरूप, अर्ड, पीगुरू, कर्मायु आदि से भय हुआ देश जायळ वहा जाता है। इन विशेषताओं से युक्त राजस्थान के किसी हिस्से को चौगल वहना उचित ही है। महाभारत में मद्र और बागल का नाम साथ आता है। मद्र राजी और फेलम के बोच का देश था, इस मकार जागल उसके टिव्स का प्रदेश (राजस्थान) क्हा जा सकता है। इस प्रकार परशुराम सक्त्वी छप्पय में 'बंगली देश' का अर्थ जागल देश अर्थात् राजपूर्वाना का भूभाग है। नाभादास के मत से परशुराम ने गजस्यान के लेगों को 'पारपद' यानी वैष्यव मक बनाया । नामादास ने परशुराम के वार्य-होत का एक्ट्रम ठीक -उल्टेख किया है। क्योंकि परशुराम देव राबस्थान के सलेमाबाद (परशुरामपुरी) को केन्द्र बनाजर मिक प्रचार का कार्य करते थे। आज भी उक्त नगर में निम्मार्क पीठ स्थानित है। वहीं परशुराम की इहलौकिन लीला भी सनात हुई थी। इस प्रकार नाभादास की यह मालूम था कि परश्राम ने बागल देश के बगली लेगों को भक्त बनाया। परश्राम के इस विशेष कार्य का उल्लेख भी ध्यान देने की वस्तु है। एक कारों वह भूभाग को असम्प्र से सम्य या भक्त बनाता बुद्ध समय सापेद्दा त्यापार है। मेरे कहते का मतलब यह कि परशुराम नामादास (१६४२ संबत्) से पूर्व तो ये हो, मिक प्रचार का कार्य तो उन्होंने और भी बहुत पहले से क्या होया। इस तरह परगुराम विक्रमी १६०० के आस पास या उसके पूर्व वर्तमान मे ।

§ २२३. परशुसन बागरमें निवमती गन्य की पुध्यिका से भी दुछ टोगों को भ्रम हुआ है। उक्त पुष्तिका इस प्रकार है:

अस्तोदस्तृको अस्तु प्रवातः प्रचुरातपः संत्रेचो बांगलो देशो षहुषान्यादिसंयुतः (राजावला)
 आक्ष्यः ग्रुप्त उद्धरष स्वत्यानीयपादपः

शमी-करीर बिल्वार्क पीलुकर्जन्युर्संहरूः (भावप्रकाशम्)।

३. तल्बेने क्रस्रांचालाः सल्वा माद्रेय जांगलाः । (सहामारत, भीष्म पर्व, ४० ६)

गोविंद भक्ति गद रोग गति तिलक दास सद वैद हद जंगकी हेस के लोग सब परश्राम किय पारपद

नामादास के इस छप्पय में श्रीभट्ट के बाद इरिव्यास और परशुराम को कमरा: शिष्य परम्पत में स्थापित किया गया है। परशुपम के विषय में नामाशस ने एक ऐतिशक्ति तस्य स स्वप्ताप्त किया गया है। परशुपम ने 'बसकी देस' के लोगों से वैष्णव बनाया। यह 'बंगकी देस के लोग' पर कुछ उलमा हुआ प्रतीत होता है।' अगली' शब्द लोगों के असम्य, वर्षर और असरकृत होने ना आभास तो देवा ही है किन्तु मूलतः यह देशभेद सूचित करता है बागछ देश राजस्थान के एक हिस्से का नाम था। समवतः दिल्टी मेरठ हे त्रेत्र के जिसे कुरुदेश वहते थे, दक्षिणी भाग को बागल कहते थे। कुरु के पूरव का देश पाचाल या इसी से 'कुरुगचान' और 'कुरुवागन' दोनों पड़ों का उल्लेख मिलता है। दैसे बागल किसी भी ऐसे हिस्से को कहा जाता था जो ग्रल्सोदक तुगहीन, सूत्रा देश हो तथा जहाँ हुना और गुर्मा तेज रहती हो। भावप्रकाश में बागल देश का परिचय देते हुए कहा गया है कि शुभ्र आकाश बाह्य तथा थोड़े बन से पैदा होनेवाले पौघों रामी, करीर, बिहर, अर्क, पौरन, फर्मन्यु आदि से मरा हुआ देश बायल कहा बाता है। इन विशेषताओं से युक्त राबस्थान के किसी हिस्से को षांगल कहना उचित ही है। महाभारत में भद्र और बागल का नाम साथ आता है। मद्र रावी और फेलम के बीच का देश या, इस प्रकार जागल उसके टक्किंग का प्रदेश (राजस्थान) क्हा जा सकता है। इस प्रकार परशुराम सबन्धी छुप्पय में 'बंगठी देश' वा अर्थ जागल देश अर्थात् राजपूराना का भूभाग है। नाभादास के मत से परशुराम ने राजस्थान के लेगों को 'पारपद' यानी वैष्यव मक बनाया । नामादास ने परशुराम के कार्य-द्वेत का एक्ट्रम ठीक -वल्लेख किया है। क्योंकि परशुराम देव राबस्थान के सलेमाशद (परशुरामपुरी) को केन्द्र बनाज्य मिक प्रचार का कार्य करते थे। आज भी उक्त नगर में निम्मार्क पीठ स्थानित है। वहीं परशुराम की इहलौकिक लीला भी समात हुई थी। इस प्रकार नाभादास को यह मालूम या कि परशुराम ने बागल देश के बगली लेगों को भक्त बनाया। परशुराम के इस विशेष कार्य वा उल्लेख मी ध्यान देने की वस्तु है। एक कानों वह भूमांग को असम्प से सम्प या भक्त बनाना कुछ समय सापेदन ब्यापार है। मेरे कहने का मतलब यह कि परशुराम नाभादास (१६४२ संवत्) से पूर्व तो थे ही, मिक प्रचार का कार्य तो उन्होंने और भी बहत पहले से किया होगा। इस तरह परशुरान विकमी १६०० के आस पास या उसके पूर्व वर्तमात ये ।

§ २२३. परशुराग कागरमें नित्रमधी गन्य की पुध्यिका से भी दुछ होगों को भ्रम हुआ है। उक्त पुष्पिका इस प्रकार है:

अंक्रोदकनृषो सस्तु प्रवातः प्रचुरातपः संग्रेषो आंग्रङो देशो बहुधान्यादिसंयुतः (रानावङो)
 आकाग्रः ग्रुष्ठ उद्यस्य स्वत्यपानीयपातयः

रामी-करीर विल्वार्क पोलुक ईन्युसंहरः (भावप्रकाराम्)।

३. तलेने हरगंबालाः शस्त्रा माद्रेय वांगलाः । (महामारत, भारम पर्वे, अ० ६)

१२ प्रयो की यह सूची नागरीपचारियों समा खोज रिपोर्ट (१६३२-३४) में प्रस्तुत की गई। डा॰ मातीजाल मेनारिया ने सजस्यान में इस्तलिखित हिन्दी प्रयों की खोज में परशु राम के २२ प्रयो की सुची दी है।

(१) साखी मा बोडा (२) छुद मा बोडा (३) सबैया दन अपतार का (४) रमुनाथ चित (४) श्रीकृष्ण चरित (६) सिमार सुरामा चरित (७) द्रीपदी मर बोडा (०) छुप्पय गड प्राह मी (६) प्रस्त्राद्वरित (१०) अस्परीय खीरा (११) नामनिष्य छोटा (१२) यी निषेप छोडा (१३) नाम खोटा (१४) निव रूप खीता (१४) श्री हरिजीका (१६) श्री निवांग छीटा (१७) समस्प्री खीटा (२०) तिथे छोता (१६) भ्री चायनी छीटा (२२) विवस्त हरीटा (२०) निवस्त हरीटा (१०) नवस्त्र छोटा (२०) समस्प्री छोटा (२०) सिंप छोता (१०) मदन्त्रीटा (२०) स्व

कपर की १३ रचनाओं में पदान्त्री और नार लील की छोड़कर बाकी ११ मय दूषरी सूची में भी शामिल हैं। पहली सूची रागस्य नाम लील निषि (न० ७) दूसरी सूची नामनिषि लील (न० ११) से मित्रती जुल्ती है किन्तु 'रागस्य' का अर्थ राष्ट्र नहीं होता। सौँच निषेय लील ही दूसरी में शौच निषेष लील है।

दोनों सूचिया में तिथि छीला, बार छोला (दूसरी में नहीं) बाबनी लीला श्लीर विवासती शामिल हैं जो विषय और नाम दोनों ही दृष्टियों से कबीर की नहीं बाने वाली दृष्टीं नाम की रचनाओं से हामर सहती हैं। तिथि छोला में परगुराम और कबीर दोनों ही अमादरार में पूर्णिमा तक का वर्षन कन्नोबित दग से लिया है। करीर पहले हैं 'क्षीर मायर मान में गरब में करता कर का पूर्णिमा तक का वर्षन कन्नोबित दग से लिया है। करीर पहले हैं 'क्षीर मायर मन में गरब करना, युव्हित भीन पीच हैं ज्यारी, मला मित्रया तम सबया भागी।' इसी को परगुराम हर राज्यों में कहते हैं 'मानस में ते होऊ डारी, मन मगल अतर है खारी। पड़िता एरमतत ल्यों टाई। मन कूँ पबरि भ्रेम रस पाई।' कजीर मानस में गर्ज न करते करते हैं वर्षा प्राप्त मानस में गर्ज न करते करते हैं वर्षा प्राप्त में ते हैं के बदरमन्यता को छोड़ने की स्टाह देते हैं। प्रतिरहां में कबीर मन से अनुशासित करते प्रिय से प्रांति करते हैं बबिक परगुराम मन को पकड़कर विश्वास टार्शन करने की तत करते हैं।

वारणीला अन्य में कवीर लिखते हैं

कवीर वार-बार इरि का गुन गाउँ, गुरु गिन भेद सहर का पाउँ सोय वार सिस असूत करें, पांवत वेगि तवै निस्तरै

परशुराम की बारलीना में इसी को इस दग से बहा गया है।

वार-वार निज राम समारूँ, रतन जनम भ्रम वाद न हारूँ सोम सुरति करि संतिछ वारा, देप सक्छ व्यापक च्योहारा सोन विसरि जाकी निस्तारा, समार्थि होइ सुमरि अपारा।

प्रथम माग, सवादक मोतीलाल मेनारिया, उदयपुर । 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', १० ११२

१३ प्रयो की यह सूची नागरीप्रचारियों समा खोज रिपोर्ट (१६२२-१४) में प्रस्तुत की गई। डा॰ मातीजाल मेनारिया ने राजस्थान में इस्तलिखित हिन्दी प्रयो की खोज में परशु राम के २२ प्रयो की सूची दी है।

(१) साली मा बोडा (२) छुद मा बोडा (३) सबैया दम अपतार का (४) रखनाथ चिति (३) श्रीकृष्ण चिति (६) हिंगार सुप्तामा चिति (७) द्रौपदी मा बोडा (=) छुप्पय गर्ज प्राह को (६) प्रदृत्तद्वचित (१०) अमरोगर-बीडग (११) नामिनिय-छीड़ग (११) सीचित्रोय ठीछा (१३) नाय छोड़ग (१४) निक कर छीता (१४) श्री हरिखीता (१६) श्री निवांण छोड़ग (१४) समक्रामी छीड़ग (१८) विविध छोड़ा (११) नदक्त स्टिंग (२०) नहक्त-छीड़ग (२१) श्री वावनी छीड़ग (२१) विप्रमती तथा ७४० के छगमम पुत्रक पद।

करर ही १३ रचनाओं में पदान्छी और बार छीटा की छोडकर बाकी ११ प्रय दूसरी यूची में भी शामिल हैं। यहली यूची रामरथ नाम छीटा निषि (न० ७) दूसरी यूची नामनिषि छीटा (न० ११) से मिच्ती बुटती हैं हिन्दु 'रामरथ' का अर्थ रसट महीं होता। साँच निपेय टीटा ही दूसरी में शौच निरोध टीटा हैं।

दोनों सूचिया में शिषि छीला, बार छीला (दूसरी में नहीं) वाबनी लीला श्रीर विभावी शामिल हैं जो विषय और नाम दोनों ही दिख्यों से कबीर भी नहीं जाने वाली इन्हों नाम की रचनाओं से साम सहती हैं। विषि छीला में परशुराम और कबीर दोनों ही अमादस्य से पूर्णिमा तक का वर्णन सन्तोबित दग से किया है। करिय रही हैं 'क्वीर मायस मन में मारब न करना, पुरु मनाव हमि दूतर तरना। पहिंचा भीन पीच हैं लागी, मसा मित्र्या तव सक्या भागी।' इसी को परशुराम इन शब्दों में कहते हैं 'मानस में में दोऊ जगरी, मन मगल अतर है खारी। पड़िया एरमतत लगी हमई।' मन हमें पक्षि भेम रस पाई।' कनीर मानस में गर्न न करने के दहते हैं परशुराम में तें' को अहमन्यता को छोड़ने की बलाह देते हैं। प्रतिदर्श में कबीर मन को अनुशासित करने प्रिय से मीति करते हैं बाकि परशुराम मन को एकड़कर धियनत हम्लीन करने सी बात करते हैं।

वारलीला प्रन्य में कदीर लिखते हैं

कवीर वार-वार हरि का गुन गार्जे, गुरु गमि भेद सहर का पार्जे सोम बार ससि अग्रत मरै, पीवत वेगि तवै विस्तरै परगुराम की बारक्षील में इसी की इस देव से बद्दा राफ है •

वार-वार निज राम सभारूँ, रतन जनम श्रम वाद न हारूँ सोम सुरति करि सीतल वारा, देप सकल व्यापक व्यौदारा सोन विसरि जाको निस्तारा, समर्राष्ट्र होड् सुमरि जपारा ।

प्रथम मान, सराइक मोर्तालाल मेनारिया, उदयपुर। 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', १० १४२

स्व० डा० पीताग्दर इस मध्याल ने उचित हो लिखा 'परखुरान सा रचनाग्य आत नहीं है वे कद्यार से परले के है या पीछे के यह भी जात नहीं। इसलिए पूर्ववता सैन्य से भी इस नियम में कोई निर्णव नहीं हो सम्ता। परंतु इतना निश्चम है कि औरों जी भी चुल रचनायें क्योर के नाम से चल पड़ों हैं। क्योर के नाम से मिलड़ कुल रचनायें स्मामी सुरानन्द और ब्याना भी ने नाम से मिलती है। क्वीर की समिद क्यकि की रचना दूसरों के नाम से चल नंदगी यह कम समन्त है। अभिक समन मही है कि कम मिलड की से नाम से चल पड़ारी की रचनाएँ करीर के नाम से चल पड़ी हों। और उनके क्वांओं को लेश मुख्य हुए हों!"

\$ २२६ नीचे श्रीमह, इिल्पानदेव, परशुराम और तत्ववेता की करिताओं ने बुख उद्धरण दिये जाते हैं। श्रीमह ना करिता नाम 'हिन्दे, इरिजात देव का 'हरिप्रिया' और परशुप्पम का 'परमा' या। निम्बार्क कप्रदायी आचार्च कवियों के उममनानों की सूची सर्वेददर में मनाशित की गई है। इसमें प्राय ४५ श्राचार्यों के अन्तरंग नामों ना विवरण दिया हआ है।

शीभट्ट जी के युगलसर्त³ का एक पद—

सुकर मुक्तर निरस्तत दोक मुख सिस नैन चकोर । गीर स्थाम अभिराम अति हुँ वो कहा थोर ॥ गीर स्थाम अभिराम अति हुँ वो कहा थोर ॥ गीर स्थाम अभिराम अति हुँ वो सुक्तर मुख्य निरस्तत नहि त्यामें । कट सो कर बाहु घोषा मिलि प्रतिविध्तित तन उपमा लागें ॥ वैन चकोरि विलोक पदन सिल आनद सिंधु मगन अप प्रार्ते । गील निर्चेल पीत पटके तर ओहत मुद्धर मनीहर रागें ॥ यहा बुटा आंख बट कोदद दोड तन एक देस सुवि हुए में। यहा बुटा आंख बट कोदद दोड तन एक देस सुवि हुए में। भावत सिहत मिल्ल गीत प्यारी मोइन सुल सुर नीसुर वार्षे ॥

श्री इरिव्यास देव की महावाणी⁸ से---

हीं कहा कहीं कुछ एक महं। एके पूठ कहें सब बग में तत मन की सब मूल गई॥ एक दिसन दिसम में एके दिलि अनदां में एक दुई। एको दता दुम सतित सब में सग एग सब डॉ एक वई॥ एके निद्धन निक्य निकारि में बहन बहन में एक नई। ओ 'दरिनिया' निश्च नैन दुवि एकन के उर एक महं॥

नागराप्रधारिणी प्रतिका, वर्ष ४५, सवत् १६६७, पृ० ३३४

२. सर्वेश्वर, वर्ष ४ अक ७, वृत्दावन पृ० २८

वृन्दावन से प्रकाशित । दूसरा काशी नागरीप्रचारिणी सभा, शीव्र प्रकाशित करने वाली है।

४. निम्पार्क-माधुरी में सकतित

हर हा जोताकर दस उद्घाल ने उचित ही लिला 'परणुपम ना रचनागल जात नहीं है वे कथिर से परले के है या पीछे के बह भी कात नहीं। दसलिए पूर्ववता संरूप से भी इस निषय में कोई निर्णय नहीं हो सरवा। परंतु दतना निश्चय है कि औरों की भी कुछ रचनायें क्वीर के नाम से चल रही हैं। क्वीर के नाम से प्रतिद्व कुछ रचनायें हमाने सुरागनर और पराना जी ने नाम से मिलती है। कशीर की प्रतिद्व किस की रचना दूसरों के नाम से चल परीनी यह कम समय है। अधिक सभय यही है कि इम प्रसिद्ध लोगों को रचनाएँ कशीर के नाम से चल रही ही। और उनके स्वांओं को लोग भूक गए हो।"

§ २२६ नीचे श्रीभट्ट, इन्विक्सदेव, वर्ष्टुराम और तत्ववेत्ता की करिताओं हे हुन्नु उद्धरण हिने जाते हैं। श्रीभट्ट का करिता नाम 'हिन्दे', इन्जियत वेच का 'हरिविया' और वरसुराम का 'परमा' था। निम्यार्क कत्रवायी आचार्य इवियों के उमयनामों की सुनी सर्वेश्वर में प्रचारित की गई है। दिसमें प्राप्त ४५ झाचार्यों के अन्तरग नामों का विवरण दिया हुआ है।

श्रीमह जी के युगलस्त³ ना एक पर्-सुकर मुखर निरस्तत रोक मुख सिंस नैन पकोर । गौर स्वाम श्रीसराम श्रीत सुत्रां फ्लां कहु धोर ॥ गौर स्वाम श्रीसराम श्रीत सुत्र मुखर निरस्तत नहि त्यात्रें । श्रीत उमंग श्रेण श्रम भरे रंग सुकर मुखर निरस्तत नहि त्यात्रें । कर सो कठ बाहु ग्रीवा मिलि श्रीत्यिन्तत तन उपमा लात्रें ॥ नैन च्छोरि विशेक वरत सिंस श्रानर सिंधु मगन भए श्रात्रें । गीज विषोच पीत एक्टे तद सोहन मुद्ध नानोहर राग्रें ॥ यदा सुद्रां श्रीस हरू कोदत दोड तन एक देस झब सुत्रीं । गायत सहित मिल्स गति प्यारं मोहन मुख्य सुत्र नीसुर वार्षे ॥

भिमट भटकि परे दपित हम मृरित मनहु एक हो साते त श्री हरिय्यास देव की महावाणी से—

हों कहा कहीं मुख कुल महें। कुले कुल करों सब बन में तब मन को सब मुल गई॥ कुल दिसन बिदसन में कुले दिति आदर में कुल सुदें। कुलों रता दुना सित सरब में स्ता कुण सब शें कुल दुईं। कुल निजुत निजय निकरिंग में बहत बहत में कुल नई। आं 'हरिमिया' निरस नैन सुदि कुल के कर कुल मुदें॥

१. नागरोधचारिणी पत्रिका, वर्ष ६५, सवत् १२२७, पृ० ३३४

२. सर्वेश्वर, वर्षे ४ अक ७, वृन्दावन पृ० २८

रे. बुन्दावन से प्रकाशित । दूसरा काशी नागरीप्रचारिको समा, शीघ्र प्रकाशित करने थाळी है।

४. निम्पार्क-मार्थुर्ग में सकल्ति

धरम मार्ग वह पार करन मारग करू नाहीं।
साध मार्ग सिर वात्र सिद्ध मारग मन माहीं ।
कोग मार्ग वोगिन्द्र कोगि वोगीवर जानें
हरिमारग हरिराई वेर भागवत बखाने।
स्वत्रेचा तिहुं औक में विविद्ध मार्ग विस्तरि रहा।
सब मारग को सुनिराज परम मार्ग पर्यंचे भाग।

नरहरि भट्ट

\$ २२%, नरहार भट्ट उझ में सूर्याव के समयवस्त में । उनके रचना काव को देखते हुए एस उन्हें सुरदास से कुछ पहले का या सम-सामितिक किया मान सकते हैं, तिर भी नरहारि मुझ से रचनायें कहें होंगे से सुरमूच कमाणा और उसके साहित्य को समझी सदायक हो सकती हैं। भागां की दृष्टि से उनकी रचनाओं का विश्लेषण किया जाये तो सरह माद्र होगा कि हाकते अन्तः महत्तियाँ अट्टक्क्षणी कियों की भागां से उतका साथ्य नहीं रखतीं विजन अपनी पूर्वतां चारण येंछी की विगल भागां से । उसके मकर काल और उसके स्वरम्धणी कियों का साथ्य नहीं रखतीं विजन अपनी पूर्वतां चारण येंछी की विगल भागां से । उसके मकर काल कोर उसके स्वरम्थ कोर दिगल काल काल काल की स्वर्म काल काल काल की स्वरम्भ साथा से । उसके सकता अपने स्वरम्भ कोर दिगल काल काल काल की स्वरम्भ साथा से । उसके स्वरम्भ स्वरम्भ साथा की स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम्भ की स्वरम्भ स्वरम्भ की स्वरम्भ स्वरम्भ की स्वरम्भ स्वरम्भ की स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम्भ की स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम्भ की स्वरम्भ स्वरम्य स्वरम्भ स्वरम स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम्भ स्वरम स्वरम्भ स्व

नरहिर को बन्न तिथि का निर्णय करने के लिये कोई ग्रामाणिक आधार उपलब्ध नहीं है । उनके संस्तों में ऐका विश्वास प्रवक्ति है कि उनका करना संस्तु १४६२ में टुआ था। वें ग्रामक्त सुम्त इनका करना संस्तु १४६२ में टुआ था। वें ग्रामक्त सुम्त इनका करना स्मान है कि हुमार्यू के दरवार में अब आमान्याना था। उन्होंने हुमार्यू के प्रवाद में के लेका आमान्याना था। उन्होंने हुमार्यू कीर रोगाह के दुद का बड़ा विराद और निश्चास्त वर्णन किया है। इस प्रवाद अपवात विश्वास कर्मन करी है। दार सरम्पस्त अपवात स्ति के सुद्ध निर्माद के विश्वास करना स्ति के विश्व स्ति करा स्ति का साम करी हो। इस अध्यान करती है कि सरहिर हिमार्यू के दरवार में प्रश्व के वैशास में दुआ या और तर्द के विश्व में क्षा या और तर्द के विश्व में क्षा या और तर्द के विश्व में क्षा साम करने के विश्व में स्ति करा के विश्व में स्ति करा कर स्ति करा के विश्व में स्ति करा कर स्ति करा के विश्व में स्ति करा के विश्व में स्ति करा के विश्व में सिक्त मान्य के विश्व में सिक्त सिक्त करा के विश्व में सिक्त में सिक्त सिक्त में सिक्त में सिक्त सिक्त में सिक्त में सिक्त में सिक्त सिक्त में सिक्त में सिक्त सिक्त में सिक्त में सिक्त में सिक्त सिक्त में सिक्त में

नेक बस्त दिङ पाक सखी जवां मर्द रोर नर अध्यक्तं अली सुदाय दिया तिरिपार मरूक झर

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, ए० १०३

२. अकवरी दावार के हिन्दी काँव, टल्सनक, प्र० ६६ । इस कुप्पय को और भी करूँ ' छोगों ने उद्भूत क्यि है । देखिए महाकवि नरहिर महाचात्र, प्र० २२ स्वाध्यात्र, मार्च, १८६६ तथा चरहिर महाचात्र और उनका धराला-संसेष्टन पत्रिका, रोप संवद् १८६६ । हिन्दुस्तानी, भाग २७, प्र० संत ५

धरम मार्ग खड़ पार करन मारग कहु नाहीं। साथ मार्ग सिर तात्र सिद्ध मारग मन माहीं॥ जोन मार्ग जोगेगद्र जीगि योगेश्यर जार्वे हरिमारग हरिराई वेद मारावत स्थाने। तवचेत्रा तिहुँ छोड़ में विश्वत मार्ग विस्तरि रहा। सब मारग को सुमिरती एरम मार्ग परिचे भया॥

नरहरि भट्ट

§ २२७, नरहारे भट्ट उम्र में सून्यात के समयसक ये। उनके रचना काल को देखते हुए इस उन्हें सुरहात से बुद्ध परते का या सम्नासमिक कि मान करते हैं, रिर भी ननहिंग पर को रचनामें करें होंग्रेसी से सुर-पूर्व तकभागा और उसके साहित्य के सम्मक्ते में सदायक हो करती हैं। भागा की हिंग्रेसे उचनाओं का विश्लेषण किया वार्य तो सरह माद्य होगा कि इसकी अन्तः महत्तियाँ अष्टक्षाणी कियों की भागा से उतना साम्य नहीं रखतीं कितना अपनी पूर्वनती चाएल शैंकी की विगल माया से। उसी मकार काव्य और उसके रूप-उसना में एवं करीन काव्य दिवना से उतना प्रमावित नहीं है जितना अपन्नेश्च और पिगल काव्य रूपो और उनकी सैंकी से।

नरहिर की बन्म विधि का निर्णय करने के लिये कोई मामाणिक आधार उपलब्ध नहीं है । उनके पंराबों में ऐका विष्वास प्रचलित है कि उनका बन्म संन्तु रभ्रश्त में हुआ या। यें पानवन्त्र सुक्त इनका बन्म-साल संबत् १४६२ से मानते हैं। 'ताहरी सानताओं के संत्वानिकों के संविचार से प्रमाणित होता है कि हुमार्यू के दरवार में उनका आना-वाना था। उन्होंने हुमार्यू कीर रेरसाह के युद्ध का बड़ा विराद्ध और चित्रामक वर्णन किया है। इस म्वार के विन्यु को रिस्त के स्वार निरीक्षण के दिना संगत नहीं है। उस सर्वुमसार अध्याल क्षी आधार पर यह अनुमानित करते हैं कि नरहरि हुमार्यू के संवर्ष १४६० के बीता में सा आपा सा यह अनुमानित करते हैं कि नरहरि हुमार्यू के संवर्ष १४६० के बीता में सा आपा आपा हों ने स्वीक्ष देखा हों रहा हुमार्य के स्वार १४६० के बीता में सा आपा आपा सी स्वीद इस हिंद से देखा तो नरहरि का हुमार्य के दरवार में मनेरा कुछ वर्ष पूर्व में हुमा होगा और तहर्स पंत्र हों है के स्वार के सा अवश्य के सा अवश्य कर से स्वीद अधार के स्वार से सी सी अधार उनका को दूसरा के साम सीवन्य मा क्योंक उनकी प्रचार में से अपा उनका को दूसरा के साम सीवन्य मा क्योंक उनकी प्रचार में सा साम हों में सी अधार उनका को दूसरा के साम सीवन्य मा क्योंक उनकी प्रचार में सा सा हुमार्यू, अक्त, ग्रेरखाह और उनके पुरू सलीम ग्राह की मरासिता मिलती हैं। बाहर के विषय में नरहरि का यह पर बाहा महत्व का है।

नेक वस्त दिल पाक सखी जवीं मर्द शेर नर अव्वलं अली सुदाय दिया तिरिपार मल्क जर

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, १० १०३

अकवरी वरचार के हिन्दी कवि, रूकनक, पृत्त ६६ । इस सुप्यय को और भी कई
 कोतों ने बद्धक किया है। देखिए महाकि नरहिर महावाल, पृत्त २२ न विचाल मारत, मार्च, १४४६ तथा नरहिर महावाल और उनका घराना-संगेलन पत्रिका, याय संवत १३६६ । हिन्दुस्तारी, मारा २०, पृत्त होत्त

अपेवाकृत इस प्रकार के व्यक्त दिख की मुख्या की प्रकृति कम दिखाई पढती है, किर भी एक इम अभाव नहीं । इसकिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि केवल छुप्पर छुट्टों में ही इस प्रकार की प्रकृति मिलती है। सच तो यह है कि भाषा में विकास तभी आता है जब कवि सामाजिक विकास की चेतना को प्रकृत करता है। नरहीं भट्ट चारण सैली के किर ये इसकिए उनकी भाषा में पुरानी परिषा का पानन ही दिखाई पढता है।

§ २२९ उद्वत स्तरों की विवृत्ति भी सुरित्ति है। परवर्ती अपभ्रंश से उद्वृत्त स्तरों को सिंद प्रक्रिया से समुद्र स्तर बनाते की प्रवृत्ति शुरू हो गई थी। ब्रब्भाया में उद्वृत्त स्तरों का नितान अमाव पाया बाता है किन्तु नरहिर की भाषा में ऋपभ्रंश की पुरानी प्रवृत्ति यानी उद्वजत स्तरों की सरता पूर्णतः बर्तमान है।

करउ (बादु १> नन करों), गहर (बादु ११> नव गहै), रष्पउ (बादु ११> नव राखों), कहर (बादु १२> नव कहै), लहर (बादु > नव लहै), रुक्मिणी मगल में इन प्रकार के प्रयोग कम हैं। किन्तु किया रुपों में वहाँ भी विकास नहीं दिखाई पडता। जैसे-

पडाएउ >पडायी, बुलाएउ >बुलायी, बनाएउ >बनायी, भीन्देउ > क्रीन्दें। दीन्देउ > दी हो, रोवइ > रोवे, बोयइ > बोये, शाषेउ > साध्यी, अवराषेउ > अवराष्यी, क्लरइ > क्ली, तकाइ > तकी ।

यहाँ भूत निष्ठा के इट्स्तब रहां की स्विनि प्रक्रिया नानी महत्वपूर्ण और विचारणीय है। अगासप में नहिन, सुनित आहे रूप पाने जाते हैं। इन में इन्हों के कहीं, सुन्यी आहि हो जाते हैं। नरहिर मह भी भाषा में बो रूप मिलते हैं वे इन दोनों की मध्यवर्ता असरपा की सचना देते हैं। जैसे--

अप॰ साधिउ>नर॰ साधेउ>मज साधौ, ग्रप॰ अवराधिउ>नर॰ अवराधेउ> मज अवराखौ।

§ २२०. कारक विभक्तियों की दृष्टि से भी नरहारे की भाषा में पुगने तत्व भिनने हैं। बगरीस कह (बाहु १० ज्वारीस की), अप्तु मह (बाहु २० ज्वापु में), मीहिं लिंग (बाहु १०), तिन्द के (बाहु ११६० तिनकें), हायह (बाहु ११०, पक्षी विभक्ति पुत्त), कुगाद (बाहु ११०२ सविभक्तिक पत्नों), चित्रद गुनिय (बाहु ११०३ सविकिक सत्तमी)। इस अकार भी विभक्तियों के प्रयोग प्रवासाय में सुर्याद्व नहीं दिवाई पवने।

§ २३१ परागों के प्रयोग भी नानी पुराने हैं। चतुमां लगि रूप स्थारिमक प्रव में मिनता है (देखिने §१९७) किन्तु पराजा प्रव में मोरे सीर लीं नी प्रयानता हो गई है। नराइरि में रस तरह के रक्त मिलते हैं। वेहि साव लगि (बाहु ४) नेसव गह पर (बाहु १) के प्रव महाम पर है। को शिक्ष को प्रव है। वाह को शिक्ष रह रह से हो) पर साव निक्ष से हैं। को रहे से हैं। के रहे ने प्रयोग अलत महरू मुंग प्रतीह होता है। ११ र राजारों के पूर्व किसी भी अवस्वह प्रय में ना प्रयोग अत्यत महरू मुंग प्रतीह होता है। ११ र राजारों के पूर्व किसी भी अवस्वह प्रय में ना प्रयोग अत्य ही होता है। केवल की किन्य माम प्रयोग में भी भी भी प्रयाग में भी भी भाग में भी भी भाग में की स्वयंग कोई आरव्यंवनक नहीं कहे वार्यंग नहीं मिलता। नराइरि पर हो भागा में ने बसोग कोई आरव्यंवनक नहीं कहे वार्यंग सीत की महत्य की साव में सीत की साव सीत की साव सीत की सी

अपेवाइत इत प्रनार के व्यक्त दिश्व की मुख्या की प्रश्ति कम दिखाई पड़ती है, किर भी एक दम अभाव नहीं । इसलिए ऐसा नहीं इदा वा सकता कि केवल छूप्प छुट्दों में ही इस महार की प्रश्ति मिठती है। सच तो यह है कि भाषा में विकास तभी आता है जब कवि सामाजिक विकास की चेतना को प्रश्न करता है। नरहिंग म्हारण सैंडी के कवि ये इसलिए उनकी भाषा में पुरानी परपरा का पाठन ही रिपाई पड़ता है।

§ २२२ उद्कृत स्वरों की विद्वित भी सुरक्षित है। परवर्ती अपभ्रंश से उद्कृत स्वरों को सभि प्रक्रिया से समुद्र स्वर बनाने को प्रदृष्टि हुए हो गई थी। जबभापा में उद्कृत स्वरों का नितान्त अमाव पाया जाता है किन्तु नरहिर को भाषा में श्रपभ्रंश की पुरानी प्रकृति यानी उद्धवत स्वरों की सरवा पूर्णतः बनेमान है।

फरउ (बादु १>मन करों), गहर (बादु ११>मन॰ गहै), रप्पउ (बादु ११> मन॰ राखों), कहर (बादु १२>मन॰ कहै), लहर (बादु>मन लहै), रुपिनणी मगल में इन प्रकार ने प्रयोग कम हैं। किन्तु किया रुपों में वहाँ भी विकास नहीं दिखाई पडता। जैसे-

पडाएउ >पडायी, बुलाएउ >बुलायी, बनाएउ >बनायी, भीन्डेउ >भीन्डों, टीन्डेउ > दी हो, रोनइ >रोने, बोयइ >बोने, शापेउ > साप्यी, अवरापेउ > अवराप्यी, मरुरइ > मर्ले, तन्राइ >तन्त्रे

यहाँ मृत निष्ठा के कृदन्तव करां। की ध्वनि प्रक्रिया कारी महत्वपूर्ण और विचारणीय है। आप्तरा में कहिंद्र, मुनिद आहि रूप पाये जाते हैं। जब में इन्हों के कही, मुन्यों आहि हो जाते हैं। नरहि पर हक्षे भाषा में जो रूप मिलते हैं वे इन दोनों की मध्यवतां अवस्था की यचना देते हैं। जैसे—

अप॰ साधिउ > नर॰ साधेउ > हज साध्यौ, ग्रप॰ अवराधिउ > नर॰ अवराधेउ > हज अवराखी।

§ २२०. कारक विभावियों की दृष्टि से मी नरहारे की भाषा में पुराने तत्त्व मिलते हैं। बगरीत कह (बादु १) अगरीत कीं), अग्रु मह (बादु २) अग्रु मैं), मोहिं लिंग (बादु १०), तिन्ह के (बादु १६) तिनकें), हमद (बादु ११०, पश्ची विभक्ति युक्त), बुगह (बादु ३१०२ सविभक्तिक पश्ची), विचह गुनिय (बादु ३१०३ सविकिक सप्तमी)। इस मकार की विमानियों के प्रयोग प्रवमाणा में मुरावित नहीं दिखाई पढ़ते।

 कुम को सबद मान लिया। यह के इस निष्कर्य ने कारी भ्रान्ति पैनाई और बहुत से विद्वानी द्धन का वन्द्र नामा विवास पन करण स्थान कर नामा आप का मार्च जान कुछ वा स्वीमा ने नहें प्रमार के साहनों के ऋषार दश सीरा को उक्त हाज से देव बढ़ाता ! गुकारों बिहाल् की सेवर्षक पन मार्चाराय किराजी ने काली सुक्तक 'कैलेडक पोस्ट्स आर गुकराव' में सीरा का समय १५वीं शतासी निपारित किया !' उठीं प्रमार की कुणल्लाक सेटन साथ करेरी ने भी भीरा का जन्म १४०३ ईस्त्री के आतत्यान तथा उनकी मृत्यु का समन, ६० वर्ष की उम्र में, १४७० ईसी में बताया है। श्री इरविनात करना ने अपनी पुलाक भारतपा ्र का प्रस्ति के सब दूरा (हन् १४६१-६२) हे चीये पुत्र स्वत हिंद ही पुत्री बदाना है। विलियम कुक ने पनस्य आद सवस्थान में देम्स सब के मीस-विधनक मत के सास र । । जा चन कुरून प्रस्तव जान जानवार जा जा कर कारावारक वाद करी बादा जा मत मी टिम्पी में दिया है । इस प्रसार एक पत्न के होगा मीत को १४वीं उदावरी हा मानते हैं। दूसरी कोर डा॰ मीरीग्रहर हीरावार ओस्प्र और भी देमीनगर जैने इतिहास्त्रार विस्कृत मित्र बारमा स्तते हैं। डा॰ औस्प्र ने करने प्रसिद्ध मन्य शबरूवने के इतिहास में त्या कि 'लेगों में यह प्रतिदि हो गई है कि वडा मन्दर महाराया कुम्म न और होग उसही यागे मेंसवाई ने बनवाना या। इसी बनभूति के आवार पर हर्नज राड ने मीरावाई को महायाना कुम्मा की यानी किस दिया। वो मानने योग नहीं है। यह न मारावाइ का महायाना कुम्मा का याना क्लि हिना । वा मानन याना नेरा मेरी मीरावाई महायाना हमान कि है के लोड़ पुत्र मोबवाज की की थीं। वे अनिर मीरावाई निवास के निवास की कि भी कि की कि की की की कि निवास की याना कुम्म के द्वारा ही कहन रेफ्श अ में बनावाज याना या। कुम्म कानी और आदि बायह रोनों ही मन्त्रियों की महानिवाई हत करा का मानाम मन्त्रित करती हैं। मुत्री देवीमाना मेरी की महानिवाई कि निवास की मानाम मन्त्रित करती हैं। मुत्री देवीमाना ने मीरावाई बीवनकरियों में एक दूसरे पर्द्य है वाज वाणी मान्याम का मिरावाद किया। उन्होंने निवास कि भीड़ बिरन्टन पन्त्र है क्सेंटि रागा हुम्मा तो मीरावाई के पति हुँवर मोबराव के परवाश थे। और मीरावाई के पैश होने पता कुला धानारविष्ठ कर घटुवर न नविष्ठ कर गान न निर्माण है जान है कि है से पार्ट कर पहुंचा के देही वहें के रूप पार्ट कर पहुंचार हो कहें पार्ट न नहीं कि यह मूठ पबहून ने के देही वहें तवारील लिलने बाते से क्योंकर हो गई। पता हुम्मा बी झा दुखाल करते रूपरूप में हुआ या उस वक तक मीरावाई के दादा दूबा बी को मेहता मिला हो नहीं या। इसलिए भाउठ पेक कर भागम् के बार्या कूम पा का कडता भागः हो गई। या । इत कर् मेंपाबाई याना कुम्म की बानी नहीं हो छक्तीं । सुधी देवीनवाद ने मीयानदे का क्ला काक सेनपुरप्रथ्य के सामन माना है ि ओस्मा के अनुसार मीया का विवाह रेस वर्ष की उम्र में या। हमम हिंद के ब्लेड पुत्र मोबराज के हाथ हुआ। विराह के बाद हवत् १५८० में भेजराज का देशना हो गया। सुत्री देवीमहाट ने मेरा का मूलुक्कण सकत् १६०३ माना है।

कार के जीवन विशास के मीता के बीतन तथा। सबना कात के शिवन में शतना पड़ा बच्चा है कि वे १६०० के पहले। वर्तमान भी और उन्होंने १४८० दवत् के आस्पात मार्कि करनी बीताओं की। सबना शुरू की भी। इस मशर मारति मीया मूर्य की पूर्वत्यों नहीं सी,

१ जो॰ प्तन विवारी, कीसिक्ल पौष्ट्म बाद गुजरात, पृ० १०

२. के॰ एम॰ मावेबी, माइलस्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर, ए० ३०

३. महाराणा सांगा, अबमेर, १६१८, ए० १५-१६

थ. राजपूनाने का इतिहास, दूसरा खंड पूर्व ६००

५. वड़ों, ए॰ ६२२

६. मीरावाई का जीवन चरित्र, ए० ३१-३२

उसमें खडी मोडी या पंजाबी का भी कम प्रभाव नहीं दिलाई पहेगा, क्योंकि पुरानी दिन्दी की दोनों प्रशर की रीजियो-त्रज्ञ और खड़ी-में कियी संत्रवाणी का उनके ऊपर प्रमाव अवस्य पड़ा था।

§ २३७, मीराँ की कही बानेवाटो निम्नलिखित रचनाओं की स्चना मिलती है।

- (१) नरसी वी रो माहेरी।
- (२) गीत गोविन्द को टीका ।
- (३) सोरठ के पट 1
- (४) मीरा बाई का मलार I
- (५) राग गोविन्द ।
- (६) गर्वा गीत ।
- (७) फुरक्छ पद ।

इन रचनाओ को प्रामाधिकता कानी सदिन्य है। 'नरासी की ये माइरो' एक प्रकार का मंगळ कान्य है किसमें प्रसिद्ध मक नरासी के माहरा (ठडको या बहन के घर उसके पुत्र था पुत्री की शादी में माह था बाद में ओर के मेरो परे उपहार) का बर्णन किया गया है। नरासी ने अपनी पुत्री माना थाई को यह माहरी मेजा था। इस मंग्र की कोई प्रामाधिक प्रति उपलब्ध नहीं होती। गुकराती विद्यानों ने इस मन्य को गुजराती का बताया है किन्तु मागा विज्ञाल में उपलब्ध का अपनिमक अंश नीचे दिया जाता है:

गणपित कृता करो गुणसागर जन को जस सुभ गा सुनाउँ । परिचुम दिसा प्रसिद्ध पाय सुद्ध भी रणवृद्धि निवास्ता । नरसां को माईरो मंगक गाये मीरां दासी ॥१॥ सुनी यंस जनम भय जानो नगर में दृष्टे वास्ता । गरसां को जस वरण सुनाउँ नामा दिथि इनिहासी ग्रद्धा सखा आपने संग तु ठाँन्ट्र इति मन्दिर ये आये । भांक कथा आरंभी सुन्दर हित्तिण संसिद्ध नवाये ॥१॥ को नससां को सेयो कीन विश्व कहो महिता कुँचारो ॥१॥ मवे मससां को भयो कीन विश्व कहो महिता कुँचारो ॥१॥ मवे मससां को निया गाय सुनाउँ सामे सब सी कामो ॥ सदसां की विश्व गाय सुनाउँ सामे सब ही कामो ॥ भीव में पट वैजैवन्यी साग का पद इस प्रस्त है ।

सोवत ही परका में में तो पठ ठामी घट में विद्य आपे। मैं जु डर्डी मुद्दु आदर देन कूँ जाग पती विज हूँन न पाये॥ भीर सखी वित्र सोच नमाए में जु सखी पिट जानि नमाए ८९॥ भान की नात कहाँ कहूँ सबनो सपना में हिर देत गुराये। बरतु एक जब मेन की चक्रते आज मदे साँख मन के मार्चे॥शा उसमें खडी बोली या पंजाबी का मी कम प्रभाव नहीं दिलाई पड़ेगा, क्योंकि पुरानी हिन्दी की दोनों प्रभार की शैलियों-जब और खड़ी-में लिखी संवदाणी का उनके ऊपर प्रमाव अवस्य पड़ा था।

६ २३७, मीराँ की कही बानेवाटो निम्निलिखित रचनाओं की स्चना मिटती है।

- (१) नरसी भी रो माहेरो ।
- (२) गीत गोविन्द को टीका ।
- (३) सोरठ के पट ।
- (४) मीरा बाई का मलार I
- (५) राग गोविन्द ।
 - (६) गर्वा गीत ।
- (७) फुटकल पद ।

इन रचनाओं की प्रामाणिकता कानी सदिग्य है। 'नरसी बी रो महरो' एक प्रकार का मंगल कान्य है जिसमें प्रसिद्ध मक नरसी के महिरा (टडकी या बहन के घर उसके पुत्र वा पुनी की शादी में माई या बाव की ओर से मेजे गये उपहार) का वर्णन किया गया है। नरसी ने अपनी पुत्री नाना बाई को यह महिरा मेजा था। इस मंग्र को कोई प्रामाणिक मित उपलब्ध नहीं होती। गुकराती निद्धानों ने इस मन्य को गुजराती का बताया है किन्तु भागा विन्दुल ही गुजराती नहीं बह्लि रुस्ट ब्रबमाया है। इस पुस्तक का आरम्भिक अंदा नीचे दिशा जाता है:

भागरित कृता करें। गुणसागर जन को जस सुम गा सुनाज । पिंचुम दिसा मिस्त थाय सुल श्री रमखों। निवासी । मरसां को माहरो संगठ माथे सीरां दासी ॥१॥ इत्री वंस जनम भय जानो नगर मेड्दे वासी । मरसां को जस बरण सुनाऊँ नाना विधि दृतिहासी ॥२॥ सखा आपने संग जु डीन्डें हिर्म मिड्र र आये । भक्ति कथा आरंभी सुन्दर हिर्मुण सीस नवाये ॥३॥ को मरख को देस चलानूँ संतन के जस वारो । को नरसां की भयो कीन निथ कही महिराज कुँवारी ॥१॥ मरे महा सीरी जन विश्व कही महिराज कुँवारी ॥१॥ मरसां की विश्व भारत सुना सामे सब्द हा कायो ॥

सोबत ही परका में में तो पल लागी पल में पिड आपे ! में छ उठी प्रमु आदर देन कूं जाग परी विज हूँद न पाये ॥ श्रीर सखी पित्र सोय गमाए में छ सखी पिट जागि गमाए ॥३॥ आज को बात कहाँ कहूँ सबनी सपना में हिर लेल छुलाये ? बस्तु एक जब मेम की चकरी आज मये सखि मन के माये ॥२॥ वहाँ भी पहने लगा था। यजहुत राजाओं के सासन कर में संगीत की चरन उनते हुई। कैदन है का प्रित्रत है कि हमन्यानों के आकरण के पहले, देशों नरेशों का शासनकार स्मीत के किसत का उनकार में स्वीत है। यह तर सुर पार । वे तो पुस्ताना में के अकरण को संगीत के हात जा सराय में मानते हैं। यह तर दे कि पुस्ताना आक्रमाकारों की ध्वानांति के कार जा संगीत और कला को बहा आरात पहुँचा किन्तु सभी दुरन्तान विनारकारी स्थान के ही नहीं ये। इस्तानों के मौता भी बहुत वे क्यापिय क्यकि ये विनहीं द्वारता और सामना के ही नहीं ये। इस्तानों के मौता भी बहुत वे क्यापिय क्यकि ये विनहीं द्वारता और सामना के ही नहीं ये। इस्तानों के मौता भी बहुत वे क्यापिय क्यकि ये विनहीं द्वारता और सामना के ही नहीं ये। इस्तानों के मौता भी बहुत में एक नहीं का प्रति मानवन्त्र ने स्वानां के स्वानां में स्वानां का स्वानां के स्वानां के स्वानां के सिन्दुतानी एक कर से पह मानवें के विवार नहीं हैं कि दिश्यों दंग्ड स्मारे प्रयानम्यूगं दिव हुआ है। का हमारे दिवा के क्या अपने अध्यानों के आधार पर पद नहीं कहते कि बानी शास्तां कम्मोरियों के वावदार हिन्दुतानी एमीत हतना भार और आहंद्यहरूप है हि के प्रमानवां कम्मोरियों के वावदार हिन्दुतानी एमीत हतना भार और आहंद्यहरूप है हि वे प्रमानवां का निर्मात हतना करने के स्वानां हता है। हमें प्रमानवां का निर्मात होने वावदारों है हि वे प्रमानवां का स्वानांत्र हमने कि साम स्वानांत्र हम स्वानियां के स्वानांत्र हम स्वानियां का स्वानांत्र हम स्वानियां के स्वानांत्र हम स्वानियां का स्वानांत्र हम स्वानांत्र हम स्वानांत्र हम स्वानांत्र हम स्वानियांत्र हम स्वानियां के स्वानांत्र हम स्वानांत्र हम स्वानियां का स्वानांत्र हम स्वानांत्र हम स्वानियांत्र ह

यबत्व नरेसों के दरवार में संगीत वा बहुत समान या तथा इनमें से बई नरेसों ने मारक्षीत संगीत के विद्यास में सकेत मोन दिया था। इस वितर पर इन पीड़े विचार कर चुके हैं (देखिए § नर) वहीं पर इमने यह भी निवेदन कर दिया है कि ब्रवमध्या के सिंगठ-नामकरण के पीड़े एक कारण यह संगीत मो या बिसके सर्गों के बोज ब्रायः ब्रवमाया में ही रचित हुए थे।

सुसरो

§ २२९. भारतंत्र और ईरानी संगीत में समन्तर स्थानित करके उठे एक नई प्रचित्त वा का देने में अनीर खुतरों का बहुत बड़ा हाय है। अनीर खुतरों होनों संगीत पद्धतियों के मन्त विद्यान के स्थित्य उन्होंने दोनों के निक्षन से बुत्तु देने नये गयों का निर्माण किया वो दिन्दुलानी संगीत की अनुस्त निर्धि हैं। महारा, सावग्री, इनन, उरशाब, पुजाकित, जनन, जिल्ल, प्रचाब, सरार्थ, व्यवस्था, निरदोत्ता, मननू बैठे पर्मा को उन्होंने सार्थ की। वहीं नहीं वायनकों के संस्थार तथा नरे पामें के उत्युक्त बायनंत्रों के निर्माण में भी खुतरों ने विज्वण प्रविमा का परिचन दिया।

जुन्ती स बन्न एय बिछे के पृष्टियांसी आम में संबद् १३१० में हुआ या। नाम पद्महर्षन हरमनर स्वन या। सात वर्ष को अम्र में निता हा देसन्य हुआ। पाटनपोरस्य उनहीं भी और इनके माना एसाइलकुल्कने किया। स्टब्ल ने १२ई कमने पुत्र शहस्मर हुज्यान के मनोरंबनार्ष मीहर रहा। बार में वे सुहस्पर हुज्यान के एव दृष्टि हुए और सन् १२८४

¹ The most floorashing age of Iadan mass: was during the period of the matrix Finites, a little before the Mehamidea conquest, with the advent of the Mohamedans it dediced. Indeed it is wonderful that it survived at all.

Cap Dav; Music of Southern, Index PP 3

२. बीं एन भावसम्बे, ए शार्ट दिस्मारिक्ट सर्वे आफ दि म्यूचिक आफ अपर इन्द्रिया, १० २०-२१

यबबूत नरेशों के दश्शर में संगीत हा बहुत समान या तथा इनमें से हाई नरेशों ने मारक्षीत संगीत के विश्वास में सकिय योग दिया था। इस विषय पर इम पीछे विचार कर चुके हैं (दिलाए § नर) वहीं पर इमने यह भी निवेदन कर दिया है कि ब्रवमाया के पिंगण-नामकरण के पीछे एक कारण यह संगीत मी या बितके सर्गों के बोण प्रायः ब्रवमाया में ही रिवित हुए थे।

सुसरो

\$ २२९. भारतीय और रंपनी संगीत में समन्य स्पारित करके उसे एक नर्र पदित हा का देने में अमीर सुकरी था बहुत बड़ा हाप है। अमीर सुकरी दोनों संगीत पदित्यों के मन्ति विद्यान ये इंसीटिय उन्होंने दोनों के निभम से हुन्न ऐसे नये सभी का निमांग किया वो दिन्दुलानी कंगीत की अनूत्र निष्ये हैं। मुझीर, साहरादी, इसन, उरशाक, पुराधिक, प्रनम, दिल्ल, स्परां, सरसं, तबहराय, स्पर्देत्न, मनमू बैसे सगी को उन्होंने साहि की। यदी नहीं वास-पर्यों के परिस्तार तथा नर्रे सगी के उन्होंक बाय-मंत्रों के निमांग में भी सुतरी ने वित्रच प्रतिमा का परिस्वार स्वाम नर्

सुन्तरी का बल्म एवा बिछे के परिवारी जाम में संबन् १२१० में हुआ था। नाम पद्धवर्शन हरम्मर हरन था। सात वर्ष को उम्र में तिता का देशन्त हुआ। पारन-पोप्तम उनही मों और हनके नाना एमाटुर-हुल्कने किया। बणबन ने दग्हें अपने पुत्र मुहम्मर हुज्यान के मनोरंबनायें नीकर रखा। बाद में वे मुहम्मद हुज्यान के राब कवि हुए और उन्हें १२८४

¹ The most floreshing age of Indian music was during the period of the matter princes, a lattle before the Mehamadan conquest, with the advent of the Mehamedans it declined. Indeed size wenderful that it survived at all Cap. Day, Music of Southern, India Pp. 2

र. वी॰ एन॰ भावजन्दे, ए शार्ट हिस्तारिकल सर्वे आफ दि स्यूजिक आफ अपर इन्डिया, पू॰ २०-२१

त्रिया और कारक चिहादि खडी बोली के हैं !³⁵ डा॰ यमां ना कपन पिरचल सही है कि भाषा का निर्णय शब्दों से नहीं व्याक्सणिक तस्यों यानी कियापद, नारक चिहादि से होना चाहिए !

§ २४०. नीचे इम खुमरो ने कुछ पदा उद्धृत ऋरते हैं •

1—मेरा मोसे सिगार करावत भागे वैंड के मान बडावत बासे चिकन ना कोड दीसा, ए सखि साजन ना सखि सीसा

—हि० असोचना० इति । पृ० १३१

र—खुसते रैन सुद्दान की जानी भी के सम । तन मेरो मन भीठ को दोड भयो एक रम ॥ गोरी सोबै सेन पर सुख पर दारै केस । चळ समतो घर आपने रैन मह चहुँ देस ॥

३—मोरा जोवना नवेलरा भयो है गुलाल । कैसे गर दाना वक्स मोरी लाल ॥ सभी सेन हरावन लागे. विरहा अभिनि मोहि दस दस जाय ।

४—हजरत निज्ञामदीन चिस्ती खरजरी वस्त्रा पीर । जोड़ जोड़ प्यार्वे तेड़ तेड़ फल पार्वे

जाइ जाइ ध्याव तह तह फरू पाव मेरे मन की मुराद मर दीजे अमीर

५---री में घाउँ पाउँ इत्रस्त स्वातदीन

शकरगत मुखतान मशायल महबूद इसाही

निज्ञामदीन औलिया के अमीर खुसरी बल बल जाही

ये बाच पत्रात, बो खुसरी की रचनाओं में प्राय प्रामाणिक माने बाते हैं। भाषा सक्यी विवेचन के लिए पर्यात न होते हुए मी, खड़ी बाली और जब का निर्णय करने के एए श्रम्यात नहीं करें बा एकते। अन्य रचनाओं के लिए 'खुसरी की दिन्दी कविता' शीर्षक निरम्भ केरत का सकत है।

¹ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, तृतीय सस्करण ए० १२७

२ नागरीप्रचारिकी पत्रिका, सवत् ११७८, पृ० २६१ ।

बनमापा का निर्माण

त्रिया और शरक चिहादि खडी बोली के हैं !'' डा० वर्मा वा कथन दिल्हुल सही है कि भाषा का तिर्णय शब्दों से नहीं व्याक्टणिक तत्त्वों यानी कियापद, कारक चिहादि से होना चाहिए !

§ २४०. नीचे इम सुमरी के कुछ पय उर्श्य करते हैं -1—सेरा मोदे सिमार करावत भागे बैठ के मान बरावत बासे विक्रम ना कोउ दोसा, प् सब्सि साजन ना सब्सि सीसा —हि अक्टोबना होते प ० 121

२—खुसरो रैन मुहान की जागी पी के स्वा। तन मेरो मन पांड को दोड मयो पुक रग ध गोरो सोवे सेत पर मुख पर कारे केस। चछ सुसरो घर आपने रैन मह चहुँ देस॥

चल सुसरा यर कारन रन नह यह दर ३—मोरा जोवना नवेलरा भयो है गुलाल । हैसे गर दाना वक्स मोरी लाल ॥

स्त्र गर दाना पक्त भारा छाट । स्त्री सेज हरावन लागै, दिरहा भगिनि मोहि दस इस जाय !

भ-हजरत निजामदीन चिस्ती अरजरी वरना पीर !

जोड़ जोड़ ध्यार्वें तेड़ तेड़ फरू पाउँ मेरे मन की भराद भर दीजें अमीर

५-भी में घाउँ पाउँ हजरत रखाजदीन

शकरगत मुख्तान मशायल महबूद इस्टाही

निजासदीन औलिया के असीर समरो बल बल जाडी

ये बाच पत्रात, बो खुसरी नी रचनाओं में प्राय प्रामाणिक माने बाते हैं। मापा सबयी विवेचन ने टिए पर्यात न होते हुए मी, खड़ी बांधी और ब्रव मा निर्णय करते के पिए कार्यात नहीं कहे जा सकते। अन्य रचनाओं ने टिए 'लुसरी नी हिन्दी कविता' शीर्यक निषय देगा का सकत है।

सर्गनाम के साधित विकास रूप मो, बा, तथा मोसे, मोसी (पडी, उत्तम पुक्ष) परामं को (वीड को) से (वा से) तथा सिक्मिस्तिक सर्गनाम रूप माहि (पर्म बारक) अनित्यवर्धावक का (सडी बोरी वा कोई तथी) नित्य सन्धी बाहू बोहा तथा दुर्खती सक्तवाबी तेह तेह शादि सर्गनाम, रायवर, बहावत आदि भेराणार्थक कृत्वत्वक रूप वो वर्तमान की तरह प्रयुक्त हुए हुँ, (सडी बोली में हनके साथ बहावक निया का होना अनिवार्य है) मयो (पुहिंसा) होनी, बासी (स्विटिंग) आदि मूर्तनिक्षा के रूप सीह, बारे, स्वारं, स्वारं आदि क्लीमान के तिहन्त रूप (बा केवल अन में चन्नते हैं, सब्दी बोली में नहीं) नियार्यक सहा करावन (ए प्रत्यह निर्मित सही को होने वा करावना नहीं) हो जु कुँ वैसे सरस्याव्यक स्वरंग हों , (दानो, बारो नहीं) आदि सत्त हम माया को अन प्रमाणित करने के लिए प्रयोत हैं ।

¹ हिन्दी साहित्य का आलोचनाप्मक इतिहास, इलाहाबाद, तृतीय सस्करण प्र०१२७

२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सवत् ११७८, पृ० २६१ ।

दिहोपित नरेन्द्र अरुपर साह बाकों वर दरे धरती पुरुप माल हरायो दल साजि चनुरस सेना अपाय जहाँ सुन वदी चतु विचायर आप आय राम भेट गायो ।

ऐसी रक्तार्थ गोराल नायक की नहीं गोराललाल की मानी जानी जाहिए दो अस्वर के दस्वारी गायक में । हालांकि यह निर्णय करने का कोई आधार प्राप्त नहीं है कि किसे गोपाल नायक थे रक्ता कहें और किसे गोराललाल की ।

है २४२. गोपाल नायक के मीत, जो राग-स्टर्डममें मिलते हैं, सभी अवभाषा में हैं। रचन माल की दृष्टि ते उस कोटि की नहीं है किन्तु उनकी लयमपता और मधुरता अस्पर परिपुत श्रम्य सीड़क के पिरायक है। क्हीं कहीं प्रयोग प्राप्त में रैनलम् की मापा का रमाण टिलते हैं। नीचे तीन यद उद्ध्व किने जाते हैं।

> १—अत गत मत्र गम् नम गम् मग् मम् गम गम मत्र भत्र अत गत मत्र गाह्या है रोक भू में बमल रे हिर की हरी सन्तो रूरी महरन्द्र आह्या

उदय चन्द्र धरी मन में अत गत मत्र शाहया तड तक भुवण जुग रुरे हत काल विरत भपार रे अधार दे धरु गावत नायक गोपाल रे राजा राम चतुर भये उद्दर्या, रे अत गत मत्र गाहया

२—कहात्रै गुनी ज्यों साथै नाद सबद जाल कर थोक गावै । मार्ग देसी कर मुर्खना शुन उपने मति सिद्ध गुरु साथ चात्रै ॥

सो ५चन मध दर पावै, उन्हि जुन्ति भक्ति युक्ति गुप्त होवै ध्यान लगावै !

तब गोपार नायक के सप्ट सिद्ध नव निद्ध अगत मध पाने।।

२--जय सरस्वती गर्नेश महादेव शक्ति सूर्य सब देव ।

देही मीय विद्या कर कठ पाठ ॥

भैरव मालकोस हिंदाल दीपक श्रामेच मूर्तिवत । हृदय रहे ठाउ ॥

सप्त स्वर तीन प्राप्त शक्द्रैस मूर्खुना बाइस सर्वे.

उनचास कोट ताल लाग टाट ।

गोपाल नायक हो सब लावक आहत भनाहत शब्द,

सो ध्वायो नाद ईरवर बसे मो घाट

बैज् बावरा

\$ २४२ बैग बादय का जोनन-इस भी गोधाननायक की ही भाँति जन श्रुतिसे एवं निकसरी कगानों से आहल है। गोधान नायक के विषय में अधिद जनश्रति में बैजू जानपा की की उनारा गुर बताया बाता है। कहा जाता है कि बैजू बादरा से सगीत की शिक्षा आस करने पर गोधान आपक की रमाति जो जो बन्दों करनी उनमें अध्मावना भी बदने लगी और एक दिन किसी बात पर अपने गुरू से स्ट होकर वे चले गए। बैजू बायरा अपने शिष को इसर उपर दूँदिते रहे। अगाउदीन के दरवार में दोगों को मेंट हुई। अकाउदीन दिल्लोपित नरेन्द्र अक्षर साह जाकी दर दरे घरती पुरुप माल हलायो दल साजि चतुरग सेना अगाध जडौँ गुन ठयौ चतु विद्याधर आप आय राग भेट गायो ।

ऐसी रबनार्षे गोराज नायक की नहीं गोराजलाज की मानी जाती. चाहिए वो अस्वरर के दरवारी गायक ये। हालाक यह निर्णय करने का कोई आधार माप्त नहीं है कि किसे गोराज नायक की रचना कई ब्रीर किसे गोराजजाल की 1

है २४२. गोषाल नावक के गीत, को राग-क्लाइममें मिलते हैं, सभी जनभाषा में हैं। रचना नाव को दृष्टि से उच कोटि की नहीं है किन्तु उनकी लयमब्दा और सपुरवा अवका परिकृत शब्द सीयुंड का परिचायक है। कही कही प्रयोग प्राकृत वैंगलम् की मापा का समरण रिलते हैं। नीचे तीन पद उद्घुम किन्ने जाते हैं।

१---जत गत मत्र गम् नम गम्म मग्र मम्म मग्र मम्प अत गत मत्र गाइया छै लोड भू में क्मल रे इति की खरी सन्तो ली सकरन्द्र आइया उद्ध चन्द्र धरी मन में अत गत मत्र गाइया

वड तक फुपण जुग एरे इत काल विरत भपार रे अधार दे घर गावत नायक गोपाल रे राजा राम चतुर भये उद्दर्धां, रे अत गत मत्र गाइया

र—कहाबै गुनी वर्षे साथै नाइ सबद बाल कर थोक गावै । मार्गे देसी कर मूर्वना गुन उपने मित सिद्ध गुरु साथ चाबै ॥ मो पचन मध दर वाबै,

उक्ति जुक्ति भक्ति युक्ति गुप्त होते ध्यान लगाते । तब गोपाल नायक के अष्ट सिद्ध नव निद्ध अगत मध पाते ॥

रे-जय सरस्वती गतेश महादेव शक्ति सूर्य सब देव । देही मीय विद्या कर कठ पाठ ॥

भैरव भारकोस हिंदाल दीपक श्रामेघ मृतिवत । हृदय रहे ठाठ ॥

सस स्वर तीन प्राप्त अक्ट्रैस मूर्खुना बाइस सुतै, उनचास कोट ताल लाग दाट ।

गोपार नायक हो सब रायक आहत भनाहत शब्द, स्रो ध्यायो नाद ईरवर बसे मो धार ॥

वैज् बावरा

§ २४३ वैम, बावार का जीवन-इच भी गोपालनायक की हो भीति जन भुतियों एव निकसी क्याओं से आहल है। गोपाल नायक के विषय में अधिक जनभुति में बैजू जाउरा की उनना गुरू बताया जाता है। कहा जाता है कि वैज्ञ बादरा से समीत की शिक्षा आस करें पर योगाल नायक की रसाित ज्यों व्यों अबने क्यों उनमें अहमामना नी बदने तथी और एक दिन किसी बात पर अपने गुरू से क्यू होकर वे बळे गए। वैज्ज बावरा अपने शिष को हमर उपर हुँदुने रहे। अलाउद्दोन के दखार में दोनों को मेंट हुई। अलाउद्दोन करी गई हैं इसमा निर्णय करने का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता । नायक बस्यर, बैज् और वर्ण पक्षोदल्या के अनुसार मानसिंह के दरवार के प्रसिद्ध गायक ये । आईने अनवरी में विवाद है कि राजा मानसिंह ने अरने तीन गायकों से एक ऐसा समह तैयार कराया था जिसमें मानेक वर्ण के होगी की दिन के अनुसार पर सपदींव में । हालांकि इन तीन गायका में नाशांद्र मा पता नहीं चलता, किन्तु वह एकेत मिलता है कि ये गायक सागीत के आचार्य हो नहीं वही और काव्य प्रेमी मी ये। मानसुनहल से मी मानूम हाता है कि संगीत- कार को पर चितातों ना चाहिए हों

§ २४४. वैजू के बहुत से पद राजक्यद्वम में मिछते हैं। इस प्रकार के पटों को श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'कगीतज्ञ कवियों की दिन्दी रचनावें' में एकन सकल्ति कर दिया है। नीचे इस बैजू शबदा के तीन पद उद्घुत करते हैं।

> १—आगन भीर मई प्रवर्गत के आज नद महोस्वर आनन्द भयो हाद दुव दृधि अचन रोशी है झिक्कत पास्पर गावत मगल चार नयो मझा इंस नारद सुर नर सुनि हरियत बिमानन पुष्प यरस रग ठयो धन पन वैजू सतन हित प्रकट नद जसोदा ये सुल जो दयो

२—व्हाँ कहूँ उन बिन मन बरो जात है अगन वार्ते कर मन दियो है दियार वह सुरत सुरत बितु देले आवें न सोहें वर हार हुए उस देलत कुट न सोहाबत विश्वा क्यात सप्तार वैर क्यत है दुस्तन सब वेंद्र न पाबें मन विष के भवता अयो है क्योतर !

१—मोलियो न डोलियो ले आउँ हूँ प्यारंग को सुन हो सुखर वर सक्द्रिये आउँ हूँ मानिना मनाय के तिहारे शास दियाय के मतुर इलाय के तो परण गहाउँ हूँ सुन री सुन्दर नार काई करत पूर्वी रार मदन धात पार घरन पतुमाउँ हूँ मेरी शीख मान पर मान न करो सुन वैद्य सुन्दु प्यारे सो पहिली गहाउँ हैं

वैज्ञ बावरा की रचनाये केवल अपने सगीततस्त्र के लिए ही नहीं बल्कि काव्यस्त्र के लिए भी प्रशस्त्रीय हैं।

हकायके हिन्दी में प्राचीन ब्रजमापा के तस्व

§ २४५, ईस्वी सन् १५६६ द्यापोत् १६२३ छवत् में भीर अष्टुल वादिद विल्पामी ने परसी भाषा में इकायने हिन्दी नामक युस्तक लिखी जिसमें उन्होंने दिन्दी के लेकिक श्रद्वार

१. म्टेडविन . आईने अञ्चरी, ए० ७३०

२. मानसिंह और मानतुन्हल, पृ० १२२

कही गई हैं इसका निर्णय करने कर कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता। नायक बस्दर, केंद्र और को पंकीस्त्रण के अनुसार मार्नासह के दरबार के प्रसिद्ध गायक थे। आईने अक्शरी में खिला है कि रावा मार्नास्ट ने अपने तीन गायको से एक ऐसा सग्रह तैयार कराया था जिसमें मत्येक वर्ष के कोगों की चित्र ने अनुसार पर सग्रहीत थे। हालांकि इन तीन गायको के नामार्दि का पता नहीं चलता, किन्द्र वह सकेत मिलता है कि ये गायक सगीत के आचार्य हो नहीं वही और काव्य प्रेमी भी थे। मार्नुस्तृहरू से भी माद्म हाता है कि सगीत- कार को पर स्वित्र होना होरा है कि सगीत-

§ २४४. नैज् के बहुत से पर रामक्त्यहम में मिलते हैं। इस प्रकार के परों को ओ नर्मदेश्वर बतुर्वेदी ने अपनी पुरतक 'सर्गीतश कवियों की हिन्दी रचनायें' में एकन सकलित कर दिया है। नीचे इस भेज, बावरा के तीन पद उद्युत करते हैं।

९—शागन भार भई ब्रवपित के भात नद महोस्तय श्रानन्द भयो हरद दूव द्वि अषत होरी ले हिस्कत परस्यर गावत मगल चार नयो ब्रह्मा दूंस नारद सुर नर सुनि हरपित विमानन पुष्प बरस रग उयो थन धन वैन्दू सतन हित प्रकट नद जसोदा ये सुख जो द्यो

२ — कहाँ कहुँ उन दिन मन जरो जात है अगन वालें बर मन कियो है दिगार वह मुरत सुरत पितु देखे भावें न मोहें घर द्वार इत उत देखत कुट न सोहावत विस्था क्यात ससार वैर करत है तुरत सब केंद्र न पाबे मन विषय के अध्यात भावों हैं क्योहार 1

१—पोलियो न डोलियो ले आउँ हुँ प्याती को सुन हो सुपर वर अवहाँमें जाउँ हुँ मानिना मनाय के निहारे गास दियाय के मधुर सुलाव के तो घरन गहाउँ हुँ सुन री सुन्दर नार कार्ड करत पूर्वा रार मदन बारत पार घरन पत्तुकाउँ हुँ मेरी सीख मान वर मान न करो तुम बैंद्र प्रमु प्यारे सो वहियाँ गहाउँ हैं

बैज् शवध की रचनाये केवल अपने समीततत्त्व के लिए ही नहीं बल्कि काव्यस्व के लिए भी मशसनीय हैं!

हकायके हिन्दी में प्राचीन बजभाषा के तस्व

§ २४५. रेंखी सन् १५६६ ग्रयॉत् १६२३ सवत् में मीर अन्दुल वाहिद विलग्रामी ने पारसी भाषा में इवायवे हिन्दी नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने हिन्दी के लीकिक शृद्धार

१. ग्लेडविन . आईने अफ़बर्ग, ए० ७३०

२. मार्नासह और मानङ्गतूहल, ए० १२२

- (१६) तुम्स कारन में सेज सेवारी तन मन जोवन जिड बल्हिडारी (पृष्ठ ६४)
- (१७) नन्द-नन्द पात को ऋषिलो सरहर पेड खजूर तिन्द चढ देखी बालमा निवर वर्से कि दूर (पूछ ६५)
- (१८) उठ मुहागिनि मुख न बोहु छैल खडो गलवाहि बाल भरी गजमोतिन गोद भरी कलियाहि (पृष्ट ६५)

हन व्याखों को देखने से बनता है कि लेखक ने तस्त्राधीन बहुत प्रसिद्ध वरों से या स्कृट स्वावाओं से शहें दर्घुण किया है। मुख्यान बारगारों के दरधारा में हिन्दू और मुख्यिम सभी मानक मानः प्रवाया के बोल ही नहते में, हन गानी में राबाहुण के प्रेश प्रकारी का वर्णन रहता था। उत्तर की पहिलों ऐसे गीती को और ही बकेत करती है।

'इनायके हिन्दी' कई दृष्टियों से एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें प्राचीन ब्रजमाया को रचनार्ये सकदित हैं जो सुरदास से पहले की अजभाषा का परिचय देती हैं। सरदास के पहले के समीतकार कवियों ने इस भाषा को पुष्ट और परिष्कृत बनाने का कितना महत्वपूर्ण कार्य किया है, इसका पता इन रचनाओं को देखने से चलता है। इकायके हिन्दी का साहित्यिक महस्य भी निर्नियाद है। इस रचना को देखने से सूरी सावका की उदार दृष्टि का भी पता चलता है जिन्होंने हिन्दू धर्म और इस्लाम के बाहरी विभेद और वैधाय के मीतर उनकी मूलभूत एकता को हुँडने और प्रतिशारित करने का प्रयन्न किया। सूर्ण कवि केनल अनुधी मापा केही माध्यम से यह कार्य नहीं कर रहे थे बल्कि ब्रजमाण के विकत्तित और प्रेम कथा मूलक काव्य को समक्तने समकाने या भी प्रयत्न कर रहे थे। ब्रजसाया को कोमल्ता ग्रीर मृद्दना ने स्कियो पर भी अपना अभिट प्रमाव डाल दिया था। एक बार किलों ने १४ मई १४०० ईस्ती शुक्रवार के दिन ख्वाजा गेसू दराज सैयद मुहम्मद हुसेनी (मृख १४२२ ईस्वी) से पृद्धाः 'क्या कारण है कि समियों को हिन्दवी में जितना आनन्द आता है उतना राजल में नहीं आता ।' रोस्ट्रराज ने कहा: हिन्द्यी बडी हो कोमल और रवन्त्र होती है। इसका सगीत बड़ा ही कॉमल तथा मधुर होता है। इसमें मनुष्य की करणा, नम्रता तथा वेदना का बड़ा ही सन्दर चित्रण होता है। बाहिर है कि यहाँ हिन्दवी का मतलब बनभाषा के पड़ों से है।

हिन्दीतर प्रान्तों के ब्रजमापा-कवि

3.4%. मण्यरेस की बोहियों से उदात्र साहित्यिक भाषाएँ समय समय पर संपूर्ण उत्तर भारत की काल भाषा मानी जाती रही हैं। इस विपन्न वर विस्तृत विचार इम ध्वालमापा वा विकार को किया मापा का स्थान वीरिक अध्याप भी कर चुके हैं। दसमें खतान्त्री के बाद काल्य भाषा का स्थान श्रीसेकी अपक्षा थी उत्तराधिकारिका जिल्लामा को मास दुआ और जनते पुरात दिवस की स्थान की का साहित्यक मिलों के द्वारा प्रस्तुत संपादिक के साहित्यक मिलों के द्वारा प्रस्तुत संपादिक के साहित्यक मिलों के द्वारा प्रस्तुत अस्तुत के सहन माध्यम के रूप में यहाँत हुई। अष्टलुपी कवियों की विश्वा का

^{1.} जमावे उल किलम-स्वाजा गेसुरराज के बचन, इन्तजामी प्रेस उस्मानगज--हकावके हिन्दी, मुमिका प्रष्ठ २२ पर ठद्श्त

- (१६) तुम्स नारन में सेव सँवारी सन मन जोवन बिड मल्हिस्से (पृष्ठ ६४)
- (१७) नन्द-नन्द पात बो झाँबलो सरहर पेड खतूर तिन्द चब देखों बालमा नियरै बतैं कि दूर (पृष्ठ ६५) (१८) तठ सङ्गागिनि मुख न बोह छैल खडो गलवाहि
- (१८) उठ मुहागिनि मुख न बोहु क्षेत्र खडा गलवाहि थाल भगि गबमोतिन गोद भरी बलिपाहि (पृष्ठ ६५)

हन व्यासी की देलने से ज्याता है कि लेखक ने तत्कालीन बहुत प्रसिद्ध पदी से या स्कृट स्वामाओं से शहें द्वर्ष्ट्रत किया है। मुख्यान बारसादों के द्वरास में हिन्दू और मुख्यिम सभी मावक प्रायः प्रवास्त्र के बेल ही क्हते से, इन यानीं में स्वाहरूण के प्रेम प्रसारों का वर्णन रहता या। क्लार की परिवर्ण ऐसे गीती की और ही सकेत करती है।

'हरायके हिन्दी' कई दृष्टियों से एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें प्राचीन ब्रजभाषा को रचनार्थे सकतित हैं जो सरदास से पहले की ब्रजभाषा का परिचय देती हैं। सरदास के पहले के संगीतकार कवियों ने इस भाषा को पुष्ट और परिष्टृत बनाने का कितना महत्वपूर्ण कार्य किया है, इसना पता इन रचनाओं को देखने से चलता है। इकायके हिन्दी का साहित्यक महस्य भी निर्मिताद है। इस रचना को देखने से सभी साधकों की उदार दृष्टि का भी पता चलता है जिन्होंने हिन्दू घर्म और इस्लाम के बाहरी विभेद और वैधम्य के मोतर उनको मूलभूत एकता को दूँदने और प्रतिशापित करने का प्रयत्न किया । सूपी कथि नेपड अपथी मापा केही माप्यम सेयह कार्य नहीं कर रहे ये बल्कि ब्रबभाषा के विकेसित और प्रेम कथा मुख्क काव्य को समक्तने समक्काने का भी प्रयत्न कर रहे थे। ब्रजभाषा को कोमन्ता ग्रीर मृद्रता ने समियो पर भी अपना अभिट प्रमाव डाल दिया था। एक बार किलों ने १४ मई १४०० ईस्त्री शुक्रवार के दिन ख्वाजा येस दशज सैयद महम्मद हसेनी (मृत्यु १४२२ ईस्वी) से पूछा: 'क्या कारण है कि सुप्तियों को हिन्दवी में जितना आनन्द भाग है उतना गजल में नहीं भाता।' गेस्ट्राज ने कहा: हिन्द्यी वही हो होमल और स्थन्छ होती है। इसका सगीत बड़ा ही कीमल तथा मधुर होता है। इसमें मनुष्य की करुणा, नम्रता तथा वेदना का बढ़ा ही सुन्दर चित्रण होता है। बाहिर है कि यहाँ हिन्दवी का मतलब बनभाषा के पटों से है।

हिन्दीतर प्रान्तों के ब्रजमापा-कवि

§ २४६. मण्यूरा की बोलियों से उत्तत्र साहित्यक भाषाएँ समय समय पर संपूर्ण उत्तर भारत को काथ भाषा मानी नाती रही हैं । इस विषय पर विस्तृत विचार हम 'प्रकासपा म स्विप' शीर्षक अरुवा में कर चुठे हैं। तस्वी शतान्दी के बाद कान्य भाषा का स्थान पीसेनी अपश्चत से उचारिकारिया प्रकासण को प्राप्त हुआ श्रीर अपने पुराने स्विप को स्पूर्णता संवादित करने वाली यह माथा गुजवात से असम तक के साहिट्यक मिलों के दारा परसर आदान प्रदान के सहब माध्यम के रूप में यहांत हुई। अष्टवृत्ती कृतियों को सीवता का

अमाने-उल किल्म-स्वाता गेसुद्रात के सचन, इन्ततामी प्रेस उस्मानगज्ञ— इकावके हिन्दी, भूमिका पृष्ठ २२ पर ठद्श्त

6

रॉक्ट्देव ने ब्रवमाया में नरगोतों की स्वना की। अपनी पहणे पाता में वे कृत्यवन गए में । ब्रवमाया काम की प्रेरपा उन्हें कृष्ण की जनमृति ने हो प्राप्त हुई। ब्रवमाया में रितिय ने बरगीत कर १९५५१-६३ के बीव किसे गर देशा डाक एमक नेमीग ने प्रमाप्तित किसा है। डाक नेपेस का अनुसान है कि ब्रवमाया में लिया एक्टा वर्गतित विद्वाप्तम में विद्या गया। डाक नेपेस ने शब्ददेव के बरगीतों को ब्रवहित का सबसे पुराना उदाहरण बताया है। डाक बरकार ने क्लिस है कि कृत्यवन में शब्ददित ने ब्रवमाया के धार्मिक साहित को देशा था। इसी समय उन्होंने इस माना को सीला और इसी की मिश्रित मापा में बरगीती को स्वना ही। "व

§ २५८. शकरदेव के बर्गातों की माना मिश्रित अवस्य है क्योंके उसमें करीं करीं अवस्या के प्रयोग मी आते हैं, किन्तु बडमारा की मुख्य प्रति की आक्चर्यवनक रूप से प्रावा दिलाई परती हैं। शीचे हम शक्दरेव के से पर उद्युक करते हैं। ये पर बदी हरितास्वय हत बक्सा द्वारा फीसिटा चिराहेत के से पर पर हैं।

पर रुख्या २१ सम धनधी

1—धु॰ सोदिनां मान काहेनों गयो रे मोदिन्द । हामु पादिनों पुत्र पेदलो नाई भार मोहि बदन अरविन्द । पद्म कबन भागवर्गा, भयो रे सुरस्मात आहु भेटन हुछ चौंदा । उनत सुर दूर गयो रे सोदिन्द भयो सोए बंधु भाग्या ॥ भाद्म भरुत पुरे मिलन महोस्त माध्य नाथ्य मान । गोहुन के मंगल दूर गयो नाहि बाबत वेनू विपान ॥ आहु बत नाराहें कहत मयन महि सुख दंकन महुखाना । हमारी कम्म विवेद हाने हरल निधि हम्म विकृत महाना ॥

घनधी पट १=

१—पु० मन मेरि रान चरनाई लागु । तह रेल ना भन्तक जागु ॥ पर मन भागु चने प्ले हो? । रेलो मान कीन दिन हुटे ॥ मन काट अवगर गिले । जान तिले के मरन मिले ॥ मन तिश्वप रानत काया । तह राम मन तेति साया ॥ रे मन ह सब विश्व पत्था । केने हेनि न देलत भागा ॥

१. जर्नल काव दि यूनिवर्सिटी आव गुवाइटी, माग १ संख्या १, १६५०, नेपोग का छैल

>. ससम्पन्न स्टिरोबर, पी॰ ई॰ एन॰, "१४१, ए० २६।

0

ग्रंक्ट्रेन ने ब्रह्माया में बस्मोती की रचना थी। अपनी पहणे यात्रा में वे कृत्यावन ग्रंप से। ब्रह्माया काम की ग्रंप्सा उन्हें कृष्ण की जनम्मिन से ही ग्रास हुई। ब्रह्माया में रित्त वे वस्मोत्रा सन् १४-८-१-६२ के बीच नित्ते ग्रंप डैमा डा॰ एम० नियोग ने प्रमाणित विद्या है। हा॰ नेपंग का अनुमान है व्वि ब्रह्माया में लिया पदा वस्मीत शर्देकाशम में नित्ता ग्रामा डा॰ नेपंग ने प्रस्तेव के वस्मोती की ब्रह्मिन का सबसे पुराना उदाहरण स्वाया है। डा॰ वस्मा में विद्या है कि ब्रन्यावन में ग्रंप्स्तेव ने ब्रह्माया के चारिक साहिस को देशा या। इसी समय उन्होंने इस मान्या को सीला और इसी की मिन्नित मान्य में वस्मोती में दना ही। "

§ २५८. राक्टरेव के वस्मेंती ही माना निभित्त अवस्य है क्सीके उन्ने कहीं क्सी अनिया के प्रयोग मी आने हैं, किन्तु सबमाना की मूक प्रति की आहत्यवेजन रूप से पूरवा दिलाई परवी है। मीचे हम राक्टरेव के दो पर उद्भुव करते हैं। ये पर बद्री हरितायचन दन वरका द्वारा केंगरित 'वस्मोत' से उद्भुव किए गए हैं।

पद रुख्या २१ राग धनश्री

१—पु॰ गोपिनी धान काहेनो गयो रे गोविन्द ।

हानु पापिनी घुतु पेकवी नाई भार मोहि बदन भरिन्द । पद इबन मान्यवर्ती, मयो हे सुपरमात आतु मेटन मुख चौंदा। उगत सुद दूर गयो हे चौतिन्द मयो गोप बंधु भान्या ॥ आतु मपुत दुरे मिलन महो सब मायब मायब मान। गोहुंच के मंतल दूर गयो नाहिं बातत वेद विचान ॥ आतु वर्ष नायरी करत बचन मिर् मुख एंडन सुपाना। हमारि बन्य विधि हाते हरल निधि कृष्ण क्रिकर सुधाना।

घनश्री पड १二

२—५० मन मेरि राज चरनाई लागु । वह देख ना अग्नक खागु । पर मन अग्नु चन-चने हुँ। देखो मान काँन दिन हुँ है मन काल अम्मार गिर्छ । मन किंक के मान मिले । मन निजय पतन काया। वह राम भन्न वेति माना । दे मन है सह बियय पत्मा।

वर्गत आव दि यूनिवर्सिडी आव गुवाइमी, माग १ संख्या १, १६५०, नेपोग का देख

э. ससमीज़ स्टिरोबा, पी० ईं० एत०, ⁻ स्४१, ए० २६ ।

पर्—पापी अज्ञानिल हरि को सुमरि नाम आभात । अतपे कमें को बन्द हाँडि पावल बेंकुण्ड वास ॥ जानि आहे लोक हरि को नामे कह विसदास । सकल वेद कों तत्त्र कहरू पुरुख माथबदास ॥

माधवदेव के गीतो की भाषा में भी पूर्वी प्रभाव है। किन्तु मृत्वः प्रव भाषा की प्रष्टित ही प्रयान दिवारे पदवी है। ह का य रूपान्तर पूर्वी प्रदेशों में होता था (देखिये कीर्ति ६) हो यहीं भी क्ट्रू >क्ट्र्य अर्ति | अर्था | ने स्वी ममाव दिवारे पहता है। यात्रव का भूत कि स्व है। माया में कहें स्थानी पर कार्यो विभक्ति के हो भी प्रमोग है। किन्त प्रवाण 'वी' 'की' का प्रयोग अर्थाज्ञव ख्राविक हुआ है।

महाराष्ट्र के ब्रज-कवि

§ २४०. महाराष्ट्र और मध्यदेश का साहतिक सक्व बहुत पुराना है। मध्य देश मध्याओं के विकास में महाराष्ट्र का महत्वपूर्ण योग रहा है। वर्तमान खड़ी कोशो का बन्म मेरत हिश्लों के प्रदेश में हुआ था, किन्तु उसका आराफिक विकास तो रहिला महाराष्ट्र यानी 'एकन' में ही हुआ। बाक मनायोदन चेप ने सहाराष्ट्र आहत को श्रीरेतेनी का किन्तु कर कातते हुए यह कि क्या है कि मध्यपेर से सहाराष्ट्र को ध्यातना कर कर सहाराष्ट्र को ध्यानात्राण करनेवात याजूनी तथा अन्य खातिशों के लाग मध्यपेरोम मध्या यानी श्रीरोतेनी मध्या मध्य प्रदेशों और वाद में वहाँ की कता द्वारा भी मान्य होश्य उसे महाराष्ट्र नाम मिला। शाह की भोतिक तथा दिवालों के दराया में दिन्दी कियों का सम्मान होता था। नामदेश और क्लिक्त के तथा विवाल के सक्ता स्वाप पर्दों का सम्मान होता था। नामदेश और क्लिक्त के तथा कि वर्ति की कामध्या पर्दों का इस पहले हो विवेचन कर सुके हैं। नीचे हुत अस्थातत कियों की करमाथा पर्दों का वरिवेचन प्रस्तुत विवाल हो। ये विवेचन कर के हैं। नीचे हुत अस्थातत कियों की करमाथा पर्दों का वरिवेचन प्रस्तुत विवाल हो। है। विवेचन कर हो है।

महाराष्ट्र में लिखी ब्रवमाया रचना का विचित् करेत बाहक्य नरेश सोनेस्स्(११९८४ दिवमी) के मानसोहास क्याँत चिताभीण नामक प्रत्य में मिनला है। इस प्रत्य में पन्द्रह विभिन्न विपतों पर विचार निया गया है। भूगोल, सेना, बाद, ज्योतिष, छुद, हाथी धोढ़े आदि के वर्षों के काम हो साथ पान-गिंगिनवी के क्यांन में कई देशी भाषाओं के पदी के उदाहरण भी दिए गए हैं। टाटी माणा का उदाहरण माचीन ब्रवमाण से मिल्ला-जुलता है। इस पदा की देखेंने से मालूम होता है कि रखी शायाओं के अपना में स्वर्ण अपना के उदाहरण माचीन ब्रवमाण से मिल्ला-जुलता है। इस पदा की देखेंने से मालूम होता है कि रखी शायाओं में अपन्य ग्रामानित देशी भाषा में साथ उच्चकोटि वी रचनायें होते लगी थी।

नन्द गोवुल आयो कान्हडो गोवी जने । पडि हिलोरे नवने जो विधाय दण माओ॥

महाराष्ट्र के हिन्दी कवियों को जानकारों के लिए ब्रष्टस्य हिन्दी साहित्य के इतिहास के अवकाशित परिप्येद, लेखक क्षी आस्कर रामचद्र आरेराव, ना॰ म॰ पत्रिका, वर्ष ५० ।

पद--पापी अज्ञातिल हिरे को सुनिर नाम आभात । अतत्वे दर्म को बन्द हाँडि पावल बेंबुण्ड वास ॥ ज्ञाति आहे ओक हिरे को नामे कह विसवास । सकल बेंद्र को तत्व कहरू पुरुष माध्यदास ॥

मापवदेव के गीतों भी भाषा में भी पूर्वी प्रभाव है। किन्दु मूलक सब भाषा भी प्रष्टित ही प्रधान दिलाई पढ़ती है। इ ना ए रुपान्तर पूर्वी प्रदेशों में होता था (देलिये शीर्ति० § E) यहीं भी नद्दर >म्रस्य, अलंहि> ऋतर् >अतर्य भी नद्दर >म्राप्त देलाई पढ़ता है। प्रपाल का भूत कि प्रसाद देलाई पढ़ता है। प्रपाल का भूत कि प्रमाद की विभक्ति का भी प्रमात है। किन्दु बबवाप 'वि' को' का प्रयोग अदेवाइन स्राधिक हुआ है।

महाराष्ट्र के ब्रज-कवि

\$ २५०. महाराष्ट्र और सच्यदेश का साह्तिक सक्य बहुव पुराना है। मण्य देवां मायाओं के विकास में महाराष्ट्र का महत्वपूर्ण देवा रहा है। वर्तमान हाड़ी क्षेत्रों का कम मेरा हित हित्सी के प्रदेश में हुआ था, किन्दु उक्का आर निक विकास तो दिवण महाराष्ट्र का भरति हित है की हुआ। बाक मनमेरीक के प्रदेश के महाराष्ट्र भी पित के विकास कर का की कि स्वारा के प्रदेश से महाराष्ट्र भी रामान्य कर का वित है के साथ मध्य के प्रदेश से महाराष्ट्र भी रामान्य कर कर का तो है कि मध्य के प्रदेश से महाराष्ट्र भी रामान्य कर कर के स्वाराष्ट्र की साथ मध्य माया है कि मध्य प्रदेश के महाराष्ट्र नाम महाराष्ट्र की माया की महाराष्ट्र की माया महिला। शह की भी तिलेक के कि सब्दियों के कमाया परी हा इस पहले हो विवेचन कर चुके हैं। नीचे जुड़ अल्पान्न कियों की प्रवास पहले का परिचय प्रस्तुत किया जाता है। ये कि सुदास के पहले के हैं।

> नम्द गोङ्गल आयो कान्हडो गोवी जने । पडि हिलोरे नयने जो विधाय दन भरधो ॥

सहाराष्ट्र के द्विन्दी कवियों की जानकारी के लिए दृष्टव्य दिन्दी साहित्य के द्विहास के अपकाहित परिष्वेद, लेखक थी आस्कर रामनद्व आंक्राव, ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५० !

निनपप्तपृति, विजयचन्द्रः सृषिः तथा अन्य बहुत से कवियो ने परवता विक्रसित अपभ्रश्चा के भागु, रास आदि चनप्रिय कायवरूना में बहुत सी मार्गिक कृतियाँ प्रस्तुत की। द्वस्तु अप क्वियाँ की रचनाओं में गुकराती मिश्रित शैरितेनी का प्रयोग हुआ है और भाषा की दृष्टि से शुद्ध व्रज से भित्रता रखते हुए भी इन रचनाओं को अन्तरात्मा मध्यदेशीय संस्कृति और काव्यप्रद्वति से भिन्न नहीं है । चौटहवीं शती के बाद भी गुजरात के कई कवियां ने व्यवभाषा में क्यिवायें ियीं । श्री बनाहर लाल चतुर्वेदी लिखते हैं 'गुजराती केवल बोलचाल की भाषा भी । यह इतनी प्रौड नहीं थी कि इसने द्वारा कोई कवि मनोगत भावों को भलीभाँ ति व्यक्त कर सकता । गुजराती भाषा के प्रथम कवि कूनागढ वासी भक्त प्रवर नरसी मेहता हैं जिनका कविताबाल शुकराता भाषा के अपने जब प्रशासन नाता जाय अपने रायवा नहमा है । बनाज कारावानाव सबंद १५१२ किमी माना बाता है । इस समय संघा उसके बाद भी गुर्बर देशवासी सभी शिवित वर्ग सत्कृत या उस सभय के प्राप्त अवभाषा साहित्य को ही। उलटा पुरुष करते ये। श्री चतुर्वेदी का यह कथन न रेवल भ्रान्तिएण है बल्कि ब्रवभाषा के अनुचित मोह से ब्रस्त भी। नासी मेहता के पहले भी ग्रवराती में रचनायें होती थीं, इसके लिए जैन गुर्जर कविया के प्रथम और तृतीय भाग, तथा आपणा कवियो सड १ (नरसिंह सुगनी पहेला) देखना चाहिए। यह सही है कि नरही मेहता के पहले (१०००-१४००) गुजराती का य जिस भावित पर पहुंच हाज निकास के स्वता के स भावा में निवा तथा, वह शीरेकों अल्प्सा के बहुत प्रभावित थी। यथा वहमं प्राचीत गुजराती के तत्व प्रचुर मात्रा में प्राप्त नहीं होते हैं और कई दृष्टियों से यह साहित पश्चिमी भाषाओं (ब्रज, रावस्थानी, गुजराती आदि) की सम्मिन्ति निधि बहा वा सकता है, विर भी इस भाषा का परवर्ती विकास सुर्वर अपभ्रंश के सम्मिश्रण के साथ गुजराती भाषा के रूप में पन्द्रहवीं शतान्दी तक पूर्ण रूप से हो चुना था। इसलिए बाद के गुजराती कवियों द्वारा प्रवभाषा में काव्य लिखने का कारण गुजराती भाषा की अनुष्युत्तना कदापि नहीं है। इसका मुख्य कारण सम्पूर्ण उत्तर भारत में भक्ति आदोलन को ज्यापकता के नारण उत्तल परस्तरिक स्त्रिवेश है। कृष्ण और रावा को अन्मभूमि ब्रजप्रदेश की माया 'इंट्रेवेव को माया भारतार जाननात है। हमा नार पत्ना या मानाया नामक का नाम र राज माना या पुरुरोत्तम भारा है रूप में समानित हुई, इसना निलार पश्चिमात के गुक्सत में ही नहीं सुरूर पूरन के असम और बगाल में भी दिलाई पहता है। सनत् १९५६ में श्लीनाय नी की स्थापना के पहले श्री बल्लमाचार्य ने गुबरात के द्वारका, जूनागढ, प्रप्रास, नरीहा, गोधरा आदि तीर्थ स्थानों वा पर्यन्न किया या और अनता म शुद्धाद्वेत प्रतिपाटित भक्ति वा प्रचार भी है जा रही है है। इस रहि के स्थापक भी दिव्हनाय ने सात् १६१० से १६२८ में भी हिजा यदी होती पुष्टिमालें के स्थापक भी दिव्हनाय में सात् १६१० से १६२८ में भीर गुक्सत की बहुद बार मात्राय की। इन मात्राओं से गुक्सत म महम भत की स्थापना हुई और भी दुर्गाग्रहर केवल सम ग्रासी के ग्रहों में गुक्सत बहुत मत का 'धाम' वन गया। कितु गुजरात म भक्ति का आविर्माव बहुत पहले हा चुका था । भागवत के रहीक के अनुसार

¹ जवाहरहार चतुर्वेदी गुनशत के सबमापी शुक्र पिरु, पोहार अभिनन्दन ग्रन्थ, पुरु १९६

२ महाप्रमु बह्नभावार्वे प्रजभावा की इसी नाम से सुबोधित करते थे।

र श्री हु॰ के॰ शासी इत 'वैश्वब धर्मनी सपिस इतिहास', पृ० १८४ इका मा बल्लम मत सु धाम क सुन्तरात धर नथ

ज्ञितपद्ययुरि, विज्ञयचन्द्र सूरि तथा अन्य बहुत से क्वियो ने परवता विक्रक्ति अपभ्रश के भागु, पस आदि वनविष फाय्यस्ता में बहुत सी मार्मिक कृतियाँ प्रस्तुत मीं । दुख् अन्य निवों भी रचनाओं में गुजराती मिश्रित शौरसेनी का प्रयोग हुआ है और मापा भी दृष्टि से शुद्ध बज से मित्रता रखते हुए भी दन रचनाओं में अन्तरार्जा मध्यदेशीय सस्कृति और काव्यद्वति हत का मनता रखत हुए भा इन रचनाओं ने जनराजा ने न्याराजा ने स्वाद है। बीरेड्डॉर से सिह्म होते हैं। बीरेड्डॉर से सिह्म होते हैं। बीरेड्डॉर से हिस्स होते हैं। लिटीं। श्री बताइर छाट चतुर्वेदी लिस्ते हैं 'गुजराति केवल बीरेन्डाल की मापा भी। वह इतनी मौद नहीं भी कि इसने हारा कोई कवि मनोगत मार्चों को मलीमॉलि व्यक्त कर सहता। गुजराती भाषा के प्रथम कवि भूनागढ बासी भक्त प्रवर नरसी मेहता हैं जिनका कविताकाल स्वत १५१२ वित्रमी माना नाता है। इस समय तथा उसके गद भी गर्नर देशवासी सभी शिद्धित वर्ग संख्त या उस समय के प्राप्त अवभाषा साहित्य को ही उल्टा पुल्य करते थे।" श्री चतुर्वेदी का यह कपन न देवल भ्रान्तिपूर्ण है बल्कि ब्रबभाषा के अनुचित मोह से ग्रस्त श्री प्याप्त को पर क्या ने र ने अला ग्राह्म ए चित्र क्या ने मानि है अला भी। नरमी मेहता के पहले भी गुक्सती में रचनायें होती थीं, इसके लिए जैन गुर्जर कविया के प्रथम और तृतीय भाग, तथा आपणा कवियो राड १ (नरिसह युगनी पहेला) देखना वाहिए। यह सदी है कि नरती मेहता के पहले (१०००-१४००) गुजराती शाय जिस भाषा में त्रिला गया, वह शौरतेनी अपभ्रश से बहुत प्रमावित थी। यरापि इसमें प्राचीन गुजराती के तत्व प्रजुर मात्रा में प्राप्त नहीं होते हैं और कई दृष्टियों से यह साहित्य पश्चिमी भापाओं (ब्रन, राजस्थानी, गुजराती आदि) की सम्मिल्ति निधि कहा जा सकता है, पिर भाषाभा (इन्हें, धवस्थान), धुव्यधा आहर) नव चान्तास्य गायन रहा नव अपाय कुरार भी इंद भाषा वा रावर्की विश्वस मुर्वेद अवस्था के समिन्नश्रम के साथ गुरूपती भाषा के रूप में पन्नदूवरी शतन्त्री तक पूर्ण रूप से हो चुन्न था। इस्तियर बाद ने मुक्यस्ति क्षियों हारा ब्रव्माया में काव्य विश्वते वा नारण गुव्यती भाषा की अञ्चयम्रचना क्यारि नहीं है। इसका मुख्य कारण सम्पूर्ण उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन को व्यापकता के कारण उत्तरत्र पारसरिक सन्निवेश है। इच्या और राजा की जन्मभूमि ब्रजप्रदेश की भाषा 'इष्टदेव की भाषा या पुरुषोत्तम मार्या हे रूप में समानित हुई, इसना बिस्तार पश्चिमात के गुजरात में ही नहीं सुरूर पूरव के असम और बगाल में भी दिखाई पहता है। सबत् १५५६ में श्रीनाय बी नहीं शहर पूर्ण के अक्षम आर बणाल में मा १६९०१२ पडता है। एवत् १२.५२ न शानाच का की स्थारना के पहले श्री बलमाचार्य ने गुजरात के द्वारका, जूनातक, प्रभास, नरोहा, गोधरा आदि तीर्य स्थानों का पर्यन्त किया यां और अनता में शुद्धादेत प्रतिपादित मेर्ति का प्रचार भी किया । यही नहीं पुष्टिमार्ग के सस्यापक श्री विश्लनाथ ने सत्रत् १६१० से १६२⊏ के बीच गुजरात की छुद बार बाहार्षे क्षी । इन बाहाओं से गुजरात म बहाभ भत की स्थापना हुई और श्री दुर्गाशकर बेवल राम शास्त्री के शब्दों में गुजरात वहान मत का 'बाम' वन गया। किन्तु गुजरात म भक्ति का आविर्माय बहुत पहते हो चुका था । भागवत के रखोक के अनुसार

तवाहरसार चतुर्वेद्गं गुगशात के मजभाषी शुक्र पिक, पोहार अभिनन्दन ग्रन्थ, 82 £ 0P

र महामसु बद्धमाचार्य प्रजमाया को इमा नाम से सवीधित करते थे। १ थ्री हु० के० शाखी इत 'वैश्यव पर्मनी संवित्त इतिहास', यू० १८४ हुक मा बल्लम मत तु धाम ज सुजरात धट्ट समु

भान्दोल

नाचह गोविय बृद, बाजह मञ्जर स्ट्रन मोडह अन सुरंग, सारगधर बाहति महूअरि ए ॥ कलवण सहस्ररि ए

कुलवण सहूअरि ए ॥ करलिय पक्ज नाल, सिरवरि फेरह बाल ।

करालय पक्त नाल, स्तरवार फरह् बाल । प्रदिहि-बातह ताल, सारंग पर बाह्ह महुश्रि ए ॥ बाता महि जिमि चन्द्र, गोपिय माहि सुकुन्य । पणमह सुर नर ह्द, सारंगथर बाहति महुश्रुर ए । कुलवण महुश्रिर ए ॥

योपी योपति फागु कीटत हींदत वनह मस्मारि । माहन मेरित वन भर नमइ मुरारि ॥

§ २४२ सन् १६४६ में श्री केशवराप काशीयम शास्त्री ने गुजराती हिन्दुस्तान में 'भालग : बबभापा नो आदि कवि' शोर्षक लेख प्रकाशित कराया ।' सुरदास की ब्रजमाया का आदि कवि मानने वार्टी की स्थापना को तस्यपूर्ण मानते हुए इन्होंने भारण को सूर का पूर्ववर्ती छिद करके अब का आदि कवि बताया है। भालग का विधिवाल निर्धारित करते हुए उन्होंने लिला '१४६५ १५६५ नो मौ वर्षों नो समय एना पूर्वार्थ ना श्रस्तित्व में पुरवार करी सङ्कानी रियत मा न होह । उत्तरकाल में भाटे खेरले के सं० १५५० १५६५ अथवा वितमनी १६ वी सदी ना उत्तरार्थ मा परिणत यह सकै है सरी। रे इस निष्टर्य में सहत भारण के पूर्व निर्धा रित समय को सदेहासद मानकर उन्हें १६ वॉ शतान्त्री के उत्तरार्थ का बताया गया है, निर भी शास्त्री जो भातण को स्र पूर्व ही रखना चारते हैं जैसा कि शोर्यक से व्यनित है। मालग के प्रतिद काव्य 'दशमस्तर' के सम्पादक श्री इ० द० वॉगवाला ने भूमिका में लिखा है कि थी य॰ नाययम भागों को भालम के मझन ते एक खडित बन्म-बुण्डली प्राप्त हुई थी बिसमें 'सनत् १४०२ वर्ष माद्रवा, बदी दिने शनी दर्शाचीर्णा एव ब मतो गत वर्ष ११ मास २ दिन ८ तरतु सवत् भाद्रवावदो ने बुध दशा प्रवेश' आदि लिखा है। विगावाला का अन मान है कि १४६१ सबत् बिस पुरुष का जन वर्ष है, वह भाडण का न हाकर उनके पुत्र दा हो सकता है क्योंकि भारण के पुत्र विष्णुदास ने रामायग का उत्तरकाड रचा या बो हवत् १५७५ में पूर्ण हुआ था। इस अनुमान की यदि सही माने तो भारूण सुर के काफी पूर्ववर्ती प्रवीत हाते हैं। श्री भाषों ने दिशावाल बाति के एक बाह्मण से यह भी सूना पा कि उसके पूर्वज भीजराम और भावण छवत् १४५१ में टिइंग हैदरावाद गये थे। मालग हैदएभद और और गाबाद में रहे थे, वहाँ किसी रलादित्य राजा के दीवान ने पूजा के लिए चामुडा देवी की एक मूर्ति मेंट की भी जो मालम के घर में मौजूद है। इस मूर्ति के पृष्ठ-माग पर लिला है 'सबत् १५२० वर्ष ठाकुर रत्नादित्य भाउ ही चामुडा पूजनार्थ राजादित्य पूची

१. हिन्दुस्तान गुजरातो दैनिक, बंबई, ११ नवंबर, १६४६ का अक

२ वहीं, प्र० स ।

३ मालज कृत दरामस्कद्-कविचरित्र, ५० २, सन् १६१४, बहाँदा

आन्दोल

नाचद्द गोपिय बृद, बाजद्द मधुर मृदग मोडह् अग सुरंग, सारगधर बाइति महूअरि ए ॥ जलवण सहअरि ए

कुलवण सहूअरि ए ॥ करलिय प्रकानाल, सिरवरि फेरह बाल ।

करांलय पक्त नाल, सिरवार फरइ बाल । स्विद्धित्वाज्ञ ताल, सारग घर बाइह महुभिरि ए ॥ सारा महि लिमि चन्द्र, गोपिय माहि मुकुन्द्र ॥ पणमइ सुर नर इद, सारगघर बाइति महुभिरि ए ॥ कुलवय महुभिर ए ॥

योपी योपति फागु कीडत झॅडत वनह मम्मारि । सान्त प्रेरित वन भर नमड सरारि ॥

§ २४२ सन् १६४६ में श्री केशवराय काशीयम शास्त्री ने गुजराती दिन्दुस्तान में 'भारण : बबभाषा नो आदि कवि' शोर्षक रेख प्रकाशित कराया ।' सुरदास को बजमापा का आदि कवि मानने वालों की स्थापना को तस्यपूर्ण मानते हुए इन्होंने भारण को सूर का पूर्ववर्ती िस करके अब का आदि कवि बताया है। भालण का तिथिकाल निर्धारित करते हुए उन्होंने किया '१४६५ १५६५ मो ही वर्षों मो समय एना पूर्वार्थ ना श्रस्तित्व में पुरवार करी सन्वानी रियत मा न होह । उत्तरकाठ में भाटे ख्रेटले के सं॰ १५५० १५६५ अपवा वितमनी १६ वी सदी ना उत्तरार्थ मा परिणत यह सके हैं खरो। 'े इस निष्टर्य में सहत भावण के पूर्व निर्घा रित समय को सदेहासद मानकर उन्हें १६ वीं शतान्दी के उत्तरार्थ का बताया गया है, पिर भी शाली जो भारत को सूर पूर्व ही रखना चाहते हैं जैसा कि शोर्यक से प्वनित है। भारत्य के प्रतिद्व काव्य 'दरामत्कद' के सम्पादक श्री इ० द० कॉंगवाला ने भृमिका में लिखा है कि भी रा॰ नारायण भागों को भारण के मदान से एक खडित बन्स-अण्डलो प्राप्त हुई थी जिसमें 'सबत् १४७२ वर्ष भाद्रवा, बदी दिने शनी दशोचीर्णा एव जन्मतो गत वर्ष ११ मास २ दिन ८ तदन सवत भादवावदी ने अध दशा प्रवेश आदि लिखा है। वर्गगवाला का अन मान है कि १४६१ सबत् बिस पुरंप का अप वर्ष है, वह भारण का न हाकर उनके पुत्र का हो सकता है क्योंकि माल्य के पुत्र विष्णुदास ने रामायण का उत्तरकाड रचा या बो सवत् १५७५ में पूर्ण हुआ था। इस अनुमान को यदि सही माने तो भारूण सुर के काणी पूर्ववर्ती प्रतित होते हैं। श्री भार्यों ने दिशाबाल बाति के एक ब्राह्मण से यह भी सुना था कि उसके पूर्वज मीजराम और भालण सवत् १४५१ में दिस्त्या हैदरावाद गये थे। माल्या हैदएबाद और औरगाबाद में रहे थे, बहाँ किसी रत्नादित्य राजा के दीवान ने पूजा के लिए चामुदा देवी की एक मूर्ति मेंट की थी जो मालग के पर में मीजूद है। इस मूर्ति के पृष्ठ-माग पर लिला है 'सक्त् १५२० वर्ष ठाकुर रत्नादित्य माउ ही चामुडा पूबनार्थ राजादित्य पूबी

१. हिन्दुस्तान गुजराती दैनिक, बबई, ११ नवबर, १६४६ का अक २ वहाँ, प्र० म।

^{4 451, 30 41}

३ मालग कृत दशमस्कद्-कविचित्रितः १०२, सन् १६१४, बदौद्रा

चित्त में वे जु दुर्भा रही है चोर चोर कहेत है राम ॥ निशं दिन फारतो जु जुरिन के सने शीर पर परत शीत घनधाम। निस जुनि होइन कथन को सुज करी चैटत नाहि जो काम॥ मोर पिच्च गुजाफट टे ठे वेख बनावत रचिर रूटमा। मारण प्रसु विधाता की गीत चिरित्र तुम्हारे सब बाम॥

पद २५४ राग सारग

कहो मैवा वैसे सुख पार्ड ।

नाहिन सो लोक श्रीवृश्मा खेलन सम कीन में बार्ड ॥

नाहिन पुरे वे मनवामिन के नहीं चोर चोर दूपि मालन खार्ड ।

नाहिन नुत्यान अति बचन वा कारन हु भी चराड ॥

नाहिन नुत्यान अति बचन को बा कारन सुदू बैन प्रवाड ।

नाहिन नुत्यामी जन को बा कारन सुदू बैन प्रवाड ।

नाहिन जमलाईन बूल दोड जा कारन हुँ भाप बगाड ॥

नाहिन मेम ऐमो कोड हु जा हु मेसे क्या सुनाड ।

मालग को उस सी कहु नाहीं अहियों के आरी मन के गुन गाड ॥

पुरु २०१

२५५ राग धनश्री

अब पडवे को आयो दिन ।
एते बास करे गर्न नाहीं कोडा कोनी नंद शुवन
सुन को सुन पायो जागेदा मेरे पूरत नाहीं हु दुन्य
अयो दो दिन मये हु नाहीं उठ घरे पुन हुग जीवन
बहि बाज यह हिर हु चले हुन्त देखन हु कहां बन्दामन
हम पर मीति नाहिन मोहन को जैसो मज उपर है मन
बाहा सुमति भागक हुंदुमि को पडव रहाँ सोवर धन
पादे आये को कहाँ आग राम संग चले पीत बसन
वाद सुमति धरद वे सबनो सोक सदयन
विदं वेदना हिर हिंद जानत जानत है वे मालन जन

पद २६४ सम गंजरी

प्रव २०१

सुत में सुनित कोक में बात । मेरे सो तुम सन्य कहो सुन्दर स्वामक बात ॥ सर्दोपन को सुत मुख भयो उद्दिय तक में पात । बहोत दिवस ता कु निषड गर ते राम से दे ने मात ॥ सुन पे पुरस्कृत। मागी आत देवी विरक्षत । करवर सुत बने बचे हे मेरे जेट विद्यारे आत ॥ चित्र में ने जु हुमी रही है चोर चोर कहेत है नाम । निस्न दिन फीरतो जु सुरीन के सगे शीर पर परत शीत घनवाम । निस्न कुले होड़त पथन को सुद्ध करो बेटर नाहि जो काम ॥ भीर पित्र्य गुजाफल के के खेत कमातव रिचर क्याम । भारत पृत्र गुजाफल के के खेत कमातव रिचर क्याम ।

पृ० २००–२०१

पद २५४ राग सारग

कहो भैवा नैसे मुख पाउं।
नाहिन सी लोक श्रीहाना सिलन सग कीन में बाउं॥
नाहिन सो लेक श्रीहाना सिलन सग कीन में बाउं॥
नाहिन से बजवामिन के जहां चीर चीर होत माखन खाउं।
नाहिन सुन्द्र गोर्था जन की बा कारन सुद्र बेन पत्राउं।
नाहिन खुन्द्र गोर्था जन की बा कारन सुद्र बेन पत्राउं।
नाहिन जसलाउँन बुल दोड बा कारन हुँ भार बगाउं॥
नाहिन सेम ऐमी नेउ कु बा हु मेरी क्या सुनाउं।
मालग को उस सी कहु नाहों अहियां के खारी प्रज के मुन गाउं॥
पुरु २०१

२५५ राग धनश्री

भव पडवे को आयो दिन ।
एते बस्त बड़े गर्न नाही कंडा कंडा नंद मुखन
पूर्त को मुख पायो जरादिर मेरे पूरण नाहीं हु पुत्य
आये दो दिन भये जु नाहीं उठ चने जुन जुन जीवन
श्रद्धि बाज बर हिरे जु चले जुठ चने जुन जुन जीवन
श्रद्धि बाज बर हिरे जु चले जुति देखन हु कहां बन्दावन
हम पर प्रीति नाहिन मोहन की जैसो मज ऊपर है मन
कार हमति भानक दुंदुमि की पडब रही सोवर घन
पाड़े आये को बहाँ अग्रत राम संग चले पात बसन
बड़ाँ निभारे सिरशर वे भवनों को सचयन
विद्य वेदमा हिरि हिंदी जानत जानत है वे मालन जन

70 201

पद २६४ सम गुजरी

सुत में सुनित कोड़ में बात । मेरें सो तुम सन्य कहो सुन्दर स्वामन्ट वात ॥ सर्दापन को सुत मुद्ध भगे उद्धि जरू में दात । बहोत दिवस ता कु निवड गए ते राम हुने कात ॥ तुम ये पुरस्कृत। मागों भात दोंगों दिल्बात । करवट तुन बमे यथे हे मेरे जेंट विद्यारें आत ॥ त्रोटक

लाज हमारी कोपी हमारी सब मिलि बाल भुलायो जहाँ जहाँ फिन्यो गहन बन गोचर तहाँ तहाँ सब भायो अंजी श्रीलया हियो हम अंतन कहे हुद माता कोपी हाडी सब चतुरी चहुराई, अरे अरे बादरी गोपी

कपट करे है तुम भागे, सेज सूपे नहीं जागे श्रीटक

सेत्र सूचे नहि जाने, बाटक आद बोठावे यमुना तीर तहन सब देखत मोहन वेनु बजावे जीनो चित सुराहुँ चत्रभुन बहुते कहु ना लागे हम अवला ये चीर धरनिधर कपट करही तुम आगे

70 108

दत दो क्षियों के अलावा मुद्ध अन्य मी कविया ने प्रकारणा में कविवायें की। सत्रहवीं ग्रातास्थी में गुरुपत में काली साहित्व प्रकारणा में भी लिखा गया, किंतु स्टोजर होने के सहण गर्दी उन्हों चर्चा आवश्यक नहीं जान पद्यों। मीरावाद ने भी गुरुपता के कोण अरदात कवि मानते हैं, मीरा का अल्व प्दं के बुद्ध पहले या सम सामयिक पदया है, किन्तु इनका परिचय प्रकारणा भी मूल पारा के कवियों के साथ पहले ही किया जा जुका है। १७वीं १८वीं ग्राती के कवियों का सिहात परिचय औ बावहरूं जा चतुर्वेंदी ने 'गुतरात के प्रक मार्थी ग्राह किंक' ग्रीनेंक सेल में महावा किया है।

१. पोहार अभिनन्दन झन्ध, ए० ४१३-४०

त्रोटक

लाज इमारी छोषां सुमही सब मिलि वाल सुलायो जहाँ जहाँ फिन्मो गहन बन गोचर तहाँ तहाँ सग भायो अंजो अखिमा हियो तुम अंजन कहे हम माता कोया सुन्ही सब चतुरी चतुराहुँ, अरे वरे बाउरी गोपी

कारिना कपर करें है तुम भागे, सेज सूपे नहीं जागे जोटक

सेत्र स्पे नहि त्रामे, बाल्क आप बोलावे पसुना तीर तरून सन देखत मीहन वेतु वजावे होतो चित सुराई चत्रभुत कहते कहा ना लागे इस अवला ये चीर परनिधर कपट करहाँ तुम आगे

70 108

दत्त से बहुवों के अलावा बुद्ध अन्य भी कविया ने सबमापा में किवायों की । शब्दबी राजान्त्री में गुरुरात में काण आदिय सबमापा में भी खिला परमा, किन्न सुरोत हो के काण सर्दी उत्तक्षी अवस्थक नहीं वात पर्वा । मीरावाद के भी गुरुरात के लेग अराज किन मानते हैं, मीरा का कार पर के जुद्ध पहले भा तम तामिक परणा है, किन्तु इनका परिचय सबमापा भी मूल पारा के विदेश के ताथ परले ही किया जा जुका है । रेश्वी रूटवी राजी के कवियों ना साहित परिचय श्री नावादरेखाल चतुर्वेदी ने 'गुजरात के प्रन मापी शुक्त किंक रेशें महात किया है। किया जा कि स्वात किया है। स्वात कि स्वात किया है। स्वात कि

१. पोद्दार अभिनन्दन प्रन्थ, पृ० ४१६-४०

(१०) ससी लघुतम, वार्तो	विक्रमी १५५०	(रा॰ ल॰वा॰)
(११) द्धिताई वार्ता	,, १५५०	(ন্ত্ৰি৹ বা৹)
(१२) भागवत गीता भाषा	,, શ્યુપ્હ	(নীঃ মাঃ)
(१३) छोइल बावनी	"१५८४	(ন্ত্ৰীণ মাণ)

१४ वीं १६ वों की पुजल सामग्री में से १३ इस्तरेलों को चुनने का मुख्य कारण इतकी प्रामाणिकता और प्राचीनता हो है। हण्डतम यांसी के एक पुराने इस्तरेण्य से बुझ सातों की अगरचन्द नाहम ने ब्रनमारती के (आर्थिन अगाइन, सन्त् २००६) अक में प्रभागित कराई है। तथ को कोई प्रामाणिक इति इस सुन में प्राम तरी हुई, इस क्यों को वे व्यक्तिवाद दूर कर सबती है। इनमें प्राचीन प्रजनाया गथ का रूप सुरद्दित है। इनका समय मैंने अस्पत्त पींखें सींचकर १५५० विक्रमाल्य अनुमान किया है। ये इससे पहले की भी हो सत्ती हैं।

ध्वति-विचार

§ २५६. प्रा॰ ब॰ में आवेभाषा के मध्यमात्रीन स्तर की प्राय: सभी घानिया सुर्वित हैं। अपभरा नी कुछ विशिष्ट घानि प्रवृत्तियों का अभाव भी दिलाई पडता है। स्वय आर्यभाषा में कई प्रकार की नधीन धानियों का निर्माण भी हुआ।

प्राचीन वज में निम्मिनिसित स्वर स्वनियाँ पाई बाती है :— ऑ, अ, आ, इ, ई, ज, ऊ, ए, ए, ऐ, ओ, आ औ।

भिगत अब में राज्यतर से और ओ के लिए छाद, और अओ, बैंडे सबुत स्वरी ना प्रयोग मिल्ता है (देलिये § १०५) इनना परवर्ती जिलात पूर्व सध्यतर ओ और से के रूप में हुआ। प्राप्तर वैंगल्स की भाषा में किया रूपों में वहीं भी 'औ'सारान्य सर्वेग नहीं मिनते। सर्वेग 'ओ'नायन हो दिलाई पढते हैं। 'औ'सारान्य किया रूप परवरा विकास हैं।

माचीन बज के उपर्युक्त स्वर सानुनासिक भी होने हैं।

§ २४७. अ वा एक रूप 'ॲ' पाटान्त में मुाह्मित दिखाई पहता है।

प्रवमाण में मध्य कें प्रायः और अन्य भी ना नियमित क्षेत्र होता है। (अनमाण है

क्ष्में) न य आर्ष भाष के विनात के आरमिक दिनों में इस प्रकार की मध्येत समस्तः मध्येत नी थी। बदुत ते शहरों में कल्प भी खुतित भादम होता है। बदुनोवद निता की भाषा में प्रवुक्त करने में माने के स्त करार की माने मित्रक करने में माने के स्त करार की महित को नीहित ने भी माने निता तरी इस्त कर अप का उत्तर नहीं माइस होता। अपण (प्र० च०) सावर (प्र० च० १५) वरण (प्र० च० १६६) अहार (इ० पु० २० अग्रहार) मेह (प्र० च० १६६) उत्तरार (इ० पु० २० अग्रहार) मेह (प्र० च० १६ स्वाहि सत्तरों प्रवेश स्वतर्भ करने अस्त प्र वा उत्तरकार एक्स हा तन्तरकार प्रवास हो महित स्वतर्भ के स्वाहि स्वतर्भ भी अन्य भी अन्य भी स्वाहित्र करने में सुरक्षित देखाई पहला है। (उत्ति व्यक्ति की माने के अन्य भी सावपा में सावपा के सावपा में स

§ २४<. आय या मण्यम ग्रहर में कभी कभी अ का इ रूप भी दिखाई पडता है।

(१०) रासी लघुतम, वार्ता	विक्रमी १५५०	(रा० ल०वा०)
(११) छिताई वार्ता	₃₇ १५५०	(ন্তি৹ বা৹)
(१२) भागवत गीता भाषा	,, १५५ ७	(बी० भाव)
(१३) छोइल बावनी	" १५८४	(ন্ত্ৰী০ লা০)

१४ वों १६ वों की पुष्टक सामग्री में से १६ हस्तरेकों को जुनने का मुख्य भारण इनकी प्रमाणिकता और प्राचीनता हो है। रुपुतम शक्तों के एक पुराने हस्तरेख से बुख वार्तीय की अगस्यन्द नारश ने ब्रक्तमारती के (आदिवन अगाइन, धन्द २००६) अक में प्रमाणिक क्यांदे हैं। यदा को कोई प्रमाणिक इंटी दूस युग में प्राप्त नहीं हुई, इस क्यों को ये वचनिकार दूर कर सकती है। इनमें प्राचीन ब्रक्तमारा ग्राथ का क्य सुरिवृत है। इनका समय मेंने अस्यन्य पीछे सींचकर १५५० विक्रमान्द अनुमान क्या है। ये इससे पहले पहले की भी से महाने हैं।

ध्वति-विचार

§ २५६. मा॰ म॰ में आवेंभाषा के मध्यमाधीन स्तर की प्राय: सामी प्रानिया सुरवित हैं। अरभ्या मी दुख विशिष्ट पानि प्रवृत्तियों का अभाव भी दिखाई वडता है। मन्य आर्यमाणा में कई प्रकार की नतीन प्रानियों का निर्माण भी हुआ।

प्राचीन ब्रज में निम्निविश्वत स्वर म्बनियाँ पाई बाती है :— ऑ, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ए, ऐ, ओ, ऑ औ।

पिगत प्रव में रुपबुर से और औं के लिए ख़ुप, और अओ, वेशे सबुत स्वरी वा प्रवेप मिलता है (बेलिये है १०५) इनना पत्वती विकास दूर्व कथ्यदर भी और ऐ के रूप में हुआ। प्राष्ट्रत वैंगल्य की भाषा में किया रूपों में वहीं भी 'वी'कारात्व प्रयेग नहीं मिलते। सबैंग 'वी'कारात्व हो दिलाई बढते हैं। 'ब्री'कारात्व किया रूप परवता विकास हैं।

याचीन बज के उपर्युक्त स्वर सातुनातिक भी होने हैं।

§ २४७. अ का एक रूप 'ॲ' पाटान्त में मुग्नित दिलाई पटता है ।

अवभाषा में मध्य कें प्रायः और अन्तर 'कें' ना निविन्ति होत होता है। (अजभाषा हुं दर्द) नार आर्ष भाषा के हिनात के आर निक दिनों में इस अनार की महिस समस्ता भाषा नारों भी। पट्ने से उन्हों में अन्तर 'कें 'कुर सिंदित मास्तम होता है। हटनेडब किता की भाषा में भयुक कारों में इस भनार की महित हो जा है तो मीतिक न भी मानें, किन्नु वर्रो अन्तर 'क' ना लोर संग्रेश कर राजा उनित नहीं माद्म हे ला। असाग (प्र० च००) सापर (प्र० च०० १५) वन्त्र (प्र० च० १३६) अद्धार (ढ० पु० ९०० अव्यादय) मेह (ग० च००) हा पर इस्तों ने करन का का उच्चारण एक्टम हान नहीं माद्म होता। १२वीं १३वीं शांती में भाषारे सीत भाषा में भी अन्तर 'क' हा निर्मे काने भी। उन्हि स्पत्ति की मापा में डा० चाटुमां के मन से अन्तर 'क' का उच्चारण अवदिका कर में मुहित दिलाई प्रवता है। (उन्हि व्यक्ति स्टेडो हुँ ५)।

§ २५:=. आरा या मध्यम श्रहर में कभी कभी अका इ रूप भी दिखाई एडता है।

६ २६३, मध्यम इ का कभी कभी य रूपान्तर भी होता है।

मो यन्द (म० ६० २६४१ १ < मोविन्द) मानस्य (गी० भा० ६ < मानसिंह) स्पते (गं० के० २६ < निवह) | इदलब मुत्तकांकिक किया में इ>य का खायम । 'वीह्यउ' में 'द' बोक्रियड के इ का ही क्यान्तर हैं। इसी तरह कहारण शब्द हुँ २१८ के अनुसार सिंहारण और निर स्थारण (८० प० ६० ७१) हो गया ।

\$ २६४. 'अ+3' या'अ+इ' ना औ या ऐ उद्दृत रहर से रूपस्टर रूप में परिकृत है बता है। यह मृहति अबहृह या चिंगल एक में हो जुरू हो गई थी। प्राचीन अब नी इन रचनाओं में इस तहर के बहुत से प्रयोग मिन्ते हैं। निनमें उद्दृत सर सुरहित हैं, यथा—

चाल्यउ (स॰ प॰ व॰ ५६।१>चल्यौ) च्यारउ (ह्यी॰ वा॰ ४।५>च्यारौ) चउवारे (प्र॰ प॰ १६१।१>चौवारे) चउपात (प्र॰ च॰>चौपात्त) चिग्हर (छी॰ श॰ १।१>चीन्हे) चिंदेउ (प्र॰ च॰ ३११ >चट्यों) उदीउई (प्र॰ च॰ ४०३११ >उदीउँ) एतउ (स्र॰ प० क० १३।१>एती) नइमात (ग० व० ३>कैमास) वहह (ग० व० १>की) करत (म० क० =।१ > करो) खयह (ह्वी० वा० ६।४ > खरें) गहह (ह्वी० वा० ६।६ > गहें) दीघउ (ल०प० क॰>दीवी) दिलावइ (खि॰ वा॰ १३३>दिलावै) घरई (स्वर्ग॰>घरै) नीसरइ (स०प०क० २।१>नीतरे) मनइ (स्वर्ग०>मनै)। इस प्रकर के एक दो नहीं सैकड़ों प्रयोग मिन्नते हैं जिनमें उद्कृत स्वरों की मुख्या दिखाई पडती है। यह इन रचनाओं की प्राचीनता का एक सबल प्रमाण है। हिन्तु इस इसे मूळ प्रश्नृति नहीं वह सक्ते क्योंकि उद्दृत हरों के स्थान पर सप्यद्यों के प्रमोगों के उदाहरण भी कम नहीं हैं। बल्कि गणना करने पर सध्यद्यों के प्रमेग ही ब्यादा मिलते हैं। नीचे कुछ इस प्रकार के प्रयोग उनके अनुभूश रूपों के साथ दिये बाते 🕻। स्त्रानीयो (स॰ प॰ क॰ ५८।२<आनीयड) उपज्यो (गी॰ भा॰ ४१<उपजड) औगुन (प॰ वे॰ < अउगुण < अवगुण) दैमासिंह (रा॰ छ० ५ < महमासिंह) की (स्व० < कड) सकै (इ० मं० < सकर) गन्यी (गी० भा० ४१ < गणड) चौपही (व० प० < चडपई) चौगुनी (गी० भा० १३ < चउगुणी) चौक (म० क० २१ ५।१ < चउवक < चतुष्क) चनियौ (प॰ वे॰ १३ < चिषय) दीते (म॰ क॰ १२।२ < दीसह) नान्यो(प॰ वे॰ १० < नसउ) पहिरो (छि॰ वा॰ १३५ <पहिरत) आदि ।

§ २६४. सर सकोच नव्य डार्य भाषाओं सी एक मूठ ध्वन्यात्मक प्रवृत्ति मानी बाती है। प्राचीन बन में सर-सकोच कई प्रकार से हुआ है।

(१) अउ>उ

कुण (रा॰ स॰ ३६ < कडण < कवण) बहुराय (गी॰ भा॰ २६ < बाद्वराय < थादवराय) दीउ (ह॰ प॰ क॰ < दियउ)

(२) इअ**>**ई।

नहारी (हो॰ या॰ २०१४ श्रहारिअ<आहारिक) अपनाई (२० मं॰ <अपनाहअ<आत्मनः + इत) करी (२० मं॰<कारेय < ऋसरित = इत) दोडो (स॰ प॰ इ॰<िहिस< *हहित = इष्ट) महें (हो॰ या॰< सहअ ६ २६३, मध्यम इ का कभी कभी य रूपान्तर भी होता है।

मो पन्द (म० ६० २६४। १८ मोविन्द) मानस्यव (गी० भा० ६८ मानसिंह) व्यते (मं० के २६८ विद्ध) | इस्तव मूतकाव्यक किया में ६०म का झागम। 'गोल्यव' में 'श' बोलिख के इंका ही क्यान्तर है। इसी तरह कहारण शब्द हैं १४८ के अनुसार सिहारण और निर स्वाराण (इ० ५० ६० ७१) हो गया।

§ २६४. 'अ+उ' या 'अ+इ' वा औ या ऐ उद्कृत स्वर से रूप्यूर रूप में परिवर्तत हो बाता है । बह मृत्रि अवहृष्ट या विगळ वाल में हो शुरू हो गई थी। प्राचीन ऋब वी इन स्वनाओं में इस तहर के बहुत से प्रयोग मिल्ते हैं। जिनमें उद्कृत स्वर सुरादित हैं, यथा—

चाल्पउ (त॰ प॰ द॰ ५६।१>चत्यौ) च्यारउ (छी॰ वा॰ ४।५>च्यारौ) चडवारे (प्र० च० १६१।१>चौवारे) चउपास (प्र० च०>चौपास) चिन्हर् (छी०वा० १।३>चीन्हे) चित्र (प्र॰ च॰ १११ >चट्यों) उदीहर्द (प्र॰ च॰ ४०१११ > उदीहें) एतत्र (ल० प० क० १३११ > एती) वहमात (रा॰ व॰ ३ > कैमास) वहह (रा॰ बा॰ १ > वहें) करउ (म॰ क॰ दार > करी) खयह (छो॰ बा॰ ६१४ > खयै) गहह (छो॰ बा॰ ६१६ > गहै) दीघउ (स. प. फ॰>दीवौ) दिलावइ (ह्वि॰ वा॰ १३३>दिलावै) घरई (स्वर्ग॰>घरै) नीसरह (स०प०फ० २।१>नीवरे) मनइ (खर्ग॰>मनै)। इस प्रकर के एक दो नहीं सैकड़ों प्रयोग मिन्नते हैं जिनमें उदृत्त स्वरों की सुरहा दिलाई पडती है। यह इन रचनाओं की प्राचीनता का एक सबत भमाण है। किन्तु हम इसे मूल प्रश्नि नहीं कह सकते क्योंकि उद्वृत स्तरों के स्थान पर सध्यक्षरों के प्रयोगों के उदाहरण भी कम नहीं हैं। बल्कि गणना करने पर सध्यक्षरों के ममोग हो ज्यादा मिन्ते हैं। नीचे कुछ इस प्रकार के प्रयोग उनके अनभूश रूपों के साथ दिये बाते हैं। ह्यानीयो (ल॰ प॰ क॰ ५८।२ < आनीयड) उपज्यो (गी॰ भा॰ ४१ < उपजड) औगुन (प॰ वे॰ <अउगुण <अवगुण) कैमासिंहें (रा॰ रु॰ ५ < महमासिंहें) की (स्व॰ < कड) सकै (इ० मं० ८ सकह) गन्यी (गो० भा० ४१ ८ गणड) चीपही (वे० प० ८ चडपई) चीगुनी (गी० भा० १३ < चउगुणी) चौक (म० क० २६५।१ < चउनक < चतुण्क) चिमेपी (प॰ वे॰ ३३ <चिनियत) दीवे (म॰ क॰ १२।२ <दीसह) नान्यो(प॰ वे॰ १० <नस्रत) पहिरी (छि॰ वा॰ १३५ <पहिरउ) धादि ।

§ २६४. स्वर सकोच नव्य ऋर्य भाषाओं ही एक मूच खन्यात्मक प्रश्नति मानी बाती है। प्राचीन बन में स्वरसकोच कई प्रकार से हुआ है।

(१) અ૩>૩

कुण (रा॰ स॰ ३६ < कडण < कवण) बहुराय (गी॰ भा॰ २६ < बाद्वराय

<यादनगय) दीउ (ह० ५० क० < दियउ)

(र) इस>ई।

असरी (ख्वे॰ या॰ २०१४ श्रद्धारिअ<आदारिक) झरनाई (२० मं॰ <अरनाइअ<आत्मनः + इत) करी (२० मं॰<करिय - श्वरति = इत) टोडो (त्र॰ प॰ इ॰ <िटिय< व्हेटिव = इट) मई (ह्वे।॰ या॰ < मस्अ § २६६ अकारण अनुनासिकता के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं I

आँतु (प्र॰ च॰ १३६<अतु प्रा॰ पँ॰<अषु) हॅंति हॅंति (प्र॰ च॰ ४०=√हत्त्) करोंदि (७०६ प्र॰ च॰√क) यहाँ दुक के भारण मांदि के वजन पर समयत करादि किया गया। चहुँदिति (प्र॰ च॰ १=<चत्रदिति, हश्रुति, <चतुर्दिशि) खाँत (हरि॰ पु॰<श्वास) पुँछि (१० पु॰√एच्छ) साँगी (प॰ वे॰ ५३ ८ सरे)।

\$ ९७० सम्पर्कन सातुनासिकता की प्रश्नि भी दिलाई पहती है। वर्गाय अनुनासिकों के रायों से या अनुस्तारित करों के प्राय में रहने वाठे स्वर भी सानुनासिक हो जाते हैं। उठीं व्यक्ति प्रकार में अनुनासिकता के विषय में विचार करते हुए दस प्रकार को साम्बर्क सानुनासिकता के करमें में बान चाहुन्या ने लिखा है कि उत्ति क्यांति की मागा में यह महत्ति बगाओं और विहारी के निक्ट दिलाई पडतो है, परिचमी दिन्दी के नहीं (देलिये, उत्तिच्यति स्वा) कीर विहारी के निक्ट प्रचान मानिक में बहुत से ऐसे उदाहरण मिनते हैं जिनमें सम्बर्कत सानुनासिकता उत्तिच्यति के मागा भी तरह ही दिलाई पडती है। उत्ति व्यक्ति में इस प्रकार के उदाहरों में निहाराई (१४९१२) भागत (१८१६) चिमार (१४९२०) ग्रारि दिल्प गर्द हैं। गीचे प्राचीन तक के बुख उदाहरण अनुस्तित किये आते हैं।

करों माद (दिरे० पु॰) तुम की (ख॰ रो॰<कड) परम आपणा (७० प॰ क॰ १३ < आपण) तुजण (खि॰ रा॰< १२४ < तुजण < दुजन) वज्जण (खि॰ रा॰< १२४ < तुजण < तुजन। वज्जण तुजण (प० रे॰ २६< कमल) क्षप्रति (गी॰ मा॰ २< अपनुः) तालिया (प॰ च॰ १८< पिछ) जाणायो (प० प० १८< जाणेपउ \sqrt जः) तुजर (प० च० १२८< इमारि) पाति (प० च० ४०२< ताण) पराण (प० च॰ ४०२< ताण) काणि (प० च० ४०२= कानि) पाति (प० च० ४०२< ताण) जाण (ए॰ पु॰ < तुजार जाप्ति (प० व० ४०२= कानि) पाति (प० च० ४०२< ताण) जाम (७० प० क॰ ६< ताज्य)

\$ २०१ पराना के अनुसार आप अनुनातिक धानि की तरह उच्चरित होते हैं। माहत और अपन्नस्त को प्रतन्त अनुसार हुस और दीर्घ दीनों हो समफे धाते थे। विरोध के मन में पतन्त अनुसार विरस्त को स्वानीक होनों मोने बाते थे (विराध के मन पे पतान्त अनुसार विरस्त के अनुसार के पतान्त 'उ', 'कुँ' या 'ह' इस्पादि के अनुसार आप हस्त उच्चरित होते थे। आ तेतीतीरी धा बहना है के पदान्त अनुसार अपन्य सार्य होते थे। आ तेतीतीरी धा बहना है के पदान्त अनुसार अपन्नस्त अनुसार अपन्नस्त अनुसार अपन्नस्त अनुसार अपन्य होते थे। अनुनातिक में बहक गया था (विषय पुगानी राजस्थानी है २०) आचीन तमभाया को अपन्नस्त की यह प्रश्नित और भी विरक्षित रूप में प्रामु दुई। यहाँ परान्त अनुसार किया हो श्री अनुनातिक हैं। इसीलिय मान, हन्हें चन्न विदु से व्यक्त किया बात है। हस्तोति में चहाति हु हो दिमा गया है, पर थे है अनुनातिक ही। व्याम

त्रियउ (य॰ च॰ १३७) इराउ, परठ (य॰ च॰ १३८) खततरिठ (य॰ च॰ ७०५) पाऊ (र॰ म॰) ल्वहुँ (स॰ रो॰) मनात्रें (तै॰ प०) हाहि (तै॰ प०) साई (प॰वै॰ २०) तैर्हें (पीं॰ मा॰ २०) सपरो, करों (गी॰ मा॰ ५८) इस प्रकार के पदान्त कतुस्वार के अनुना सिंह की तरह उच्चरित होने ताते बहुतेरे उदाहरण इन रचनाओं में मरे पड़े हैं। § २६६ अकारण अनुनासिकता के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं I

औतु (१० च० १३६ < अनु प्रा० पैं० < अधु) हैं सि हँसि (प्र० च० ४०००√ हस्) करों हैं (७०६ प्र० च०√क्क) यहाँ हुइ के भारण मांदि के वयन पर समयन जगहि किया गया। वहाँदिसि (१० च० १८ < चार्यसिक, हमुति, < चार्यदिश) धाँस (६१०० पु० < १०००) पेंकि (१० पु०√ इन्छ) हासी (४० वे० ५३ < सपे)।

§ २७० सम्पर्कन सानुनासिकता की म्रष्ट्रांच मी दिलाई पडती है। वर्गांच अनुनासिकां के राशें से या अनुनासिक हो ने ताम में रहने वाले हरा भी सानुनासिक हो जाते हैं। उत्ति व्यक्ति प्रकाण में अनुनासिकता के विषय में विचार करते हुए दस प्रकार की सम्बन्ध सानुनासिकता के सदमें में डा० चाहुज्या ने लिसा है कि उत्ति व्यक्ति की मामा में यह महत्त्व बागड़ी और विहारी के निक्क दिलाई पढती है, पश्चिमी हिन्दी के नहीं (देखिये, उत्तिव्यक्ति व्यक्ति है ११) किन्तु मानोज ब्रम्माय में वह हो देखे उदाहरण मिण्वे हैं विनमें सम्पर्के सानुनासिकता उत्तिव्यक्ति को मामा की तरह ही दिलाई पडती है। उत्ति व्यक्ति में इस मकार के उदाहरणा में विद्यक्ति है (१४) १२) मामा (१६) १६ १० विषय (१४) १२०) मादि दिष्ट गए. हैं। भोचे प्राचीन स्वक्त के बुद्ध वटाहरणा उत्तिक्ष्ति की जाते हैं।

महाँ माइ (इंरि॰ पु॰) तुम को (स्व॰ रो॰ <कउ) परम आपणा (ह॰ प॰ क॰ १३ < आपण) सुवाण (हि॰ वा॰ < १२४ < सुवाण < सुक्रम) म्वलिय (प॰ वे॰ २६ < कमल) स्वति (गी० मा॰ २ < अपुरा) चालिया (प॰ च॰ १५ < पिन्ह) बाएपारो (प्र॰ च॰ १५ < पिन्ह) बाएपारो (प्र० च॰ १२० < १५ < माण) पराण (प० च॰ १२० < १५ < माण) पराण (प० च॰ ४०२ < चालो प्राण पराण (प० च॰ ४०२ < चालो प्रणाव (१० च॰ ४०२ < चालो प्रणाव (१० प० ४०२ < उपाय) माण (ए० प० ४०२ < उपाय) माण (ए० प० ४०२ < उपाय) माण (ए० प० ४०२ < प्रणाव) माण (ए० प० ४०२ < उपाय) माण (ए० प० ४०२ < उपाय) माण (ए० प० ४०२ < उपाय) ।

§ २७१ पदान्त के अनुस्तार आय अनुनासिक प्यनि की तरह उच्चरित हाते हैं। ग्राहत और अपग्रस्त काल में पटान्त अनुस्तार इस और श्रीय दोनों ही सममे जाते थे। पिरोल के तत से पटान्त अनुस्तार तिक्रम से अनुस्तार और अनुनासिक दोनों माने जाते थे (दिल्य में के १ दिल्य) देमचन्द्र के दोहों में भी अपग्रस के पादान्त 'उ', 'हुँ' या 'द' इस्लारि में अनुनास प्राय हल उच्चरित होते थे। हा॰ तेसीतीरों का बहना है कि पदान्त अनुस्तार अपग्रस में (हैमच ट्र) हो अनुनासिक में बहल गया था (दिल्य पुरानी राजप्यानी है २०) प्राचीन उपप्रस्ता के अनुनासिक में बहल गया था (दिल्य पुरानी राजप्यानी है २०) प्राचीन उपप्रस्ता के अनुनासिक में बहल गया था (दिल्य पुरानी राजप्यानी है १०) प्राचीन उपप्रस्ता के अनुनासिक हैं। इसीलिए प्राय, इन्हें चन्द्र बिद्ध से व्यन्त किया जाता है। हस्तोलों में चन्नविद्ध हो दे पा प्रचान नहीं था, इसलिए पहाँ विद्ध हो दिया गया है, पर थे है अनुनासिक हो। यथा—

बियउ (प्र॰ च॰ १३७) इस्ड, परड (प्र॰ च॰ १३८) ग्रवतिरंड (प्र० च॰ ७०५) पाऊ (रॅ० म०) ल्व्हूँ (स० रो॰) मनावें (वै॰ प०) हाहि (वै॰ प०) ताई (प०वे० २०) तैर्से (गी॰ पा॰ १०) सपरों, करों (गी॰ पा॰ ५८०) हस प्रवार के पदाना अनुस्वार के अनुना सिक की तरह उन्परित होने वाले कृतेरे उदाहरण इन रचनाओं में मरे पड़े हैं। τ ट \rightarrow स्ती (प्र० च० १३६ 'स्तरी) बोरि (प्र० च० ७०२ बोटि ७ प्र० च० ३२) पर्यो (१० पु० पड्यो) बीरा (वै० प०<बीडा<बीटिंग) बोरे (वै० प० बोहे) योरी (वै० प०<बीडा<बीटिंग) बोरे (वै० प० बोहे) योरी (वै० प०<बीडा<सेटिं)।

ड र—बाहुडि (इ० पु॰ ६ बहुरि, व्हि॰ या॰ १२८) तोडइ (इ० पु॰ तोरइ) पाडइ (इ० पु॰ पारइ) पडिला (प॰ वे॰ ४८ परिला) ।

हर—बरे (म॰ के॰ २ स्वत्रः) श्वर (म॰ क॰ ४<शवल<शवल्यान्मः) फ्रास्तु(म॰ क॰ ५<श्चाल्स्) हैवरे (स्व॰ शे॰ ३<िहमाल्य) भुवारा (म॰ शे॰ ५<्रपण्डे) बाह्र (गी॰ मा॰ २५<वाल) स्ववाह्र (गी॰ मा॰ ३६<स्वाल<श्चिपाल)।

ल कार रूपान्तर प्रायः ब्रज की सभी बोलियों में पाया जाता है (देखिए ब्रजभाषा § १०६)।

§ २७६ न्ह, म्ह और ल्ह इन तीन महामाण ध्वनियों वा प्रयोग होने लगा था । न्ह—दीन्हेड (ह० पु०<दिणाउ हेम० ४)४२०) न्हाले (प० वे० ६७)

म्ह-नगृह (हरि॰ पु॰ २६ ८लझ) ल्ह-जल्हास (गी॰ मा॰ २२ ८जल्जस) मेल्है (ह॰ पु॰ ८मेल्ल्ड् हेम० ४४४३०

होडना) यहह (पं॰ वे॰ इह) इन महाप्राण प्यनियों ना प्रयोग परवर्षों अपभेश नाल से ही निसी न निसी रूप में

हैं न नहामण ब्यान्या मा प्रयंता प्रयंती अपमया बाल से ही किसी न हिसी हल में शुरू हो गया या (देखिये हुँ ५३) किन्तु प्राचीन बनामाया में हनका बहुल प्रयोग नहीं मिण्डता। मध्यमालीन और पारवी जब में अलब्बता इनका मुख्य प्रयोग हुआ है। दश्यी ग्रावीक उक्ति व्यक्ति महाया में भी ये व्यक्तियाँ मिल्ली हैं (द्रष्टव्य एटडी हुेश्) मिलांखी इन प्यक्तियों को संयुक्त व्यक्ति नहीं बल्कि एक व्यक्ति मानते हैं। (ए प्रब ग्रामफ, इन्ट्रोडक्शन ए० १८)।

§ २७७ मध्यम् क कई स्थलो पर ग हो गया है।

भनेग (१० ड॰ ३६८ अनेक) श्युणीस (४० प० क० ७२११ ८६कुणीस ८एकोन विद्यात) उपपार (डी॰ वा॰ ८उपपार) नातिग (पं॰ वे॰ ७१ ८ नातिक ८ मार्तिक) प्राय अग्र (६० पु॰ ८ फिक् फिक्) प्रगट (१० क० ग० १४ ८ मक्ट) शुगति (डी॰ वा॰ रेटांध ८ प्रक्ति) सर्गत (१० च० १६८ सहस्त्र)।

§ २७:: व ना रूपान्तर प्रायः दो प्रकार से होता है।

च<छ

नञ्जन (प्र० च० ११८ नत्त्र) जन्छ (प्र० च० १५८यद्) छुनी (प्र० च० ४०८ ८ क्षित्र) पत्तरेख (प्र० च० ४१०११८ प्रत्यव्)

च<स

स्रतिय (हि॰ बा॰ ३१८ चृत्रिय) खान्ति (हि॰ वा॰ १३१८ झान्ति) स्वयारण (प वे॰ १६८८ स्वयास) स्व (म॰ क॰ ७११८ यह) क्रवनोती (क॰ प॰ म॰ ६३११ ८हमणको । उहा रान्ते में स्, साय स्व भी मिटता है निन्तु वहीं भी सु का उधारस स हो होता है।

§ २७६. त ना ज स्वान्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है— सर्वेड (प्र॰ २०१६ < मरकत) त्व ना च स्वान्तर अवभेश में होता या । चर्चकुसह र ट—सरी (प्र० च० १३६ 'स्तडी) जोरि (प्र० च० ७०२ जोडि ७ प्र० च० ३२) पर्यो (ह० पु० पडयो) बीरे (वै० प० चोडे) घोरो (वे० प० चोडे के प्रें प्रति चे प्रति च प्रति चे प्रति च

ड र-- बहडि (ह० पु० ६ बहुरि, छि० वा० १२८) तोडह (ह० पु० तोरह) पाडह

(इ० पु ० पारइ) पडिखा (प० वे० ४ <परिखा) ।

छ र—दौ (म॰ क॰ २ ब्लब्ह) शबर (म॰ क॰ ४८ शवल ८राजहुल) प्रारम् (म॰ क॰ ७८ ब्रालस्य) हैकारे (स्व॰ रो॰ ३८ हिमाल्य) भुवारा (म्व० रो० ५८ पूपाल) आरु (गी॰ मा॰ २५८ जाल) रखवारु (गी॰ मा॰ ३६८ रखपाल ८रत्वपाल)।

ल नार रूपान्तर प्रायः बन की सभी बोळियो में पाया जाता है (देखिए ब्रजभापा

1 (30) §

§ २७६ न्द्र, म्ह और ल्ड इन तीन महाप्राण ध्वनियों ना प्रयोग होने लगा या । न्द्र—दीन्हेउ (इ॰ पु०<दिष्णाउ हेम० ४।४३०) न्हाले (प० वे० ६७)

हर-उहहास (गी० मा० २२ < उहरास) मेहरै (ह० पु० < मेहल इहम० ४१४३० छोडना) गहर (गॅ० वे० ६६)

इन महायाण ध्वनियों मा प्रयोग परवर्ती अनभ्रश काल से ही क्लिशी न क्लिसी हम में गुरू हो गया था (देखिने हुँ थ.इ) किन्तु प्राचीन बडमाया में इनका चतुळ प्रयोग नहीं मिनता। गणकात्रीन और परवर्ता बत्र में अञ्चला हनका प्रचुर प्रयंग हुआ है। १२वीं शती के उक्ति व्यक्ति प्रकुष्ण में भी वे धानितीं मिनती हैं (हक्ष्य प्रदर्श हिन्दी) मिर्बाली हैं प्रधानयों के संवुक्त धानि नहीं बहिक एक धानि मानते हैं। (द प्रव जामा, इन्होंक्सरान पूर रेट)।

६२७७ मध्यम क कई स्थलों पर म हो गया है।

अनेत (१० ड॰ १६८अनेक) द्युणीत (४० प० फ० ७२११८६कुणीत८एकोन विग्रति) उपपार (क्षी० वा० ४उपपार) नातित (४० दे० ७१८ चातिक८वार्तिक) प्रुग्न अग्र (१० पु०८ फिक् फिक्) प्रगट (१० ड० ग० १४८ मक्ट) सुग्रति (क्षी० वा० १८।५ ८पुकि) मर्गत्र (४० प० १६८ महत्त्व)।

§ २७=. च ना रूपान्तर प्रायः दो प्रकार से होता है।

च<ख

नहुत्र (प्र० च०११८ नदृत्र) जल्छ (प्र० च०१५८ यद्) ह्रुती (प्र० च०४०८ ८ इतिय) पतरिह्य (प्र० च०४१०११८ प्रत्यद्व)

च<ख

स्रतिय (द्वि॰ ना॰ ११ ८ सृतिय) खान्ति (द्वि॰ ना॰ १३१ ८ झान्ति) स्ख्यारण (२० ने॰ १६८ ८ स्वास्त) रख (म॰ क॰ धार ४ इड) उसनोती (क॰ प॰ क॰ ६३।१ ८ स्थण्यन्ती । कुछ रान्तों में स्नु ना य रूप भी मिख्ता है किन्तु नहीं भी स्नु का उचारण स हो होता है।

§ २७६. त का ज स्पान्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

मर्गज (प्र॰ च॰ १६ < मरकत) ल का च रुपान्तर अन्त्रश्च में होता था । चर्त्रकुसह

हु २,=३, ध्व का फ हमान्तर-अपभ्रंग की तरह ही ध्य का फ हमान्तर हो गया है। आर्क्वर्य तो यह है कि ध्य>फ को मुम्बित रखनेवाले तद्भग ग्रन्द वाद की ब्रवभागा में कई मखोबर उत्तित ना माने बावस होड़ दिये गए किन्तु आरिफ कब में इस प्रकार के अगरिवित स्वस् प्रभाग में आते रहे हैं। उदाहरण के लिए भावहिं (प० च० ७०६ <ध्यायति, तुलनीय हेम ४१४४०) जुफ (सजा म० क० २<जुम्कर (दुम्म)।

§ २८४ मध्यगटनाड मे परिवर्तन—

सोडइ (ह० पराण<*नेटति पिशेल ६ ४८६)

जड़े (प्र० च० १६ < अस्ति)

सक्हु (छी वा० १० < सकट) घडन (छी० वा० १३ < घट)

यह बहुत पुराना नियम है, जो प्राचीनकाल से चला आ रहा है (हेम० दाशश्रद्ध)।

§ २.=५. सः >छ : सः मः च्छ्र स्वात्तर अपभ्रंश में होता था । आरभिक व्रव में च् भी द्वत्त हो गया । इस प्रचार सः >छ्ड के रूपान्तर मिल्ते हैं ! जो एक प्रदम आगे के रूप हैं । उद्युग (इ॰ पुराण<उच्छुग<उत्सग) मिछ्र (प॰ वे॰ १६<मच्छ<मस्स) ।

§ २=६. स्त>य-परिवर्तन भी सलस्य है ।

शुत (गी॰ भा॰ ६<स्तुति) हथनापुर (गी॰ भा॰ ७<हरितनापुर)

वर्ण-विपर्यय

§ २.५७ वर्ण विषयंप की प्रश्नुचिन य आर्यभाषाओं में पाई बाती है। जैसे मध्यक्राठीन प्राङ्कत अपभ्रस में भी इस्तर किंचित् रूप दिलाई पडता है। डा॰ तैसीतीरी ने वर्ण विषयंप के उदार्रणों के। चार वर्षों में बाटा है। यह बगाकरण काजी हृद तक पूर्ण कहा जा सकता है। मात्र विषयंष, अनुनासिक विषयंप, स्टर विषयंप और व्यवन विषयंप।

मात्रा विपर्यय

तवोर (गी० मा० २१ < ताम्बूळ) सहू (ठ० प० क० ३ < अप० साह् < शश्वत् , पिग्रेल § ६४) हुरता (गी० मा० ५६ < कैरस)

अनुनासिक विपर्यय

कॅबलिय (व॰ वे॰ २५८कॉल८कमल) मॅदर (व॰ वे॰ २५८मवॅर८भ्रमर) कुॅबर (इ॰ पु॰८कुवॉर८कुमार) ऑक्बार (इ॰ पुगण८अक्वॉर८अकमाल)

स्वर विपर्यय

- (१) परीछति (स्व॰ पर्घ॰ <परीक्षित)
 - (२) सिमरों (गी॰ भा॰ < समिरडँ < स्पृ)
 - (३) पचावनतु (गी० भा० ४३ < पामजन्य)

§ २८३. ध्य का फ ल्यान्तर-अग्नअग्र की तरह ही ध्य का फ ल्यान्तर हो गया है। आर्च्य तो यह है कि ध्य>फ को मुस्तिव रखनेवाले तर्मच शब्द वाद की ब्रजभागा में कई सरलीय उचित न माने वाकर छोड़ दिये गए किन्तु आरमिक ब्रज में इस प्रकार ने अगरियित शब्द प्रयोग में आते रहे हैं। उदाहरण के लिए भ्यावहिं (म० च० ७०६ <ध्यायति, तुलनीय हेम ४१४४०) युफ्त (त्रता न० क० २ <्डाम्फ <ुम्प्य)।

§ २ दश्च मध्यगटकाड मे परिवर्तन—

तोडह (ह॰ पुराण<ॐओरति पिशेल 🛭 ४८६)

जड़े (प्र० च० १६ < अधित)

सक्डु (छो बा॰ १० < सक्ट) घडन (छो॰ वा॰ १३ < घट)

यह बहुत पुराना नियम है, जो प्राचीनकाल से चला आ रहा है (हेम॰ वाशास्ट्र)।

§ २.=४. सः>छः : सः च ब्लु स्वात्तर अपभ्रंस में होता था। आरिमक व्रव में व् भी छत्त हो गया। इस प्रचार सः>छुं के रूपान्तर मिलते हैं। वो एक कदम आगे के रूप हैं। उक्षम (इ० पुराण<उच्छा<उत्सम) मिल्लु (प० वे० १६<मच्छ<मस्स)।

§ २८६. सा>य-परिवर्तन भी सलस्य है।

थुत (गी॰ भा॰ ६ < खति) इथनापुर (गी॰ भा॰ ७ < इस्तिनापुर)

वर्ण-विपर्यय

§ २.च्छ वर्ण विषर्मय को पहाँचे न य आर्यभाषाओं में पाई वाती है। जैसे मध्यसाधीन प्राकृत अपक्षरा में भी इस्तर किंचित् रूप दिखाई पडता है। डाठ तेसीतीरी ने वर्ण विषयंप के उदाहरणों को चार वर्गों में बाटा है। यह बगाकरण काणी हद तक पूर्ण कहा वा सकता है। मात्रा विषयंब, अनुनासिक विषयंय, स्टर निषयंय और व्यवन विषयंय।

मात्रा विपर्यय

तदोर (गी० भा० २१ < ताम्बूल)

सहू (स॰ प॰ क॰ ३<अप॰ साहू<शश्वत् , पिशेल § ६४)

बुरवा (गी० भा० ५६<कौरव)

अनुनासिक विवर्षय

कॅवलिय (प० वे० २५ < कर्नेल < कमल)

भॅवर (प॰ वे॰ २५ < भवँर < भ्रमर)

कुँवर (ह० पु०<कुयाँर<कुमार) अँनवार (ह० पुराण<अनवाँर<अक्रमाल)

स्वर विचर्यय

- (१) परीकृति (स्व॰ पर्घ॰ <परीक्षित)
- (२) सिमरों (गी॰ भा॰ <समिरडँ <स्मृ) , (३) पचाजनतु (गी॰ भा॰ ४३ <पाचजन्य)

- (३) इद्रिन ऑगुन भरिया (प० वे॰ ६३) इन्द्रिया श्रोगुन भरी है।
- (४) सरानि पूरन लागे (गी॰ भा॰ ४५) सखी से भरने लगे।

विभक्ति

६२.६ अधिकाशत परवता बन की तरह आर धिक बल में भी निर्विमति क प्रयोग पाये वाते हैं। किना जनभाषा में सविमक्तिक पद भी सरकित हैं। यह ब्रजभाषा की अपनी विशेषता है. कि उसमें खडी बोटी की तरह चेवट परसमों का ही नहीं विमक्तियों के भी प्रयोग वर्चे रहे । कर्ता और कर्म में उपर्युक्त नि या न प्रत्यय विभक्ति चिद्ध का भी कार्य परता है ।

क्यें हिं

- (१) वि हिं चरावित (छि॰ वार्ता १४१) कर्मे॰ बहुवचन
- (२) कैमार्शह अहमिति होइ (रा॰ वार्ता ५) कर्म, एक वचन
- (३) ति हरि कियो प्रणाम (इ० प्र० ३२) कर्म बहुबद्धन

करण हिं'एं

- (१) दोउ पओरें (म॰ च॰ ४०६) मकार से
- (२) चितौरे दीनी पीठ कर्मशान्य, छि० वार्तां १३१, चितौरे से पीट दी गई।
- (३) अर्थच द्र तिर्दे साथिउ प्र० च० ४०२ उसने साथा

प्रमा 'ह

- (१) वणह मस्तारि (प्र० च० १३७)
- (२) पदमद तणउ (प० च० १०)

वधिकरण—'हि', 'ह', ऐ

क्रक्लेतिह (स्व० ३) मनिई लगाई (छि॰ वाता १२८)

मनि च्यते (प॰ वे॰ २८) सरोवरि (प॰ वे॰ ३२)

राविह (ह॰ पु॰) आगरे (प्र॰ च॰ ७०२) घरहि अउतरित्र (प्र॰ च॰ ७०५) सर्वनाम

§ २९२ उत्तमपुरुष—प्राचीन बच म उत्तम पुरुष सर्वनाम में दोनों रूप 'में' और 'हाँ' पाये जाते हैं। कुछ पुराने छेखों में अपभ्रश का इड रूप भी सुरक्षित है, जैसे प्रयुक्त चरित (७०२) तथापि प्रधानता इंड के विकसित रूप हों की है। महें का प्रयोग भी कई स्थानों पर हुआ है।

- (१) हउ मतिहीन म लावउ सारि (प्र० च० ७०२)
- (२) में जुक्या यह कही (गी॰ मा॰ ३) (३) हीं न घाउ घालीं (गी॰ भा॰ ५६)
- (v) फ़रमान महँ दीउगा (रा॰ वार्ता ve)
- (५) पूर्वेज म महँ बाइउँ कियउ (४० च० १३६)
- (६) कि महँ पुरुष विद्योही नारि (प्र० च० १३७)

यहाँ हउ, ही, भइ और मैं इन चारी रूपों के उदाहरण दिये गए हैं। भाचीन क्षत्र मापा को आरंभिक रचनाओं में व्यवप्रश रूप इंड (हेम॰ ४१३३८) और मह (हेम०४१३३०) भी वर्तमान ये हिन्तु परवता रचनाकां में इनके विकसित रूप हो और में ही प्राप्त होते हैं। ₹₹

धारसिक वजभाषा ₹88

- (३) इद्रिन ऑगुन भरिया (प० वे० ६३) इन्द्रिया श्रोगुन भरी है।
- (४) सरानि परन लागे (गी॰ भा॰ ४५) सखी से भरने लगे।

विभक्ति

§ २.६१ अधिकाशत परवता ब्रज की तरह आर भिक ब्रज में भी निर्विभक्ति क प्रयोग पाये वाते हैं। किन्तु बनभाषा में सविमक्तिक पद भी पुरवित हैं। यह बनभाषा की अपनी विशेषता है, कि उसमें खडी बोली की तरह देवल परसर्गों का ही नहीं विमक्तियों के भी प्रयोग बचे रहे। कर्ता और कर्म में उपर्युक्त निया न प्रत्यय विभक्ति चिद्व का भी कार्य करता है।

क्सें हिं

- (१) ति हिं चरावति (छि॰ वार्ता १४१) कर्मे व बहुवचन
 - (२) कैमासर्द अहमिति होइ (रा० वार्ता ५) कर्म, एक वचन
- (३) ति हहिं कियो प्रणाम (६० प० ३२) कर्म बहवचन करण हिं' ए'

(१) दोउ पओरें (प्र॰ च॰ ४०६) मकार से

- (र) निवौरे दीनी पीठ कर्मवान्य, छि० बार्वा० १३१, विवौरे से पीठ दी गई।
- (३) अर्थच द्र तिहिं साथिउ प्र॰ च॰ ४०२ उसने साथा पक्षा 'द्र'

(१) वणह मभारि (प्र॰ च॰ १३७)

(२) पदमद तणउ (प० च० १०)

अधिकरण—'हि', 'हु', हें

कुरखेत(६ (स० ३) मनहिं लगाई (छि॰ वाता १२८)

मनि च्यते (१० वे० २८) सरोनरि (१० वे० ३२) रावलि (इ० पु०) आगरे (प० च० ७०२) धरहि आतरित (प० च० ७०५) सर्वनाम

🖟 २९२ उत्तमपुरुष-पाचीन बज म उत्तम पुरुष सर्वनाम में दोनों रूप 'में' और 'हैं।' पाये जाते हैं। कुछ पुराने लेखों में अपभ्रश का इड रूप भी सुरक्ति है, जैसे प्रयुक्त

चिति (७०२) तथापि प्रधानता हउ के विकसित रूप हों की है। महँ का प्रयोग भी कई स्थानों पर हुआ है।

- (१) इउ मतिहीन म लावड खारि (१० च० ७०२)
- (२) में जु कथा यह कही (गी॰ मा॰ ३) (३) हों न घाउ घानों (गी॰ गा॰ ५६)
- (४) फ़रमान मई दीउगा (स॰ वार्ता ४६)
- (५) पूर्वज म महँ बाहर कियाउ (म॰ च॰ १३६) (६) कि मईँ पुरुष विद्वोही नारि (प्र० च० १३७)

यहाँ हउ, ही, सह और में इन चारों स्पो के उदाहरण दिये गए हैं। प्राचीन ब्रज यापा को आरमिक रचनाओं में अपभ्रश रूप इंड (हेम० ४।३३८) और मह (हेम० ४।३३०) भी वर्तमान ये हिन्तु परवता रचनात्र्यां में इन हे विकतित रूप ही और में ही मात होते हैं। ३२

में है सहयु हैं (देखिये पुरानी राजस्थानी ह =>) मेरा आदि की ब्युराति डा॰ घीरेन्द्रवर्मी प्रकत महत्रेरो रूप से सानते हैं।

§ २६४. बहुवचन के हम, हमारी आदि रूप मी मिटते हैं ।

- (१) इम तुम बयो नरायन देव (इ॰ प॰)
- (२) इमार राजा पै वस दवाउ (रा॰ वार्ता॰ ४)
- (३) ए सब सुद्धद हमारे देव (गी० मा० ४८)
- (४) इन मारै इमझें पल कीन (गी॰ भा॰ ५६)

'हम' उत्तम पुरुष बहुबचन ना मूल रूप है। हमारी, हमार, हमारे आदि इसी के विष्टत स्थान्तर हैं। हम वा सम्यव प्राप्टत अम्हे<स०≢अप्मे से किया बाता है। हमारी आदि रूर महरारो<स॰ *अस्तत्वार्यरू. से विकसित हो सकते हैं। (देखिये तेसीतोरी पुरानी राबस्थानी (८४) ।

§ २६६. मध्यमपुरुष

इस सर्वनाम के रूप भाषः उत्तम पुरुष के सर्पनाम रूपों की पद्धति पर ही होते हैं। गून रुप तुम, तुँ हैं जो अपग्रस के तुरुँ (हेम० ४।३३०)<सहत त्वम् से निख्त हुआ है।

- (१) अब यह राज तात तुम्ह लेहू (स्वर्गारीहण ५)
- (२) बहु रालगहारा तूँ दई (छी॰ वा॰ ४१६)
- (३) द्वम जनि बीर घरी सन्देह (स्व० पर्म०)
- (४) वेहि ठा तुम्ह वेंद होइ न हारि (गी० भा० ५२)
- तो, तोहि आदि विकारी रूपों के उदाहरण इस प्रकार हैं—
 - (१) वो दिणु अवरन को सरण (छी॰ वा॰ शह) (२) तो विन श्रीर न कोऊ मेरी (६० म०)

 - (३) तो सम भाही छत्री कमनूँ (४० च० ४०८)
 - (४) वोहिं रिनु मो बग पाटट मयौ (इ॰ पुराण)
 - (प) वेहि विनु नयन दलइ को नीर (इ॰ पुरास्)

ये उत्तम पुरुष के मो, मोहि के समानान्तर रूप हैं। तो की व्युत्मित अपभ्रश < तुह <*तुष्मे से समब है। (देखिये हि॰ मापा का इतिहास § २.६१) मूलतः ये भो पत्नी के ही विकारी रूप हैं। 'तो' सर्वनाम पद्मी में भी प्रयुक्त होता है। तो मन की बानत नहीं। आदि।

सम्बन्धो-सम्बन्ध विकारी रूप

- (१) वेरै सनिधान जो रहै (गी॰ मा॰ ६४)
- (२) न्याय गहअत्तग तेरउ (छी॰ वा॰ १७) (३) माय तुम्हारे चलिहो राई (स्व॰ प॰)
- (४) निस दिन सुभिरन करत तिहारो (६० म०)
- डा॰ घीरेन्द्र वर्मा, इन्दी भाषा का इतिहास § २६२

में के सहग्र हैं (देखिने पुरानी राजस्थानी § ८३) मेरा आदि की ब्युटरांत डा॰ चीरेन्द्रवर्मा प्राकृत महनेरी रूप ने मानते हैं।

§ २६४. बहुवचन के हम, हमारी आदि रूप भी मिटते हैं ।

- (१) इम तम जयो नरायन देव (इ० प्०)
- (२) हमार राजा पै वस दयाउ (रा॰ बार्ता॰ ४)
- (३) प सब मुहद हमारे देव (गी॰ मा॰ ४८) (४) इन मारे इमकों फल कीन (गी॰ मा॰ ५६)

ंद्रम' उत्तम पुरुष बरुषयन ना मूछ रूप है। दमारी, दमार, दमारे आदि दमी के विद्वा कालार हैं। दम ना सम्मय माहत अपहें <त्वच्याची है। दम ना सम्मय माहत अपहें <त्वच्याची है। दिसीयी आदि ना महत्तारी <त्व चेश्वरतक्ष्मी है। (देखिये तेमीतोरी पुरानी प्रावस्थानी के कर)।

§ २६६. मध्यमपुरुप

इस स्वेनाम के रूप प्रायः उत्तम पुरुष के सर्वनाम-रूपी की पद्धति पर ही होते हैं। मून रूप तुम, हैं हैं वो अपग्रश के तुर्हें (हेम० ४१३३०) < सस्टत त्वम् से निवृत हुआ है।

- (१) अन यह राव तात तुग्द लेह (खगाँरोहण ५)
 - (२) बहु गलगहारा तें दई (छी॰ वा॰ ४)६)
 - (३) द्रम बनि बीर घरी सन्देह (स्व॰ पर्न॰)
- (४) जेहि ठा तुम्ह तेंह होइ न हारि (गी० मा० ५२)
- तो, तोहिं आदि विकारी रूपों के उदाइरण इस प्रकार हैं
 - (१) तो दिणु अवरन को सरण (छी० वा० ३।६)
 - (२) वो विनु ग्रौर न कोऊ मेरी (६० म०)
 - (३) तो सम नाही छुत्री कमनूँ (प्र॰ च॰ ४०५)
 - (४) तोहि निनु मा जय पालट मयौ (इ॰ पुराण)
 - (५) ते हि विनु नयन दलइ की नीर (इ॰ पुराख)

ये उदम पुरा के मो, मोहि के समानातर रूप हैं। तो की खुतारि अपक्षश ट्राष्ट्र < मैदाने से समय है। (देखिये हि॰ भाषा चा इतिहास § रहर) मूल्यः ये भी पत्री के ही निक्सों रूप हैं। 'तो' सर्वनाम पत्री में मी प्रपुत्त होता है। तो मन की बानत नहीं। आदि।

सम्बन्धी-सम्बन्ध विकारी रूप

- (१) तेरै सनिधान जो रहे (गी० मा० ६४)
- (र) न्याय गरअसण तेरउ (छी॰ वा॰ १७)
- (३) साय तुम्हारे चल्लिहो राई (स्व॰ प॰) (४) निस दिन सुमिरन करत तिहारो (६० म॰)
- का॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास § २६२

- (२) तेइ घणी सही तिस भूषा (प० वे० ५)
- (३) ते सकत सहिल समोपी (प॰ वे॰ ६४)

तेइ सस्तृत तथि*>तहि>तइ>तेइ का रूपातर हो सकता है (चाटुज्या, उक्ति व्यक्ति (६०) तिहि तिह वा ही रूप है।

६ २६६ ता, वाको आदि विकारी रूप—

- (१) ताको पाप सैल सम बाई (स्व० रो०)
 - (२) ताओं रूप न सकी बखानि (वै० पचीसी ३)
- (३) सा मानिक सुत सुत को नद (बै॰ प॰) (४) ता घर भान महामह तिसै (गी० भा० ७)

इन रूपों में 'ता' व्रजमापा का प्रसिद्ध साधित रूप है जो पित मित्र परसर्गों के साथ कई कारकों में प्रयुत्त होता है। वैसे परसर्ग-रहित रूप से यह मुख्त नहीं में ही प्रयुक्त होता है। पद्यी ताह (अपभाष) से सनुचित होनर ता बना है (उक्ति व्यक्ति § ६३)।

३०० तासु, तिसी, तिहि, तही, वाही श्रादि सम्बन्ध संबधी विकारी रूर-

- (१) मरि नागद मह चित्रो तिसी (द्वि० वार्ता० १३५)
- (२) तिह नेवर सुनि फेरी दोठि (छि॰ वा॰ १३१)
- (३) नारद गिरा गी तिहि ढाई (प्र॰ च॰ २६)
 - (४) ताही को भावे वैराय (गी॰ भा॰ २२)
- (५) लिखत ताहि मान गुन ताहि (गी॰ मा॰ २०)
- (६) तिस कर अन्त कोइ नहिं छहुई (प० च० १) (७) तास ची हर नहिं कोई (छी० वा० १)

स॰ तस्य>अप॰ तरस>तमु>तामु । तिसी, तामु का ही स्त्रीलिंग रूप है जो मध्य वालीन ई प्रत्यय से बनाया सवा ।

§ ३६१ यहुवचन ते, तिन्ह आदि

- (१) ते सुरनर घणा विगृता (प० वे० १२)
- (२) ति इ मुनिष जनम विगृते (प० वे० २४)
- (३) बुटिल वचन तिन कहे यहूत (गी० भा० ३४)
- . (४) सास सप्तर ते आहि अपार (गी० भा० ५४)

ति इ और तिन रूप मूलत वर्तुवरण वे प्राचीन तेण के विकार है। डा॰ चाटुज्यां इसकी ब्युलित ते मध्यकाळीन तेणम् + हि विमित्त से मानते हैं (उत्ति व्यक्ति ह ६७) ते संस्कृत के प्राचीन ते से सबद है।

विकारी रूप---

- (१) ति इहि चरावति वाँइ उचाइ (छि॰ वार्ता १४२) कर्म
 - (२) तें केसे वेंबिए सम्राम (गी० भा० ५४) कर्म
- (३) तिन समान दूजो नहिं आन (गो० मा० ३०) करण (s) तिन की शत सु सज़य भनै (गी० भा० ३२) सम्बन्ध

- (२) तेह घणी सही तिस भूषा (प० वे० ५)
- (३) ते मुकृत सलिल समोयी (१० वे० ६४)

तेइ सरकृत तथि*>तिह्र>तेइ का रूपातर हो सकता है (चाटुच्या, उधि व्यक्ति § ६.) तिहि तहि का ही रूप है।

६ २६६ ता. ताको आदि विकारी रूप-

- (१) ताको पाप सैल सम बाई (स्व० रो०)
- (२) ताकों रूप न सको बलानि (वै० पचीसी ३)
- (३) ता मानिक सत सत की नद (वै० प०)
- (v) ता घर भान महामद विसे (गी॰ भा॰ ७)

इन रूपों में 'ता' ब्रजभाषा का प्रसिद्ध साधित रूप है जो भित्र भित्र परसर्गों के साथ क्ट्रं कारकों में प्रयुक्त होता है। वैसे परसर्ग-दित रूप से यह मूळत पछी में ही प्रयुक्त होता है। पश्ची ताइ (अपस्रश) से सदुचित होकर ता बना है (उक्ति व्यक्ति § ६३)।

३०० तासु, तिसी, विहि, तही, ताही त्रादि सम्बन्ध संवधी विकारी रूप-

- (१) नरि नागद मह चित्रो तिसी (द्वि॰ वार्ता॰ १३५)
- (२) विह नेवर सनि फेरी दीडि (छि० वा० १३१)
- (३) नारद रिस गो तिहि दाई (प० च० २६)
- (४) ताही को भावे वैराग (गी० मा० २२)
- (५) विखत ताहि भान गुन ताहि (गी॰ मा॰ २०)
- (६) तिस कर अन्त कोड नहिं छहई (प्र॰ च॰ १)
- (७) तास ची इह नहिं कोई (छी० वा० १) स० तस्य>अप० तस्स>तमु>तासु । तिसी, तासु का ही स्त्रीरिंग रूप है जो मध्य कालीन ई प्रत्यय से बनाया स्था ।

§ ३६१ बहुबचन ते, तिन्ह आदि

- (१) ते मुरनर घणा विगता (प० वे० १२)
- (२) ति इ मनिष जनम विगते (प॰ वे० २४)
- (३) बुटिल बचन तिन कहे बहुत (गी० भा० ३४)
- (४) सास सप्तर ते आहि अपार (गी० भा० ५४)
- ति इ और तिन रूप मृत्त वर्तृकरण वे भाचीन तेण के विकार है। डा॰ चाउल्यां इसकी खुलांच ते मध्यकालीन तेणम् + हि विमान से भानते हैं (उत्ति व्यक्ति ६६७) ते सस्तत ये प्राचीन ते से सबद है।

विकारी रूप--

- (१) ति इहि चरावति वाँड उचाड (द्विर वार्ता १४२) वर्म
- (२) तें कैसे वेंबिए सप्राम (गी० मा० ५४) कर्म
- (३) तिन समान दुजो भट्टि आन (गो० मा० ३०) करण
- (४) तिन की बात म सज्जय भनै (गो० भा० ३२) सम्बाध

- (२) एइ बेंच न संमल्यों आन (इ० ५० ६)
 - (३) इह स्पर्गारोहण की क्या (स्व॰ रो॰) (४) इह रंभा कह अपछर (छि॰ वार्ता १२७)

नह के लिए प्रायः इहि रूप ना प्रयोग हुआ है। इहि, पह, इह, यह आहि रूप अगन्नय के पहुं (हेम० ४१३६२) ने जिनतित हुए हैं। पह ना समन्य डा० चाहुज्यां पत् से नीदते हैं निसके तीन रूप परः, प्रया और एतर्ड बनते हैं (दे० टै० ई ५६६) कमी कमी इहना सहुन्वित रूप हैं। मी प्रयोग में श्वाता है, तैसे हैं बाद तेणु रम्यो ऐसी (प० वे० ५०)।' ह मा 'हीरें' ना मनोग परवर्ती जब में भी होता या दिनियर जनमाणा है १७४)

विकारी रूप या, साहि, आदि । या ब्रब का साधित रूप है जिसके कई तरह के रूप परक्षों के साथ बनते हैं।

- (१) अत्र या कड देखियडँ पराण (प्र० च० ४०३)
- (२) अब या भयी मरण को ठाँव (प्र० च० ४०६)
- (३) सुनउ कथा या परिमठ भीग (छ० ए० क० ६७)
- (४) या तैं समभौ साद असाद (गी॰ भा॰ २००)

(५) या ही लगि हो सेवों (गी० मा० ५७)

🖣 ३०४. सम्बन्ध के यातु, इसो आदि रूप—

(१) गीता ज्ञान शीन नर इसी (गी० मा० २७)

हतो रूप स॰ यत-अस्प>मा॰ धशस्ता से सम्बन्धित माद्म होता है । बा॰ चाहुर्ग्य सम्बन्धि स्तुत्पति सक्तत पतस्य से मानते है देखिए (हि॰ मा॰ इतिहास § २६३) ।

बहुवचन—ये, इन

- (१) ये नैन दुवै यसि रापै (पं॰ वे॰ ४=)
 - (२) सब जोधा ए मेरे हेत (गी॰ भा॰ ३६)
 - (३) ए दुर्धद अन्य के पूत (गी॰ भा॰ ४५)
 - (v) छीइस अकारण ए सरे (छी० वा० ११)

ये को स्युत्पत्ति डा॰ चाइ-वाँ के अनुसार प्रा॰ आ॰ भाषा के एन् > म॰ ना॰ एअ > ए से हो सकती है (उक्ति व्यक्ति स्टडी § ६७)।

निकारी रूप-इन-इसके साथ भी सभी परसर्गों का प्रयोग होता है-

- (१) येषू इनमें एके लहे (गी॰ मा॰ १७)
- (२) इन मारे त्रिमुजन को राज (गी॰ मा॰ ५५)
- (३) इन में को है (ग्र० था० २१)

इन स्रोताम सं० एतानाम>एआण>एग्इ अप०>एग्इ>इन्इ>इन । सम्बन्धनाचक सर्वनाम

लम्बन्धनायक सवनाम

- § २०४. सम्बन्ध वाचक सर्वनाम के निम्निङ्खित रूप पाये जाते हैं । एक्यचन-जो,
 - (१) एकादसी सहस्त्र को क्रे (म॰ क॰ १९५)
 - (२) विनमें रोगी कुपथ जो करई (म० क० ३)

- (२) एइ बेंन्ड न संमल्यों आन (इ० पु॰ ६)
 - (३) इह स्वर्गारोहण की क्या (स्व॰ री०)
- (४) इह रंभा कइ अपद्यर (छि॰ बार्ता १२७)

यह के लिए प्राय: इहि रूप का प्रयोग हुआ है। इहि, पह, इह, यह आदि रूप अगमरा के एह (हेम॰ ४।३६२) से निक्सित हुए है। एहु का सम्बन्ध डा॰ चाउुन्मां एत् से बोडते हैं जिसके तीन रूप एवः, एपा और एतद बनते हैं (वै॰ है॰ ६ ५६६) कमी कभी इह ना सञ्चनित रूप 'इ' मी प्रयोग में आता है, जैसे 'इ बाद तण रग्यो ऐसी (प० वे० ५७)।' इ या 'इपि' वा प्रयोग परवर्ती बज में भी होता था (देखिए ब्रजमापा हू १७४)

विकारी रूप या, याहि, आदि । या बज का साधित रूप है जिसके कई तरह के रूप परसर्गों के साथ बनते है।

- (१) अत्र या कड देखियडँ पराण (प्र० च० ४०३)
 - (२) अन या भयौ भरण को ठाँव (प्र० च० ४०६)
 - (३) सनद कथा या परिमल भोग (ल॰ प॰ क॰ ६७)
 - (४) या तें समभौ साद असाद (गी० भा० २८) (५) या ही लगि हो सेवो (गी० मा० ५७)

र् ३०४, सम्बन्ध के यास, इसी आहि रूप-

(१) गीता शान दीन नर इसी (गी० मा० २७)

इसी रूप स॰ एत-अल्प>प्रा॰ एअस्स से सम्बन्धित मादम होता है। डा॰ चादस्यां इसकी व्युत्पति सस्कृत एतस्य से मानते है देखिए (हि॰ मा॰ इतिहास § २६३)।

बर्वचन-धे, इन

- (१) ये नैन दुवं यसि रापै (पं॰ वे॰ ४=)
 - (२) सद बोधा ए मेरे हेत (गी॰ भा॰ ३६)
 - (३) ए दुर्बुद अन्ध के पूत (गी० मा० ४५)

(४) छीहल अकारण ए सरे (छी० वा॰ ११)

ये को व्युत्पत्ति डा० चाडुऱ्याँ के अनुसार प्रा० आ० भाषा के एत् > म० मा० एअ > ए से हो सकती है (उक्ति व्यक्ति स्टडी ६ ६७)।

विनारी रूप-इन-रसके साथ भी सभी परसमों का प्रयोग होता है-

- (१) वेध इनमें एके लहै (गी० मा० १७)
- (२) इन मारे त्रिमान को राज (गी० मा० ५५)
- (३) इन में को है (ग्र॰ था॰ २१)

इन सर्वनाम सं० एतानाम>एञाण>एव्ह अप०>एव्ह>इव्ह>इन। सम्बन्धवाचक सर्वताल

- र्षे ३०४. सम्पन्य याचक सर्वनाम के निम्नलिबित रूप पाये जाते हैं। एक्यचन-शे.
 - (१) एकादसी सहस्य वी करे (म० क० १९५)
 - (२) विनमें रोगी कुपथ की करई (म॰ क॰ ३)

व्रक्षमाषा § १८०) किन के रूप आरंभिक वन ने निक्ते हैं जो उपर्युक्त उदाहरणों में दिखाई पडते हैं । सख्या अवस्य ही अपेदाकृत कम है ।

६ ३०७. अपाणि सुचक परन बाचक सर्वनाम के रूप--बहा, काहि ।

- (१) नहीं माहि अहु (छि० वार्ता ११३)
- (२) वहा बहुत वरि की जै आनु (गी० भा० २६)

६३०= अनिरुवय बाचक सर्वनाम

- (१) तिस कड अन्त कोउ नहिं सहई (प्र॰ च॰ २)
- (२) तुम बिनु और न कोक मेरो (६० म०)
- (३) इहि ससार न कोऊ रह्यो (गी० भा० २५)

कोऊ ही ब्रज का मुख्य रूप है। कोई का प्रयोग आर्यमक ब्रज में नहां रिखाई पडता। परतता ब्रज में (मप्यकालीन) भी इसका प्रयोग बहुत प्रचलित नहीं या (देखिये ब्रजमापा § १९१)

विकृत रूपान्तर--शहु, किस

- (१) मानत कहा न काहु की (स्व० रोइण ६)
- (२) बाहू बदना ऊपर चाऊँ (गी० भा० २३)

'किस्पो' रूप मी मिलता है। यह रूप डा॰ वर्मा के अनुसार खड़ीशोठी के क्सिस मा समोधित रुपान्पर है (ब्रजमापा हुँ १६२) किन्द्रा इसे अपभ्रश कस्स>िक्स से सम्बन्धित भी क्स वा सनता है।

(१) हिस्यो देख्यो (रा० वा० ४५)

इस रूप का प्रयोग ज्ञारिभक बज में अत्यूल्य दिखाई पहला है।

§ २०२ अचेतन अनिश्वय वाचक सर्वनाम के रूप

- (१) वर्षु सो भोग जानिवे (रा० वा० २)
- (२) वर् न सुके हिये ममार (गी० मा० ५८)

\$ २१० निजवाचक तथा आदरार्थक सर्वनाम आरगे, आपनो, अपनी आहि रूप

(१) तेंड रापि सरे न आपणे (प्र॰ च॰ ४०६)

- (२) परना मुली कीजै आपणी (इ॰ पुराण)
- (३) बरइ आलोच मरम आपणा (त० प० क० १३)
- (४) हों न विने चाहाँ आपी (गी० भा० ५२)
- (५) इन्द्री राखरु सनइ श्राम बति (छी० वा० २)
- (६) भीड सहइ सन आप (छी॰ वा॰ ५)

ये सभी रूप सत्कृत क्राह्मन् अथयां अथयां से निर्मित हुए हैं। अपग्रश में इसी मा अथया (हम० ४१४२२) रूप भिल्ता है शो ब्रज में आपन, अपनी आदि रूप में विक सित हुआ। प्रकाशषा § १८.०) किन के रूप आरंभिक प्रज में मिलते हैं जो उपर्युक्त उदाहरणों में दिखाई पडते हैं। सख्या अवस्य ही अपेदाकृत कम है।

३०७, अप्राणि सुचक प्रश्न बाचक सर्वनाम के रूप~~कहा, द्वाहि ।

- (१) कही काहि अहु (छि० वार्ता ११३)
- (२) क्हा बहुत करि कीनै आनु (गी० भा० २६)
- § ३०= अनिश्चय याचक सर्वनाम
 - (१) तिस कड अन्त कोउ नहिं हहई (प्र॰ च॰ २)
 - (२) तुम बिनु और न कोक मेरी (६० म०)
 - (३) इहि ससार न कोऊ रह्यो (गी० भा० २५)

कोऊ ही ब्रज मा मुख्य रूप है। कोई मा प्रयोग आरम्भिक ब्रज में नहां रिखाई एडता। परवता ब्रज में (मृष्यकालीन) भी इसका प्रयोग बहुत - प्रचलित नहीं था (देखिये मनभाषा है १६१)

विकृत रूपान्तर--नाहु, किस

- (१) मानत बह्या न काहु की (स्व० रोहण E)
- (२) बाह करना ऊपर चाऊँ (गी० भा० २३)

'किस्पो'रूप मो मिलता है। यह रूप डा॰ वर्मा के अनुसार खडीबोटी के क्सि का समोपित रुपान्यर है (ब्रजभाषा § १६२) किन्द्रा इसे अपभ्रद्मा कस्स≫किस से सम्बन्धित मी क्हा का सकता है।

(१) क्ष्स्यो देख्यो (रा० वा० ४५)

इस रूप का प्रयाग आरम्भिक ब्रज में अत्यरूप दिखाई पहला है।

- § ३०२ अधेतन अनिश्चय वाचक सर्वनाम के रूप
 - (१) वहु सो भोग जानिवे (रा० वा० २)

(२) क्छू न सुक्ते हिये मुक्तार (गी॰ भा॰ ५८)

§ ३१० निजवाचक तथा आद्रार्थक सर्वनाम आवमे, आपनो, अपनी आदि रूप

- (१) तेंड रापि सरे न आपणे (प्र॰ च॰ ४०६)
- (१) परजा मुली कीजै आपणी (प्र० च० ४०६ (२) परजा मुली कीजै आपणी (इ० पराण)
- (३) बरद आलोच मरम आपणा (८० प० क० १३)
 - (४) हों न विने चाहो आपो (गी॰ भा० ५२)
- (५) इन्द्री राखहु सबइ ऋप वसि (छी० वा० २)
- (६) भीड सहइ तन आप (छी॰ वा॰ ५)

ये सभी रूप सन्हत ब्रात्मत् >अयण >अय से निर्मित हुए हैं। अपभ्रश में इसी वा अयण (हम० ४४२२) रूप मिल्ता है बी ब्रब में आपन, अपनी आहि रूप में दिव सित हुआ।

- (२) गीता शन होन नरु इसी (गी० मा० २०) सं० एताहरा >पा० एदिस >एइस >अइस >ऐसा, ऐसे आदि।
 - ं एतादश्रञा॰ एदिसञ्चर्स अइसञ्चर्सा, एत आ (१) वृद्धमद्र मान भग या होद्र (प्र॰ च॰ ३४)
 - (२) देला सगुन केते वरवीर (गी॰ मा॰ ५१)
- (३) टिन्ह को कैमे सुनू पुराण (इ० पु० ७) केटश>कईस>क्टस>कैमा
 - (१) तैसे सन्त छेह तुम ज्ञानि (गी० मा० ३)
 - (२) तो यह मोरे हैं है तैसें (गी॰ मा॰ ३०)
 - सं॰ तादश > प्रा॰ तादिस > तदस > तैसा~
 - (१) क्ट्यो प्रश्न अर्जुन को बैसे (गी० मा० ३०)
 - (२) सार माडि वन बाध्यो बिमो (गी० मा०)

यादश>याईस>बइस>बैहा ।

परसर्ग

§ ३१३. परसमों के दियम में डा॰ तेसीतोरी वा यह निष्कर्य अल्पन्त उचिव प्रतिव हेता है कि परसर्य अधिकरण, करने, या अमादान कारक वी संज्ञाय है अपना विदोपमा और इन्ता। जिस करा के साथ इनमा प्रयोग होता है थे उसके बाद आते हैं और उनके लिए उस सरा को संक्रप कारक वा बन बारण करना होता है। अपना बन्मों कभी अधिकरण और करण बारक मा मी। इनने सिर्ज मा सीत मा मित अध्यय हैं (पुरानी याजस्थानी है हट) आरोपी बन्नामा में अनेक महार के परसर्थों वा प्रयोग हुआ है। अरम्भण बीतरद वेचन खेतक यहाँ। का ही नहीं, बाल्क अन्य पूर्ण तस्मम पा तरमन पूर्ण वारनी का मी प्रयोग हुआ है।

कर्व परसर्ग-नै

\$ २१४ कर्ता कारक में नैं का प्रयोग कुछ स्थानों पर हुआ है। यदाने यह सरुवा अच्छन है।

- (१) राजा नै आइस दीन्हों (रा० छ० वार्ता० १४)
- (२) सावंत ने स्नान कीयो (रा० ल० वातां० १६)

ने परसर्गे का स्पोत १६वीं शती वह की मापा में कही नहीं दिलाई पढता। जबर के वदाहरण ग्रासे ल्युवन बार्ता की बचनिवाओं ते िक्ट ग्राप्ट है। इन्हें चाहें तो परवर्ता मी कह एकते हैं। हित्त भी ने बा प्रदेश सेक्ट्रवर है। कोर्तिन्ता की भागा को छोड़कर १४वीं आधी के पहले को शायर ही किमी रचना में भी बा प्रपेत मिने। कीर्तिन्ता में भी ये प्रमेत के विकास के बेनने कर में आते हैं। इस महार कहा के साथ प्रयुक्त भी के ये अवस्त महत्त्वपूर्व उदाहरण कहे वा सकते हैं। का प्रस्ति भट की मापा में एक स्थान पर 'न्दे' आया है (देखिये हैं २३१)

§ देरे . हमें प्रसर्गे—हरूँ, हो, हो, हो, हो, हैं उ तिहर हरूँ हुदि (१० च० र) गुप्तियन हो है (गी० मा० २) राजन हो अहतरी (गी० मा० २) वाही हो माने बेराग (गी० मा०) साबर हो तरे (गी० मा० २६) (२) गीता ज्ञान होन नव इसी (गी० भा० २७)

सं एतादश > प्रा एदिस > एइस > अइस > ऐसा, ऐसे आदि ।

(१) क्इमइ मान भग या होइ (प्र॰ च॰ ३४)

(२) देला सगुन वैसे वरवीर (गी॰ मा॰ ५१)

(३) दिन्ह को कैमे सुनू पुराम (इ० पु० ७)

म⁹दश>क्रेंस>क्रस>कैमा

(१) वैसे सन्त लेहु तुम ज्ञानि (गी० मा० ३)

(२) तो यह मोरी हैंहै तैसें (गी० मा० ३०)

सं॰ तादश>पा॰ तादिस>तदस>तैसा~

(१) क्ट्यो प्रश्न अर्तुन को जैसे (गी० मा० ३०)

(२) सार माहि वनु द्राप्यो जिनो (गी० भा०)

यादश>याईस>बइस>बैका ।

परसर्ग

§ ६१३. परसमों के विश्व में डा॰ तेतीविसी का यह निष्कर्य अवन्त उचिव प्रतीव होता है कि परसमें अभिकरण, करन, मा अनावान कारक नी संजायें हैं अपना निरोपण और इस्ता। जित करा के साथ इनना प्रयेग होता है थे उसके बाद आवे हैं और उनके किए उस करा को संकप्त कारक कर क्याण करना होता है। अपना कभी कभी आवेकरण और करण बारक का भी। इनमें से तिउँ या सी यादी अथवा है। अस्तर्या क्यों कह है हैं कम्माया में अनेक प्रशार के परसमों का प्रयोग हुआ है। अस्तर्या को तरह के कर केता गरी का ही नहीं, साक्त अस्त पूर्ण तक्यम या तरमन पूर्ण गरी का भी प्रयोग हुआ है।

कर्व परसर्ग—ने

§ ३१४ चर्ता द्वारक में नें का प्रयोग दुद्ध स्थानों पर दुद्धा है। यदि यह मरूबा इस्टब्स है।

(१) राजा नै आइस दीन्हों (रा० छ० वार्ता० १४)

(२) सावंत ने स्नान वीयो (रा० २० वातां० १६)

ने पत्तर्य न प्रयोग १६थीं राती वह ही भाग में कहीं नहीं दिलाई पहता। कार के व्याहण पढ़ी नहुतन बातों ही चाहिकाओं हे जिए रात्य है। इस्हें चाहि ती परवर्ता भी हर सकते हैं। किर भी ने बा प्रदेश संज्वन है। कोर्तिन्या की भागा को होज्यह प्रशी रात्रि के पहले वो शायर ही किसी पत्तना में भी ने प्रयोग कि पहले वो शायर ही किसी पत्तना में भी ने प्रयोग किए होर्जियता में भी ने प्रयोग के पहले को जान कर में आते हैं। इस प्रवार कहा के साथ प्रयुक्त भी के ये अवस्ता महत्यूरों उदाहररा ने बा सने हैं। नाहरित पहले भागा में एक स्थान पर 'क्टे' आया है (विलाई ह २३१)

§ देर's, बर्म परमाँ—कहुँ, हो, हो, हो, हो, हैंड जिटि कहुँ दुदि (१० च० र) गुरियन को है (गी० मा० २) रायत को अवतरों (गी० मा० ४) वारी हो माने चैराग (गी० मा०) हाचर को तरें (गी० मा० २६) अधिकरण में मुख्य रूप से मध्य से विवतित महिन, महि, मह, में वारे रूप मिळी हैं | उपरि के पर और ये वा भी बहुत अधीम होता है | अन्त , अन्तर जैसे बुद्धेक पूर्ण शब्द भी पतार्थ की तर प्रयुक्त कर हैं |

§ ३२०. सम्बन्ध तगउ, बउ, बौ, बो, के, की (स्त्रीलिंग) तगी, तगउ

पग्रह तगउ (प्र० च० १०)

तिम कड अन्त (प्र॰ च॰ २) सोजग की विस्तारा (प्र॰ च॰ १५) मीचु को ठाइ (प्र॰ च॰ ४०६) बनमेजय के राजि (इ॰ प्र॰ ५)

बाके चरन (इ॰ मं॰ २) मीपम रूप की लाडली (इ॰ म॰)

चितइ चिन तन (ड़ि॰ वार्ता १२४) करम तणी (छी॰ वा॰ १८)

कड, की, को, को, को आदि परसर्य स॰ इन्तः>मा॰ केरो>या केरक>अर॰ वेरड से विक्तित हए हैं।

तन्, वणत्र, तन्। आदि रूपो भी श्युत्सित के विषय में भागी विषाद है। बीगत हनको उत्पर्व तन>तण (अत्यय मनातन, पुरातन) से मानते हैं। भेशान ने इसना विरोध किया। सज्ञ या विद्योगण से बनने बाले परस्तामें भी देखते हुए मिली अत्यय से परस्तर्ग मा विस्रवित होना मिनत विरोध केला माज्यम होता है। देशीलिए डा॰ तैसेत्रीरी ने इसनी स्वत्याच सन्द्रत के अनुमानित रूप आत्मनह से भी "आत्मनह->अप्यणड>तगड (दे॰ पुरानी सन्द्रयानी है ०३)।

§ ३२१ परसर्गों के प्रयोग में कहीं कहीं व्यत्यय मी दिलाई पहला है । अधिकाण का परसर्ग करण में

ना पह सीख्यो (प्र० च० ४०६)

मो पै होइहै तैसे (गी० मा० ३) वेद व्यास पहि सुन्धी (गी० मा० ६३)

सपुत्त-कभी कभी दो नारनों के परसर्ग एक साथ प्रपुत्त हुए हैं।

बैसे-- तिन को से अति मह्य पाइये (६० मंगल)

विशेषण

§ २२२ विद्येषणों शं रचना में प्राचीन ब्रबमाचा मध्यमणीन या नतीन ब्रबमाचा ने बहुत मित्र नहीं है। विद्येषणों शा निर्माण करहर या अवश्य पदति से योडा मित्र अवस्थ है न्योंक कमनिताण श्री हर्ष्ट से प्राचीन अपये मापा ने विद्येषणों शो तरह, विद्येष्प ये लिंग, चचन आर्द शा अनुनरण स्टते हुए मी इनके स्वरूप में येजन शोई निष्ट्रिचत परिवर्तन नहीं होता। कई रयाणे पर तो ये लिंग बचन के अनुसार परिवर्तन हो जाते हैं। वहीं नहीं मो होते वेते मुन्दर कडका, मुन्दर कडकी आरि। नीचे बुत योहे से महत्वपूर्ण विद्येषण-रूप उपस्पित विषे खाते हैं। दनमें पहला पद विद्येषण है दुस्स विद्येषण।

वडी बार (प० च० ३२) उत्तम ठाऊँ (म० क० । विकट टन्त (वै० प० १) असूप , पथा (वै० प०) चक्षित चित्त (দ্ভি० वार्ता १२०) सुत्रर जीवन (দ্ভি০ वार्ता० १३६) सुत्रश्री

र प्रामर भाव द हिन्दी छैं।वेज है १६७।

अधिकरण में सुख्त रूप से भव्य से विक्रित मिलक मिले, मिह, में भारे रूप मिल्ते हैं। उपरि के पर और वे ना भी बहुत प्रयोग होता है। अन्त , अन्तर जैसे बुखेक पूर्ण शब्द भी परार्ण नी तरह प्रयुक्त हुए हैं।

§ ३२०. सम्बन्ध तमाउ, कड, की, को, के, की (स्त्रीलिंग) तमी, तमाउ

पदाह तजड (प्र० च० १०)

तिम कड अन्त (प्र० च० २) नोजग नौ विस्तारा (प्र० च० १५) मीचु नो ठाइ (प्र० च० ४०६) जनमेजप के शकि (ह० प्र० ५)

बाके चरन (६० मं० २) भीपम रूप की लाडली (६० म०)

चितर चिन तन (ड्रि॰ वार्ता १२४) करम तणी (छी॰ वा॰ १८)

नड, नी, नो, के, नी आदि परसर्ग स॰ इतः>मा॰ नेरो>या मेरक>अर० नेरड से विम्नित हुए हैं।

तन, वणज, तनी आदि रूपों भी स्पूरति के निषय में भागी विश्वद है। बीमा इनकी उत्तरि तन > नण (प्रत्य मतावन, पुरातन) से मानते हैं। केलाग ने इसका निरोध किया। का विधिया से बनने वाले परातों भी देखते हुए दिसी प्रत्य से परातें मा विश्वदित होना निपस विशेष नैया माद्म होता है। देशीलिए बाठ तेशीलेशी ने इसनी खुत्तिय स्तहत के अनुसानित क्रम आदमब्द से हो। अअसमब्द > अप्यण्ड > तणड (दे० पुरासी सन्त्रमानी है जरे)।

§ ३२१ परसर्गों के प्रयोग में कहीं कहीं क्लप्य मी दिखाई पटना है। अधिकरण का परसर्ग करण में

> ना पह सीख्ये (प्र० च० ४०६) मो पे होइहै तेसे (गी० भा० ३)

वेद व्यास पहि सुन्यी (गी० भा० ६३)

सपुर्च-कभी कभी दो बारकों के परसर्ग एक साथ प्रयुक्त हुए, हूँ ।

बैसे-- तिन को तें अति सुख पाइये (६० मंगल)

विशेषण

§ ३२२ कियेपजों को रचना में प्राचीन ब्रह्माया संप्रकृतिन वा मनीन ब्रह्माया से बहुत पित नहीं हैं। दिखेपजों का विमान करूत या आन्न्र्य पद्धित से योड़ा मिन्न अवस्य है क्योंक कर्तानांग की दृष्टि से प्राचीन आयं भाषा के दिखेण्यों को तरह, विदोष्प के लिंग, बब्दा आदि का अनुसरण करते हुए भी इनके सक्त में स्वत्न कोई निश्चित परिवर्तन नहीं होता। कई रक्षणें पर तो ये लिंग बचल के अनुसार परिवर्तन को बाते हैं। वहीं नहीं भी होते बैते मुन्दर जबका, सुन्दर जबकी आदि। नीचे बुद्ध योदे से महत्वपूर्ण विदोषण-रूप उपस्थित विदे बाते हैं। इनमें पहला पद विदोषण है दूस्य विदोष ।

नवी चार (प्र० च० १२) उत्तम टाऊँ (म्० क०। विकट टन्ट (बै० प० १) अनूप क्या (१० प०) चित्रेत चित्र (ख्रिं० वार्ता १२०) सुपर जोवन (ख्रिं० वार्ता० १२६) कुमुत्री

१ ए प्रामर भाव द हिन्दी लैंग्वेज हैं १३४।

```
१०० — ही (म० च० ११) से (१० प्राम)
१०१ — ग्रहोता सह (७० प० ६० ११)
कोट (म० ६० ए० ६० ११)
कोट (म० ६० ए०६) कोट (गी० मा० १)

६ ३२४. इ.स. बाचक
१ — प्राम (ड्डी॰ या० १५)
२ — न्हेंगे (गी० मा० ११)
५ — नंदमी (ड्डी॰ या० ११) स्त्रींडम
८ — अप्रमी (ड्डी॰ या० ५१) स्त्रींडम
८ — अप्रमी (ड्डी॰ या० ५१) स्त्रींडम
इस्पूर्ण संस्थायावक
१ अर्थ (ग० च० ४०)
६ ३२४. आर्थि हस्यावनक
चीमनो (गी० मा० १३)
```

क्रियापद

सहायक किया

हु कुरूद, अवभाषा में सद्दक किता चा बहुक प्रयोग होता है। संयुक्त किया में सहायक किया चा अपना अठम महत्त है। सहायक किया अस्तितायक किया के रूपो से निर्मित होती है। अवभाषा में√ सूं और√ केम्राच्छ (अछ्डे छ० प० फ० ट अहै आदि रूप) पातु से बनी सहायक कियायें होती हैं। नीचे भूषातु से बनी सहायक क्रिया के विविच काल के रूप दिये बातें हैं।

सामान्यवर्तमान

```
होर, हुर, हीं, होग, होहि (बहु)

कवित न होड़ (म॰ च॰ १) तो होट (म॰ च॰ ५)

होत मान (म॰ फ॰ २९६) होजभी हैं (गी॰ मा॰ ५५)

होर्द, बहुचचन (वै॰ प॰) देत हुर (य॰ वा॰ ४二)

होर्द, हुई, होप<अप॰ होट् ८चै॰ महाते से चने हैं। होर्द बहुचचन का रूप है।

है रूप<अद्दर्श अद्दर्श महाते से बिकलित माना बाता है।
```

क्षार जहरू - जब्दार पर कारण नामा जाया है। विधि आहार्यक स्त का कोई उदाहरण इन रचनाओं में नहीं मिछा । संमयतः यह रूप होइने, हुने, हुन्तो, हरा होगा, ऐसे हो रूप अम्य क्रियाओं के आहार्यक में होते हैं। इसी से मिल्ले जलते रूप पानी राजस्थानों में उपलब्ध होते हैं (देखिये तेसीतीरी पुरु राज ६ ११४)

भूत छद्न्त

ह दर७. हुअद, भवड, मई (सीलिंग) भी, भये, भयी, हुउ को दाढे भवड़ (१० व० २८) मई चित्रशांग (१० च० ४०२) भी ताम (१० च० ४०२) भयी भीचु को (१० च० ४०६) खंड दे मयड़ (व० २१० ६) इड्रर हुउ (१० वर० ४८) हुड्रर डड्राइ (३० व० क० ५११) मई (हु० चार्ता १२०) भी त्रिम लीर (हु० वार्ता

```
१००--सौ (प्र॰ च॰ ११) सै (ह॰ पुराण)
   १०१-एकोत्तर सह (छ० प० क० ११)
         कोटि (म० क० २६६,) करोर (गी० मा० १)
🛚 ३२४, क्रम बाचक
      १—मधम (छी० वा० १५)
      २--दूनो (गी० भा० ११)
      ५—वंचमी (प्र० च० ११) स्रीलिंग
      ८—अष्टमी (ह्यो० व्या० ५३)
      ६--नवमी (ल० प० क० ४) खोलिय
श्रपूर्ण संख्यावाचक
      ु अर्थ (प० च० ४०३)
```

६ ३२४. आइति सस्यावाचक-चौगुनो (गी० मा० १३)

क्रियापद

सहायक किया

§ ३२६. अजभापा में समुक्त किया का बहुल प्रयोग होता है। संयुक्त किया में सहायक किया ना श्रपना अलग महत्व है। सहायक किया अस्ति गचक किया के रूपों से निर्मित होती है। ब्रजमापा में√ मू और√ *ऋच्छ (अछुई त०प०क० ६ ग्राहै आदि स्प) घातु से बनी सहायक नियायें होती हैं। नीचे भू धातु से बनी सहायक किया के विविध काल के रूप दिये साते हैं।

सामान्यधर्तमान

होह, हुइ, हीं, होय, होहि (बहु) कवित न होइ (प्र० च० १) सी होइ (प्र० च० ५) होय थान (म॰ क॰ २९६) संबन्धी हैं (गो॰ भा॰ ५५) होहि, बहबचन (वै० प०) देत हह (रा० वा० ४८)

होइ, हुई, होय < अप० होइ < सं० भवति से बने हैं । होहि बहुवचन मा रूप है । हैं रूप<अहह<अछह<*ग्रस्तित से विकसित माना बाता है।

विधि आज्ञार्यक रूप का कोई उदाहरण इन रचनाओं में नहीं मिला 1 संभवतः यह रूप होइजे, हुजै, हुओ, रहा होगा, ऐसे ही रूत अन्य कियाओं के आजार्थक में होते हैं। इसी से मिलते जलते रूप प्रानी राजस्थानी में उपलब्ध होते हैं (देखिये तेसीतीरी ए० राज॰ ६ ११४) भूत शृद्दन्त

. ६ ३२७, हअउ, मयउ, मई (स्नीतिंग) भी, भये, भयो, सड

सो दादे भयक (प्र॰ च॰ २८) भई चितकाणि (प्र॰ च॰ ४०२) भी ताम (प्र० च० ४०१) मयी मीच की (प्र० च० ४०६) खंड हे भवऊ (स्व० रो० द्र) हजूर हुउ (ए० वा० YE) हम्र उद्घाह (ल॰ प॰ क॰ पार) मई (खि॰ बार्ता १२७) भी जिमि खीर (खि॰ बार्ता

एकबचन-सोहर (प्र० च० १६) चलर (प्र० च० ३३) मीजर (प्र० च० १३६) रोबर (प्र० च० १३६) पार्ड (ह० पु०) मुतै (ह० पु०) मेल्है (ह० पु०) विनसै (म० क० १) करें (Ho कo रहप) हींडह (तo पo कo v) देपें (छिo वार्ता १२६) बनावह (छि॰ या॰ १३६)।

बहुबचन की किया में हि विभक्ति अपप्रश में चलती थी, बुद्ध स्थानों पर हि विभक्ति सुरद्भित है। अहिं>ग्रइं>ऐ के रूप में परिवर्तन भी हुआ है।

हि-क्सहि (प० च० ७०६) नाहि (गी० मा० ३८) गुजहि (छी० वा० १७) इ--लगइ (इ० पुरास २) जाइ (छि० वा० १२४) देपइ (छि० वा० १२४) पीवइ (छी० वा० १०)।

एँ—मनार्वे (वै० प० २)

ऐ--- रातें (स॰ रो॰ E) आवै (छि॰ वार्ता १२४)

वर्तमान रुदन्त से बना सामान्य वर्तमान काल

६ ३३३ वर्तमान कदन्त के अत बाले रूप विचित् परिवर्तन के साथ सामान्य वर्तमान में प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों का प्रचलन मध्यक्षल में ही आरम्भ हो गया था। संस्कृत अन्तर:>अप॰ अन्तरं>अत, श्रती के रूप में इनरा निशस हुआ। पठन्त>पठन्तउ> पठत पडती या पडति । डा॰ तेसीतोरी का विचार है कि सभवतः अरभ्रश में ही दत्त्य अनुनातिक व्यवन दुर्ज्ल हो कर अनुनासिक मात्र रह गया था जैसा कि सिद्ध हेम ४।३८८ में उद्दृत करेतु और प्राकृतर्नेगलम् १११३२ में उद्दृत जात से अनुमान किया वा सकता है। (पुरानी राजस्थानी है १२२) अन्त बाले रूप भी अवहड़ में मुरद्धित हैं । किन्तु अन्त>अत की प्रवृत्ति ज्यादा प्रवल दिलाई एडती है। बाद में ब्रबभाषा में अन्त बाले रूप प्राय: अत-अर्ती वाले रूपों में बरल गए। वहीं वहीं अन्त वाले रूप मिलते हैं उन्हें आग्नश का प्रभाप ही करना चाहिए बैसे-

(१) जे यहि छन्द मुजन्तु (इ० पु० ३०)

(२) घोर पाप पीटन्तु (इ० प० ३०)

१४११ वि॰ के प्रचम्न चरित और इश्विचन्द्र पुराण में अवहड की तरह अन्त वाले स्प ही मिलते हैं । बाद में १५वीं शती के उत्तरार्थ से अत वाले रूप मिलने लगे । उदाहरण-(१) द्रप मुख परत न दीडि (६० म० १)

(२) देशी पूजन कर वर मागत (६० म०)

(३) में इन महलन करत विलास (विष्याद)

(v) देखति पिरति चित्र चहुँपासि (छि॰ वाता १३२)

(५) तिन्हीं चरावित वाह उचाइ (छि॰ वातो १४२)

(६) आवित सपद बार बार (छी० बा० ७)

इन रूपों में इ कारान्त अर्थात् ति वाले रूप स्त्रीलिंग में है। छीइल बावनी में अपभ्रश के प्रभाव के कारण बुद्ध अवड बाले रूप भी मिन्न्वे हैं।

चित चिन्ता चिन्तउ हरिण (३)

एकवचन-सोहर (प्र० च० १६) चलर (प्र० च० ३३) मीजर (प्र० च० १३६) रोवड़ (प्र॰ च॰ १३६) पाटै (ह॰ पु॰) मुद्रै (ह॰ पु॰) मेहडै (ह॰ पु॰) विनसै (प्र॰ क॰ १) करें (म० क० २६५) हीडर (ल० प० फ० ७) देपें (छि॰ बातां १२६) बनावह (छि॰ वा॰ १३६)।

बहुवचन की किया में हि विभक्ति अपभ्रश में चलती थी, बुद्ध स्थानों पर हि विभक्ति सरवित है। अहिं>बारंं>ऐ के रूप में परिवर्तन भी हुआ है।

> हि-क्सहि (प्र॰ च० ७०६) बाहि (गी॰ मा० ३८) गुत्रहि (छी॰ वा॰ १७) इ-लगह (इ॰ पुरास २) जाह (छि॰ वा॰ १२४) देपह (छि॰ वा॰ १२४) पीवइ (छी० वा० १७)।

एँ-मनार्वे (वै० प० २)

एँ—सर्वें (स्व॰ रो॰ E) आवै (छि॰ वार्ता १२४)

वर्तमान रुदन्त से बना सामान्य वर्तमान काल

§ ३३३ वर्तमान कुदन्त के अत बाले रूप किंचित् परिवर्तन के साथ सामान्य वर्तमान में प्रयुक्त हाते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों का प्रचलन मध्यकाल में ही आरम्भ हो गया था। संस्कृत अन्तरः > अप० अन्तरं > अत, श्रदी के रूप में इनरा दिशस हुआ। पठन्त > पठन्त > पठत पढती या पढिने । डा० तेसीतोरी का विचार है कि समवत: अरध्यश में ही दल्य अनुनातिक व्यवन दुर्ज्ञ हो कर अनुनातिक मात्र रह गया था जैसा कि सिद्ध हेम ४।३८८ में उद्भृत करंतु और प्राञ्चतर्पेगलम् १।१३२ में उद्भृत जात से अनुमान किया वा सकता है। (पुरानी राजस्थानी हु १२२) अन्त बाले रूप भी अवहरू में मुरद्दित हैं । किन्तु अन्त>अत की मन्ति ज्यादा प्रवल दिखाई पडती है। बाद में ब्रबभाषा में अन्त बाले रूप प्रायः अत-अती वाले रूपों में बदल गए। वहीं वहीं अन्त बाले रूप मिलते हैं उन्हें आग्राश का प्रभाव ही कहना चाहिए बैसे---

- (१) जे यहि छन्द मुगन्त (इ० ५० ३०)
- (२) घोर पाप पीटन्तु (इ० प० ३०)

१४११ वि॰ के प्रयम्न चरित और इरिश्चन्द्र पुराण में अवइष्ट की तरह अन्त वाले रूप ही मिलते हैं । बाद में १५वीं शती के उत्तरार्थ से अत वाले रूप मिलने लगे । उदाहरण-

- (१) द्रप मुख परत न दीडि (६० म० १)
- (२) देवी पूबन कर बर मागत (६० म०)
- (३) में इन महल्न करत विलास (विष्यानद)
- (४) देखति भिरति चित्र चहुँपासि (छि॰ वाता १३२) (५) तिन्हिंह चराविन वाह उचाइ (छि॰ वातो १४२)
- - (६) आवित समद वार वार (ही॰ वा॰ ७)

इन रूपों में इ कारान्त अर्थात् ति वाते रूप स्त्रीलिंग में है। छीइल बावनी में अपभ्रश के प्रभाव के कारण जुल अतु वाले रूप भी मिन्दी हैं।

वित चिन्ता चिन •• े (३)

क्रियार्थक-संज्ञा

§ 33%, परवर्ती अब की ही तरह आरम्भिक अब में भी कियार्थक संशा के दो रूप प्राप्त होते हैं। एक भ वाला रूप और दूसर भ वाला । डा॰ घीरेन्द्र वर्मा का मत है कि साधारणतया पूर्व में बातुओं में 'नो' लगाकर भी इस तरह के रूप बनते है (देखिये व्रजभाषा (२२०) नीचे प्राचीन व्रजभाषा की रचनाओं से इस तरह के रूप उद्धृत किये जाते हैं।

> 'न'—करन (प्रo चo ३१) पोपन (मo कo २६४) रचन (छिo बाo १२०) देखन (छि॰ वा॰ १२४) राखन (गी॰ मा॰ ५) माजन (छी॰ वा॰ १३) धडन (छो० वा० १३) करण (छो० वा० १३)। 'नि'—स्त्रीलिंग रूपों में 'नि' लगता है।

चितवनि, चलनि, मुरनि, मुसक्यानि (छि० वा० १३५) 'ब'-चिलेंबे को (शुरु वार्ता म) होइब (गीर मार १६)

बहिवे (गी० मा० २७)।

§ ३३७. भूत छुदुन्त-भूतकारु में भूत कुदन्त के बने रूपों का निश्रमार्थ में प्रयोग होता है 1 ये रूप कर्ता के अनुसार जिंग-यचन के अनुसार परिवर्तित भी होते हैं 1 भूतकाल के उत्तमपद्य के रूप--

(१) रविउ पुराण (प्र० च० ७०५)

(रे) अवतरिउँ (प्र० च० ७०५)

(३) समिरयो आदीत (६० पु० ४) (४) कियी कवीत (इ॰ पुराण ४)

(५) हउ सहिउँ सन (छी० वा० १५)

(६) पानी मति (स्त्रीलिंग इरि॰ पु॰ ३)

भृतकाल में उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष के रूपों में कोई अन्तर नहीं होता । पायः ये रूप एकरचन में ऊ, ओ, ओ, ओ नारान्त, बहुबचन में ए अथवा ऐ नारान्त तया सभी पुरुषों में स्नीक्षिय हलों में एकवचन में ईकायना तथा बहुवचन में ई-कायना होते हैं। उत्तनपुरुष का उदाहरण करर दिया वा चुका है। बाकी के उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं।

मध्यम पुरुष के रूप

सीख्यो पोरिस (प्र० च० ४०६) मारिउ कास (प्र० च० ४१०)

भंगिउ राज (प्र० च० ४१०) फूलियौ मूड अब पत्त तित्र (ह्वी॰ वा॰ १२)

ये अज़ुत कीयउ घणो (छी० वा० १२)

यह बोछ म संमल्यो आन (ह० प्रयण ६) अन्य पुरुष के ह्या

जनारान्त ओसारान्त तथा औशायन्त होते हैं।

कियार्थक-संज्ञा

§ ३३६, परवर्ती अन की ही तरह आरम्भिक अन में भी कियार्थक संज्ञा के दो रूप प्राप्त होते हैं। एक 'क' वाल रूप और दूसरा 'च' वाला। डा॰ घीरेन्द्र वर्षा का भत है कि साधारणतया पूर्व में बातुओं में 'नो' लगाकर भी इस तरह के रूप बनते हैं (देखिये ब्रजभाषा ६२२०) नीचे प्राचीन ब्रजभाषा की रचनाओं से इस तरह के रूप उद्दर्शत किये जाते हैं।

```
'न'-करन (प्र॰ च॰ ३१) पोपन (म॰ क॰ २९४) रचन (छि॰ वा॰ १२०)
     देखन (छि० वा० १२४) राखन (गी० मा० ५) माजन (छी० वा० १३)
     घडन (छी० बा० १३) करण (छी० वा० १३)।
'नि'—स्त्रीलिंग रूपी में 'नि' रुवता है।
     चितवनि, चल्नि, सुरनि, सुसक्रयानि (छि० वा० १३५)
```

'ब'--चलिबे को (श॰ वार्ता म) होहब (गी॰ मा॰ १६) वहिवे (गी० मा० २७)।

§ ३३७. भूत कुदन्त-भूतकाल में भूत कुदन्त के बने रूपों का निश्चवार्थ में प्रयोग होता है। ये रूप फर्तों के अनुसार लिंग-बचन के अनुसार परिवर्तित भी होते हैं। भूतकाल के उत्तमपुरुष के रूप---

- (१) रचिउ पुराण (प्र॰ च० ७०५)
- (२) अवतरिउँ (प्र० च० ७०५)
- (३) समिरयो आदीत (इ० ५० ४)
- (४) कियौ क्वीत (इ॰ पुराण ४)
- (५) हउ सहिउँ सब (ह्वी० वा० १५)
- (६) पावी मति (स्त्रीलिंग इरि० प० ३)

भृतकाल में उत्तमपुरूप, मध्यमपुरूप और अन्यपुरूप के रूपों में कोई अन्तर नहीं होता । भायः ये रूप एकाचन में क, ओ, औ, ओ कारान्त, बहुवचन में ए-अयना ऐ-कारान्त तया सभी युख्यों में खोक्षिय स्तों में एक्यचन में ईकायन्त तथा बहुवचन में ई-कारान्त होते हैं। उत्तमपुरुष का उदाहरण करर दिया बा चुका है। बाक्षी के उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये आते हैं।

मध्यम पुरुष के रूप

सीख्यो पोरिस (प्र॰ च॰ ४०६) मारिउ कास (प्र॰ च॰ ४१०) शुंबिउ राज (प्र० च० ४१०) फुलियौ मृह अब एच तित्र (ह्वी० वा० १२) ये अतुत कीयउ पणी (छी० वा० (२) यह बोल म संमल्यो आन (ह० प्रयण ६) अन्य पुरुष के रूप

जनारान्त ओकारान्त तथा औकारान्त होते हैं।